हिन्दी और तेलुगु के मध्यकालीन राम-साहित्यों का तुलनात्मक अनुशीलन

(सागर विश्वविद्यालय की पी-एच० डी०, उपाधि के लिए स्वीकृत)

लेखक

डॉ. चावलि सूर्यनारायण मूर्ति. एम. ए., पी-एच. डी.

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, ए० एम० जैन कालेज, मद्रास ६१

प्रकाशक
हिन्दी साहित्य भण्डार
(टेलीफोन नं० ८२५०८)
१५, चौपटियाँ रोड, चौक, लखनऊ-३

प्रथम संस्करण
संशोधित मूल्य ४०) चालीस रुपये
फरवरी, १९७५

मुद्रक
विद्या मंदिर प्रेस
रानीकटरा, लखनऊ-३

श्रद्धेय गुरुवर

आचार्यप्रवर श्री नंददुलारे वाजपेयी जी को

सादर समर्पित

मद्रास के दो शोध-ग्रंथ-लेखक

आचार्यवर पं० नंददुलारे बाजपेयी

(कुर्सी पर बैठे हुए) के साथ

(खड़े हुए)	(बैठे हुए)	(खड़े हुए)
डा० **चावलि सूर्य नारायण मूर्ति** (प्रस्तुत शोध ग्रंथ के लेखक)	पं० आचार्यवर **नंददुलारे बाजपेयी** उप-कुलपति विक्रम विश्वविद्यालय	**डा० पी० जयरामन** सुब्रह्मण्य 'भारती' और महाकवि निराला पर आपका शोध ग्रंथ अभी-अभी छपा है

प्रारंभिक वक्तव्य

सागर विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग के अन्तर्गत पी-एच० डी० का शोध कार्य पिछले चौदह वर्षों से नियमित रूप से चल रहा है और इस समय तक प्राय: तीन दर्जन शोध कर्ता उपाधियाँ प्राप्त कर चुके हैं। आरंभ में कतिपय विशिष्ट कवियों और साहित्य पुरस्कर्ताओं पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करने का क्रम चला था। इस विषय में एक प्रमुख कठिनाई प्रामाणिक जीवनी के अभाव की उपस्थित हुई, स्वतंत्र जीवनी लेखन का कार्य अबतक हिन्दी में गंभीरतापूर्वक नहीं अपनाया गया जिसका मुख्य कारण उपजीव्य सामग्री की विरलता ही कहा जायगा। यद्यपि हमारा शोध कार्य कवि कृतित्व पर ही केंद्रित रहकर सम्पन्न हो सकता था, परंतु प्रामाणिक जीवनियों के अभाव में वह यथेष्ट फलप्रद नहीं हो सकता था। अतएव हमें आंशिक रूप से अपनी शोध दिशा बदलनी पड़ी। कुछ प्रबन्ध युगीन भूमिकाओं पर भी लिखे गये हैं जिनमें युग विशेष के साहित्य स्रष्टाओं की कृतियों का विवेचन किया गया है और साहित्यिक और कलात्मक प्रदेय प्रकाश में लाये गये हैं। यद्यपि यह काम हिन्दी के आरंभिक साहित्यिक आकलन के लिए आवश्यक और उपयोगी रहा है पर इतने से ही संतोष करना हमारे लिए उचित और सम्भव न था। तब हमने आधुनिक युग के विविध साहित्यिक आंदोलनों और निःसृत कला शैलियों में से प्रत्येक को इकाई मानकर शोध कार्य का तृतीय अध्याय आरंभ किया। इस संदर्भ में, स्वच्छन्दतावादी साहित्यिक आंदोलन से सम्बन्धित साहित्यिक विकास पर प्राय: आधे दर्जन शोध विषय दिये गये, जिनमें से अधिकांश कार्य सम्पन्न हो गया है और कुछ शेष है। स्वच्छन्दतावादी काव्य-कथा-साहित्य, नाट्य कृतियाँ, समीक्षा तथा स्वच्छन्दतावाद के सैद्धांतिक आधारों पर हमारे विभाग द्वारा अनेक शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किये गये हैं और अब भी उनके कुछ पक्षों पर कार्य किया जा रहा है। विशुद्ध वैचारिक, सैद्धांतिक और कला

शास्त्रीय तथ्यों के अनुशीलन तथा राष्ट्रीय और सांस्कृतिक एकता की भावना के निदर्शनार्थ हमारी शोध योजना में स्थान रहा है और कुछ विशिष्ट शोध कर्ता इस कार्य में भी संलग्न हैं। भारतीय साहित्य शास्त्र और कला विवेचन के सिद्धांतों पर स्वतंत्र रूप से अलग-अलग शोध कृतियां प्रस्तुत करने की दिशा में भी हम अग्रसर हो रहे हैं क्योंकि हमें ज्ञात है कि भारतीय कला या साहित्य का अनुशीलन अब भी परंपरागत प्रणालियों से ही हो रहा है। इसमें नवीन चिंतन और आधुनिक वैज्ञानिक उद्‌भावनाओं का सम्यक योग नहीं हो पाया है। हमारी पारिभाषिक शब्दावली भी इस क्षेत्र के अद्यतन नहीं है। प्राचीन साहित्य चिंतन को नया स्वरूप और नयी शब्दावली देने की आवश्यकता है। इन सब के अतिरिक्त कतिपय सांप्रतिक साहित्यिक समस्याओं और प्रश्नों पर भी संतुलित विचारणा की आवश्यकता है, जिन पर पी-एच० डी० के शोध कार्य लाभप्रद हो सकते हैं। उनकी ओर भी हमारी दृष्टि गयी है और कुछ कार्य आरंभ किया गया है।

सागर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में ही डी० लिट्० के शोध सम्बंधी कुछ विषय भी निर्धारित किये गये हैं। इनमें स्वभावत: अधिक व्यापकता और अधिक प्रशस्त विवेचन और आकलन की आवश्यकता प्रतीत हुई है। डी० लिट् सम्बन्धी यह शोधकार्य कुछ ही समय में एक स्पष्ट रूप रेखा ग्रहण करेगा। कहने की आवश्यकता नहीं कि स्फुट और प्रत्यागत विषयों पर आनुषंगिक कार्य करने की अपेक्षा विशिष्ट योजना के अनुसार सुसंबद्ध और समग्र भूमिकाओं पर शोध कार्य करने में हमारी अधिक रुचि है और इस रुचि को साकार रूप देने और फलप्रद बनाने में हम पिछले कुछ समय से संलग्न हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ डा० चावलि सूर्यनारायण मूर्ति के पी-एच० डी० शोध प्रबंध का मुद्रित रूप है। इसमें शोध कर्ता ने हिन्दी और तेलुगु के राम काव्यों का—उसकी समस्त शाखाओं, प्रशाखाओं का—विशद अध्ययन और विवेचन किया है। यह प्रयास जहाँ एक ओर भारतीय संस्कृति की मूलभूत एकता का निदर्शक बन सका है वहाँ दूसरी ओर दो भिन्न प्रदेशों की विभिन्न परिस्थितियों और तज्जन्य साहित्यिक निर्माण के अंतर को भी प्रकाश में ला सका है। डा० मूर्ति का यह शोध कार्य यह निर्देशित करता है कि तेलुगु साहित्य में वाल्मीकि रामायण की साहित्यिक परम्परा का अधिक प्रशस्त प्रतिफलन हुआ है जबकि हिन्दी के राम साहित्य

में अध्यात्म रामायण की परम्परा विशेष रूप से गृहीत हुई है। मूल स्रोतों के इस वैभिन्य के कारण हिन्दी और तेलुगु का राम साहित्य दो पृथक सरणियों पर चल पड़ा है। एक में भक्ति तत्व की प्रधानता है और दूसरे में साहित्यिक और दार्शनिक तथ्य का अधिक गहरा प्रभाव है।

गो० तुलसीदास के रामचरित मानस में उक्त दोनों परंपराओं का सुन्दर सामंजस्य हो सका है। इस कारण मानस एक ओर धार्मिक ग्रंथ के रूप में और दूसरी ओर साहित्यिक कृति की विशेषता से समन्वित और इस प्रकार दोनों पक्षों से परिपुष्ट होकर सारे उत्तर भारत में लोकप्रिय और समादृत हो सका है। तेलुगु रामायणें भी इसी प्रकार अपनी प्रादेशिक सीमा में बहुत प्रचारित हैं। हिंदी में विशुद्ध आलंकारिक ग्रन्थ के रूप में केशवदास की रामचंद्रिका प्रख्यात है। इस प्रकार का एकांगी या एकदेशीय प्रयास तेलुगु के 'रामाभ्युदयक' काव्य में परिलक्षित होता है।

राम भक्ति काव्य पर परवर्ती प्रभावों के रूप में माधुर्य भावना का प्रवेश हुआ था और अनेकानेक कवि माधुर्य भक्ति से अनुप्राणित होकर काव्य रचना में प्रवृत्त हुए थे। इस प्रकार की एकांतिक माधुर्य भावना तेलुगु राम काव्य में विरल है। हिन्दी काव्य में भी माधुर्य भक्ति की यह शाखा साप्रदायिक स्तर से आगे नहीं बढ़ सकी है।

शोध कर्ता ने अपना शोध कार्य सन् १८०० तक सीमित रखा है और यह उचित भी है क्योंकि आधुनिक युग में रामकाव्य का स्वरूप मध्यकालीन राम काव्य के स्वरूप से इतना भिन्न हो गया है कि दोनों को एक रूप में मिलाकर रखना न उचित है, न सम्भव है। जिन शताब्दियों के राम काव्य का अनुशीलन डा० मूर्ति ने किया है उनकी बाह्य परिस्थितियाँ और जीवन दृष्टि बहुत कुछ समान थी। इस कारण तुलना का कार्य सम्यक् धरातल पर किया जा सका है।

डा० मूर्ति का यह शोध कार्य परिश्रम और अध्यवसाय-पूर्वक किया गया है और दोनों भाषाओं के सभी प्रमुख रामकाव्यों को दृष्टिपथ में रखा गया है। यह अपने में एक स्वयं संपूर्ण शोध विषय था और इसकी उचित परिणति प्रस्तुत शोध ग्रंथ में की जा सकी है। आशा है कि साहित्य और संस्कृति प्रेमियों के लिए तथा सामान्य पाठकों के लिए भी यह ग्रंथ उपयोगी और महत्वपूर्ण सिद्ध होगा।

नंददुलारे वाजपेयी

भूमिका

भारत एक ऐसा देश है जिसमें विशिष्ट साहित्य सम्पन्न चौदह प्रधान भाषाएँ व्यवहृत होती हैं जिनके साहित्यों में वह भारतीय संस्कृति प्रतिबिंबित है जो वेदकाल से लेकर अद्यावधि अविच्छिन्न रूप से अपने परम्परागत विशिष्ट दृष्टिकोण से जन मानस को प्रभावित करती आयी है और विश्व के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान बनाए हुए है। यही संस्कृति भारत की विभिन्न भाषा तथा आचार-वैभवोपेत विविधता में एकता व अभिन्नता का अंतस्सूत्र बनी हुई है जो भारत की व्यष्टि और समष्टि के जीवन में परिलक्षित होता है। साधारणत: यह कहा जाता है कि भारत अनेक संस्कृतियों और सभ्यताओं का देश है जिसमें अब भावनात्मक एकीकरण स्थापित कर उसे सुदृढ़ राष्ट्र बनाने की आवश्यकता है। यह कथन यद्यपि ऊपरी तौर से सत्य और सही जान पड़ता है किन्तु आंतरिक रूप से भ्रममूलक है जिसके मूल में राजनीतिक दाँव पेंच काम करते हैं।

संस्कृति का सम्बन्ध प्रधानत: आत्मा से है और सभ्यता का बाह्य जीवन के आचार-व्यवहारों से। मानव समुदाय अनादि काल से विश्व के किसी प्रांगण में रहते हुए उसके सतत निरीक्षण और परीक्षण से प्राप्त अनुभव के द्वारा उसके और अपने जीवन के स्वरूप, सत्यता, नित्य की परिवर्तनशीलता, नश्वरता आदि तत्वों के सम्बन्ध में जो भावनाएँ तथा विचार तथा उनसे प्रभावित अपना विशिष्ट बनाकर तदनुसार आचार-व्यवहार निर्मित करके जीवन यापन जो करता है उस समूची प्रक्रिया का नाम संस्कृति है जिसके अंतर्गत सभ्यता आ जाती है। किसी मानव समुदाय की सभ्यता का स्वरूप उसके आंतरिक जीवन की भावनाओं और विचारों से प्रभावित होकर निर्मित होता है। दूसरे शब्दों में, मानव समुदाय जीवम के प्रति अपने विशिष्ट दृष्टिकोण के कारण जो आचार व्यवहार बना लेता है, जो आंतरिक जीवन के बाह्य प्रतीक मात्र हैं, उन्हीं का

नाम सभ्यता है जो आंतरिक भावनाओं और विचारों से युक्त होकर संस्कृति का अंग बन जाती है। अतः यह स्पष्ट होता है कि संस्कृति और सभ्यता में जनक-जन्य सम्बन्ध माना जाना चाहिए। इस दृष्टि से यदि भारतीय जीवन और उसको प्रतिबिंबित करनेवाली विविध भाषाओं के साहित्यों पर पारदर्शिनी दृष्टि डाली जाय तो विदित होगा कि यद्यपि उसके बाह्य रूप में विभिन्नता भले ही दिखाई पड़ती हो तथापि अंतर में अखंड एकता है और वही भारतीय संस्कृति की रीढ़ है।

यह निर्विवाद सत्य है कि भारतीय जीवन और संस्कृति आध्यात्किता प्रधान है जिसके साथ भौतिकता का अंग जुड़ा हुआ है। यद्यपि प्रधानता आध्यात्मिकता की है किंतु फिर भी भौतिक उन्नति को भारतीय संस्कृति में कभी विस्मृत नहीं किया गया है। वेदों से लेकर समूचा संस्कृत और आधुनिक भाषाओं का साहित्य इसका उज्ज्वल प्रमाण है। अतः यह सिद्ध होता है कि आध्यात्मिकता भारतीय संस्कृति की विशिष्टता है जो उसके साहित्य, अन्यान्य ललित कलाओं तथा वास्तु और ज्योतिष आदि शास्त्रों में झलकती है जो भारत के सभी प्रांतों के जन जीवन को न्यूनाधिक मात्रा में समान रूप से प्रभावित करते हैं। यह सांस्कृतिक एकता सर्वप्रथम भारत की सांस्कृतिक राष्ट्र भाषा संस्कृत में अभिव्यक्त हुई है।

किंतु काल प्रवाह के साथ-साथ देश की राजनीनिक और सामाजिक जीवन चेतना में जो निरंतर परिवर्तन होते आये हैं उनके कारण विदेशी संस्कृति व सभ्यता का भारतीय जीवन और संस्कृति पर ऐसा आवरण पड़ गया है कि उसकी सांस्कृतिक एकता का अन्तस्सूत्र अदृश्य सा और अतएव विस्मृत हो गया है जिसका परिणाम यह हुआ कि अखंड भारत में उत्तर और दक्षिण तथा आर्य और द्रविड़ आदि का भेद भाव उत्पन्न हो गया है। इस भ्रांति मूलक भेद रहित भारतीय जीवन की सांस्कृतिक एकता का प्रमाण उसके नित्य नैमित्तिक धार्मिक कार्यों में प्रयुक्त होनेवाले मंत्रों में मिलता है। भगवान की पूजा में प्रयुक्त जल में भारत भर की पुण्य नदियों के पवित्र जल का आवाहन किया जाता है जैसे "गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती, नर्मदे सिंधु कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।" इसी प्रकार भारतीय जीवन की अंतिम स्पृहा मोक्ष प्रदान करनेवाली नगरियाँ भारत की सब दिशाओं में—उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम में—स्थित हैं यथा—अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवंतिका, पुरी द्वारावती चैव सप्तैते मोक्ष दायिकाः।। ये सब भारतीय सांस्कृतिक एकता के

ज्वलंत प्रमाण हैं। इतना होते हुए भी भारत के विभिन्न प्रांतवासी लोग, आज एक दूसरे को अजनबी समझकर अन्य भाषाओं के उस साहित्य से अनभिज्ञ रह जाते हैं जिसमें देश की अखंड सांस्कृतिक एकता प्रतिबिंबित है क्योंकि आधुनिक भारतीय साहित्यिक तथा सांस्कृतिक एकता का—विशेषत: उत्तर और दक्षिण की एकता का—दर्शन कराने वाले ग्रंथ पर्याप्त संख्या में प्रणीत नहीं हुए हैं। यही कारण है कि कुछ वर्ष पहले हिन्दी प्रदेश के एक विद्वान ने मुझसे प्रश्न किया था कि "तेलुगु में रामायण है क्या ?" मैंने उसका समुचित उत्तर दे दिया। किंतु यह प्रश्न सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। साथ ही साथ मुझे इस बात का थोड़ा सा दुख भी हुआ कि आधुनिक युग में उत्तर और दक्षिण को निकट लाकर एक को दूसरे का सम्यक् परिचय देनेवाली सामान्य भाषा के अभाव के कारण समूचे भारतवर्ष के साहित्य और संस्कृति सम्बन्धी हमारा ज्ञान इतना सीमित है कि हम अपने प्रांत की और आवश्यकता की भाषाओं को छोड़कर अन्य प्रांतों की भाषाओं और उनके साहित्यों के बारे में नहीं जानते। सारे भारत में शिक्षित वर्ग में व्यवहृत होनेवाली अंग्रेजी भाषा के द्वारा यह परस्पर ज्ञानवर्द्धन का कार्य सम्पन्न नहीं हो सका। समूचे भारत की सांस्कृतिक भाषा संस्कृत अब कुछ इने गिने विद्वानों की होकर रह गयी है। ऐसी परिस्थिति में मुझे लगा कि हिन्दी ही आज एक ऐसी भाषा है जिसके द्वारा भारत के कोने-कोने की साहित्यिक और सांस्कृतिक विशेषताओं को संसार के सामने व्यक्त किया जा सके और उसके द्वारा भारत का सही चित्र उपस्थित किया जा सके। इस कार्य के द्वारा भारतवासी भी एक दूसरे के निकट आयेंगे, देश की अंतर्वाहिनी सांस्कृतिक एकता की धारा को पहचानेंगे और आपस में भ्रातृ भावना बढ़ा सकेंगे। इसी भावना की प्रेरणा का फल है प्रस्तुत प्रबंध ! अस्तु।

उक्त घटना के कुछ कालोपरांत मुझे आचार्य प्रवर श्रद्धेय गुरुदेव पं० नन्ददुलारे वाजपेयी जी के निर्देशन में कुछ शोध कार्य करने का जब सौभाग्य मिला तब मैंने आचार्य जी के सामने प्रस्तुत विषय उपस्थित किया। उन्होंने सहर्ष अपनी स्वीकृति दे दी। तब से लेकर मैं प्रस्तुत विषय के शोध कार्य में दत्त चित्त हुआ जिसका परिणाम आपके सम्मुख उपस्थित है।

आलोच्य काल का दोनों भाषाओं का राम साहित्य बहुत विस्तृत है। सम्पूर्ण अथवा आंशिक राम कथा को लेकर लिखे गये बहुत से ग्रंथ मिलते हैं जिनमें कई तो कुछ प्रतिनिधि ग्रंथों का अनुकरण करके लिखे गये हैं। इसलिए उन सब ग्रंथों का अलग-अलग अध्ययन करने की मेरी दृष्टि में आवश्यकता

नहीं है। अतः मैंने ऐसे प्रतिनिधि ग्रंथों का ही अनुशीलन किया है जिनसे दोनों भाषाओं के राम साहित्यों की प्रवृत्तियों और उनमें निहित सांस्कृतिक दृष्टिकोणों का सामूहिक ज्ञान प्राप्त हो जाय।

पहले अध्याय में प्रबन्ध के विषय की उपयोगिता और आवश्यकता पर विचार किया गया है। उसमें मैंने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि दोनों भाषाओं के राम साहित्यों का तुलनात्मक अनुशीलन उत्तर और दक्षिण को परस्पर निकट लाकर आपस में भेद भाव को दूर कर सकेगा। दूसरे अध्याय में दोनों राम साहित्यों के मूल स्रोतों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है जो प्रधानतः संस्कृत भाषा में मिलते हैं। तीसरे अध्याय में आलोच्य काल के दोनों साहित्यों में प्रयुक्त काव्य रूपों और शैलियों पर विचार किया गया है और विभिन्न शैलियों को अपनाये जाने की आवश्यकता पर भी प्रकाश डाला गया है। चौथे अध्याय में आलोच्य काल के समूचे हिन्दी राम साहित्य पर एक विहंगम दृष्टि डालकर आलोच्य कवियों की जीवनी और कृतियों का परिचय दिया गया है। यही क्रम पांचवें अध्याय में तेलुगु के राम साहित्य के विषय में गृहीत हुआ है। साथ-साथ इसमें, विषय के हिंदी में नया होने के कारण, कुछ ग्रंथों के कर्तृत्व आदि विवादास्पद विषयों पर भी संक्षिप्त रूप से प्रकाश डाला गया है।

छठे अध्याय में हिन्दी राम साहित्य का वस्तुगत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। उसी प्रकार सातवें अध्याय में तेलुगु राम साहित्य का वस्तुगत अध्ययन किया गया है। दोनों भाषाओं का राम साहित्य वस्तुगत अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। आदि काव्य रामायण से उपलब्ध वस्तु को दोनों भाषाओं के कवियों ने अपनी अपनी रुचि और आवश्यकता के अनुसार परिवर्तित और परिवर्धित किया है और विभिन्न स्रोतों से सामग्री का संचय किया है। इसको सम्यक रूप से दिखाने के लिए कतिपय प्रधान ग्रंथों के वस्तु विकास पर अलग रूप से प्रकाश डालना आवश्यक है। तभी दोनों भाषाओं के आलोच्य काल के राम साहित्य का चित्र हमारे सामने भली भाँति प्रस्फुटित हो सकता है। इसी उद्देश्य से रचित होने के कारण ये दोनों अध्याय अन्य अध्यायों की अपेक्षा बृहत्काय हो गये हैं जो विषय के महत्व की दृष्टि से अनिवार्य है। हिन्दी में नयी होने के कारण तेलुगु राम साहित्य की कथा के विकास पर थोड़े विस्तार से विचार किया गया है। इसके अतिरिक्त इन दोनों अध्याओं के अंत में क्रमशः हिन्दी और तेलुगु के कतिपय भक्त कवियों की साधना प्रणाली पर भी थोड़ा प्रकाश डाला गया है जिससे वस्तु विकास में उनके दृष्टिकोण को समझने में सहायता मिले। आठवें और नवें अध्यायों में क्रमशः हिन्दी और तेलुगु के राम साहित्यों में

प्रतिबिंबित संस्कृति और सामाजिक आचार विचारों पर प्रकाश डाला गया है। दसवें और ग्यारहवें अध्यायों में उसी क्रम से दोनों राम साहित्यों का साहित्यिक अनुशीलन, रस विधान, अलंकार योजना, चरित्र चित्रण आदि की दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। अन्तिम बारहवें अध्याय में दोनों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है और अंत में अध्ययन के फलस्वरूप प्राप्त कतिपय निष्कर्ष उपसंहार के रूप में दिये गये हैं।

इस गुरुतर कार्य को सम्पम्न करने में श्रद्धेय आचार्य जी की अव्याज कृपा और उत्साह भरे आशीर्वाद मेरे प्रधान संबल रहे जिनके बिना मैं इस अनुशीलन को प्रस्तुत करने में कदापि समर्थ नहीं हो सकता था। आचार्य जी ने इस कार्य में मुझे जो जो आवश्यक सुविधाएँ प्रदान कीं उन सबके लिए मैं उनका सर्वदा आभारी रहूँगा। इस अध्ययन के सिलसिले में उनके साहित्यिक व्यक्तित्व का जो प्रभाव मुझ पर पड़ा है वह सदा के लिए अविस्मरणीय रहेगा।

तेलुगु राम साहित्य के अध्ययन में मेरी अमूल्य सहायता कर समुचित निर्देशन देने वाले मेरे मित्रवर श्री चल्ला सत्यनारायण जी, अध्यक्ष, तेलुगु विभाग, लयोला कालेज, मद्रास का भी मैं अत्यन्त कृतज्ञ रहूँगा जिनका प्रोत्साहन मुझे बराबर बल देता रहा। आपके विद्वतापूर्ण परामर्श ने मेरे कई संदेहों का निवारण कर मेरा मार्ग प्रशस्त किया। उनके अव्याज स्नेह के लिए मैं हार्दिक धन्यवाद समर्पित करता हूँ।

तंजाऊर के सरस्वती महल पुस्तकालय और काकिनाडा के आंध्र साहित्य परिषद् पुस्तकालय के अधिकारियों ने इस अध्ययन के सिलसिले में मुझे जो सुविधाएँ दी थीं उनके लिए मैं उनको भी धन्यवाद देता हूँ।

अंत में जिन-जिन महानुभावों की कृतियों का मैंने उपयोग किया है और उनमें से इसमें उद्धरण दिये हैं उन सबको भी धन्यवाद देना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूँ।

अंत में यथामति मैंने अनुशीलन तो प्रस्तुत किया है। उसके गुण दोषों को परखना योग्य विद्वानों का कार्य है।

अति शीघ्र काल में इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने का भार अपने ऊपर उठाकर इसे विद्वज्जनों के सम्मुख सुन्दर रूप में उपस्थित करने का स्तुत्य कार्य करनेवाले हिन्दी साहित्य भंडार लखनऊ के अधिकारी आदरणीय श्री तेजनारायण टंडन जी भी मेरे धन्यवाद के पात्र हैं जिनके प्रेमपूर्ण उदार प्रोत्साहन के बिना यह कार्य पूर्ण नहीं हो पाता।

विनीत

चावलि सूर्यनारायण मूर्ति

विषयानुक्रमणिका

पहला अध्याय

हिन्दी और तेलुगु के मध्यकालीन राम-साहित्यों का तुलनात्मक अनुशीलन

विषय की उपयोगिता और आवश्यकता:—

भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार साहित्य का अध्ययन और अनुशीलन मनुष्य के हृदय को ऐसा उज्ज्वल प्रकाश प्रदान करता है जो उसके मानसिक अंधकार को दूर करके उसे आलोकित करे और उसे विशाल तथा उदार बनाए। उसके द्वारा मनुष्य ऐहिक और पारलौकिक विभूतियों को प्राप्त करके अपने जीवन को सार्थक बना सकता है। उसका कार्य केवल रसास्वादन करना ही नहीं बल्कि जीवन को आदर्श की ओर अग्रसर करके उसे समुन्नत बनाना भी है। किंतु आदर्श की ओर अग्रसर करने का उसका कार्य इस प्रकार संपन्न होता है कि अध्येता में उपदेशात्मकता के कारण खीझ व अरुचि पैदा नहीं होती। उसके इसी महत्व को पहचानकर मम्मटाचार्य ने कहा है—

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहार विदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कांता सम्मित तयोपदेशयुजे॥[1]

हिन्दी के आलोचकप्रवर स्व० पं० रामचंद्र शुक्ल ने काव्य के इस महत्व को इतोऽधिक बढ़ाकर उसके अध्ययन व अनुशीलन जनित रस दशा को भावयोग कहा है और उसको भगवत्प्राप्ति के अन्य योगों के समकक्ष ठहराया

१. काव्य प्रकाश—प्रथमोल्लास—२।

है; क्योंकि वह मनुष्य के हृदय को स्वार्थ संबंधों के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोक-सामान्य भाव भूमि पर ले जाती है जहाँ जगत की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है ।[1] यही नहीं, साहित्य अथवा काव्य के अध्ययन से तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक व ऐतिहासिक परिस्थितियों में मानव जाति का जो बिकास होता आया है उसका सम्यक् ज्ञान प्राप्त होता तथा अंततोगत्वा अध्येता को जीवन में धैर्य और आशा का संबल प्राप्त होता है क्योंकि वह जिस साहित्य या काव्य का अध्ययन करता है उसमें मानव हृदय का ही प्रतिबिंब मिलता है जिससे उसका हृदय स्पंदित होता है । अस्तु ।

भारतीय साहित्य का आदि काव्य महर्षि वाल्मीकिकृत रामायण है जिसमें कवि ने अपने समकालीन अयोध्या के महाराज दशरथ के पुत्र श्रीराम के आदर्शमय जीवन का चित्रण किया है । रामायण के प्रणयन का हेतु कवि की वह जिज्ञासा है जो देवर्षि नारद के सम्मुख इस रूप में उपस्थित की गयी है—

कोन्वस्मिन् सांप्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढ़व्रतः ॥
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः
विद्वान कः कः समर्थश्च कश्चैक प्रिय दर्शनः ।:
आत्मवान को जित क्रोधो द्युतिमान कोऽनसूयकः।
कस्यविभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे
महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवं विधम् नरम् ॥

(वा० रा० बा० १-२-५)

आदर्श मानव के विषय में वाल्मीकि की इस जिज्ञासा ने ऐसे अमर काव्य को जन्म दिया जो भारतीय साहित्य और संस्कृति का त्रेता युग का उज्ज्वल दर्पण होकर भी सार्वकालिक और सार्वदेशिक मानव जीवन का सर्वथा स्पृहणीय आदर्श बन गया है । यही कारण है कि केवल भारत में ही नहीं, अपितु उसके पास-पड़ोस के देशों में भी जहाँ हिंदू-इतर धर्मों का बोलबाला है, रामकथा आदृत हुई और उसके आधार पर साहित्य की सृष्टि भी हुई । हाँ, यह दूसरी बात है कि उस पर तत्देशीय सामाजिक, धार्मिक और अन्य

---

१. आ० रामचंद्र शुक्ल—रस मीमांसा—पृ. ६ ।

परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा है जिससे उसका रूप भारतीय रूप से भिन्न हो चला है; किंतु मूल कथा तो थोड़े बहुत परिवर्तनों के साथ वही है जो वाल्मीकि की है। वह इस बात का प्रमाण है कि रामकथा ने विदेशों को भी कितना आकृष्ट किया है। डा० वेबर का रामकथा के प्रति इतना आकर्षण दिखाई पड़ता है कि वे होमर के अमर काव्य इलियड को रामायण का मूल स्रोत मानने के लोभ का संवरण नहीं कर सके यद्यपि और किसी विद्वान ने उनका समर्थन नहीं किया।[1] जब रामायण ने विदेशों को इतना प्रभावित किया तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि भारत की अन्य भाषाओं में राम-संबंधी साहित्य का निर्माण पर्याप्त मात्रा में हुआ हो और अब भी हो रहा हो। रामकथा के विस्तार और प्रचार का विवेचन डा० कामिल बुल्के ने अपने 'रामकथा' नामक ग्रंथ में विशद रूप से किया है।

भारत की प्रधान भाषायें मुख्यत: दो परिवारों की हैं, आर्य और द्रविड़। उनका साहित्य यद्यपि बाह्य दृष्टि से दो विभिन्न सभ्यताओं को प्रतिबिंबित करता है तथापि आंतरिक दृष्टि से एक ही संस्कृति का प्रतिपादक है। सभ्यता यदि मानव जीवन के बाह्य आचारों, व्यवहारों तथा रीति-रिवाजों का परिचायक है तो संस्कृति जीवन के प्रति मानव के दृष्टिकोण, अनुभूतियों और विचारधारा का। भारत के विभिन्न प्रदेशों की भौगोलिक और सामाजिक परिस्थितियों के कारण उसकी सभ्यता में भिन्नता लक्षित होती है। किंतु जीवन के प्रति समूचे भारत का दृष्टिकोण एक होने के कारण उसकी अनुभूतियाँ एक ही हैं। अत: उसकी संस्कृति में सूक्ष्मत: कोई भेद नहीं है और वह एक है। आर्यभाषा परिवार की प्रमुख भाषा संस्कृत में रचित रामायण की कथा को लेकर कालांतर में भारत की अनेक देशी भाषाओं में विभिन्न शैलियों में विभिन्न दृष्टिकोणों से काव्य-प्रणयन हुआ था जिसके पीछे उस समय की धार्मिक, सामाजिक व राजनैतिक परिस्थितियों का बड़ा हाथ था।

हिन्दी और तेलुगु के राम-साहित्य का निर्माण यद्यपि विभिन्न परिस्थितियों में हुआ था किंतु तो भी उसमें केवल वस्तुगत एकता ही नहीं अपितु सांस्कृतिक अभिन्नता भी परिलक्षित व अभिव्यक्त होती है जो भारतीय जाति के जीवन का मेरुदंड है। इन दोनों भाषाओं के राम साहित्य के तुलनात्मक अनुशीलन से उत्तर और दक्षिण या आर्य और द्रविड़ सभ्यताओं की

---

१. डा. कामिल बुल्के—रामकथा—पृ. १०३।

सांस्कृतिक एकता का सम्यक् बोध होता है। हम देख सकते हैं कि वाल्मीकि ने अपनी जिज्ञासा के फलस्वरूप राम के जिस आदर्श चरित्र का चित्रण किया था उसके आधार पर हिंदी और तेलुगु में राम के जिन चित्रों का निर्माण हुआ वे एक ही चित्र के दो पक्ष हैं और एक में किसी पक्ष की प्रधानता है तो दूसरे में दूसरे पक्ष की। हिंदी के मूर्द्धन्य रामभक्त कवि गोस्वामी तुलसीदास ने राम को परब्रह्म के रूप में और परवर्ती कवियों ने मधुर भाव के आलंबन के रूप में देखा है तो तेलुगु के रामायण के कवियों ने राम को विष्णवंश संभूत आदर्श राजा के रूप में चित्रित किया है। इस प्रकार एक ही चरित्र को लेकर जो भिन्न-भिन्न चित्र उपस्थित किए गये हैं उनके पीछे कवियों की जिन प्रवृत्तियों विचारधाराओं और साधना-पद्धतियों का अभाव था, इसका अध्ययन बड़ा ज्ञानवर्धक है। मूल भारतीय संस्कृति कालांतर में विभिन्न परिस्थितियों में पड़कर किन-किन प्रभावों को ग्रहण करती गयी, इसका भी ज्ञान प्रस्तुत अनुशीलन से प्राप्त हो सकेगा। दोनों भाषाओं के राम-साहित्य ने अपने-अपने समाज को किस प्रकार प्रभावित किया, इसका ज्ञान समूचे भारतीय साहित्य को उसके यथार्थ रूप में समझने में सहायक सिद्ध होगा।

यहाँ पर थोड़ा यह जान लेना आवश्यक है कि तेलुगु देश की भौगोलिक परिस्थितियाँ क्या हैं? आंध्र या तेलुगु देश के उत्तर में उड़ीसा और भूतपूर्व मध्यप्रदेश, पश्चिम में महाराष्ट्र और कर्नाटक प्रदेश, दक्षिण में मद्रास राज्य और पूर्व में बंगाल की खाड़ी स्थित है। इस देश में रहनेवाले लोगों की जाति के विषय में पंडितों में मतभेद हैं। ऐतरैय ब्राह्मण की शुनस्सेफ की कथा के आधार पर माना जाता है कि आंध्र जाति आर्येतर द्रविड़ जाति है।[1] इसी प्रकार प्रधान द्रविड़ भाषा तमिल और तेलुगु की कुछ समानताओं को देखकर डा० गिड़ुगु सीतापति, को० रामकृष्णय्या प्रभृति विद्वान तेलुगु को द्रविड़ भाषा मानते हैं।[2] उनके विचार अधिकतर अँग्रेजी विद्वान काल्डवेल के "A comparative grammar of dravadian languages" पर आधारित हैं। किंतु डा० चिलुकूरि नारायणराव आदि विद्वान तेलुगु भाषा को प्राकृत जनित आर्य

१. तस्यह विश्वामित्रस्यैकशतं पुत्रा आसुः, पंचाशदेवज्यायां सो मधुच्छंदसः पंचाशत्कनीयांसस्तंद्य ज्यायांसो न ते कुशलेमेनिरे। तानन्वुव्याजहायतत्व: प्रजा भक्षीष्टेति—तएतेऽध्राः पुंड्राः शबराः पुलिंदाः मूतिबा इत्युदंतार बह्वो भवंति वैश्यामित्र दस्यूनां भूयिष्ठाः। ऐतरेय ब्राह्मण —७-३-१८।

२. डा. गिडुगि सीतापति—तेलुगु भाषा और साहित्य।

भाषा और स्व० कोट वेंकटाचलम आदि विद्वान भगवत के निम्नलिखित श्लोकों के आधार पर आंध्र जाति को आर्य जाति सिद्ध करते हैं ।[१] वे श्लोक ये हैं—

अंगवंग कलिंगाया: सुटमपुंड्रांध्र संज्ञिताः
जज्ञिरे दीर्घ तमसो बलेः क्षेत्रे महीक्षितः ।
चक्रुः स्वनाम्नाविषयान् षडिमान् प्राच्यकांश्चते ।

(महाभागवत—९ २३–५–६)

यह महाराज बलि जिसके छः पुत्रों का ऊपर उल्लेख किया गया है महाराज ययाति का वंशज है । यही मत समीचीन जान पड़ता है क्योंकि आन्ध्र जाति में आर्य जाति के समान वर्ण व्यवस्था, वेदाध्ययन, गोत्रमूलकता आदि संस्कृति की परिचायक विशेषताएँ बहुत प्राचीन काल से विद्यमान हैं । हाँ, उसके ऊपर भौगोलिक स्थिति के कारण द्रविड़ सभ्यता और भाषा का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है । यही नहीं, निकट स्थिति के कारण कर्नाटक और महाराष्ट्र का भी प्रभाव आन्ध्र जाति पर पाया जाता है । वर्णाश्रम धर्म प्रधान आर्य जाति होने के कारण आन्ध्र के साहित्य में जहाँ आर्य - संस्कृति का प्रतिपादक संस्कृत साहित्य स्वतंत्र अनुवादों और उस पर आधारित मौलिक रचनाओं के रूप में प्रतिबिंबित है वहाँ कर्नाटक और तमिलनाडु के प्रभाव के कारण उसमें जाति-भेद विहीन वीर-शैव धर्म के प्रतिपादक साहित्य की भी कमी नहीं है । महाराष्ट्र की निकटता के प्रभाव के कारण वहाँ के प्रधान भगवद्रूप पांडुरंग विट्ठलनाथ की भक्ति का प्रतिपादक "पांडुरंग माहात्म्यमु" जैसे महाकाव्य का भी निर्माण हुआ था । इसके पूर्व ही "नवनाथ चरित्र" की रचना हो चुकी थी जिसमें महाराष्ट्र में प्रसिद्ध मत्स्येंद्रनाथ, गोरखनाथ आदि सिद्धों की जीवनियाँ हैं । आन्ध्र के दैनिक आचार व्यवहारों में भी यह समन्वयात्मकता परिलक्षित होती है जो उसकी भौगोलिक स्थिति की देन है । इस प्रकार आन्ध्र देश में भारतीय संस्कृति का समन्वित रूप दिखाई पड़ता है जो उसके साहित्य में प्रतिबिंबित है ।

वैदिक युग से लेकर आसेतु हिमाचल भारत एक ही संस्कृति संपन्न भूखंड रहा, इसमें कोई संदेह नहीं । उसकी संस्कृति सर्वप्रथम वेदों, उपनिषदों और तदनंतर संस्कृत के विविध प्रकार के साहित्य में प्रतिबिंबित हुई क्योंकि उस समय संस्कृत ही सारे देश की साहित्यिक भाषा थी । यद्यपि विभिन्न

---

१. डा. चि. नारायणराव—आन्ध्र भाषा चरित्र
को. वेंकटाचलम—आन्ध्र लेखरु—पृ. ८ ।

प्रदेशों में बोलचाल की भाषाएँ प्राकृतों के रूप में दूसरी थीं किन्तु उनका साहित्य में प्रयोग बहुत बाद में होने लगा था। उत्तर और दक्षिण में तथा पूर्व और पश्चिम में संस्कृत में ही ग्रंथों की रचना होती थी जिनका पठन-पाठन समूचे देश में होता था और साधारण जनता बोलचाल में प्राकृतों का व्यवहार करती थी। मानव जीवन के लक्ष्य को—चतुर्विध पुरुषार्थों की प्राप्ति को—प्रतिपादित करनेवाले श्रुति-स्मृतियों, पुराणों और काव्यों का संस्कृत भाषा में देश भर में प्रचार रहा था और उनमें प्रतिपादित कर्मकाण्ड के अनुसार ही अपनी प्रादेशिक भिन्नता की रक्षा करते हुए आचार-व्यवहार का प्रचलन हुआ था जिससे यह सिद्ध होता है कि समूचे देश की संस्कृति एक ही रही। भरद्वाज, हरीति, आंगिरस आदि महर्षियों के वंशज भारत की सब दिशाओं में -- क्या उत्तर और क्या दक्षिण, क्या पूर्व और क्या पश्चिम—फैले हुए थे और आज भी हैं। इस सांस्कृतिक एकता का परिचय देनेवाली भाषा देववाणी संस्कृत थी। जब साहित्य में प्राकृतों और बाद में अपभ्रंश भाषाओं ने प्रवेश पाया तब उसी परंपरागत संस्कृति को उन्होंने प्रतिबिंबित किया जो संस्कृत साहित्य में अभिव्यक्त हुई थी, यद्यपि उन पर जैन और बौद्ध धर्मों का प्रभाव भी पड़ा। आधुनिक देशी भाषाओं का जब विकास हुआ तब भी वह क्रम जारी रहा, किंतु अपनी कालगत विशेषताओं को लेकर। भारत के इतिहास में मध्ययुग का प्रारंभ होते-होते देश में विदेशी मुसलमानों का अधिकार जमने लगा और फारसी तथा देशी भाषाओं की प्रधानता बढ़ने लगी। मुसलमानों के शासन के स्थिर हो जाने के बाद यद्यपि फारसी राजकीय भाषा बन गई थी किंतु उसकी प्रकृति सर्वथा विदेशी होने के कारण भारतीय संस्कृति को सम्यक् रूप में उसमें प्रतिबिंबित नहीं किया जा सका और फलतः देशी भाषाओं का प्राबल्य बढ़ने लगा; उन्हीं में साहित्य का सृजन होने लगा। विभिन्न भाषाओं में रचित साहित्य में प्रतिबिंबित संस्कृति वही थी जो संस्कृत में प्राचीन काल से प्रतिफलित होती आयी थी। किंतु संस्कृत के समान देश भर में फैली हुई और समादृत भाषा के अभाव के कारण वह अपने-अपने प्रांत में ही सीमाबद्ध हो गई थी और दूसरे प्रांतवालों के लिए अज्ञात रह गयी। मुसलमानों के अनंतर मध्यकाल का अंत होते-होते देश में अँग्रेजों का शासन जम गया था और फारसी का स्थान अँग्रेजी ने ले लिया। प्रायः देश भर में अँग्रेजी का बोलबाला बढ़ गया। अँग्रेज विद्वानों ने अपने अध्यवसाय और विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण के द्वारा समूचे भारत के साहित्य और संस्कृति के इतिहास की एकता तथा महत्व को आँकने का जहाँ एक ओर

प्रयत्न किया वहाँ दूसरी ओर विभिन्न प्रदेशों और वर्गों के बीच में गहरी खाई भी खोद डाली—विशेषकर उत्तर और दक्षिण भारत के बीच में आर्य और द्राविड़ जाति का भेद-भाव पैदा किया। कभी अति प्राचीन काल में—वेदपूर्व काल में—आर्य और द्रविड़ जातियाँ रही हों या नहीं, इस विषय में हमें कुछ कहना नहीं है क्योंकि वह इस प्रबंध के लिए अवांतर विषय है; किंतु निश्चित रूप से वह कहा जा सकता है कि अँग्रेजों के समय के बहुत पहले ही दोनों जातियाँ मिल गयी थीं। अँग्रेजों ने अपनी भेद-नीति को सफल बनाने के लिए ही उत्तर और दक्षिण में जाति-भेद को प्रोत्साहित किया है जिसे भारतीय इतिहासकारों ने भी निर्विरोध मान लिया है। किंतु आज उत्तर और दक्षिण के लोगों में जतिगत कोई अंतर नहीं रह गया है। दक्षिण में भी वेदों और उपनिषदों का पटन-पाटन होता है। विवाह, मृत्यु आदि के समय किये जानेवाले संस्कार और उनमें प्रयुक्त मंत्र-तंत्र उत्तर और दक्षिण में एक ही हैं। त्रिकाल-संध्या, और अन्य नित्य नैमित्तिक कर्म, वर्णव्यवस्था आदि सब सारे देश में एक ही हैं। पुण्य-तीर्थों के विषय में भी यह एकता स्पष्ट दिखाई पड़ती है। उत्तर भारत में लोग दक्षिण के कांची, रामेश्वर आदि तीर्थ स्थानों की यात्रा किए बिना अपने जीवन की कृतार्थता नहीं मानते। उसी प्रकार दक्षिण के लोग भी उत्तार में काशी, प्रयाग जैसे तीर्थों की यात्रा के बिना अपने जीवन को अपूर्ण मानते हैं। दक्षिण में भी यह माना जाता है कि पितरों की मोक्ष-प्राप्ति के लिए गया में पिंड प्रदान करना आवश्यक है। भारतीय पुराणों के अनुसार पुण्य तीर्थ सब दिशाओं में बिखरे पड़े हैं।

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवंतिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥

इसलिए आज भारत में सांस्कृतिक एकता को स्थापित करने की नहीं, प्राचीनकाल से स्थित सांस्कृतिक एकता को पहचानने और उसकी रक्षा करने की आवश्यकता है। समूचे भारत की संस्कृति के विषय में अंग्रेजी में जो ग्रन्थ अँग्रेजों और भारतीयों के द्वारा लिखे गये वे देश की अधिकांश जनता के लिए सुबोध नहीं रहे क्योंकि अँग्रेजी में शिक्षित लोगों की संख्या बहुत कम थी और आज भी कम है। इसलिये भारत के एक प्रांत के लोग दूसरे प्रांतवालों को अच्छी तरह नहीं समझ सके। सर्वजनसुलभ भाषा के माध्यम के अभाव के कारण भारत की जनता इस बात को पहचान नहीं सकी कि समूचे देश की जाति और संस्कृति एक है यद्यपि उस पर समय-समय पर विदेशी संस्कृतियों

का भी प्रभाव पड़ता रहा। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक प्रान्त अपने को अन्यों से अधिक संस्कृत, अपनी भाषा को श्रेष्ठतम साहित्य संपन्न और अपनी भूमि को सर्वाधिक समृद्ध समझने लगा और दूसरों के प्रपि अवहेलना का दृष्टिकोण अपने में विकसित कर लिया। यह परिस्थिति भारत राष्ट्र की उन्नति के मार्ग में बाधा पहुँचाने वाली है।

अपने सुदीर्घ इतिहास में भारत सन् १९४७ के बाद सर्वप्रथम आसेतु हिमाचल एक संविधान और झंडे के नीचे आया है। अब भारत एक समग्र राष्ट्र है। उसमें यद्यपि आचार-विभिन्नता है किंतु भावात्मक एकता है, इस बात से भारत के जन-जन को भली-भाँति अवगत होने और उसके आधार पर अपने ज्ञान और सहानुभूति की परिधि को विस्तृत कर लेने की आवश्यकता है। इसी आवश्यकता को दृष्टि में रखकर भारतीय संसद ने देश की अधिकांश जनता से व्यवहृत और सुबोध हिंदी भाषा को भारत को एक सूत्र में बाँधने और अंतर्राष्ट्रीय रंगमंच पर भारत का प्रतिनिधित्व करने का गुरुतर भार सौंप दिया है। हिंदी भाषा अपने इस भारत को सँभालकर तभी अपने कर्तव्य का पालन कर सकेगी जब वह देश के कोने-कोने की अनुभूति तथा साहित्य को अपने द्वारा मुखरित कर सके। अन्यथा हिंदी कर्तव्यच्युत हो जायगी।

वाल्मीकि रामायण और अन्यान्य राम साहित्य के आधार पर दक्षिण की चारों प्रधान भाषाओं—तेलुगु, कन्नड, तमिल और मलयालय—में ही राम-काव्यों की रचना हुई है और अब भी हो रही है। हिंदी साहित्य में जिस प्रकार राम का चित्रण हुआ उसी प्रकार इन भाषाओं के साहित्यों में भी। हमारा प्रस्तुत कार्य हिंदी और तेलुगु के राम-साहित्य का तुलनात्मक अनुशीलन है जो हिंदी भाषा भाषियों को यह जानने में सहायक होगा कि राम के आदर्श चरित्र मे दक्षिण को भी उसी प्रकार प्रभावित किया है जिस प्रकार उत्तर को। यह ज्ञान उपर्युक्त भ्रांत धारणा को दूर करने के लिए बहुत ही आवश्यक है। अस्तु।

काल निर्धारण, विषय की व्याप्ति और विस्तार

हिंदी और तेलुगु में रामकथा पर आधारित साहित्य मध्यकाल में निर्मित होने लगा था। व्याप्ति और विस्तार ऐसा है कि राम कथा ने केवल इन दोनों साहित्यों को ही नहीं बल्कि जन-जीवन को भी भली भाँति प्रभावित किया। इसलिए उस समय के काव्य साहित्य की अनेक विधाओं में इनकी

रचना हुई जिसका वर्णन आगे संक्षेप में किया जायगा। दोनों भाषाओं में राम साहित्य बहुत विस्तृत है। किंतु साहित्यिक या सांस्कृतिक महत्व की दृष्टि से कुछ ही ग्रंथ उनमें प्रधान हैं। अतः संक्षिप्त रूप से उनका दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न इस प्रबंध का लक्ष्य है। प्रस्तुत अनुशीलन मध्यकाल तक ही अर्थात् सन् १००० से १८०० ई० तक सीमित है।

कवि और काव्य-रूप तथा मूल स्रोत—

हिंदी में स्वामी रामानंद, गोस्वामी तुलसीदास, केशवदास, अग्रदास, सूरदास, गुरु गोविंदसिंह, नाभादास, प्राणचंद चौहान हृदय राम आदि भक्त कवियों ने राम कथा को लेकर साहित्य का निर्माण किया। यह साहित्य जैसा कि ऊपर कहा गया है विशेषतः अनेक छंद-शैलियों में लिखे गये काव्यों और पद्यात्मक नाटकों या नाटकीयता से भरे काव्यों के रूप में पाया जाता है। तेलुगु में राम साहित्य ई० तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ही निर्मित होने लगा था जब कवि ब्रह्म तिक्कन्न ने 'निर्वचनोत्तर रामायण' की रचना की थी। उसके अनंतर रंगनाथ, भास्कर, कोरवि सत्यनारायण, एर्रन्न, मोल्ला, अन्नवाचार्य, राम-भद्रुडु, रघुनाथ नायक, कं० रुद्रय्या आदि अनेक कवियों ने राम साहित्य का प्रणयन किया जो विभिन्न छंद-शैलियों में मिलता है जैसे चंपू, पद्यकाव्य और यक्षगान आदि। किंतु इनमें कोरवि सत्यनारायण, एर्रन्न और अन्नमाचार्य के ग्रंथ आज उपलब्ध नहीं हैं। जो साहित्य उपलब्ध है वह इतना विस्तृत है कि तेलुगु देश की संस्कृति और सभ्यता पर पर्याप्त प्रकाश डाल सके।

जैसा कि पहले कहा गया है राम साहित्य अनेक देशों में विभिन्न रूपों में मिलता है। किंतु तत्वतः उसका प्रधान मूल स्रोत वाल्मीकि रामायण ही है जैसा कि डा० कामिल बुल्के अपने 'रामकथा' में निरूपित कर चुके हैं।[1] वैदिक साहित्य में कुछ स्थानों पर यद्यपि रामायण के पात्रों का जैसे इक्ष्वाकु, दशरथ, सीता, जनक आदि का उल्लेख हुआ है किंतु उनका रामायण की कथा से कोई संबंध नहीं है।[2] वाल्मीकि रामायण का भी आधार कहे जानेवाले ग्रंथ भी वास्तव में उसी के विकृत रूप हैं।[3] इसी प्रकार जैन धार्मिक साहित्य में पायी जानेवाली राम कथा भी वाल्मीकि रामायण का मूल स्रोत नहीं बन सकती

---

१. डा० बुल्के—रामकथा और उसका विकास—पृ. १०२।

२. वही—पृ. २७।

३. वही—पृ. १०२।

क्योंकि वह स्वयं रामायणीय राम कथा पर निर्भर है । महाभारत के द्रोण और शांतिपर्व के संक्षिप्त रामचरित से तथा अन्य निर्देशों से इस बात का आभास मिलता है कि वाल्मीकि के पहले राम कथा संबंधी आख्यान प्रचलित थे जो वाल्मीकि रामायण के मूल स्रोत बने थे किंतु आजकल अप्राप्त हैं ।[1] किंतु वाल्मीकि-रामायण के वाल्मीकि और नारद संवाद से यह विदित होता है कि वाल्मीकि राम के समकालीन थे और उन्हीं के जीवन काल में रामायण की रचना की थी । अतः चाहे वाल्मीकि के पहले राम कथा संबंधी आख्यान प्रचलित रहे हों या नहीं पर इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वाल्मीकि-रामायण राम कथा संबंधी प्राचीनतम रचना है जिसके आधार पर आगे चलकर संस्कृत में विस्तृत राम साहित्य का प्रणयन हुआ जिसमें लेखकों की मौलिक प्रतिभा का प्रस्फुटन हुआ। मध्यकाल में हिन्दी और तेलुगु में जो राम साहित्य निर्मित हुआ उसका प्रधान स्रोत इसी रामायण से लेकर धार्मिक, सांप्रदायिक और ललित साहित्य में बिखरी पड़ी राम कथा और उसके आधार पर प्रचलित लोक-कथाएँ हैं ।

अध्ययन प्रणाली—

पुराने कवियों और उनके काव्यों की जीवनी और काव्य निर्णय आदि के विषय में निश्चित रूप से बहुत कम कहा जा सकता है क्योंकि उन कवियों का इस पक्ष की ओर ध्यान कम रहा है और कहीं भी उन्होंने इसके संबंध में कोई सामग्री नहीं दी । इसलिए उनकी कृतियों की अंतरंग परीक्षा के आधार पर कुछ ऊहात्मक तथ्य प्राप्त करने होते हैं । प्रस्तुत अनुशीलन में इन बातों की गंभीर विवेचना की अपेक्षा उनकी कृतियों के वैचारिक और साहित्यिक पक्ष की प्रधानता है क्योंकि वही इस बात का बोध करा सकता है कि दोनों भाषाओं में एक ही विषय को लेकर निर्मित राम-साहित्य एक दूसरे के कितना निकट है। इसी प्रकार का अनुशीलन देश में स्थित सांस्कृतिक एकता का परिचय दे सकता है जिसके द्वारा वर्तमान समय में देश में भावात्मक एकता की सिद्धि में सहायता मिल सकती है । अगले अध्यायों में दोनों भाषाओं के मूल स्रोत और उनके प्रमुख कवियों की जीवनी और उनके काव्यों के स्वरूप पर प्रकाश डाला जायगा जहाँ तक उनके साहित्यिक आकलन, सामाजिक पृष्ठ-भूमि, सांस्कृतिक प्रभाव आदि के संबंध में कतिपय निष्कर्षों पर पहुँचने में सहायता मिले ।

---

[1] ल्के—रामकथा—पृ. ३० ।

दूसरा अध्याय

हिन्दी और तेलुगु के राम-साहित्यों के मूल-स्रोत

संस्कृत :—

प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय राम साहित्य का मूल - स्रोत वाल्मीकीय रामायण ही है जैसा कि बृहद्धर्मपुराण में कहा गया है :—

रामायणं महाकाव्यमादौ वाल्मीकिना कृतम् ।
तन्मूलं सर्वकाव्यानामितिहास पुराणयोः ॥२८॥
संहितानां च सर्वासां मूलं रामायणं मतम्
तदेवादर्शमाराध्य वेदव्यासो हरे कला ॥२९॥
चक्रे महाभारताख्यातमितिहासं पुरातनम् ॥३०॥

(पूर्व भाग, अध्याय २५)

इसी पुराण में आगे ब्रह्मा ने वाल्मीकि से कहा है कि तुम्हारे अनंतर अन्य कवि तुम्हारा अनुकरण करेंगे ।

कृते त्वया महाकाव्ये भाव्यर्थे रामचेष्टिते ।
लोकेष्वनुचरिष्यंति कवयोऽन्ये सदुक्तयः ॥

(पू० अ० २५—८०)

वाल्मीकि के पहले वेदों में भी रामायण के कुछ पात्रों के नाम मिलते हैं जैसे इक्ष्वाकु, दशरथ, सीता, राम आदि । उन पात्रों का न तो पारस्परिक संबंध दिखाया गया है और न जीवन की किसी घटना का वर्णन किया गया है जो

रामायण की राम कथा का आधार बनती। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि राम साहित्य का आधार वेदों में नहीं मिलता।[1]

गोस्वामी तुलसीदास की विनय पत्रिका की हरितोषिणी टीका में श्री वियोगी हरि ने एक स्थान में अथर्व वेद की निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत की हैं :—

यो वै श्री रामचंद्रः स भगवान यः ब्रह्मा विष्णुरीश्वरः
यःसर्व वेदात्मा भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः
(वि० पत्रिका—७१ पद की टीका)

इससे यह सिद्ध होता है कि वेदों में भी राम का भगवान के रूप में यश गाया गया है जिसके आधार पर तुलसीदास बार-बार अपने राम के बारे में कहते हैं कि वे वेद-विदित हैं और वेद उनका गुण-गान करते हैं। किंतु वर्तमान समय में वेद साहित्य जो उपलब्ध है उसमें राम के जीवन से संबंधित किसी घटना का संकेत नहीं मिलता। संपूर्ण वैदिक साहित्य आज उपलब्ध नहीं है। बहुत कुछ या तो नष्ट हो गया होगा या विदेशियों के द्वारा अन्यत्र ले जाया गया होगा। हो सकता है कि उसमें कहीं राम-कथा का कोई अंश रहा हो। उसके अभाव में इस बात की भी संभावना की जा सकती है कि तुलसीदास जिस परब्रह्म राम की भक्ति का प्रचार करना चाहते थे उसमें लोगों के हृदय में सुदृढ़ विश्वास पैदा करने के लिये उनको वेद प्रसिद्ध कहा होगा। किसी बात की दृढ़ता दिखाने के लिये उसको वेदवाक्य कहा जाता है। जो भी हो, इतना तो निश्चित है कि तुलसीदास के अनुसार राम वेद-प्रसिद्ध थे यद्यपि उनके जीवन का कोई सूत्र हमें वेदों में आज नहीं मिलता।

वाल्मीकि रामायण :—

भारतीय साहित्य में सर्वप्रथम राम की कथा वाल्मीकि रामायण में मिलती है जैसा कि ऊपर दिखाया गया है। उसकी कथा हमारे देश में बहुत प्रचलित होने के कारण हम उसे यहाँ लिखने की आवश्यकता नहीं समझते। सके तीन पाठ भारत में प्रचलित हैं और उनमें कहीं कहीं भिन्नता पायी जाती है। वे तीन पाठ हैं दक्षिणात्य पाठ, पश्चिमोत्तरीय पाठ और गौडीय पाठ। इन तीनों में प्रथम पाठ देश में अधिक प्रचलित है। अतः उसे मूल मान कर आगे

---

१. डा. कामिल बुल्के—रामकथा—पहला अध्याय, वैदिक साहित्य और राम कथा।

जहाँ जहाँ कथा संबंधी विभिन्नतायें वर्णित की जायँगी उनका स्रोत अन्यत्र दिखाने का प्रयत्न किया जायगा।

रामायण के बाल कांड के प्रथम सर्ग से यह स्पष्ट होता है कि वाल्मीकि को नारद ने जिस राम का परिचय कराया वे एक आदर्श राजा थे। नारद ने राम का विष्णु के रूप में वर्णन नहीं किया; किंतु उनको विष्णु के समान वीर्य-वान कहा था।

"विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत् प्रियदर्शनः" —१८।

उसी सर्ग के अंत में कहा गया है—

दश वर्ष सहस्राणि दश वर्षशतानि च
रामोराज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति ॥९७॥

इनसे राम की विष्णु से भिन्नता ही ध्वनित होती है। इसका अर्थ यह है कि राम अपनी धार्मिकता के बल पर ब्रह्मलोक को प्राप्त होंगे। आदर्श और पुनीत आचरण वाले नरों की ब्रह्मलोक-प्राप्ति का वर्णन भारतीय साहित्य में बराबर मिलता है।

रामायण के अन्य स्थानों में, विशेषतः बाल, युद्ध और उत्तर कांडों में राम का वर्णन विष्णु के अवतार के रूप में किया गया है। उत्तर कांड में कहा गया है—

पितामहवचः श्रुत्वा विनिश्चित्य महामतिः
विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः

(सा वि० १०-१२)

किंतु बहुत से समालोचकों का मत है कि वे सब प्रसंग जहाँ जहाँ राम का विष्णु के अवतार के रूप में वर्णन किया गया है क्षेपक हैं। यहाँ यद्यपि इस बात पर सूक्ष्म विचार करना अनपेक्षित है कि रामावतार विषयक वर्णन क्षेपक है या नहीं, तथापि यह माना जा सकता है कि नारद ने राम के जिन आदर्श और दुर्लभ गुणों का वर्णन किया था उनके आधार पर वाल्मीकि ने राम को विष्णु का अवतार ही मान लिया होगा। आगे चलकर पुराण साहित्य में इस मान्यता का प्रमाण मिल जाता है। विष्णु पुराण में छः भगवत्तत्व माने गये हैं।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसःश्रियः
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा।

(वि० पु० ६-५-७४)

इन गुणों से युक्त पुरुष स्वयं भगवान माना जाता है। महा रामायण में तो राम को स्वयं भगवान सकारण निरूपित किया गया है :—

भरणः पोषणाधारः शरण्यः सर्वव्यापकः।
करुणः षड्गुणैः पूर्णो रामस्तु भगवान् स्वयं ॥

इन उपरोक्त गुणों से युक्त राम को विष्णु का अवतार मानकर इनको यदि वाल्मीकि ने तदनुरूप वर्णन किया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं और प्रचलित रामायण में चित्रित राम के चरित्र के आधार पर यही मान्यता समीचीन जान पड़ती है। वस्तुस्थिति चाहे जो भी हो, किंतु इतना तो निश्चित है क विष्णुवतार की भावना से युक्त प्रचलित रामायण ही आगे चलकर भारतीय भाषाओं के राम साहित्य का प्रधान मूलस्रोत बनी है। अतः उसकी कथा ही की दृष्टि से दोनों आलोच्य भाषाओं के राम साहित्य पर विचार किया जायगा।

महाभारत :—

वाल्मीकि रामायण के बाद संस्कृत में राम की कथा महाभारत में संक्षिप्त रूप में पायी जाती है क्योंकि वह उसमें प्रासंगिक रूप से आती है। महाभारत में रामायण की कथा चार स्थानों में मिलती है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक स्थानों में राम कथा के पात्रों और घटनाओं आदि का उल्लेख पाया जाता है। वनपर्व में ऋषि मार्कन्डेय युधिष्ठिर को जो राम की कथा सुनाते हैं वह सबसे विस्तृत है और साहित्यिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। इसकी और वाल्मीकि रामायण की कथा में यद्यपि कुछ अंतर पाये जाते हैं किंतु मूल कथा समान ही है।

पांडवों के वनवास में जयद्रथ के द्वारा द्रौपदी का हरण होता है जिसके फलस्वरूप जयद्रथ और पांडवों के युद्ध में जयद्रथ को अपमानित कर छोड़ दिया जाता है। तब युधिष्ठिर ऋषि मार्कन्डेय से पूछते हैं कि

अस्तिनूनं मया कश्चिदल्पभाग्यतरो नरः।

(वनपर्व २७३-१२)

इस पर मार्कन्डेय युधिष्ठिर को राम की कथा सुनाते हैं। प्रारंभ में दशरथ के चार पुत्रों का उल्लेख मात्र करके फिर रावण, कुंभकर्ण, शूर्पणखा, खर, दूषण आदि राक्षसों तथा उनकी वर प्राप्ति का वर्णन किया जाता है। देवताओं के वानर और ऋक्ष रूप में जन्म लेने का भी वर्णन होता है। ब्रह्मा से वर पाकर रावण मदोन्मत्त हो जाता है और सब लोकों को त्रास देने लगता है जिससे

भयभीत हो देवता लोग ब्रह्मा के पास जाकर उनकी शरण माँगते हैं। ब्रह्मा उनको अभयदान देकर कहते है कि मेरे नियोग से विष्णु पृथ्वी में जन्म लेकर आप लोगों का दुख हरेंगे—

तदर्थमवतीर्णोऽसौ मन्नियोगाच्चतुर्भुजः ।
विष्णुः प्रहरतां श्रेष्ठः स तत् कर्म करिष्यति ।।

(महाभारत वनपर्व २७६–५)

वाल्मीकीय रामायण से इसकी प्रमुख भिन्नतायें इस प्रकार हैं :—

(१) महाभारत के रामोपाख्यान में कैकेयी मंथरा से जो गंधर्वी दुन्दुभी का अवतार है राम के राज्याभिषेक का समाचार सुनकर कोपभवन में प्रवेश नहीं करती बल्कि एकांत में पति दशरथ के पास जाकर हँसती और प्रणय दिखाती हुई कहती है कि हे राजन ! आप सत्य-प्रतिज्ञ हैं। मुझे पहले जो वर दिया था उसे पूरा कर अपने सत्य का पालन कर लीजिये और मुझे संकट से बचाइये।

सातद्वचनमाज्ञाय सर्वाभरणभूषिता ।
देवीविलग्नमध्येवविभ्रती रूप मुत्तमम् ।। १९ ।।
विविक्ते पतिमासाद्य हसंतीव शुचिस्मिता ।
प्रणयं व्यजंतीव मधुरं वाक्यमब्रवीत् ।। २० ।।
सत्यप्रतिज्ञ यन्मेत्वं काममेकं निसृष्टवान् ।
उपाकुरुष्व तद् राजंस्तस्मान्मुच्यस्व संकटात् ।। २१ ।।

(वन पर्व २७७)

(२) इसमें सुग्रीव और राम की मैत्री के पहले राम के बल की परीक्षा नहीं होती। बाली और सुग्रीव का एक ही बार युद्ध होता है। (३) इसमें तारा बाली को युद्ध में जाने से जब रोकती है तब बाली को तारा पर शक होता है कि कहीं उसका न सुग्रीव में तो नहीं लगा हो। यह बात वाल्मीकि में नहीं।

तस्यास्तदाक्षिण्य वचोहित मुक्तं कपीश्वरः ।
पर्यशंकत तामीर्षुः सुग्रीवगत मानसाम् ।।

(वनपर्व २८०–२५)

(४) इसमें कुंभकर्ण लक्ष्मण के द्वारा मारा जाता है। इन परिवर्तनों के अलावा और भी अनेक बातों का रामोपाख्यान में अभाव है जो वाल्मीकि में मिलती हैं जिनमें मुख्य हैं :—

पुत्रेष्टि यज्ञ का प्रसंग, धनुर्भंग, गुह तथा अत्रि का प्रसंग, विराध, अगस्त्य, शबरी आदि से संबंधित कथा, रावण की सभा, राम का माया सिर, रावण और सुग्रीव का युद्ध, आदि। इन परिवर्तनों और अभावों के संबंध में यह बात ध्यान में रखने की है कि रामोपाख्यान युधिष्ठिर के प्रश्न के उत्तर में सांत्वना के रूप में कहा गया है न कि स्वतंत्र काव्य के रूप में। अतः ऐसी बातें छोड़ दी गई हैं जो अनावश्यक समझी गई हों।

महाभारत के अतिरिक्त कतिपय पुराणों में भी राम कथा मिलती है जो प्रासंगिक रूप में वर्णित है। कहीं कहीं यह पूरी कथा क्रमानुसार संक्षेप में वर्णित है और कहीं कहीं आंशिक रूप में। पुराण साहित्य में मिलनेवाली राम कथा की विशेषता यह है कि इसमें वाल्मीकि रामायण में प्रतिपादित राम के विष्णुत्व की भावना बहुत विकसित रूप में मिलती है जो महाभारत में भी पायी जाती है। पुराण जिनमें राम कथा कही गई है राम को विष्णु का और सीता को लक्ष्मी का अवतार चित्रित करते हैं। कहीं कहीं राम को त्रिदेवों से परे और सीता को त्रिदेवियों से परे भी कहा गया है। वैसे, कथा मूलतः वाल्मीकि रामायण की ही है यद्यपि भक्ति भावना को पुष्ट करनेवाले अन्य प्रसंग भी मिलते हैं। यहाँ संक्षेप में प्रधान पुराण भागवत की राम कथा की विशेषतायें दिखाई जायँगी जो वाल्मीकि रामायण में नहीं मिलतीं।

भागवत पुराण

इसके नवम स्कंध के दशम और एकादश अध्यायों में राम की कथा वर्णित है। पहले दो तीन छंदों में संक्षेप में पूरी राम कथा दी गई है। (१०-२-४) बाद में विश्वामित्र की यज्ञ-रक्षा से लेकर राम राज्य तक की कथा केवल मुख्य घटनाओं के उल्लेख के रूप में कही गयी है।

इसकी मुख्य विशेषतायें ये हैं—

१. इसमें मंथरा और कैकेयी के षड्यंत्र का प्रसंग नहीं है।

२. भरत और राम के मिलन का वर्णन नहीं है।

३. इसमें बताया गया है कि राम ने स्वयं शूर्पणखा को विकृत किया है—

रक्षः स्वसुर्व्यकृत रूपमशुद्ध बुद्धेः
तस्याः खर त्रिशिर दूषण मुख्य बंधून्।
जघ्ने चतुर्दश सहस्रमपारणीय
कोदंड पाणिरटमान उवास कृच्छ्रम्॥

(९-१०-९)

४. इसमें विभीषण की शरणागति का उल्लेख नहीं है।

५. इसमें बताया गया है कि रावण वध के बाद राम स्वयं अशोकवन में जाकर सीता जी को देखते हैं और बिना अग्नि-परीक्षा के उनको विमान पर चढ़ा लेते हैं—(९-१०-३०-३२)।

६. इसके अनुसार प्रजा की स्थिति जानने के लिए राम स्वयं छद्मवेश में घूमते हैं और सीता के बारे में अनेक लोगों के मुख से अपवाद सुनते हैं :

कदाचिल्लोकजिज्ञासुर्गूढ़ो राज्यामलक्षितः।
चरन् वाचोऽश्रुणोद् रामो भार्यामुद्दिश्य कस्यचित्॥
(९-११-८-१०)

७. इसमें राम के अंतिम अश्वमेध यज्ञ और राम तथा कुश और लव का मिलन वर्णित नहीं है। सीता पति-त्यक्ता हो अपने पुत्रों को वाल्मीकि को सौंपकर पृथ्वी में प्रवेश करती है।

मुनौ निक्षिप्य तनयौ सीताभर्त्राविवासिता।
ध्यायंती राम चरणौ विवरं प्राविवेशह॥
(९—११—१५)

यह समाचार सुनकर राम बड़े दुखी होकर रो पड़ते हैं और उसके बाद ब्रह्मचर्य धारण कर तेरह हजार वर्ष तक अग्निहोत्र करते रहे। (९-११-१६-१९)

शेष कथा वाल्मीकि के अनुसार ही है। इससे यह विदित होता है कि पुराणकाल तक आते-आते वाल्मीकि रामायण की कथा में वैष्णव भावना के विकास के कारण कितने परिवर्तन आ गये।

इसके अतिरिक्त हरिवंश, कूर्मपुराण, विष्णु पुराण, अग्नि पुराण, नारदीय पुराण, ब्रह्म पुराण, स्कंद पुराण, पद्म पुराण, विष्णु धर्मोत्तर पुराण नृसिंह पुराण, वह्नि पुराण, शिवपुराण, देवी भागवत्, बृहद्धर्मपुराण, सौर पुराण, कालिका पुराण इत्यादि में न्यूनाधिक मात्रा में राम कथा मिलती है। यह कथा कहीं-कहीं आंशिक रूप में अथवा किसी सम्बन्धित घटना के उल्लेख के रूप में मिलती है। इनके अलावा अध्यात्म रामायण, आनंद रामायण, अद्भुत रामायण, जैमिनि भारत, बृहत् कोशल खंड इत्यादि सांप्रदायिक ग्रंथों में भी राम कथा पायी जाती है। इन ग्रन्थों में अध्यात्म रामायण और आनन्द रामायण का पर्याप्त प्रभाव हमारे आलोच्यकाल के दोनों भाषाओं के राम साहित्य पर पड़ा है।

इस धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त रघुवंश, भट्टिकाव्य अथवा रावण वध,

उदार राघव, अभिनंद का राम चरित, आदि काव्यों और उत्तर रामचरित, अभिषेक नाटक, अनर्ष राघव, प्रसन्न राघव, हनुमन्नाटक इत्यादि का भी प्रभाव आलोच्य भाषाओं के राम साहित्य पर पड़ा है। संस्कृत के इस विस्तृत राम साहित्य का निरूपण डा० कामिल बुल्के ने अपनी 'राम कथा' नाटक पुस्तक में किया है।[१] इन ग्रंथों का जो-जो प्रभाव हमारे आलोच्य विषय पर जहाँ-जहाँ दिखाई पड़ता है वहाँ उसका निरूपण आगे के अध्यायों में किया जायगा।

उपरोक्त ग्रंथों में अध्यात्म रामायण और आनंद रामायण के काल निर्णय के संबंध में डा० बुल्के ने जो मत प्रकट किया है वह विचारणीय मालूम होता हैं। उन्होंने यह मत प्रकट किया है कि अध्यात्म रामायण की रचना संभवत: १४ वीं अथवा १५ वीं शताब्दी में हुई थी और आनंद रामायण संभवत: १५ वीं शताब्दी में लिखी गई हो। वे इसका रचनाकाल अध्यात्म रामायण के बाद का मानते हैं क्योंकि अध्यात्म रामायण की कई पंक्तियाँ आनंद रामायण में मिलती हैं।[२] यह ठीक है, किंतु यह भी संभव हो सकता है कि आनंद रामायण पूर्व रचना हो और उसकी पंक्तियाँ अध्यात्म रामायण में मिलती हों। अध्यात्म रामायण तो ब्रह्मांड पुराण का भाग है जैसा कि निम्नलिखित पुष्पिका से विदित होता है—

"इति श्री ब्रह्मांड पुराणे उत्तरखंडेऽद्धात्म रामायणे बालकांडे रामायण महात्म्य कथनं नामैक षष्ठितमो अध्याय:।"

यही अध्यात्म रामायण आगे चलकर अलग ग्रंथ के रूप में प्रकाशित होने लगी। इसके संबंध में कई विद्वानों के प्रमाण भी मिलते हैं।[3] डा० बुल्के ब्रह्मांड पुराण की रचना ई० चौथी शताब्दी मानते हैं।[४] इस दृष्टि से अध्यात्म रामायण और ब्रह्मांड पुराण का रचना काल एक ही होना चाहिए और वह

---

१. डा० कामिल बुल्के—राम कथा—तृतीय भाग अ. १०-११।

२. डा० कामिल बुल्के—राम कथा—तृतीय भाग अ. १०—पृ. १६४, १६६।

3. *"The 'Brahmannapurana' contains the 'Adhyatma Ramayana' hich was seven books."*

Dr. Varadachary—A History of the Sanskrit Literature. Page 63

श्री राजपति दीक्षित—तुलसीदास और उनका युग—पृ. ३०४।

श्री सत्यदेव चतुर्वेदी—गोस्वामी तुलसीदास और राम कथा—पृ. ७६।

४. डा० बुल्के—राम कथा—पृ. १६४।

ब्रह्मांड पुराण का ही काल हो सकता है। अध्यात्म रामायण और आनंद रामायण के पौर्वापर्य के सम्बन्ध में जो भी कहा जाय, इतना तो निश्चित है कि इनका प्रभाव तेलुगु की रंगनाथ रामायण पर अनेक स्थानों में लक्षित है जैसा कि आगे दिखाया जायगा, और रंगनाथ रामायण की रचना ई० १४ वीं शती के प्रथक दशक में हुई थी। इससे यह सिद्ध होता है कि ये दोनों ग्रन्थ कम-से-कम रंगनाथ रामायण के बहुत पूर्व के थे और रंगनाथ इनसे परिचित और प्रभावित थे।

प्राकृत और अपभ्रंश : जैन और बौद्ध स्रोत—

राम कथा को लेकर प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में भी काव्य - रचना हुई जिनमें विमल सूरिकृत 'पउम चरिउ' (प्राकृत) स्वयंभूकृत 'पउम चरिउ' (अपभ्रंश) पुष्प दंत कृत महापुराण या तिसट्ठि महापुरुष गुणालंकार (अपभ्रंश) प्रमुख हैं। इनकी और वाल्मीकीय राम कथा में पर्याप्त भिन्नता है जिसका प्रधान कारण धार्मिक दृष्टिकोण है। वाल्मीकीय रामायण की लोकप्रियता को देखकर इन कवियों ने अपने जैन धर्म के प्रचार के लिए उनको साधन बनाया और उसे अपने धार्मिक सिद्धातों और मान्यताओं के अनुकूल परिवर्तित कर दिया। इसलिए उनकी कथा में बहुत से पात्र और घटनाएँ आदि ऐसे हैं ज वाल्मीकीय रामायण में नहीं हैं। इसी प्रकार बौद्ध धर्म के दृष्टिकोण से भी राम कथा को लेकर जातक कथाएँ लिखी गयी है। दशरथ जातक और अनामकं जातक ऐसी ही कथाएँ हैं जिनमें भी राम की कथा बड़े विकृत रूप में मिलती है क्योंकि उनका भी उद्देश्य धार्मिक था। हमारे आलोच्य काल के हिंदी और तेलुगु के राम साहित्य हिंदू-धर्म-प्रधान होने के कारण वस्तु-विकास, धार्मिक मान्यताओं आदि में उनसे प्रभावित नहीं हुए। हाँ, हिंदी के काव्य रूपों और वर्णन शैली पर उनका, अपभ्रंश काव्यों का, थोड़ा प्रभाव लक्षित होता है जो यथा-स्थान दिखाया जायगा। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि हमारी आलोच्य भाषाओं के राम साहित्य के लिए ये जैन और बौद्ध धर्म प्रधान प्राकृत और अपभ्रंश काव्य वस्तु और भाव की दृष्टि से मूल स्रोत नहीं बने। सांप्रदायिक दृष्टि से हिंदी और तेलुगु के राम साहित्य ने विस्तृत संस्कृत साहित्य से ही अपनी सामग्री का संचय किया।

वैष्णव स्रोत—

संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के जिस राम साहित्य का ऊपर उल्लेख किया गया है उस पर समय-समय पर विभिन्न धार्मिक परिस्थितियों के

कारण भिन्न-भिन्न संप्रदायों का प्रभाव पर्याप्त मात्रा में पड़ा । राम - साहित्य का प्रधान मूलोद्गम वाल्मीकि-रामायण सर्वथा आदर्श मानवता परक है यद्यपि वैष्णव अवतार की भावना भी मिलती है, उसमें कोई संदेह नहीं। कालांतर में महाभारत के समय तक आते-आते राम के विष्णुत्व की भावना प्रबल हो गई जिसका प्रमाण महाभारत के विभिन्न प्रसंगों में आई हुई राम कथा में मिलता है ।

> अथ दाशरथिर्वीरो रामो नाम महाबलः ।
> विष्णुर्मानुष रूपेण चचार वसुधामियाम् ।। ३. १४७. ३१
> (गीता प्रेस का संस्करण)
> तदर्थमवतीर्णोऽसौ मन्नियोगाच्चतुर्भुजः ।
> विष्णुः प्रहरतां श्रेष्ठः सकर्मैतत्करिष्यति ।। ५. ३. २६७
> संधौतु समनुप्राप्ते त्रेतायां द्वापरस्य च ।
> रामो दाशरथिर्भूत्वा भविष्यामि जगत्पतिः ।। १६. १२. ३४८

महाभारत के बाद हरिवंश आदि जितने पुराण लिखे गये उन सब में राम को विष्णु का अवतार ही माना गया है। इस प्रकार यद्यपि सारा पुराण साहित्य राम और विष्णु के अवतार के रूप में चित्रित करता है तथापि अध्यात्म रामायण, वासिष्ट रामायण, अद्भुत रामायण, आनंद रामायण, काल निर्णय रामायण आदि जितनी भी छोटी-बड़ी रामायणें हैं वे सब, सांप्रदायिक भावना का जहाँ तक सम्बन्ध है, मध्यकालीन हिंदी और तेलुगु के मूल स्रोत कही जा सकती हैं। यहाँ यह ध्यान में रखने की बात यह है कि राम जब से विष्णु के अवतार माने जाने लगे तभी से उनकी भक्ति भी की जाने लगी होगी क्योंकि बिना भक्तिभावना के राम को विष्णु का अवतार मानने की बात ही नहीं उठ सकती थी। ईश्वर के प्रति परानुरक्ति ही तो भक्ति है। 'भक्तिः परानुरक्तिरीश्वरे'—नारद भक्ति सूत्र) यहाँ पर सांप्रदायिक राम साहित्य से हमारा अभिप्राय यह है कि रामानुज संप्रदाय में रामभक्ति को पूजा-आराधना आदि विधि-विधान युक्त शास्त्रीय रूप मिला है। और वैष्णव भक्तों के छापा, तिलक आदि बाह्य लक्षणों को प्रधानता मिली। इस संप्रदाय में अगस्त्य संहिता बृहद् राघव और राघवीय संहिता तथा रामपूर्वतापनीयोपनिषद् रामोत्तरतापनीयोपनिषद् में और रामरहस्योपनिषद् बहुत महत्वपूर्ण माने जाते हैं। कलिसंतरणकृष्णोपनिषद् में राम के द्वारा मुनियों को कृष्णावतार के समय उनकी आलिंगनेच्छा की पूर्ति का आश्वासन दिये जाने का उल्लेख है। इनके अलावा रामार्चन सोपान,

सर्वसिद्धांत (राजेन्द्र लाल मित्र, संस्कृत कैटलाग भाग ९ पृ० २०२) रामार्चन-चंद्रिका और रामपूजा पद्धति नामक रचनाएँ भी संस्कृत की मिलती हैं (हरप्रसाद शास्त्री, संस्कृत कैटलाग भाग १ पृ० ३२३) आगे चलकर रामानंदी संप्रदाय में वैष्णव मताब्जभास्कर और रामार्चन पद्धति आदि ग्रन्थ भी लिखे गये। रामभक्ति के समानंतर चलनेवाली कृष्ण भक्ति से प्रेरित राधा-कृष्ण की आराधना के प्रभाव के कारण संस्कृत में आनंद रामायण, सत्योपाख्यान, हनुमत्संहिता, बृहत्कोशल खंड, आदि रामायण की रचनाएँ आ गईं जिनमें कृष्ण की लीलाओं के समान राम की शृंगार लीलाओं का वर्णन किया गया है।[1] इसी का प्रभाव हिंदी राम - साहित्य के रसिक संप्रदाय पर लक्षित होता है जिसका निरूपण आगे किया जायगा।

संक्षेप में, ये हमारे आलोच्य काल के हिन्दी और तेलुगु के राम साहित्यों के मूल स्रोत हैं।

---

१. डा० बुल्के—'राम कथा' के आधार पर।

तीसरा अध्याय

हिन्दी और तेलुगु के राम साहित्यों की परंपरा

जब कोई कवि किसी काव्य का निर्माण किसी विशिष्ट वस्तु, भावना तथा शैली को लेकर करे और उसके बाद अन्य कवि उसका अनुसरण करें तो उससे प्रार्दुभूत धारा को परंपरा कहा जाता है। वाल्मीकि ने अपनी रामायण में राम को विष्णु का अवतार मानते हुए भी जिस आदर्श मानवता का दृष्टि-कोण रखा वह आगे चलकर संस्कृत काव्य और नाटक साहित्य में अक्षुण्ण रहा जैसे रघुवंश, महावीर चरित आदि में। इस साहित्य में साहित्यिकता का पक्ष प्रबल है। अतः यह आदर्श मानवतावादी राम साहित्य-परम्परा कही जा सकती है। अन्य संस्कृत रामायणों में—जैसे अध्यातम रामायण और आनंद रामायण आदि—यह दृष्टिकोण पूरा-पूरा बदल गया क्योंकि उनमें भक्ति और सांप्रदायिकता के तत्व विशेषः गृहीत हुए। अतः यह धार्मिक परंपरा कही जा सकती है जिसमें साधना और भक्ति का पक्ष प्रधान और साहित्यिक पक्ष गौण है। इसका परिचय पिछले अध्याय में दिया गया है।

हिन्दी राम साहित्य की परंपराएँ—

ऊपर जिन दो परंपराओं का उल्लेख किया गया है उनमें एक परंपरा—धार्मिक परंपरा—का हमारे आलोच्य काल के हिंदी राम साहित्य में बहुत अच्छा विकास हुआ है; वही इसका मेरुदंड है। उस परंपरा के मूल में भक्ति और सांप्रदायिकता के दृष्टिकोण हैं। इस धार्मिक भावना-प्रधान-राम साहित्य की

दो परंपराएँ हैं; 'निर्गुण परंपरा' और 'सगुण परंपरा'। निर्गुण परंपरा के कवि कबीर और उनके संतमत के अनुयायी थे जिन्होंने राम को निर्गुण परब्रह्म ही माना। सगुण राम में उनकी उतनी आस्था नहीं थी जितनी निर्गुण राम में थी। यही कारण है कि इस निर्गुण परंपरा में वस्तु चरित्र-प्रधान-राम साहित्य हमें नहीं मिलता। दूसरी शाखा, सगुण परंपरा में हमें विस्तृत साहित्य मिलता है जिसके आकाश में तुलसीदास सूर्य बनकर प्रकाशित हैं। उनके विस्तृत राम साहित्य में राम के इन दोनों निर्गुण और सगुण रूपों, का सुन्दर समन्वय मिलता है। उनके राम जहाँ सर्वलोकेश्वर, माया को भी अपने वश में करनेवाले और 'विधि हरि शंभु नचावनहारे' निर्गुण परब्रह्म हैं वहाँ दशरथ-अजिर विहारी, सीतापति और लोकरक्षक सगुणावतार भी हैं जिनमें मर्यादा पुरुषोत्तमत्व की तीन विशिष्टताओं की; शक्ति, शील और सौंदर्य की त्रिवेणी लहराती है। साधना के क्षेत्र में भी उनकी यह समन्वय प्रवृत्ति दिखायी पड़ती है। उनके इस समन्वय पर किसी संप्रदाय विशेष का रंग नहीं चढ़ा। सांप्रदायिकता में किसी साधना विशेष से आग्रह होता है। तुलसीदास का यदि किसी साधना से आग्रह था तो वह निष्काम भक्ति से। किंतु इसके लिए विशेष प्रकार के बाह्याचार या विधि विधान आवश्यक नहीं हैं। अतः यह सात्विक आग्रह है। भावना और साधना के क्षेत्र में इस परंपरा में मुख्यतः तुलसीदास, हृदयराम, सेनापति और गुरु गोविंद सिंह का साहित्य आता है। यह धार्मिक राम साहित्य परंपरा स्वामी रामानंद की प्रवर्तित है जिसका दो रूपों में विकास हुआ है, निर्गुण और सगुण।

तुलसीदास के समकालीन स्वामी अग्रदास से प्रवर्तित राम-भक्ति ने एक नवीन संप्रदाय का रूप लिया जिसमें मधुर भक्ति की ही प्रधानता है। इसके साधकों का राम के प्रति शृंगारी भावना और तद्नुरूप रासक्रीडा आदि साधना विशेष से ही प्रबल आग्रह था। इसीलिए उस पर सांप्रदायिकता का रंग चढ़ा और वह रामावतार संप्रदाय कहलाया जिसके अन्तर्गत रसिक संप्रदाय, सखी संप्रदाय आदि उपशाखाएँ आदि मिलती हैं। इस परंपरा में राम को शृंगारी नायक और सीता को आदर्श नायिका के रूप में चित्रित किया गया है। हमारे आलोच्य काल में प्रधानतः स्वामी अग्रदास की ध्यानमंजरी, अष्टयाम, नाभादास का रामाष्टयाम, बालअली की ध्यान मंजरी, नेह प्रकाशिका आदि ग्रंथ इस संप्रदाय के साहित्य के अन्तर्गत आते हैं।

इस प्रकार भावना और साधना की दृष्टि से आलोच्य काल का हिंदी

राम साहित्य तीन प्रधान परंपराओं में विभाजित किया जा सकता है—निर्गुण परंपरा, सगुण मर्यादित परंपरा जिसके अन्तर्गत आदर्श मानवतावादी परम्परा भी निहित है और सगुण रसिक परंपरा।

काव्य और शैलीगत परंपराएँ—

हिंदी का राम साहित्य आलोच्य काल में चार काव्य परम्पराओं में मिलता है; चरित काव्य, प्रबंधात्मक महाकाव्य, प्रबंधात्मक खण्डकाव्य और मुक्तक काव्य।

चरित काव्य—इस काव्य परंपरा का प्रधान ग्रंथ गोस्वामी तुलसीदास का राम चरित मानस है। इस पर अपभ्रंश के 'चरिउ' काव्य परंपरा का प्रभाव माना जाता है। अपभ्रंश में जैन धर्मावलंबी महापुरुषों का वर्णन 'चरिउ' ग्रंथों में किया गया है जैसे 'पउम चरिउ', 'पास चरिउ', 'करकंड चरिउ' आदि। उन पुरुषों के पूर्व जन्म सम्बन्धी कथाओं और अलौकिक घटनाओं का भी वर्णन मिलता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी अपनी रामायण को इसी परम्परा के आधार पर रामचरित कहकर उसका मानस सरोवर के रूप में वर्णन किया है।[1] 'पउम चरिउ' में स्वयंभू ने रामकथा का सरिता के रूप में वर्णन किया है। 'रामकथा' सरिता के रूप में बहती आयी है। इसमें अक्षरों का समूह ही जल है; इसमें प्रयुक्त अलंकार और शब्द मछलियाँ हैं; दीर्घ समास टेढ़ा प्रवाह है; संस्कृत और प्राकृत अलंकृत पुलिन हैं; देशी भाषा दोनों उज्ज्वल तट हैं; कठिन और सघन शब्द शिलातल हैं; अर्थ समूह तरंगें हैं........." (पउम चरिउ १-२)

इसी प्रकार तुलसीदास ने अपने राम चरित मानस का वर्णन किया है—

दो० सुठि सुंदर संवाद वर विरचे बुद्धि विचारि।
तेहि एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि॥

सप्त प्रबंध सुभग सोपाना। ग्यान नयन निरखत मन माना।
रघुपति महिमा अगुन अगाधा। बरनब सोइ वर वारि अगाधा।
राम सीय जस सलिल सुधा सम। उपमा बीचि बिलास मनोरम।
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजु मनि सीय सुहाई।
छंद सोरठा सुंदर दोहा। सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा॥
अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरंद सुबासा।

---

१. हरिवंश कोछड़—अपभ्रंश साहित्य—पृ. ३९६-३९७।

सुकृत पुंज मंजुल अलिमाला। ग्यान बिराग बिचार मराला।
धुनि अवरेब कबित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहु भाँती।
अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ग्यान बिग्यान बिचारी।
नवरस जपतप जोग बिरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा।
(रा. मा. बा. ३६)

इसमें विषय प्रतिपादन की शैली 'पउम चरिउ' की ही है; किंतु रूपक योजना में तुलसी की मौलिकता है। यद्यपि रामचरित मानस नाम की दृष्टि से अपभ्रंश के 'चरिउ' काव्यों की परंपरा में आता है तो भी संस्कृत साहित्य शास्त्र सम्मत महाकाव्य के लक्षण एकाध को छोड़कर इस पर घटित होते हैं। साहित्य दर्पण में महाकाव्य के लक्षण इस प्रकार दिए गये हैं—

सर्गबंधो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्त गुणान्वितः॥
एकवंश भवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा।
श्रृंगारवीर शांतानामेकोऽङ्गरस इष्यते॥
अंगानि सर्वेपि रसाः सर्वे नाटक संधयः।
इतिहासोद्भवं वृत्तं अन्यद्वा सज्जनाश्रयम्॥
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युः तेष्वेकं च फलंभवेत्।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तु निर्देश एवा वा॥
क्वचिन्निंदा खलादीनां सतां च गुण कीर्तनम्।
एक वृत्तमयैः पद्यै रवसानेऽन्यवृत्तकैः॥
नाति स्वल्पा नाति दीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते॥
सगति भावि सर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।
संध्या सूर्येंदु रजनी प्रदोष ध्वांत वासराः॥
प्रातर्मध्याह्न मृगया शैलर्तुवनसागराः।
संभोग विप्रलंभौ च मुनि स्वर्ग पुराध्वराः॥
रणप्रयाणोपयममंत्र पुत्रोदयादयः।
वर्णनीया यथा योगं सांगोपांगा अमीइह॥
क्वेवृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा।
नामास्य सर्गोपादेय कथया सर्गनाम तु॥

अस्मिन्नर्षे पुनः सर्गा भवंत्वाख्यान संज्ञकाः ।
छंदसा स्कंधकैनैतत्क्वचिद् गलित कैरपि ।।
अपभ्रंशनिबद्धेऽस्मिन् सर्गाः कुडबकाभिधाः ।
तथापभ्रंशयोग्यानि छंदांसि विविधान्यपि ।।[1]

इनमें कथा के सर्ग विभाजन को छोड़कर सब लक्षण राम चरित मानस पर घटित होते हैं। अतः वह महाकाव्य भी है। विषय प्रतिपादन और शैली की दृष्टि से उसमें पुराण के तत्वों का भी समावेश दिखाई पड़ता है।[2] हमारे आलोच्य काल में दो और चरित्र काव्य मिलते हैं, नरहरिदास चारण का 'अवतार चरित्र' जिसमें रामावतार का चरित है (सं० १७३३) और रायचंद का 'सीता चरित्र' (सं० १७१३ या सन् १६५६)।

महाकाव्य—ऊपर रामचरित मानस का महाकाव्यत्व दिखाया गया है। इसके बाद केशवदास का काव्य 'रामचंद्रिका' इस परंपरा का प्रसिद्ध ग्रंथ है। उसमें सर्ग के स्थान में 'प्रकाशों' का विभाजन है जो काव्य के नाम के उपयुक्त है। श्री चंद्रबली पांडे के अनुसार केशव ने अपने महाकाव्य में कुछ पुराणों का पुट भी दे दिया और रासक या रासा पद्धति से भी काम लिया है।[3] गोविन्द रामायण भी इसी परंपरा का काव्य है यद्यपि उससे भी एकाध लक्षणों का समावेश नहीं हुआ। उसमें सर्गों के स्थान में 'कथनम्' नाम के कथा का विभाजन है जैसे अवध प्रवेश कथनम्, वन-गमन कथनम्, अथ हनुमान सोध को पैठबो कथनम् आदि। बीच-बीच में पात्रों के नाम नाटकों के समान दिये गये हैं जैसे सुमित्रा उवाच, राम उवाच, परशुराम उवाच आदि।

खण्डकाव्य—काव्य की एकदेशानुसारी रचना को खण्ड काव्य कहते हैं। उसमें उपरोक्त लक्षण घटित नहीं होते। इसका वस्तु विकास प्रबंधात्मक शैली में ही होता है। तुलसीदास के रामलला नहछू और जानकी मंगल, इस परंपरा में आते हैं। मधुर भक्ति के जो राम काव्य मिलते हैं जैसे ध्यान मंजरी, अष्टयाम, नेहप्रकाशिका आदि भी इस परंपरा में रखे जा सकते हैं क्योंकि उनमें राम के जीवन का एक खंड चित्र वर्णित है। उपरोक्त सब काव्य एक ही प्रकार के छंदों में लिखे गये है।

---

१. साहित्य दर्पण—६-३१५-२७।
२. श्री चंद्रबली पांडे—केशवदास—पृ. ५८।
३. श्री चंद्रबली पांडे—केशवदास—पृ. ५८।

मुक्तक काव्य—इस परंपरा के काव्यों में वस्तु की प्रबंधात्मकता का अभाव होता है। सूरदास का रामावतार वर्णन, तुलसीदास की गीतावली, बरवै रामायण, रामज्ञा प्रश्न, सेनापति का रामायण वर्णन और रसायन वर्णन, इस परंपरा में आते हैं।

इनके अतिरिक्त नाटक के नाम से भी दो ग्रन्थ मिलते हैं; हृदय राम का हनुमन्नाटक, और प्राणचंद चौहान का रामायण महानाटक। इनमें वस्तु का विभाजन अंकों में हुआ है। यही एक-मात्र लक्षण नाटक का इनमें पाया जाता है और सब लक्षण वर्णनात्मक शैली और विभिन्न छंदों का प्रयोग आदि काव्योपयुक्त हैं। पात्रों के नाम अलग से सूचित किये गये हैं जैसे 'राम उवाच' 'लक्ष्मण उवाच' आदि। नाटक में जिन अभिनय-निर्देशों और कथोपकथन आदि के तत्व होते हैं उनका इनमें सर्वदा अभाव है।

अब शैली की दृष्टि से देखा जाय तो हमारे आलोच्य काल में विभिन्न शैलियों में निर्मित राम साहित्य हमें मिलता है पद्यात्मक शैली में तुलसीदास की रामचरित मानस की दोहा चौपाई वाली शैली बहुत प्रसिद्ध है। इस शैली में प्रबंध काव्य लिखने की प्रथा तुलसीदास के पूर्व जायसी से ही प्रचलित है। अतः तुलसीदास पर उसी का प्रभाव दिखाई पड़ता है। डा० हरिवंश कोछड़ इन दोनों की शैली पर अपभ्रंश के 'पउम चरिउ' की कुडवक शैली का प्रभाव मानते हैं। दोनों में अन्तर यह है कि हिन्दी में व्यवधान दोहे या सोरठे से होता है और अपभ्रंश काव्य में "धत्ता" के द्वारा।[1] जो भी हो, यह शैली तुलसीदास के पूर्व से ही प्रयुक्त होती आयी है। जायसी ने अपभ्रंश काव्य की शैली को बदलकर जिस दोहा चौपाई वाली शैली का प्रयोग किया उसी का सीधा प्रभाव तुलसीदास पर मानना समीचीन होगा। इसके अतिरिक्त उन्होंने कवित्त सवैया वाली शैली, बरवै छंद शैली और गीतात्मक शैली का भी सफल प्रयोग किया है। कवितावली, बरवै रामायण, गीतावली तथा विनय पत्रिका क्रमशः इन्हीं शैलियों में लिखी गयी हैं। तुलसीदास के इन विभिन्न शैलियों में राम कथा लिखने का एक कारण था। उनके राम साहित्य के प्रणयन का उद्देश्य धार्मिक आदर्श विहीन लोगों में रामभक्ति का प्रचार करना था। "लोको भिन्न रुचिः" के अनुसार लोगों की रुचि पठन-पाठन में भी पृथक-पृथक होती है। जिसको जो शैली पसंद आये वह उसी में राम की कथा पढ़कर या गाकर भक्ति प्राप्त कर ले, इसी उद्देश्य से तुलसीदास ने विभिन्न शैलियों में

---

१. डा० हरिवंश कोछड़—अपभ्रंश साहित्य—पृ. ३९९।

राम कथा का कहीं विस्तृत और कहीं संक्षिप्त वर्णन किया है। जो साहित्य-रसिक नहीं होते वे केवल संक्षिप्त वर्णन पढ़कर राम के चरणों में भक्ति प्राप्त कर सकते हैं। जहाँ नीति और भक्ति का उपदेश देना था वहाँ उन्होंने दोहा शैली अपनायी जैसे दोहावली में क्योंकि यह छोटा छंद पाठक के हृदय पर बहुत प्रभाव डालता है। जहाँ तन्मयता के साथ राम की लीलाओं का गान करना था वहाँ गीतात्मक शैली को ग्रहण किया गया। जहाँ वीर, रौद्र, भयानक आदि रसों का वर्णन करना था वहाँ उन्होंने कवित्त शैली का प्रयोग किया क्योंकि उसी में ये रस अच्छी तरह प्रस्फुटित होते हैं जैसे कवितावली में। सूरदास का रामावतार वर्णन गीतात्मक शैली में है जो राग और ताल के साथ गाने में उपयुक्त होती है। इस गीतात्मक शैली का प्रारंभ हिंदी में विद्यापति की रचनाओं में मिलता है। यही शैली आगे चलकर राम और कृष्ण भक्ति शाखाओं के साहित्य में विकसित हुई। हनुमन्नाटक के प्रथम बारह अंक कवित्त शैली में हैं और अंतिम दो अंक दोहा चौपाई वाली शैली में। सेनापति का रामायण वर्णन और राम रसायन वर्णन संपूर्णतः कवित्त शैली में है। केशवदास की रामचंद्रिका की इस दृष्टि से अपनी विशेषता है। उसमें अनेक प्रकार के छंद प्रयुक्त हैं, वह मानों विभिन्न छंदों का लक्ष्य ग्रंथ ही हो। इसकी विशेषता सफल संवाद शैली में है। इस दृष्टि से वह, यद्यपि नाटक नहीं कहा गया है, हृदय राम के हनुमन्नाटक से कहीं अधिक सफल है। गोविंद रामायण भी अनेक छंदों में लिखी गयी है। छंद की दृष्टि से उसकी अपनी अलग शैली नहीं है।

मधुर भक्ति का राम साहित्य प्रायः दोहा और चौपाई वाली शैली में मिलता है।

इस प्रकार हिंदी राम साहित्य विभिन्न शैली परंपराओं में लिखा गया है।

तेलुगु राम साहित्य की परंपरायें:—

इस अध्याय के प्रारंभ में राम साहित्य की जिन दो परंपराओं का उल्लेख किया गया है उनमें प्रथम परंपरा आदर्श मानवतावादी परंपरा—ही अधिकतर तेलुगु के राम साहित्य में गृहीत है। यद्यपि धार्मिक भावना का भी उसमें समावेश किया गया है किंतु वह उसमें गौण या प्रासंगिक है। इसके कारणों पर आगे विचार किया जायगा। अतः जहाँ तक वस्तु विकास और भावना की पृष्ठभूमि का संबंध है, यह कहा जा सकता है कि तेलुगु राम

साहित्य ने वाल्मीकि और उनके परवर्ती संस्कृत के कवियों तथा नाटककारों का अनुकरण अधिक किया। वाल्मीकि के समान तेलुगु राम साहित्य का प्रणयन राम को विष्णु का अवतार मानते हुए मानवीय धरातल पर किया गया है और इस प्रकार उस आदर्श मानवतावादी परंपरा को अक्षुण्ण रखा गया जिसका प्रारंभ वाल्मीकि से हुआ और जो परवर्ती संस्कृत के ललित साहित्य में विकसित हुई। तिक्कन्न की निर्वचनोत्तर रामायण, जो तेलुगु का प्रथम राम काव्य है, इसका ज्वलंत उदाहरण है जिसमें राम को आदर्श नृपोत्तम के रूप में ही चित्रित किया गया है। उसके बाद के राम काव्य भी आदर्श मानवतावादी परंपरा के हैं यद्यपि उनमें निर्वचनोत्तर रामायण की अपेक्षा भक्ति तत्व का समावेश अधिक हुआ है। अध्यात्म रामायणांतर्गत निर्गुण परब्रह्म राम का वर्णन कर भक्ति का प्रतिपादन करने के लिए, उसका अलग ही अनुवाद किया गया। हाँ, कहीं-कहीं उसका भी थोड़ा-सा प्रभाव आलोच्य तेलुगु राम साहित्य पर दिखाई पड़ता है, किंतु सीमित मात्रा में। इसका दिग्दर्शन आगे, सातवें अध्याय में कराया जायगा। इसमें यद्यपि अवतारी भावना का भी समावेश हुआ है किंतु भक्ति साधना की कोई परंपरा नहीं मिलती। हाँ भक्ति साधना प्रधान राम साहित्य में रामदास और त्यागराजु के नाम लिये जा सकते हैं। किंतु यह ध्यान रहे कि उनकी भक्ति वैयक्तिक साधना प्रधान है, पारंपरिक साधना प्रधान नहीं। उन पर किसी संप्रदाय का रंग नहीं चढ़ा। भक्ति के क्षेत्र में वे स्वयं आलोक स्तंभ थे।

काव्य और शैलीगत परंपराएँ:—

संस्कृत की महाकाव्य परंपरा में थोड़े अंतर के साथ लिखे गये काव्य ग्रंथ तेलुगु के राम साहित्य में कई मिलते है; तिक्कन्न का निर्वचनोत्तर रामायण महाकाव्य और रंगनाथ रामायण आदि। साहित्य दर्पण के महाकाव्य लक्षण के अनुसार निर्वचनोत्तार रामायण की कथा वस्तु सर्गों में विभाजित न होकर आश्वासों में विभाजित है। इस दृष्टि से इस पर प्राकृत काव्यों का प्रभाव है जो उसके पहले ही आँध्र महाभारत पर पड़ा था। प्राकृत में लिखे गये काव्यों में सर्ग के स्थान पर आश्वास होता है।

"प्राकृतै र्निमिते तस्मिन् सर्गा आश्वास संज्ञकाः"

(साहित्य दर्पण)

दूसरा अंतर यह है कि इसमें प्रत्येक आश्वास में अनेक प्रकार के छंद, जैसे सीस पद्य, उत्पलमाला आदि, प्रयुक्त किये गये हैं। हाँ, आश्वासांत में

मालिनी छंद का भी प्रयोग किया गया है जो किसी भी आश्वास के बीच में नहीं प्रयुक्त है। आश्वासांत की पुष्पिका, जिसे तेलुगु में गद्य कहा जाता है, गद्यमय है जो इस प्रकार है—

"इदि श्रीमदुभयकवि मित्र कोम्मनामात्य पुत्र बुधाराधनविधेय तिक्कन नामधेय प्रणीतंबयिन युत्तर रामायणंबनु महाकाव्यंबु नंदु प्रथमाश्वासमु ।"

यह ………… तिक्कन्न प्रणीत उत्तर रामायण महाकाव्य का प्रथमाश्वास है। यह प्रथा नन्नय के आँध्र महाभारत में भी है। तेलुगु में प्रारंभ से चंपू काव्य पद्धति अपनायी गई है और तिक्कन्न के समय तक वही चली आयी। उससे, पार्थक्य दिखाने के लिए तिक्कन्न ने अपने काव्य को निर्वचन कहा अर्थात् गद्य विहीन। अन्य सब लक्षण संस्कृत महाकाव्य के इसमें मिलते हैं। इसमें दस आश्वास हैं।

इस महाकाव्य की परंपरा में शृंगार को प्रधानता देकर तेलुगु में एक और काव्य शैली विकसित हुई है जिसे प्रबंध शैली कहते हैं। संस्कृत महाकाव्य के सब लक्षण इस पर घटित होते हैं किंतु अंतर यह है कि यह शृंगार रस प्रधान होता है। अन्य रस इसके अंग बनकर आते हैं। इस शैली का विकास इतना अधिक हुआ है कि इसके आधार पर तेलुगु साहित्य में एक अलग प्रबंध युग ही माना गया है जो सन् १५०० से १६५० तक व्याप्त रहा। "रामाभ्युद-यमु" और "श्रीमदुत्तर रामायण" इस शैली के प्रधान राम काव्य हैं। यद्यपि उत्तर रामायण की कथा करुण रस प्रधान है तथापि प्रबंध शैली अपनाने के कारण पापराजु ने शृंगार को अधिक महत्व देकर उसके अनुकूल वर्णनों का समावेश कर उसे एक प्रबंध का रूप दिया।

रंगनाथ रामायण में वाल्मीकि रामायण का काव्य रूप थोड़े परिवर्तन के साथ सुरक्षित है। इसमें एक ही द्विपद छंद का प्रयोग है; अन्य कोई छंद कहीं नहीं है। इसका विभाजन केवल कांडों में ही है। इनका उप-विभाजन नहीं किया गया है। विषय-विस्तार और निर्वहण की दृष्टि से भास्कर रामायण, मोल्ल रामायण और रघुनाथ रामायण भी महाकाव्य परंपरा में ही आती हैं। उनके कांडों का भी उपविभाजन सर्गों में न होकर आश्वासों में हुआ है।

खंड काव्यः—हमारे आलोच्य काल में राम कथा के किसी अंश को लेकर लिखे गये खंड काव्य भी मिलते हैं जैसे सुग्रीव विजयमु, सीता कल्याणमु, रावण वध आदि। हाँ उनकी छंद - शैली देशी है जिस पर आगे विचार किया जायगा।

मुक्तक काव्य—इस काव्य रूप में लिखा गया राम-साहित्य इस काल में बहुत कम है। जो भी साहित्य इस परंपरा का मिलता है वह शतक साहित्य है जिसमें भक्ति भावना की प्रधानता है जैसे "दाशरथी शतक", "भद्राद्रि राम शतक", आदि। तेलुगु शतकों का एक प्रधान लक्षण यह है कि सब पद्यों के अंतिम चरण या अंतिम चरण का अंतिम भाग एकसा होता है जिसे "मुकुट" कहते हैं जो प्राय: संबोधन के रूप में रहता है। जैसे "दाशरी करुणापयोनिधी", "श्री रामा" आदि।

अब शैली की दृष्टि से यदि देखा जाय तो तेलुगु राम साहित्य की प्रधान शैली चंपू शैली है। इसमें संस्कृत चंपू के अनुसार ही गद्य और पद्य दोनों का समावेश है। इस परंपरा के राम साहित्य पर भोजराज की चंपू रामायण का प्रभाव है। इसमें भास्कर रामायण, मोल्ल रामायण, रामाभ्युदयमु, उत्तर रामायण, रघुनाथ रामायण प्रमुख ग्रंथ हैं। इन चंपू काव्यों में अनेक प्रकार के संस्कृत और देशी छंदों का प्रयोग मिलता है।

दूसरी शैली है द्विपद शैली जिसमें लिखी गई सर्वप्रथम रामायण है रंगनाथ रामायण। इसकी छंद : शैली पर इसके पूर्व प्रणीत वीरशैव वाङ्मय का प्रभाव है। द्विपद छंद तेलुगु साहित्य में नया नहीं है। यद्यपि साहित्य में उसका प्रयोग वीरशैव कवियों के पहले कहीं नहीं किया गया तथापि साधारण जनता में उसका खूब प्रचार था और लोकगीत प्राय: उसी छंद में गाये जाते थे। इसको सर्वप्रथम पालकुरिकि सोमनाथ ने साहित्य में प्रयुक्त किया और उसी छंद में "पंडिताराध्य चरित्र" और "बसव पुराण" की रचना की।[1] इस छंद के लक्षण और स्वरूप पर आगे ग्यारहवें अध्याय में प्रकाश डाला जायगा। रंगनाथ ने अपनी रामायण का साधारण जनता में विशेष प्रचार करने के उद्देश्य से इस गीतात्मक छंद को लिया है। कांडों के अंत में किसी विभिन्न छंद का प्रयोग नहीं किया है। इस शैली में वरदराजु रामायण और एकोजी रामायण भी मिलती हैं।

अब तीसरी शैली है यक्षगान की शैली। हमारे आलोच्य काल के उत्तरार्ध में इसका अच्छा विकास हुआ। इस शैली में राम कथा संबंधी अनेक रचनायें भी मिलती हैं। साहित्य की यह विधा तेलुगु साहित्य की एक प्रमुख विशेषता है। डा० यस्वी० जोगाराव ने अपने "आंध्र यक्ष गान वाङ्मय

---

१. श्री शि० रामकृष्ण शास्त्री आंध्र वाङ्मय चरित्र सर्वस्व पृ० ४९८।

चरित्र" नामक ग्रंथ में इसके जन्म और विकास पर बड़े विस्तार के साथ विचार किया है। यहाँ उसी के आधार पर इस शैली विशेष का परिचय दिया जाता है।

"यक्ष गान" का सामान्य अर्थ है यक्षों का गान। किंतु यक्षों और आंध्रों में कोई जातिगत संबंध नहीं है। यक्ष शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम जैमिनीय ब्राह्मण में मिलता है (३-२०३-२७२)। उसके बाद गृह्य सूत्रों और बौद्ध साहित्य में भी इस शब्द का प्रयोग मिलता है। इनमें उनका उल्लेख किसी जाति विशेष के रूप में हुआ है। वाल्मीकि रामायण में यक्षत्व अमरत्व के समान कहा गया है—

यक्षत्वममरत्वं च राज्यानि विविधानि च।
अत्र देवाः प्रयच्छंति भूतैराराधिताः शुभैः॥

(बा० रा० अर० ११-१३)

महाभारत की गीता में कहा गया है कि राजस प्रवृत्ति वाले लोग यक्षों की उपासना करते हैं—

यजन्ते सात्विका देवान् यक्ष रक्षांसि राजसाः।
प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः॥

(गीता १७—४)

महाभारत के अरण्य पर्व में भी यक्ष शब्द का प्रयोग मिलता है जहाँ कोई यक्ष युधिष्ठिर से कुछ प्रश्न पूछता है। भट्टि काव्य में यक्षों का उल्लेख स्त्रोत्र पाठकों (बंदी जन) के रूप में हुआ है। कालिदास के "मेघसंदेश" में यक्ष नृत्य और संगीत के प्रेमी के रूप में बताये गये हैं।[1] श्री वि० आर० आर० दीक्षित ने अपने "रामायण में दक्षिण भारत" नामक लेख में लिखा है कि यक्ष राक्षस जाति की ही एक शाखा है जो राक्षसों के पहले सिंहल में राज्य करती थी। किंतु इनमें से किसी का आँध्र में प्रचलित यक्षगान से संबंध स्थापित नहीं होता।

वात्स्यायन के कामसूत्रों में (१-४-४२) "यक्षरात्रि" का उल्लेख द्यूत-क्रीड़ा विशेष के अर्थ में हुआ है। हेमचंद्र के ग्रंथ "देशी नाम माला" में (३—४३) दीपावली के अर्थ में "जक्खरत्ती" (यक्षरात्रि का विकृत रूप) का प्रयोग मिलता है। कर्णाटक प्रदेश में ऐसी प्रथा है कि "यक्ष गान" दल के लोग दीपावली के दिन अपने इष्टदेव के मंदिर में अपने यक्षगान का सर्वप्रथम प्रदर्शन

---

१. कालिदास—"मेघ संदेश" २-५, २५।

करते हैं। यह बताना कठिन है कि हेमचंद्र के "जक्खरत्ती" शब्द और कर्णाटक की इस प्रथा में कहाँ तक संबंध है।

आँध्र देश में "जक्क" नाम की जाति के लोग वर्तमान रायलसीमा में रहते थे जिनके चिह्न आज भी गाँवों के नामों के रूप में मिलते हैं जैसे "जक्कसानिकुंट्ल", "जक्कलचेरुवु", जक्कसमुद्रमु" आदि। "रामाभ्युदयमु" (रामभद्र कवि के) में "जक्किणि" का उल्लेख मिलता है। (रामा २–१३१) यहाँ इसका प्रयोग नाट्य विशेष के रूप में हुआ है। तंजाऊर के नायक राजाओं की सभा में "जक्किणि नाट्य" हुआ करते थे। यह "जक्किणि नाट्य" केवल नाट्य भेद मात्र न होकर "गीतशैली" विशेष भी मालूम होता है। ये "जक्किणि नाट्य" और "यक्षगान" उपरोक्त "जक्क" जाति की स्त्रियों के गान और क्रीड़ा विशेष ही रहे होंगे।

यक्ष गान की उत्पत्ति के विषय में श्री पंचाग्नुल आदि नारायणशास्त्रीजी ने लिखा है कि आँध्र देश में प्राचीन काल में विद्या और विवेक संपन्न "जक्कुलु", "पविनीडुलु" आदि जातियों के लोग रहते थे। "जक्क" जाति के लोगों के गीत "जक्कुल पाटलु" नाम से प्रसिद्ध है। (आँध्र पत्रिका, १९२१—उगादि अंक—पृ० १२१ व १२६)। अंत में निष्कर्षात्मक रूप से श्री डा० जोगाराव कहते हैं कि किसी समय साधारण जनता जिनको व्यावहारिक या बोलचाल की भाषा में "जक्कुल पाटलु" कहती थी उन्हीं को आगे चलकर पंडित लोगों ने "यक्ष गान" कहना प्रारंभ किया होगा।[1] इस संबंध में और भी मतभेद मिलते हैं जिनमें मुख्य है स्व० वे० प्रभाकर शास्त्री जी का मत। उनका कहना है कि द्रविड़ देश के नाट्य विशेष "कोरवंजि" से "यक्ष गान" की उत्पत्ति हुई थी।[2] किंतु डा० जोगारावजी का मत है कि "कोरवंजि" और "यक्षगान" दोनों रचना की दृष्टि से अभिन्न हैं; ये दोनों एक ही नाट्यभेद के दो रूप हैं और दोनों में जन्य जनक संबंध नहीं है।[3] दोनों में अंतर दिखाते हुए यह कहा जा सकता है कि जिस यक्षगान में कोरवंजि (एरुक नामक जाति की स्त्री) आती है उसे कोरवंजि कहते हैं। कोरवंजि शब्द तेलुगु के "रामाभ्युदयमु" में सर्व-प्रथम मिलता है।[4]

---

१. डा० यस्वी० जोगाराव—आँध्र यक्षगान वाङ्मयम् चरित्र १ पृ. ३–३१
२. स्व० वे० प्रभाकर शास्त्री—सुग्रीव विजयमु की पीठिका
३. डा० यस्वी० जोगाराव—आँध्र यक्षगान वाङ्मय चरित्र १ पृ. ४३
४. रामभद्र कवि—रामाभ्युदयमु २–१३१

तेलुगु साहित्य में सर्वप्रथम यक्षगान का नामोल्लेख पालकुरिकि सोमनाथ (सन् १२८०-१३४०) के "पंडिताराध्य चरित्र" में मिलता है ।[1] उसके बाद श्रीनाथ के भीमेश्वर पुराण में भी यक्षगान का प्रयोग गीत शैली के अर्थ में मिलता है—

कीर्तितु रेद्दानि कीर्ति गंधर्वुलु
गांधर्वमुन यक्षगान सरणि ।।

(भी. पु. ३—३५)

(गंधर्व संगीत में यक्षगान पद्धति से जिसका यश गाते हैं)

उसके बाद मनुचरित्र, पारिजातापहरण, और रामाम्युदयमु आदि में इसका उल्लेख मिलता है

यक्षगान गीत और नाट्य प्रधान है और साधारण जनता के विनोद और ज्ञानार्जन के लिए प्रयुक्त किया जाता था । उसकी रचना के प्रधान अंश ये हैं:—

१. ताल प्रधान "रेकु" या "दरुवु" नामक गीत—उसका मूल "रगड" नामक छंद है ।
२. द्विपद छंद ।
३. एल, अर्धचंद्रिका, धवलशोभन आदि गीत विशेष ।
४. गद्य (बचन)
५. संस्कृत और देशी छंद ।

६. श्लोक, चूर्णिका, दंडक, अष्टक (आठ पद्यों का समूह)……आदि । यह आवश्यक नहीं, प्रत्येक यक्षगान में इन सब अंशों का समावेश हो । यह यक्षगान गान-प्रधान है । इसकी कथावस्तु प्राय: पौराणिक या रामायण, महा-भारत आदि से ली हुई होती है ।

इसका अभिनय भी किया जाता है । इसलिए इसमें नाटक के वेषधारण आदि तत्वों का समावेश होता है । इसका अभिनय करनेवालों की एक अलग जाति मानी जाती है । इसका अभिनय किसी मंदिर या धनवान के घर के सामने तात्कालिक रूप से बनाये गये पत्तों के मंडप में किया जाता है । उस मंडप के सामने एक सफेद परदा लगाया जाता है जिसके पीछे हंगुदार (प्रबंध-कर्ता), मृदंग वादक, ताल देनेवाला, वंत गायक (गाने में साथ देनेवाले)

---

१. **पालकुरिकि सोमनाथ पंडिताराध्य चरित्र—पर्वत प्रकरण—जागरण प्रसंग ।**

रहते हैं। सूत्रधार परदे के बाहर आकर भगवान की प्रार्थना करता है। उसके बाद कथा का परिचय, और पात्र प्रवेश की सूचना देता है। पात्रों से स्वयं कभी कुछ पूछता है। पात्रधारियों और वंत गायकों को गीतों का प्रारंभ ग्रहण करा देता है। पात्रों के अभिनय के अनुकूल ताल देता है और बीच-बीच में कथा को आगे बढ़ाने वाले गद्य, और वर्णनात्मक द्विपद आदि पढ़ता है। कभी-कभी विदूषक का पात्र भी होता है जिसे "हास्यगाडु" कहते हैं जो सूत्रधार की सहायता करता है। कहीं-कहीं पात्र परदे के पीछे से अपना परिचय स्वयं देते हैं और दीपक पर गुग्गुल डालकर प्रोज्ज्वलित दीपक से लोगों के नेत्रों में चकाचौंध पैदा करते हैं। उसके बाद सूत्रधार प्रावेशिक दरुवु गाने लगता है जिसमें वंत गायक साथ देते हैं। तुरंत द्रुतगति से हंगुदार, ताल और मृदंगवादक पैरों की घुंघुरुओं को झनकारते हुए बाहर आते हैं और अपने दल की परिपाटी के अनुसार सिर झुकाकर, या हाथ जोड़कर या पुष्पांजलि समर्पित कर दर्शकों की सभा के प्रति आदर दिखाते हैं। उसके बाद वे दोनों तरफ हट जाते हैं। परदा जब उठता है तब मंडप के पार्श्वों में अभिनेता, हंगुदार, वंतगायक आदि दोनों तरफ खड़े दिखाई पड़ते हैं। जिस पात्र की बारी जब आती है तब वह मंच पर लाकर अपना अभिनय करके चला जाता है और अन्य लोगों के साथ खड़ा रहता है। पात्र जब प्रवेश करता है तब सूत्रधार उसकी सूचना गद्य या पद्य में दे देता है। इस प्रकार इसका अभिनय प्रायः रातभर चलता है। सुबह होते-होते जब यक्षगान समाप्त होता है तब उस दल के लोग उन्हीं वेषों से लोगों के घर जाते हैं और वहाँ भी कुछ अभिनय दिखाकर उनसे पुरस्कार पाते हैं। यह ग्रामीण जनता के लिए विनोद के एक साधन के रूप में प्रचलित था। आभिजात्य वर्ग के लोग इससे प्रायः उदासीन रहते थे।

इस शैली में सर्वप्रथम रचना है "सुग्रीव विजयमु" जिसके बाद "इल्लिद कुंट रामायण" आदि और भी यक्ष गान राम साहित्य में मिलते हैं। इस शैली की कृतियों में गद्य और अभिनय तत्वों का अधिक समावेश कर उनको नाटक भी कहा जाता था। तंजाऊर पुस्तकालय में जो यक्षगान मिलते हैं उनको "प्राकृत नाटक" कहा गया है क्योंकि उनसे प्राकृत जनों का मनोरंजन होता था। इससे यह भी सूचित होता है कि इस शैली की कृतियों का अभिजात्य और पंडित वर्ग में विशेष महत्व नहीं था।

चौथी शैली है कीर्तन शैली जिसके प्रधान गायक थे रामदास और त्याग-राजु। इस शैली के उनके कोई ग्रंथ नहीं मिलते। किंतु उनके मुक्तक गीत

जिनमें भक्ति और संगीत का सुन्दर समावेश है, इसके अंतर्गत आते हैं। यह गीतात्मक शैली है।

इसके अतिरिक्त गद्यात्मक शैली में भी रामायण की रचना हुई है। श्यामराय कवि की रामायण इसी शैली में लिखी गई है।

इस प्रकार आलोच्य काल में पद्य, गद्य, गीत और नाटकीय यक्षगान आदि विभिन्न शैलियों में राम साहित्य का निर्माण हुआ है।

चौथा अध्याय

हिन्दी राम साहित्य पर एक विहंगम दृष्टि

हिन्दी का राम साहित्य सूरदास के समय से लेकर प्राप्त होता है जिसके सर्व प्रधान कवि थे तुलसीदास। सूरदास के पहले के राम साहित्य की भी संक्षिप्त सूचना खोज विवरणों के आधार पर "हिन्दी साहित्य" के द्वितीय खंड में दी गयी है।[1] इस शाखा में सर्वप्रथम स्वामी रामानन्द हुए थे जिनका आविर्भाव काल रामानंदी संप्रदाय के अनुसार सं० १३५६ वि० (सन् १२९९) था। उनकी दो संस्कृत रचनाएँ मिलती हैं—वैष्णव मताब्ज भास्कर और श्री रामार्चन पद्धति। इनके अतिरिक्त उनकी कुछ हिन्दी रचनाएँ भी मिलती हैं जिनका प्रकाशन काशी नागरी प्रचारिणी सभा के द्वारा स्व० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल के संपादन में हुआ है। उसमें राम-रक्षा स्तोत्र, ज्ञान तिलक, ज्ञान लीला और योग चिंतामणि, आत्मबोध आदि संगृहीत हैं। इनका विषय केवल भक्ति और ज्ञान के सिद्धांत हैं जिनका कोई साहित्यिक महत्व नहीं है। इनका प्रभाव कबीर की निर्गुण राम भक्ति पर लक्षित होता है। इसके बाद वाल्मीकि रामायण के हिन्दी रूपांतरकार किसी विष्णुदास (सं० १४९२, सन् १४३५) और "भरत मिलाप", "सत्यवती कथा" और "अंगद पैज" नामक रचनाओं के रचयिता ईश्वरदास की सूचना दी गई है। इनका रचनाकाल सं० १५५८ (सन् १५०१) के आस-पास माना गया है। इनके अतिरिक्त कुछ जैन परंपरा

---

१. भारतीय हिन्दी परिषद्—"हिन्दी साहित्य" २—पृ. ३०४-३०६

में लिखी गई पुस्तकों का भी उल्लेख किया गया है। पृथ्वीराज रासो में भी दशावतार वर्णन के अंतर्गत दूसरे समय में रामकथा ३८ छंदों में मिलती है।[१]

इसके उपरांत जो राम साहित्य प्रकाशित रूप में मिलता है वह: प्राय: भक्ति रस प्रधान है। यह इस साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है कि वाल्मीकि की राम कथा को भक्ति के परिपार्श्व में प्रतिपादित किया गया है जिसके लिए अन्यान्य संस्कृत के रामायण साहित्य का भी पर्याप्त प्रभाव ग्रहण किया गया है क्योंकि जिस उदात्त भक्ति-तत्व की हिन्दी राम साहित्य के कवियों को आवश्यकता थी वह वाल्मीकि रामायण में सम्यक् रूप में प्राप्त नहीं होता। इसका कारण यही है कि वाल्मीकि और हिन्दी कवियों के दृष्टिकोण में अंतर है। जहाँ वाल्मीकि का उद्देश्य राम को आदर्श मानवोत्तम या महाराज के रूप में चित्रित करने का था जिसमें विष्णवंश भी देखा गया था, वहाँ हिन्दी कवियों का उद्देश्य उनको निर्गुण परब्रह्म, सगुणावतारी लोक रक्षक, और मधुर भावना के आलंबन के रूप में चित्रित करने का रहा। वाल्मीकीय रामायण के अतिरिक्त संस्कृत में जो अन्य राम साहित्य, सांप्रदायिक या धार्मिक साहित्य के रूप में मिलता है उसमें यह भक्ति तत्व बहुत ही विकसित हुआ है। यही कारण है कि हिन्दी के राम कवियों ने इस साहित्य से भी अपनी सामग्री का संचय किया। इसके साथ अपनी काव्य प्रतिभा का संयोग करके उन्होंने ऐसे सुंदर साहित्य का निर्माण किया जिसने समूचे उत्तर भारत को राममय कर दिया है। इस साहित्य से एकछत्राधिपति के रूप में शोभित होनेवाले भक्त कवि महात्मा तुलसीदास हैं। यद्यपि भक्ति के विभिन्न रूपों को प्रधानता देते हुए अनेक कवियों ने उनके समकालीन और परवर्ती राम साहित्य का निर्माण किया तथापि तुलसीदास के प्रखर तेज के सामने वे प्रकाशित नहीं हो सके। तुलसीदास के राम-साहित्य में जो अनुभूति प्रधान भक्ति, काव्य प्रतिभा, और अपने समय के अनुकूल सामाजिक और धार्मिक समन्वयात्मक दृष्टि मिलती है वह अन्य कवियों के साहित्य में प्राय: नहीं मिलती।

हमारे आलोच्यकाल के राम साहित्य में उपर्युक्त भक्ति प्रधान साहित्य के अलावा साहित्यिकता प्रधान रामकाव्य भी कुछ मिलते हैं जिनमें केशवदास की रामचंद्रिका, सेनापति का रामायण वर्णन, और रसिक संप्रदाय के राम काव्य मुख्य हैं। इनमें यद्यपि भक्ति तत्व भी मिलता है तथापि विषय प्रतिपादन की

---

१. **श्रीनिवास विहारी त्रिवेदी—"मैथिलीशरण अभिनंदन ग्रंथ—"पृथ्वीराज रासो में राम कथा"—पृ. ६७७**

शैली के कारण वह गौण बन गया है और उनका साहित्यिक पक्ष ही उभर आया है। यही कारण है कि ये ग्रंथ रामचरित मानस के समान भक्तों के कंठहार नहीं बन सके। हाँ, मधुर भक्ति सम्बन्धी पुस्तकों की बात कुछ दूसरी है। डा० रामकुमार वर्मा ने "हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास" में "रामप्रकाश" नामक एक ग्रंथ का उल्लेख किया है जो सं० १६४२ (सन् १५८५) में लिखा गया है। इसके कवि ने इसमें राम कथा का वर्णन रीति शास्त्र के अनुसार किया है। (पृ. ३३६)

मधुर उपासना पद्धति के काव्यों का विकास वि. १९वीं और २०वी शताब्दियों में अधिक हुआ है यद्यपि हमारे आलोच्य काल में भी कुछ प्रसिद्ध ग्रंथ लिखे गये थे। इस साहित्य के जिन प्रसिद्ध कवियों और रचनाओं का परिचय आगे दिया जा रहा है उनके अतिरिक्त भी अनेक काव्य मिल हैं जो या तो पूरी या आंशिक रामकथा को लेकर लिखे गये हैं। उनकी सूची छठे अध्याय के अंत में दी जायगी।

कवियों और रचनाओं का परिचय

स्वामी रामानंद—

हिन्दी का राम साहित्य प्रधानत: तत्कालीन भक्ति आन्दोलन का परिणाम है और स्वामी रामानंद इस आंदोलन के प्रवर्तक थे। अत: उनके विषय में संक्षेप में यहाँ लिखा जा रहा है यद्यपि राम चरित को लेकर उन्होंने कोई ग्रंथ नहीं लिखा।

स्वामी रामानंद के जन्म और मृत्यु की तिथियों में पंडितों में बड़ा मतभेद है। सब मतों पर सम्यक् रूप से विचार कर डा० श्रीकृष्णलाल इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यदि हम उनकी आयु १३५-१३६ वर्ष की मान लें तो हम सरलता से उनका समय सं० १३५६ (सन् १२९९), सं० १४९१-९२ (सन् १४३४-३५) तक स्वीकार कर सकते हैं और सभी बातों का विचार करने पर यह समय असंगत भी नहीं जान पड़ता।[1] वे प्रयाग के पुण्य सदन और सुशीला देवी नामक ब्राह्मण दंपति की सन्तान और काशी के प्रसिद्ध स्वामी राघवानंद के शिष्य थे। दक्षिण के आचार्य रामानुज के श्री संप्रदाय के होते हुए रामानंद ने अपना एक अलग संप्रदाय चलाया जिसमें जातिपाँति आदि का कोई भेद भाव नहीं माना गया। इसीलिए उन्होंने कबीर को भी अपना शिष्य

---

१. काशी नागरी प्रचारिणी सभा—रामानंद की हिन्दी रचनायें— अध्याय २ पृ. ४०

बना लिया। उन्होंने स्वयं कहा—"जाति पाँति पूछै नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई।" कहा जाता है कि उनके पाँच सौ से अधिक शिष्य सारे उत्तर में फैले थे और घर-घर में राम मंत्र का प्रचार कर रहे थे। रामानंदी संप्रदाय के लोग इनको स्वयं भगवान राम का अवतार मानते हैं।

सूरदास—

ये कृष्ण भक्ति शाखा के सर्वप्रसिद्ध कवि थे। इनकी जन्म और मृत्यु तिथियों के संबंध में सम्यक् विचार करते हुए आचार्य प्रवर श्री नंददुलारे बाजपेयीजी लिखते हैं कि "इनका जन्म सं० १५३० (सन् १४७३) में मानना पड़ेगा और ये सं० १६४० (सन् १५८३) तक जीवित रहे थे।[1] इनके वंश परिचय के संबंध में आचार्यजी लिखते हैं कि गोस्वामी विट्ठलनाथजी के सेवक श्रीनाथ भट्ट और उनके समकालीन प्राणनाथ कवि ने सूरदास को स्पष्टरूप से ब्राह्मण लिखा है और ये सूरदास के समकालीन थे। अतः उनके कथन पर अधिक विश्वास किया जा सकता है।[2] अनेक प्रमाणों के आधार पर आचार्य जी ने इनको जन्मांध माना है।[3] इनका जन्म स्थान सीही था। इन्होंने बचपन में ही गृहत्याग किया और अठारहवें वर्ष में मथुरा तथा वृंदावन के बीच गऊघाट नामक स्थान पर आकर रहने लगे। वहीं स्वामी वल्लभाचार्य जी से उनकी भेंट हुई और उनसे दीक्षित होकर ये सूरसागर की रचना में प्रवृत्त हुए। इनकी अनन्य कृष्ण भक्ति और काव्य प्रतिभा से प्रभावित होकर गो० विट्ठलदास ने इनको प्रसिद्ध "अष्ट - छाप" का सर्वप्रथम कीर्तनकार बनाया। इनकी तीन प्रसिद्ध पुस्तकें हैं - "सूर सारावली", "साहित्य लहरी" और "सूर सागर"। पहली और तीसरी पुस्तक में राम कथा का वर्णन पाया जाता है। इन दोनों में सूरसागर की रामकथा बड़ी है। सूरसागर संस्कृत के भागवत के आधार पर लिखा गया है। इसलिए मूल भागवत की रामकथा को विस्तृत बनाकर इन्होंने उसे एक सुगठित रूप दिया है।

ये पहुँचे हुए भक्त थे। उनका अंतिम माना जानेवाला पद उनकी मधुर भक्ति का सुन्दर प्रमाण है जिसमें उन्होंने अपने को गोपी मानकर अंतर्नयनों से श्रीनाथ की छवि के दर्शन करते हुए इहयात्रा समाप्त की थी। वह पद यह है:—

---

१. आचार्य श्री नंददुलारे बाजपेयी—महाकवि सूरदास, पृ. ६३, ७९
२. " " ६७
३. " " ७१, ७२

खंजन नयन रूप रस माते ।
अतिसय चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते ।
चलि-चलि जात निकट स्रवननि के उलटि पलटि ताटंक फँदाते ।
"सूरदास" अंजन गुन अटके न तरु अबहि उड़ि जाते ।।

गोस्वामी तुलसीदासः—

ये हिन्दी राम साहित्य के सिरमौर थे । इनके जन्म और मृत्यु क तिथियों में पंडितों में मतभेद है । डा० माता प्रसाद गुप्त इनका जन्म सं० १५८९ (सन् १५३२) और मृत्यु सं० १६८० (सन् १६२३) मानते हैं ।[१] प्रायः आजकल बहुत लोग इन तिथियों को ठीक मानते हैं ।[२] इनके माता पिता हुलसी और आत्माराम थे । इनके जन्म स्थान के संबंध में भी दो स्थानों को—राजापुर और सोरों—लेकर पंडितों में मतभेद है । दोनों पक्षों का समन्वय करते हुए श्री परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं कि यह अनुमान करना भी कदाचित असंगत न कहा जायगा कि उनका जन्म सोरों, जिला एटा, वा उसके निकट ही कहीं हुआ होगा और वे वहाँ से फिर राजापुर गये होंगे जैसा गोजट्यिर का भी संकेत है ।[3] इनकी जाति व कुल के बारे में भी मतैक्य नहीं है । श्री परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं कि गोस्वामीजी के सरयूपारीय, कान्य कुब्ज अथवा सनाढ्य होने के विषय में अंतिम निर्णय देना कठिन जान पड़ता है ।[४] सांप्रदायिक दृष्टि से वे स्मार्त वैष्णव माने जाते हैं । इनके गुरु कोई रामभक्त महात्मा थे जिनको इन्होंने "नर रूप हरि" कहा है । इसी गुरु से इन्होंने रामायण की कथा सुनी और उसके आधार पर बड़ा होने के बाद अनेक निगमागम पुराणों की सामग्री का संचय करके अपने विशाल राम साहित्य का निर्माण किया है । मूल गोसाईं चरित के आधार यह कहा जा सकता है कि इनका विवाह रत्नावली नामक एक कन्या से हुआ । किंतु थोड़े समय के बाद ये विरक्त हो गये और चित्रकूट, अयोध्या, प्रयाग, बदरीनारायण आदि तीर्थों का भ्रमण करके अंत में काशी पहुँचे तथा आजीवन वहीं रहे ।[५] कुछ विद्वानों के

---

१. माता प्रसाद गुप्त, तुलसीदास पृ. १११ और १५७ (प्रथम संस्करण)
२. परशुराम चतुर्वेदी, मानस की राम कथा पृ. १७
३. " " २१
४. " " २२
५. डा० माता प्रसाद गुप्त, तुलसीदास पृ. १४५

अनुसार इन्होंने दक्षिण के रामेश्वर की भी यात्रा की थी ।[1] जनश्रुति के अनुसार इन्होंने काशी में ही असीघाट पर शरीर छोड़ा । मूल गोसाईं चरित के अनुसार सं० १६१६ में महात्मा सूरदास के साथ इनकी भेंट हुई थी ।

इनकी तेरह रचनाएँ प्रामाणिक मानी जाती हैं यद्यपि और भी अनेकों के नाम दिए जाते हैं । इन रचनाओं का क्रम डा० माताप्रसाद गुप्त ने इस प्रकार दिया है:—(१) रामलला नहछू, (२) वैराग्य संदीपनी, (३) रामाज्ञा प्रश्न, (४) जानकी मंगल, (५) राम चरित मानस, (६) सतसई, (७) पार्वती मंगल, (८) गीतावली, (९) विनय पत्रिका, (१०) कृष्ण गीतावली, (११) बरवै रामायण, (१२) दोहावली और (१३) कवितावली (सबाहुक) ।

इनकी रचना तिथियों के संबंध में पंडितों में बड़ा मतभेद है जिनका विचार डा० माता प्रसाद गुप्त ने अपने "तुलसीदास" में किया है और कुछ प्रामाणिक व अनुमानात्मक निष्कर्षों पर पहुँचे हैं ।[2] यथा-स्थान उनका निर्देश किया जायगा । इनके अतिरिक्त और भी अनेक ग्रंथ इनके बताये जाते हैं जो अ मामाणिक माने गये हैं । ये पहुँचे हुए भक्त और कवि थे । भक्ति की महिमा के आधार पर इनके जीवन में अनेक आश्चर्यजनक घटनाओं का उल्लेख जनश्रुति के आधार पर किया जाता है । (दे. डा० श्यामसुन्दर दास—गोस्वामी तुलसी दास, रामदास गौड़—रामचरित मानस की भूमिका) । इनकी काव्य प्रतिभा और भक्ति की महिमा का हिन्दी साहित्य पर ऐसा प्रखर प्रकाश फैला है कि उनका पूर्ववर्ती या परवर्ती कोई भी राम कवि हमारे आलोच्य काल में प्रसिद्ध नहीं हो सका । "भक्त माल" के प्रसिद्ध रचयिता नाभादास ने इनको वाल्मीकि का अवतार माना है ।

स्वामी अग्रदास:—

ये स्वामी रामानंद की शिष्य परंपरा में थे और राजपुताना के गलता गद्दी में रहा करते थे । इनका आविर्भाव काल सं० १६३२ (सन् १५७५) था ।[3] इनकी रामोपासना मधुर भावना प्रधान थी । इन्होंने जानकी की एक

---

१. डा० श्यामसुन्दर दास, गोस्वामी तुलसीदास पृ. ४१
स्व० पं० रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. १४४
पं० रामबहोरी शुक्ल, तुलसी पृ. १५

२. डा० माता प्रसाद गुप्त, तुलसीदास पृ. २५३

३. पं० रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पूर्व मध्यकाल प्रकरण ४

सखी की भावना से राम भक्ति की है ।[1] इनकी चार पुस्तकों का पता लगा है । (१) "हितोपदेश उपखाँणाँ बावनी", (२) "ध्यान मंजरी", (३) "राम-ध्यान मंजरी" और (४) "कुंडलिया" । पहली और अंतिम पुस्तकों को डा० रामकुमार वर्मा एक ही बताते हैं ।[2]

नाभादास:—

ये उपरोक्त स्वामी अग्रदास के शिष्य थे और सं० १६५७ के आसपास वर्तमान थे तथा गौस्वामी तुलसीदास की मृत्यु के बाद भी जीवित रहे । इन्होंने "भक्त माल" नामक पुस्तक लिखी जिसमें ३१६ छप्पयों में कोई २०० भक्तों का परिचय दिया गया है । इनकी एक और पुस्तक "रामाष्टयाम" भी उपलब्ध है जिसमें राम की मधुर भक्ति प्रतिपादित है । इन्होंने अपने "भक्त माल" में तुलसीदास के संबंध में एक छप्पय लिखा है जो बहुत प्रसिद्ध है और जिसमें तुलसीदास को वाल्मीकि का अवतार माना गया है । वह इस प्रकार है—

त्रेंता काव्य निबंध करी सत कोटि रमायन
इक इच्छर उच्चरे ब्रह्म हत्यादि परायन ।।
अब भक्तन सुख दैन बहुरि लीला विस्तारी ।।
रामचरन रस मत्त रहत अहनिसि व्रतधारी ।।
संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लियो ।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित वालमीकि तुलसी भयो ।।

केशवदास :—

ये तुलसीदास के समकालीन थे । इनका जन्म सं० १६१२ (सन् १५५५) और मृत्यु सं० १६७४ (सन् १६१७) के आसपास हुई थी ।[3] इन्होंने राम-चंद्रिका के प्रारंभ में अपना वंश परिचय दिया है जिसके आधार पर ये सनाढ्य ब्राह्मण कृष्णदत्त के पौत्र और काशीनाथ के पुत्र थे ।[4] ये पंडित कुल के थे और वेदव्यास को अपने वंश का मूल पुरुष मानते थे जैसा कि "विज्ञान गीता" की निम्नलिखित पंक्तियों से व्यक्त होता है—

---

१. भारतीय हिन्दी परिषद्, हिन्दी साहित्य २ पृ. ३०६
२. डा० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ. ४७२
३. स्व० पं० रामचंद्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास—पूर्व मध्यकाल प्रक-रण—६
४. केशवदास—रामचंद्रिका—पहला प्रकाश ४ ।

सु काशिनाथ तस्य पुत्र विज्ञ काशिनाथ को
सनाढ्य कुंभवार अंश वंश वेदव्यास को ॥[१]

इनको ऐसे विद्वत्कुल के होने का बड़ा अभिमान था। ओड़छा नरेश रामशाह के छोटे भाई इंद्रजीत सिंह ने इनको अपना गुरु मान लिया था और २१ गाँव उपहार में दिये थे।

गुरु करि मान्यो तन मन कृपा विचारि।
ग्राम दये इकबीस तब ताके पायँ पखारि।[२]

ये संस्कृत के बड़े पंडित और अलंकारवादी कवि थे। इनकी सात पुस्तकें प्रसिद्ध हैं :—कवि प्रिया, रसिक प्रिया, रामचंद्रिका, वीरसिंह देव चरित, विज्ञान गीता, रतन बावनी और जहाँगीर जस चंद्रिका। इनके अतिरिक्त रामालंकृत मंजरी, अमी घूँट, जैमिनी की कथा, हनुमान जन्म लीला, बालि चरित्र, आदि अनेक ग्रंथों का उल्लेख डा० विजयपाल सिंह ने अपने "केशव और उनका साहित्य" में किया है। किंतु वे स्वयं उनको संदिग्ध मानते हैं।[३]

रामचंद्रिका की रचना इन्होंने वाल्मीकि के आदेश से की है।[४] कहा जाता है कि ये इंद्रजीतसिंह की वेश्या प्रवीणराय को साहित्य की शिक्षा देते थे और उसी हेतु कयिप्रिया और रसिक प्रिया की रचना की।

हृदय राम :—

ये पंजाब के रहनेवाले और कृष्णदास के पुत्र थे।[५] इन्होंने संस्कृत के हनुमन्नाटक के आधार पर भाषा में "हनुमन्नाटक" लिखा जिसे "राम गीता भाषा" भी कहा जाता है। इस पुस्तक की प्रस्तावना में श्री नंदकिशोरदेव शर्मा ने निम्नलिखित वृत्तांत लिखा है :—

"जहाँगीर बादशाह ने हृदयराम कवि को किसी अपराध के कारण कैद किया था। उसी जेलखाने में उक्त कवि ने यह ग्रंथ संवत् १६८० (सन् १६२३) विक्रमाब्द में बनाया था और फिर इसी राम चरित्र के प्रताप से कवि कारागृह से मुक्त भी हो गये थे। परंतु यह ग्रंथ जेलखाने की दीवारों में ही लिखा रह

---

१. केशवदास—विज्ञान गीता—प्रथम प्रभाव—५।
२. कविप्रिया—पृ० २३।
३. डा विजयपाल सिंह—केशव और उनका साहित्य—पृ० ८५—९०।
४. केशवदास—रामचंद्रिका—पहला प्रकाश—७-१८।
५. स्व० पं० रामचंद्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास—पूर्व—मध्यकाल प्रकरण—४।

गया। इसके पीछे जब बादशाह को खबर हुई तो उसने इस ग्रंथ को अति उत्तम समझकर दीवारों में से निकलवाकर और फारसी में नकल करा कर अपने प्राइवेट पुस्तकालय में रखवा दिया। तत्पश्चात् सं० १७६३ (सन् १७०६) में सिक्खों के दसवें बादशाह गुरु गोविंद सिंह जी ने अपने मित्र शाह आलम बहादुर शाह के समुद्र रूपी पुराने दफ्तर का आलोडन करके चौदह रत्न रूपी चौदह अंकों का यह ग्रंथ प्राप्त किया और इसे अनुपम रत्न समझकर इतना प्रेम करते थे कि किसी समय भी अपनी देह से जुदा नहीं करते थे। तभी से यह ग्रंथ गुरुमुखी अक्षरों में हुआ और बड़े आदर के साथ अमृतसर के गुरुद्वारे में पढ़ा जाता आया।"[१]

इस विवरण से यह विदित होता है कि हृदय राम बड़े राम भक्त थे और उनकी पुस्तक की भक्ति भावना ने जहाँगीर और बाद में सिक्खों को भी बहुत प्रभावित किया था। इनकी और किसी पुस्तक का पता नहीं चलता।

सेनापति—

इनकी जन्म और मृत्यु तिथियों के संबंध में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।[२] किंतु डा० राम कुमार वर्मा ने इनकी जन्म-तिथि सं० १६४६ (सन् १५८९) दी है।[३] ये दीक्षित कुल के थे और गंगाधर इनके पिता थे। हीरामणि दीक्षित से इन्होंने विद्याध्ययन किया था।[४] ये अनूप शहर के रहनेवाले थे। इनके एक छंद से विदित होता है कि मुसलमान शासकों से इनका संबंध रहा, किंतु बाद में ये विरक्त हो गये।[५] इन्होंने सं० १७०६ (सन् १६४९) में कवित्त रत्नाकर की रचना की जो बहुत प्रसिद्ध हो गया है। इस ग्रंथ में पाँच तरंगें हैं—(१) श्लेष वर्णन, (२) शृंगार वर्णन, (३) ऋतु वर्णन, (४) रामायण वर्णन, (५) राम रसायन वर्णन। यद्यपि ये प्रधानतः राम भक्त थे किंतु कृष्ण और शिव संबंधी छंद भी इनके मिलते है। ये बड़े स्वाभिमानी प्रकृति के कवि थे। इनका एक और ग्रंथ भी बतलाया जाता है "काव्य - कल्पद्रुम"। किंतु वह अप्राप्त है।

---

१. नंद किशोर देव शर्मा—हनुमन्नाटक की प्रस्तावना—वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई।

२. श्री उमाशंकर शुक्ल—कवित्त रत्नाकर—भूमिका—पृ० ६।

३. डा० रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ४७३।

४. सेनापति—कवित्त रत्नाकर—पहली तरंग—५।

५. ,, ,, पाँचवीं तरंग—३३।

गुरुगोविंद सिंह :—

हिन्दी साहित्य के किसी भी इतिहास ग्रंथ में इनका नाम राम साहित्य के कवियों के अंतर्गत नहीं मिलता। कारण यह हो सकता है कि इनकी रामायण की देवनागरी प्रतिलिपि कुछ ही वर्ष पहले हिन्दी संसार के सामने आयी है जिसका श्रेय श्री संत इंद्रसिंह चक्रवर्ती को है। हाँ, श्री बदरीनारायण श्रीवास्तव ने "हिन्दी अनुशीलन" के धीरेंद्र वर्मा विशेषांक में इसका उल्लेख किया है।[1] अभी हाल में इनके काव्य साहित्य पर एक शोध प्रबंध भी प्रकाशित हुआ है। ये गुरु गोविंद सिंह सिक्ख धर्म के प्रसिद्ध दशम गुरु ही थे। इनका जन्म पटना में १७ पौष १७२३ (सन् १६६६) में हुआ था और बाल्य काल भी ६ वर्ष की अवस्था तक वहीं बीता। इनकी माता का नाम गुजरी और पिता का श्री तेग बहादुर सिंह था।[2] ये बचपन से बड़े वीर थे और पठन-पाठन में भी बड़ी दक्षता दिखाते थे। इन्होंने अपने समय के मुगल शासकों के अत्याचारों के विरुद्ध तलवार उठायी और आजीवन उनसे जूझते रहे। बचपन में ही इनका विवाह लाहौर के हरजीमल की पुत्री श्री जीतो से हुआ था। इनके पुत्र और पत्नी भी हिन्दू जाति की रक्षा के पवित्र कार्य में शहीद हो गये। अनेक शारीरिक और मानसिक कष्ट सहकर ये कार्तिक शुक्ल पंचमी, संवत् १७६५ को नांदेड में विचित्र ढंग से अंतर्धान हुये।[3]

इनमें वीरता और काव्य प्रतिभा तथा पांडित्य का संयोग सोने में सुगंध जैसा था। इनकी सब कृतियों का संग्रह "दशम ग्रंथ" में हुआ है जिसमें रामायण भी सम्मिलित है।[4] डा० कु० प्रसिन्नी सहगल ने अपने शोध प्रबंध में इनकी कुल १६ प्रामाणिक रचनाओं की सूची दी है।[5] उनमें "चौबीस अवतार" नामक पुस्तक के अंतर्गत रामायण की कथा है।

---

१. हिन्दी अनुशीलन—धीरेंद्र वर्मा विशेषांक—उत्तर भारत का मध्यकालीन राम काव्य—पृ० ४००।
२. श्री ओम् प्रकाश आनंद—गोविंद रामायण—प्राक्कथन पृ० ४।
३. ,, ,, ,, ६।
४. ,, ,, ,, १८।
५. डा० कु० प्रसित्री सहगल—गुरु गोविंदसिंह और उनका काव्य पृ० ११४।

पाँचवाँ अध्याय

तेलुगु के राम साहित्य पर एक विहंगम दृष्टि

ज्ञात रूप से तेलुगु भाषा के साहित्य का प्रारंभ होने के समय तक आन्ध्र देश के धार्मिक आतावरण पर कुमारिलभट्ट (७वीं शताब्दी) के पूर्व —मीमांसापरक कर्मकांड प्रधान वैदिक धर्म और शंकराचार्य (८वीं शताब्दी) के अद्वैतवाद का पर्याप्त प्रभाव पड़ चुका था और जैन तथा बौद्ध धर्मों का प्रभाव क्षीण हो गया था।[1] ऐसी परिस्थिति में पुनरुदीयमान वैदिक धर्म वृक्ष को आवश्यक दोहद देने के लिए उस समय (११वीं शताब्दी) आन्ध्र के पूर्वी चालुक्य राजा राजराजनरेंद्र के आश्रय में तेलुगु के आदि कवि नन्नय के द्वारा महाभारत का अरण्यपर्व के आधे तक अनुवाद हुआ जो तेलुगु साहित्य का प्रथम ग्रंथ माना जाता है क्योंकि उसके पहले के किसी ग्रंथ का अब तक पता नहीं चला।[2] उसके बाद वीरशैव धर्म का बोलबाला इतना रहा कि कृष्ण महिमा के प्रतिपादक महाभारत का निर्माण प्रायः दो सौ वर्षों तक रुक गया। तेरहवीं शताब्दी के मध्य भाग में फिर कवि ब्रह्म तिक्कन्न ने काव्य क्षेत्र में प्रवेश कर अपने हरिहर तत्वों के समन्वयात्मक दृष्टिकोण के द्वारा धार्मिक वातावरण को भी एक समन्वयात्मक रूप दिया था। उन्होंने सर्वप्रथम "निर्वचनोत्तर रामायण" लिखी जो तेलुगु का सर्वप्रथम रामकाव्य है। अपने जीवन के अंतिम भाग में उन्होंने नन्नय से प्रारंभ किये गये महाभारत का अनुवाद विराट पर्व

---

१. श्री शि, रामकृष्ण शास्त्री—"आंध्र वाङ्मय चरित्र सर्वस्वमु—पृ. ११४-११५

२. " " " १०४

से लेकर अंत तक पूरा किया। अरण्य पर्व का आधा भाग जो शेष रह गया था बाद में एर्रन्न ने पूरा किया। इस प्रकार महाभारत का अनुवाद तीन कवियों के द्वारा संपन्न हुआ जो कवित्रय के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसके अनंतर वैष्णव धर्म का भी प्रचार बढ़ने से (१४ वीं शताब्दी) साहित्य में विष्णु के अवतार के प्रतिपादक रामायणों की रचना होने लगी।[1] तेरहवीं शताब्दी में ही यद्यपि उत्तर रामायण की रचना हो चुकी थी तथापि उसमें कवि की दृष्टि धार्मिक की अपेक्षा आदर्श मानवीय और साहित्यिक अधिक थी। चौदहवीं शताब्दी में निर्मित रामायणों में "रंगनाथ रामायण", "भास्कर रामायण" बहुत प्रसिद्ध हैं। एर्रन्न कृत रामायण का भी उल्लेख मिलता है किंतु वह अब तक अप्राप्त है।[2] इसी प्रकार इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध में निर्मित कोरवि सत्यनारायण को रामायण भी प्राप्त नहीं है।[3] इसके अनंतर १६वीं शती में रचित मोल्ल रामायण, रामाभ्युदयमु, राघव पांडवीयमु तथा १७वीं शताब्दी में निर्मित रघुनाथ रामायण, वरदराजु रामायण, उत्तर रामायण आदि ग्रंथ भी प्रसिद्ध हुए। अठारहवीं शताब्दी में "उच्च तेलुगु रामायण" लिखी गई हैं। इनके अलावा आन्ध्र महाभारत के अरण्य पर्व तथा आन्ध्र महाभागवत में भी रामोपाख्यान मिलते हैं। रामायण की आंशिक कथा को लेकर भी राम साहित्य निर्मित हुआ जो विशेषत: यक्ष-गानों के रूप में मिलता है जिनमें १६ वीं शताब्दी में रचित "सुग्रीव विजय" प्रसिद्ध है। यक्षगानों में लिखी पूरी रामायणें भी मिलती हैं जिनमें "इल्लिंदकुंट रामायण" का उल्लेख किया जा सकता है। हमारे आलोच्य काल में इनके अतिरिक्त और भी अनेक राम काव्यों की रचना की गई है जिनकी संक्षिप्त सूची सातवें अध्याय के अंत में दी जायगी।

तेलुगु के राम साहित्य पर विचार करने के पहले हमें इस बात का ध्यान रखना चहिए कि कथा वस्तु की दृष्टि से तेलुगु रामायणों की वस्तु वही है जो वाल्मकि रामायण की है यद्यपि उसके विकास और प्रतिपादन में कवियों की मौलिकता प्रस्फुटित हुई थी। तेलुगु भाषा की प्रवृति ही कुछ ऐसी है कि उसमें संस्कृत के शब्द कम से कम पचहत्तर फीसदी तत्सम या तद्भव के रूप में पाये जाते हैं। संस्कृत के समान बड़े-बड़े दीर्घ समासों की रचना

---

१. श्री शि. रामकृष्ण शास्त्री "आन्ध्र वाङ्मय चरित्र सर्वस्वमु"—पृ. ५५३

२. " " ६७३

३. " " ७६४

तेलुगु में होती है। अतः प्रत्येक तेलुगु कवि के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि संस्कृत में भी वह पर्याप्त विद्वत्ता प्राप्त करले अन्यथा तेलुगु में सफल काव्य रचना असम्भव है। हमारे आलोच्य काल के तेलुगु कवि तो दोनों भाषाओं में निष्णात थे और दोनों में काव्य रचना की दक्षता भी उनमें थी। इसलिए इस बात में संदेह नहीं हो सकता कि राम-काव्यों के कवियों ने अपने समय तक लिखित संस्कृत के राम साहित्य का उसके विभिन्न रूपों में—गद्य, पद्य और नाटक—सम्यक् अध्ययन किया होगा। कन्नड भाषा में तेलुगु के पहले ही ११वीं शती में "अभिनव पंप" नामक कवि के द्वारा रामायण की रचना हो चुकी थी जिस पर जैन धर्म के राम काव्यों का काफी प्रभाव पड़ा था। कर्नाटक और आंध्र देश पड़ोसी हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार दोनों की भाषा भी प्राचीन काल में एक थी जो आगे चलकर दो रूपों में बँट गई।[1] इस सामीप्य के कारण दोनों भाषाओं के साहित्य में आदान-प्रदान भी हुआ था। प्रारंभ में आंध्र साहित्य पर कन्नड साहित्य का काफी प्रभाव भी पड़ा।[2] तेलुगु साहित्य के प्रारंभिक काल तक कथासरित्सागर के द्वारा जो प्राकृत में लिखी गई बृहत्कथा का संस्कृत रूपांतर है, रामायण संबंधी बहुत सी लोक कथायें भी प्रचलित रही होंगी। इन स्रोतों में विशेषकर वाल्मीकीय रामायण और अन्य संस्कृत राम-काव्यों ने अपनी काव्य-वस्तु का चयन करके तेलुगु के रामायण कवियों ने अपने काव्यों की रचना की थी। यही कारण है कि तेलुगु रामायणों में ऐसे बहुत से प्रसंग मिलते हैं जो वाल्मीकि रामायण में नहीं हैं।

विशेषताएँ—

जिस धार्मिक पृष्ठभूमि में तेलुगु में रामकाव्यों की रचना होने लगी उसका आभास पहले थोड़ा-सा दिया गया है। विषय प्रतिपादन और चरित्र की दृष्टि से यदि देखा जाय तो वाल्मीकि और आलोच्य काल के तेलुगु रामायण कवियों के दृष्टिकोण में बहुत समानता है यद्यपि तेलुगु कवियों ने भक्ति का अंश वाल्मीकि की अपेक्षा थोड़ा अधिक समाविष्ट किया है। किंतु जिस प्रकार महाभारत की रचना में कर्मकांड प्रधान वैदिक धर्म के उन्नयन की दृष्टि थी और बाद के वीरशैव साहित्य में शैव भक्ति के प्रचार का उद्देश्य था इस प्रकार का कोई धार्मिक उद्देश्य राम-साहित्य की रचना में नहीं था। राम के आदर्श जीवन ने यहाँ के कवियों को आकृष्ट किया जैसाकि तिक्कन्न

---

१. श्री के. वेंकटनारायण राव—आन्ध्र वाङ्मय चरित्र संग्रहमु—पृ. १४
२ श्री शि. रामकृष्ण शास्त्री—आन्ध्र वाङ्मय चरित्र सर्वस्वमु—पृ. ९५-१००

और रंगनाथ ने अपने ग्रंथों के आरंभ में कहा था । तिक्कन्न ने कहा था—

"एत्तरिनैननु धीरोदात्तनृपोत्तमुडु राम धरणीपति स
दृत्तमु संभाव्यमगुट नुत्तर रामायणोक्ति युक्तुडनैतिन् ।।"

अर्थात्—धीरोदात्त नृप राम का सद्वृत्त किसी भी समय संभाव्य और कथनीय है। इसलिए उत्तर रामायण कहने को मैं उद्यत हुआ ।

रंगनाथ रामायण के अवतरण में कहा गया है कि महाराज विट्ठल ने राम-कथा-सुधारस-रक्त होकर अपने पुत्र बुद्धराजु ने कहा कि तुम रामायण की रचना इस प्रकार करो कि उसका पुराण मार्ग न छूने और कवींद्र तथा पंडित लोग उसकी प्रशंसा करें। यही दृष्टिकोण बाद के रामकाव्यों में भी रहा था। इससे विदित होता है कि विशुद्ध आदर्शवादी और साहित्यिक दृष्टि से कवियों ने रामायणों की रचना की थी, न कि किसी धर्म विशेष या भक्ति के प्रचार की दृष्टि से । यही कारण है कि अध्यात्म रामायण का प्रभाव तेलुगु राम साहित्य पर अपेक्षाकृत कम है जो विशुद्ध भक्ति और आध्यात्मिक दृष्टि प्रधान ग्रंथ है। इस कथन की पुष्टि इस बात से भी होती है कि भक्ति की दृष्टि से तेलुगु में रामायण उतनी प्रसिद्ध नहीं हुई जितना महाभारत और महाभागवत हुआ—यद्यपि आन्ध्र देश के प्रत्येक गाँव में भगवान राम के मंदिर विद्यमान हैं और जनता बड़ी भक्ति के साथ उनकी पूजा अर्चना आदि करती है। यद्यपि रामायण-कवियों ने राम को विष्णु का अवतार माना और पात्रों के मुँह से परब्रह्म के रूप में राम की स्तुति भी कराई तो भी उन्होंने उसे मानवता की परिधि में ही चित्रित किया ।

विभिन्न स्रोतों से प्राप्त अपनी सामग्री का मूल कथा के साथ सुंदर समन्वय करके तेलुगु के कवियों ने साहित्यिक दृष्टि से उसको बहुत सुंदर और हृदय ग्राह्य बनाया। इसके लिए आवश्यकता के अनुसार कहीं-कहीं मूल के वर्णनों और प्रसंगों को संक्षिप्त बताया और कहीं-कहीं बढ़ाया; कुछ नये प्रसंग भी जोड़े और अपनी वस्तु को अधिक तर्कपूर्ण और सुगठित बनाया। किंतु मध्यकाल के किसी भी कवि ने वाल्मीकि का हू-ब-हू अनुवाद नहीं किया। यही कारण है कि आधुनिक काल में वाल्मीकि रामायण के अक्षरशः अनुवाद की आवश्यकता महसूस हुई तो गद्य और पद्य में वह कार्य संपन्न हुआ। अब आगे आलोच्य काल के कुछ प्रमुख रामायण-कवियों का परिचय दिया जाता है।

विविध रचनाएँ और लेखकों का परिचय

१. तिक्कन्न—

ये ई. सन् १२१०-१२८० के मध्य वर्तमान रहे होंगे।[1] तेलुगु साहित्य के सर्वप्रथम रामकाव्य के कवि तिक्कन थे। इन्होंने "निर्वचनोत्तर रामायण" की रचना की थी जिसमें वाल्मीकि रामायण के उत्तर कांड की कथा है। उन्होंने इसके अलावा "आंध्र महाभारत" की विराट पर्व से लेकर अंत तक रचना की। केतन्न कृत "दशकुमार चरित्र" तिक्कन्न को समर्पित था जिसमें केतन्न ने तिक्कन्न के वंश और जीवन पर काफी प्रकाश डाला है। उसके अनुसार ये नियोगी ब्राह्मण थे और कोम्मनामात्य और अन्नमांबा के पुत्र थे। ये गौतम गोत्र और आपस्तंब सूत्र के थे। इनके पिता व पितामह गुंटूर मंडल के शासक या उच्च राजकर्मचारी थे और नेल्लूर के चोड राजाओं की सेवा में रहा करते थे। तिक्कन्न भी उसी वंश के राजा मनुमसिद्धि के मंत्री थे और बड़ी दक्षता के साथ राजकाज चलाते थे। "सिद्धेश्वर चरित्र" नामक एक ग्रंथ के आधार पर, जिसकी रचना ई. १४०० के आसपास हुई, यह कहा जाता है कि एक बार इनके राजा मनुमसिद्धि के ज्ञाती अक्कन्न और बय्यन्न ने इनका राज्य छीन लिया। तब मंत्री तिक्कन्न उस समय के ओरुगल के काकतीय चक्रवती गणिपतिदेव के यहाँ गये और उनकी सहायता पाकर मनुमसिद्धि के ज्ञातियों को हराया और अपने राजा को पुनः राज्य-प्राप्ति करायी।

आन्ध्र देश में ब्राह्मणों की दो प्रधान शाखायें है—वैदीकि और नियोगि। वैदीकि ब्राह्मण, जैसा कि नाम से प्रकट होता है, वेदाध्ययन, यज्ञयागादि वैदिक आचार और कर्मकांड करते हैं और नियोगि राजकाजों में भाग लेकर लौकिक जीवन बिताते हैं। तिक्कन्न और उनके पूर्वज स्वयं नियोगि ब्राह्मण होते हुए भी वेदाध्ययन करते हुए वेदोक्त कर्मकांड करते थे। केतन्न ने अपने "दशकुमार चरित्र" में तिक्कन्न को उदात्त वेद विद्या प्रतिपालक, वेदत्रियात्मक, वेदादि सब विद्याओं के अभ्यास से महिमामय, उदात्तश्रौतस्मार्तकर्मतत्पर, यागविद्याभि-राम, वेदोक्त कर्मव्रती आदि कहा है। तिक्कन्न अपने जीवन के चतुर्थ चरण में "यज्ञ" करके सोमयाजी बन गये और तभी से ये "तिक्कन्न सोमयाजी" कहलाने लगे। ये "दशकुमार चरित्र" में "तिक्कन्न चमूप", "तिक्कदंडाधीश" आदि विशेषणों से सम्बोधित किये गये। इन बातों से यह विदित होता है कि तिक्कन्न

१. श्री रामकृष्ण शास्त्री—आन्ध्र वाङ्मय चरित्र सर्वस्वमु—पृ. ३७४

न केवल पहुँचे हुए राजनीतिज्ञ और वैदिकाचारसंपन्न उत्तम ब्राह्मण थे बल्कि बड़े योद्धा भी थे और सेनापति के पद को भी शोभित करते थे। इस प्रकार का लौकिक और पारलौकिक उत्कृष्टताओं का समन्वयात्मक जीवन बहुत विरले ही देखने में आता है। उस पर सोने में सुगंध जैसे ये महाकवि भी थे। अपनी कवित्व शक्ति के बल पर ये "कविब्रह्म" नाम से आज तक तेलुगु देश में बड़े आदर के साथ स्मरण किये जाते हैं और तेलुगु भाषा के प्रसिद्ध "कवित्रय" में एक रहे। तिक्कन्न के शास्त्र पांडित्य के विषय में "सोमदेव राजीयमु" नामक काव्य में यह कहा गया है कि उन्होंने महाराज गणपति की सभा में बौद्धों को शास्त्रार्थ में हराया जिससे प्रसन्न होकर महाराज ने उन्हें आठ ग्राम पुरस्कार में दिये थे।

यद्यपि ये प्रारंभ में शैव थे तथापि वृद्ध होते-होते इनका आध्यात्मिक दृष्टि-कोण बहुत उदार और विस्तृत हुआ तो हरिहरनाथोपासना के द्वारा इन्होंने शैव और वैष्णव भक्तियों का सुन्दर समन्वय करके तत्कालीन शैव और वैष्णव आंदोलनों को शांत करने का स्तुत्य प्रयत्न किया। सोमयाजी बनने के बाद वृद्धावस्था में लिखे अपने आन्ध्र महाभारत को भगवान हरिहर नाथ को समर्पित किया। पंडितों में इस बात को लेकर बड़ा मतभेद है कि इनके उपास्य हरिहरनाथ का कहीं कोई मंदिर था, अथवा भावात्मक रूप से इन्होंने हरिहरनाथ की उपासना की थी। कहा जाता है कि आज नेल्लूर में पेन्ना नदी के तीर पर जहाँ रंगनाथ का मंदिर है वहाँ तिक्कन के समय में हरिहरनाथ का मदिर था और उसके शिथिल होने के बाद रंगनाथ-मंदिर का निर्माण किया गया। किंतु इसमें सत्य नहीं है।[1] किंवदंती यह भी है कि नेल्लूर के पास पेन्ना नदी दो शाखाओं में बँट गई और शहर के दक्षिण में जो शाखा बहती थी उसके किनारे हरिहरनाथ का मंदिर था जो अब शिथिल हो गया और नदी भी सूख गई। पूर्व गोदावरी जिले के द्राक्षाराम के एक शिलालेख से यह विदित होता है कि "सप्तगोदावरी संगम" के पास हरिहरनाथ का एक मंदिर था।[2] फिरभी हरिहरनाथ तिक्कन्न के कल्पित देव नहीं हैं। वे तो पुराणप्रसिद्ध हैं। हरिहरनाथ पुर या हरिहर मैसूर राज्य में एक नगर है जो पद्मपुराण में एक पवित्र तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध हो गया है। वराह पुराण में भी प्रसिद्ध एक हरिहर क्षेत्र है जो गंगा और गंडकी नदियों के संगम पर है। तिक्कन्न के समय के शैव और वैष्णव धर्मों के झगड़ों

---

१. श्री नंडूरि रामकृष्णमाचार्य—"कवित्रयमु"—तिक्कन्न, पृ. ४५।

२. श्री चागंटि शेषय्या—"आँध्र कवितरंगिणी" भाग २ पृ. १४८।

की दृष्टि से यदि देखा जाय तो दोनों के समन्वय के साधन के लिए इन्होंने हरिहरनाथ की जो उपासना की उसका बड़ा महत्त्व है।

ये मनुमसिद्धि की सभा में "उभयकविमित्र" के नाम से प्रसिद्ध थे जिसका अर्थ यह है कि ये संस्कृत और तेलुगु भाषाओं में समान दक्षता के साथ काव्य रचना कर सकते थे। किंतु तेलुगु के "निर्वचनोत्तर रामायण" और "महाभारत" काव्यों को छोड़ और कोई काव्य नहीं मिलता। यद्यपि इनकी लिखी और भी कृतियाँ बताई जाती हैं ("विजय सेनमु", "कवि सार्वभौम छंदस्" और "कृष्ण शतक")[1] किंतु इनके लिखे दो संस्कृत श्लोक मिलते हैं; एक तो वह जिसके साथ निर्वचनोतर रामायण का प्रारंभ किया गया है और दूसरा वह जो हरिहरनाथ की स्तुति में लिखा गया है। दोनों श्लोक क्रमशः नीचे उद्धृत किए जाते हैं—

१. श्रीरास्तां मनुमक्षितीश्वर भुजास्तंभे जगन्मण्डल
प्रासाद स्थिर भार भाजि दधती स सालभंजीश्रियं
शुण्डालोत्तमगण्डभित्तिषु मदव्यासङ्गवश्यात्मनां
यामुत्तेजयते तरां मधुलिहामानंद सांद्रास्थितिः ॥

२. किमस्थिमालां किमुकौस्तुभं वा
परिष्क्रियायां बहुमन्यसेत्वं
किं कालकूटं किमुवायशोदा
स्तन्यं तवस्वादु वद प्रभो मे ॥

निर्वचनोत्तर रामायण के निर्माण के बारे में ग्रंथ के प्रारम्भ में कहा गया है कि राजा मनुमसिद्धि ने तिक्कन को सभा में बुलाकर उनसे कहा कि "मैं आपको "मामा" कहकर पुकारता हूँ। आप मुझे अपनी भारती कन्या देकर हमारे इस सम्बन्ध को सत्य बनाइये।"[2] (तेलुगु में मामा का अर्थ ससुर है) यह बात तिक्कन्न को पसंद आयी तो उन्होंने निर्वचनोत्तर रामायण की रचना करके उसे मनुमसिद्धि को समर्पित किया। इसका रचनाकाल ई० सन् १२५४ के आस-पास माना जाता है। किंतु निश्चित रूप से कहने के लिए कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता। ग्रंथ निर्माण के कारण के संबंध में अवतरण के १२ वें पद्य का हवाला देकर यह कहा जाता है कि तिक्कन्न ने अपने पितामह मंत्री

---

१. श्री चागंटि शेषय्या—"आँध्र कवि तरंगिणी—भाग २—पृ० १६९।
२. तिक्कन्न—निर्वचनोत्तर रामायण १—३।

भास्कर की रचित पूर्व रामायण के पूरक के रूप में उत्तर रामायण की रचना की थी। उस पद्य में तिक्कन्न ने अपने पितामह को "सार कविताभिराम" मात्र कहा था जिसका अर्थ केवल इतना ही है कि सार युक्त कविता के अभिराम (लक्षणा से मर्मज्ञ या लिखनेवाले) हैं। किंतु तिक्कन्न ने यह स्पष्ट नहीं कहा है कि उन्होंने पूर्व रामायण की रचना की थी। यदि वास्तव में मंत्री भास्कर ने पूर्व रामायण लिखी होती तो तिक्कन्न उसका अवश्य ही उल्लेख करते क्योंकि रामायण ऐसी कोई छोटी-मोटी पुस्तक तो नहीं जिसका उल्लेख किए बिना रहा जा सके। (इस संबंध में भास्कर रामायण के प्रसंग में और भी प्रकाश डाला जायगा।) तिक्कन्न ने स्वयं इसका कारण बताते हुए कहा है—

एत्तरिनैननु धीरो
दात्त नृपोत्तमुडु रामधरणी पति स
हृत्तमु संभाव्य मगुट
नुत्तर रामायणोक्ति युक्तुडनैतिन् ॥

अर्थात् किसी भी समय धीरोदात्त नृपोत्तम राजाराम का जीवन स्पृहणीय और संभाव्य होने के कारण मैं उत्तर रामायण की रचना के लिए प्रस्तुत हुआ। वास्तव में राजाराम की धीरोदात्तता उत्तर रामायण में ही भली भाँति प्रस्फुटित होती है। श्रीपिंगलि लक्ष्मीकांतम् जी ने आँध्र विश्वविद्यालय से प्रकाशित रंग-नाथ रामायण की भूमिका में अपना यह ऊहात्मक मत प्रकट किया है कि रंगनाथ रामायण के पूरक के रूप में तिक्कन्न ने उत्तर रामायण की रचना की होगी। यह भी निराधार है क्योंकि एक तो रंगनाथ रामायण की रचना तिक्कन्न के अनंतर हुई थी जैसाकि आगे दिखाया जायगा और दूसरे यदि तिक्कन्न ने द्विपद छंद में लिखी हुई रंगनाथ रामायण के पूरक के रूप में उत्तर रामायण की रचना की होती तो उसी के अनुरूप द्विपद छंद में अपना काव्य भी लिखते न कि देशी और संस्कृत वृत्तों में। अतः यह स्पष्ट है कि यह जानते हुए भी कि अपने समय के पहले पूर्व रामायण की रचना तेलुगु में नहीं हुई तिक्कन्न ने स्वेच्छा से उत्तर रामायण की रचना की थी; किसी पूर्व रामायण के पूरक के रूप में नहीं।

ई० सन् १२६० के आसपास अपने महाराज मनुमसिद्धि की मृत्यु के बाद तिक्कन्न राजकाजों से विरक्त होकर भगवान के चिंतन में शेष जीवन बिताने लगे। और वृद्ध होने के बाद, आध्यात्मिक दृष्टिकोण का सम्यक् विकास होने के बाद, आँध्र महाभारत की रचना विराट पर्व से लेकर अंत तक की।

रामायण में, कहीं भी इसका उल्लेख नहीं मिलता है कि उनके कवि रेड्डि कुल के थे। अतः यह स्पष्ट होता है कि रंगनाथ रामायण या द्विपद उत्तर रामायण के कवि रेड्डि कुल के नहीं थे।[1] शर्माजी गोन बुद्ध भूपति को इसका कर्ता मानते हैं।[2] श्री शि० रामकृष्ण शास्त्रीजी का कहना है कि गोन वंश पर प्रकाश डालने वाले जो शिला-लेख मिले हैं उनमें उनके कवि होने या कम से कम विद्वान होने का भी उल्लेख नहीं है। यदि गोन वंश के बुद्ध भूपति ही रंगनाथ रामायण के कवि होते तो अवश्य ही शिला-लेख में उसका उल्लेख होता। इसके अलावा परवर्ती काल के किसी कवि ने बुद्ध भूपति का नाम कवि के रूप में नहीं लिया। इस रंगनाथ रामायण को छोड़कर साहित्य में और कहीं इसका नाम नहीं आता। तेलुगु काव्यों के प्रारंभ में पूर्ववर्ती प्रसिद्ध कवियों की स्तुति करने की परिपाटी थी। किंतु किसी भी कवि के द्वारा बुद्ध भूपति का नाम तक नहीं लिया गया है। अतः यह निश्चित होता है कि रायचूर के बुद्ध भूपति रंगनाथ रामायण के कवि नहीं हो सकते।[3]

अब रंगनाथ का पक्ष लेनेवाले श्री शिष्टा रामकृष्ण शास्त्रीजी का कहना है कि रंगनाथ रामायण रंगनाथ नामक कवि के द्वारा लिखी गई है और इसीलिए वह रंगनाथ रामायण के नाम से प्रसिद्ध है। कवि के नाम पर उसकी पुस्तक का नामकरण होना तो साधारण बात है। रंगनाथ रामायण के पंद्रह बीस वर्षों के बाद एक और रामायण की रचना हुई जो भास्कर रामायण के नाम से प्रसिद्ध हुई। तब लोगों ने इन दोनों रामायणों को एक दूसरे से पृथक करने के लिए रंगनाथ रामायण और भास्कर रामायण कहना प्रारंभ किया होगा। ई० चौदहवीं शताब्दी के बाद के कुछ कवियों ने अपने पूर्ववर्ती कवियों की अपने ग्रंथों में प्रशंसा करते हुए रंगनाथ नामक कवि का नामोल्लेख किया था।[4] किंतु तेलुगु साहित्य भर में कवि बुद्धराजु या बुद्ध भूपति या बुद्धारेड्डी का, रंगनाथ रामायण और द्विपद उत्तर रामायण को छोड़कर, कहीं नामोल्लेख नहीं हुआ। पर्याप्त खोज के बाद यह पता चला कि पालकुरिकि सोमनाथ के

---

१. श्री म० सोमशेखर शर्मा "रंगनाथ रामायण की पीठिका—रायलु एंड कंपनी पृ. ६

२. श्री म० सोमशेखर शर्मा, रंगनाथ रामायण की पीठिका पृ. ८

३. श्री शि. रामकृष्ण शास्त्री कृत "आन्ध्र वाङ्मय सर्वस्वमु ८ वाँ परिच्छेद

४. अनंतामात्य, भोजराजीयमु
कोरविगोपराजु, सिंहासनद्वात्रिंशिका

समय जो ई० तेरहवीं शताब्दी के थे एक चक्रपाणि रंगनाथ नामक कवि हुए थे जो पहले वैष्णव थे और बाद में सोमनाथ से धार्मिक चर्चा कर हार गये और शैव बन गये। शैव बनने के बाद उन्होंने अनेक शैव धर्म संबंधी पुस्तकें लिखी थीं। इन परिस्थितियों में श्री शास्त्रीजी ने यह निष्कर्ष निकाला है कि उसी चक्रपाणि रंगनाथ ने शैव बनने के पहले द्विपद छंद में रामायण की रचना की होगी जो बाद में उसी कवि के नाम पर रंगनाथ रामायण के नाम से प्रसिद्ध हुई है। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि रंगनाथ रामायण के प्रारंभ और कांडांत के गद्यों में बुद्धभूपति का नाम क्यों आया है? उसका कारण यही बताया जाता है कि रंगनाथ से रामायण की रचना कराकर उसे पूर्ण रूप से धन से संतुष्ट कर बुद्धराजु ने अपने नाम से उसे लिखवाया होगा। रंगनाथ रामायण की कथा के प्रारंभ के पहले भूमिका में बुद्धभूपति को "कवि सार्वभौम" कहा गया है। यह उपाधि कवि की पूर्व कृतियों की श्रेष्ठता के आधार पर ही दी जा सकती है। किंतु रामायण के पूर्व बुद्धभूपति प्रणीत कोई काव्य ग्रंथ या उसका उल्लेख तक नहीं मिलता। ऐसा विदित होता है कि बुद्धभूपति को खुश करने के लिए रंगनाथ ने ही "कवि सार्वभौम" लिख दिया होगा। इन सबके अतिरिक्त एक और पुष्ट प्रमाण है जिसमें स्पष्ट कहा गया है कि रंगनाथ ने द्विपद रामायण लिखी है। सन् १७०६-३२ के बीच में श्यामराय नामक कवि वर्तमान थे जिन्होंने गद्य में वाल्मीकि रामायण का अनुवाद किया। उन्होंने अपनी कृति के प्रारंभ में कृतिपति को संबोधित करते हुए कहा है कि आपने श्रीमद्रामायण गद्य में लिखने की मुझे आज्ञा दी है। आप कृतार्थ हैं। पहले वाल्मीकि रामायण की पद्य काव्य के रूप में कवि भास्कर ने रचना करायी और कवि रंगनाथ ने द्विपद काव्य के रूप में उसकी रचना की। अब तक किसी ने गद्य काव्य के रूप में नहीं लिखा।[1] अतः इन सबके समाहार के रूप में हमारे मत में भी रंगनाथ को ही रंगनाथ रामायण का कवि मानना उचित होगा। रचना-काल के संबंध में श्री रामकृष्ण शास्त्री जी का मत (सन् १३००-१३१०) ठीक जान पड़ता है। यद्यपि इसमें भी कई मतभेद हैं। श्री गिडुगु सीतापति जी इसे निर्वचनोत्तर रामायण के पूर्व की रचना मानते हैं (ई० १२४०)।[2] डा०

---

१. श्यामराय कवि—रामायण—वचन काव्य (आंध्र साहित्य परिषद्—पुस्तकालय—हस्तलिखित प्रति १६८।

२. श्री गिडुगु सीतापति—तेलुगु भाषा और साहित्य—रजत जयंती अंक—द. भा. हि. प्रचार सभा—आन्ध्र, भाग २—पृ. ७।
पिंगलि लक्ष्मीकांतम्—रं. रा. की पीठिका—आँ वि. पृ. ६।

कामिल बुल्के ने अपने ग्रंथ "राम कथा" में लिखा है 'क "यह रंगनाथ रामायण के नाम से भी प्रसिद्ध है क्योंकि बुद्धराजु ने अपनी रचना रंगनाथ नामक सामंत को समर्पित की थी।" (पृ० २११) यह कथन भ्रमपूर्ण है क्योंकि वास्तविक बात इसके ठीक उल्टी है जैसा कि ऊपर दिखाया गया है।

रंगनाथ की जीवनी :—

कवि रंगनाथ की जीवनी के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं। इस कवि की "शिव भक्ति दीपिका" नामक एक छोटा-सा काव्य मिला है जिसके आधार पर यह सिद्ध किया गया है कि इनके पिता रंगन मंत्री और माता प्रोलांबा रही होगी।[1] किंतु श्री चागंटि शेषय्या जी इसे नहीं मानते क्योंकि इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया।[2] वे "शिवभक्ति दीपिका" के रंगनाथ को रामायण के रंगनाथ से भिन्न मानते हैं।[3]

रंगनाथ प्रारंभ में वैष्णव थे। अपने समय के प्रसिद्ध वीरशैव कवि पालकुरिकि सोमनाथ के साथ वाद-विवाद करके वैष्णव धर्म की श्रेष्ठता स्थापित करने के उद्देश्य से ये ओरुगल गये थे। सोमनाथ का भवों को (शैवेतर) न देखने का नियम था। इसलिये उनके पुत्र चतुर्मुख बसवेश्वर ने रंगनाथ के साथ वाद-विवाद करके उन्हें हरा दिया। यह भी एक किंवदंती है कि सोमनाथ ने परदे की आड़ लेकर रंगनाथ से वाद-विवाद किया था। वाद-विवाद में हार जाने के बाद श्री शैलम के मार्ग से लौटते हुए रंगनाथ ने वहाँ के भगवान मल्लिकार्जुन के दर्शन नहीं किये। इसलिए ये अंधे बन गये। तब पश्चात्ताप करते हुए महोबल गये जहाँ वहाँ के भगवान नृसिंह ने इनको स्वप्न में दर्शन देकर कहा कि वैष्णव होते हुए भी शिव का निरादर नहीं करना चाहिये। तब फिर रंगनाथ श्रीशैलम गये और मल्लिकार्जुन की स्तुति करके एक नेत्र पाया। उससे प्रसन्न होकर सीधे सोमनाथ के यहाँ जाकर इन्होंने प्रार्थना की तो उनकी महिमा से दूसरा नेत्र भी प्राप्त हुआ। इस कहानी में कहाँ तक सत्य है, यह नहीं कहा जा सकता। सोमनाथ की महिमा से दृष्टि पाकर रंगनाथ ने शैव मत ग्रहण कर लिया और कई शैव धर्म संबंधी ग्रंथों की रचना की थी। इन्होंने कन्नड़ भाषा में "वीरभद्र विजय" और "शरभ लीला" नामक दो ग्रंथों की रचना की। इससे यह निष्कर्ष निकलता

---

१. श्री शि. रामकृष्ण शास्त्री—आंध्र वाङ्मय चरित्र सर्वस्वमु—पृ. ५५७।
२. श्री चागंटि शेषय्या—आंध्र कवि तरंगिणी—भाग ३—पृ. १५५।
३. श्री चागंटि शेषय्या—"आंध्र कवि तरंगिणी"—भाग ३—पृ. १५६।

है कि रामायण की रचना इन्होंने शैव बनने के पहले ही की होगी। इनके जीवन की अन्य घटनाओं और मृत्यु आदि के संबंध में कुछ विदित नहीं है।[1]

३. भास्कर और अन्य कवि—

तेलुगु साहित्य में भास्कर रामायण का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। रंगनाथ रामायण ने जिस प्रकार साधारण जनता में विशेष प्रचार पाकर महत्व-पूर्ण स्थान प्राप्त किया है उसी प्रकार भास्कर रामायण ने विद्वन्मंडली में बड़ा मान पाया। इतना महत्त्वपूर्ण ग्रंथ होते हुए भी भास्कर रामायण के कर्तृत्व की बात बहुत ही विवादास्पद है। कांडों के अंत में जो पुष्पिकाएँ मिलती हैं उनसे निश्चित रूप से विदित होता है कि इसकी रचना भास्कर, मल्लिकार्जुन भट्ट, कुमार रुद्रदेव और अय्यलार्य नामक चार कवियों के द्वारा हुई थी। अंतिम तीन कवियों के विषय में कोई मतभेद नहीं है। अब सारी समस्या केवल भास्कर को लेकर है। कुछ विद्वानों का कहना है कि भास्कर, मंत्री—भास्कर थे जो "निर्वचनोत्तर रामायण" के कवि तिक्कन्न के पितामह थे। "आँध्र कवुल चरित्रमु" के लेखक स्व० वीरेशलिंगम पंतुलुजी ने अपने ग्रन्थ के प्रथम संस्करण में मंत्री भास्कर को भास्कर रामायण का प्रधान कवि माना था।[2] किंतु बाद में अन्य आलोचकों के तर्कों से सहमत होकर उन्होंने दूसरे संस्करण में हुलक्कि भास्कर को माना था।[3] "आँध्र कवि तरंगिणी" के लेखक श्री चागंटि शेषय्या जी ने युद्ध कांड को छोड़कर सारी भास्कर रामायण में मंत्री भास्कर की क़लम देखी और कहा कि भास्कर रामायण की रचना मंत्री भास्कर ने की थी; किंतु जब वह नष्ट हो गई तो उसके बचे हुए अंशों को पूरा कर हुलक्कि भास्कर और उपरोक्त अन्य विद्वानों ने अपने अपने नाम से उसे प्रसिद्ध किया।[4] इस प्रकार श्री शेषय्याजी भास्कर रामायण के कवियों की संख्या पाँच ठहराते हैं। मंत्री भास्कर को भास्कर रामायण का प्रधान कवि माननेवालों का प्रधान तर्क यह है कि वह तिक्कन्ना के पितामह थे और चूँकि उन्होंने पूर्व रामायण की रचना की इसलिए उसे पूरा करने के विचार से तिक्कन्न ने उत्तर रामायण लिखी। इतना ही नहीं तिक्कन्न ने अपनी निर्वचनोत्तर रामायण के अवतरण में अपने

---

१. श्री शि० रामकृष्ण शास्त्री—आँध्र वाङ्मय चरित्र सर्वस्वमु—आठवाँ अध्याय।

२. श्री कं. वीरेशलिंगम पंतुलु—आँध्र कवुल चरित्र।

३. चागंटि शेषय्या—आँध्र कवितरंगिणी—भाग २—१२७।

४. ,, ,, ,, —१२८।

पितामह का जिन शब्दों में स्मरण किया उनसे यही ध्वनित होता है कि मंत्री भास्कर ने रामायण लिखी होगी। अब इन तर्कों पर विचार कर लिया जाय। तिक्कन्ना का कथन यह है :

> सार कविताभिरामु गुंटूरि विभुनि मंत्रिभास्करु मत्पितामहुनि दलचि
> यैन मन्ननमेयि लोकमादरिंचु वेर नाकृति गुणमुलु वेयुनेल"

अर्थात्, मेरी योग्यता के लिए नहीं तो न सही, कम-से-कम सारयुक्त कविता के अभिराम (कवि हृदय रखने वाले या कविता लिखने वाले) गुंटूर के प्रभु मेरे पितामह, मंत्री भास्कर के लिए संसार मेरे काव्य का आदर करेगा। इसके अन्य गुणों की आवश्यकता नहीं। इसमें मंत्री भास्कर के लिए प्रयुक्त विशेषण "सार कविताभिराम" से यह ध्वनि नहीं निकलती कि उन्होंने रामायण लिखी होगी। यदि वस्तुतः मंत्री भास्कर ने रामायण जैसे महान् काव्य का प्रणयन किया होता तो तिक्कन्न उसका स्पष्ट उल्लेख किये बिना नहीं रहते क्योंकि रामायण का प्रणयन किसी भी कवि के लिए जीवन का सबसे बड़ा स्पृहणीय कार्य है। इसके अलावा मंत्री भास्कर का बाद के तेलुगु साहित्य में कहीं नामोल्लेख नहीं मिलता। मंत्री भास्कर ने पूर्व रामायण की और तिक्कन्न ने उसके पूरक के रूप में उत्तर रामायण की रचना की होती तो निर्वचनोत्तर रामायण में तिक्कन्न के पूर्व रामायण की संक्षिप्त कथा लिखने की आवश्यकता नहीं होती। इसके अतिरिक्त यह भी देखने की बात है कि तिक्कन्न ने यदि अपने पितामह की लिखी रामायण को पूरा करने के विचार से उत्तर रामायण लिखी होती तो उसे निर्वचन के रूप में (गद्य रहित उत्तर रामायण के रूप में) न लिखकर भास्कर रामायण के समान चंपू के रूप में लिखते। इन तर्कों के आधार पर यह निश्चित होता है कि भास्कर रामायण के कवि तिक्कन्न के पितामह भास्कर नहीं हो सकते। इसी मत का प्रतिपादन कई समालोचकों के द्वारा हुआ है।[1]

---

१. श्री मेडेपल्लि वेंकटरमणाचार्य जी—भास्कर रामायण की भूमिका, वा० प्रेस से प्रकाशित।

श्री शिष्टा रामकृष्ण शास्त्री—आँध्र वाङ्मय चरित्र सर्वस्वमु—पृ. ५८५।

श्री दि. वेंकटरावधानी—"तिक्कन्ना की निर्वचनोत्तर रामायण" शीर्षक लेख आँध्र साहित्य परिषद् पत्रिका।

श्री तं. तेवप्पेरुमाल्लय्य—भास्कर रामायण की भूमिका—आनंद प्रेस से प्रकाशित।

जब यह निश्चित हो गया है कि मंत्री भास्कर भास्कर रामायण के प्रधान कवि नहीं थे तो यह पद हुलक्कि भास्कर को ही मिलता है क्योंकि इन्हीं दोनों को लेकर मतभेद खड़ा हुआ था। हुलक्कि भास्कर का अन्य कवियों ने उल्लेख किया है। अय्यलार्य युद्धकांड के अंत में कहा है—

"महाकवि हुलक्कि भास्कर युद्धकांड का जो शेषांश पूरा करना चाहते थे उसे अप्पलार्य के पुत्र अय्यलार्य ने लिखा कि आर्य लोग (पूज्य और गौरवनीय विद्वान) पसंद करें और शाश्वत लक्ष्मी की प्राप्ति हो।" लगभग ई० १४०० के आसपास लिखे गये "क्रीड़ाभिरामम्" में हुलक्कि भास्कर का स्पष्ट उल्लेख है—"नन्नय, तिक्कन्न, हुलक्कि भास्कर, अमरेश्वर आदि सत्कवि जब जय मानते हैं तो रावि‍पाटि तिप्पन्न जैसे कवि का दोष निकालना उचित नहीं।" इसमें हुलक्कि भास्कर को नन्नय और तिक्कन्न के समान महाकवि माना गया है। और भी उसी समय के आसपास हुये कोरवि गोपराजु नामक कवि ने भी अपने "सिंहासन द्वात्रिंशति" नामक काव्य में हुलक्कि भास्कर का नाम लिया है। साहित्य-क्षेत्र में प्रचलित इन सभी वादों का समाहार करते हुए अंतरंग और बहिरंग प्रमाणों के आधार पर श्री रामकृष्ण शास्त्रीजी ने अपने "आँध्र वाङ्मय चरित्र सर्वस्व" में यह निष्कर्ष निकाला है कि हुलक्कि भास्कर के पुत्र मल्लिकार्जुन भट्ट ने बाल, किष्किंधा, और सुन्दर कांडों की, उसके शिष्य कुमार रुद्रदेव ने अयोध्याकांड की, स्वयं भास्कर ने अरण्य कांड और युद्ध कांड के आधे भाग की और उसके मित्र अय्यलार्य ने युद्ध कांड के शेषांश की रचना की थी और यही मत अब तक प्राप्त प्रमाणों के आधार पर ठीक विदित होता है।[1] इस रामायण का कुछ अंश शिव को और कुछ "साहिणिमार" नामक ओरुगल के प्रतापरुद्र द्वितीय के अश्वसेनाध्यक्ष को अर्पित किया गया था। इसका कारण यह बताया जाता है कि भास्कर रामायण में कई स्थानों पर पाठांतर मिलते हैं जो एरप्रिगड और कोरवि सत्यनारायण की लिखी किंतु अब अप्राप्त रामायणों के अंश हैं और पौराणिक लोगों के द्वारा काव्य-लोभ के कारण भास्कर रामायण में मिला दिये होंगे। इन पाठांतरों में आश्वासों के आदि और अंत के पद्य भी सम्मिलित हैं। इसलिए कुछ कांड शिव को और कुछ साहिणिमार को समर्पित दिखाई पड़ते हैं। यह दूसरी संभावना भी दिखाई जाती है कि हुलक्कि भास्कर ने स्वयं साहिणिमार को अपना अंश समर्पित किया होगा और अन्य कवियों ने अपना अपना अंश शिव को।[2]

---

१. श्री रामकृष्ण शास्त्री—आँध्र वाङ्मय चरित्र सर्वस्वमु—पृ. ५९८-६०० ।
२. वही,

अब प्रश्न यह उठता है कि इसका नाम भास्कर रामायण क्यों पड़ा ? ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि भास्कर रामायण का अधिकांश भाग (६ सर्ग—बाल, किष्किधा और सुंदर कांड) भास्कर के पुत्र मल्लिकार्जुन भट्ट का लिखा हुआ है और शेष का अधिकांश भाग (अरण्य कांड और युद्ध कांड का पूर्व भाग) हुलक्कि भास्कर ने लिखा। एक—अयोध्याकांड—कुमार रुद्रदेव के द्वारा और युद्ध कांड का उत्तर भाग अय्यलार्य के द्वारा लिखा गया। अतः अधिकांश ग्रंथ के रचयिता होने के कारण मल्लिकार्जुन के नाम से ही इसकी प्रसिद्धि होनी चाहिए थी; किंतु ऐसा नहीं हुआ। साधारणतः ग्रंथ कवियों के नाम से प्रसिद्ध होते हैं यद्यपि कवि स्वयं उनको अपना नाम नहीं देते हैं। भास्कर रामायण की रचना ज्ञान वृद्ध और वयोवृद्ध हुलक्कि भास्कर के तत्वावधान में उसी की प्रेरणा से हुई थी। भास्कर ने उसे केवल श्रीमद्रामायण ही कहा था। उसके कुछ वर्ष पहले अर्थात् ई० १३०० और १३१० के बीच में, जैसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है, रंगनाथ के द्वारा द्विपद छंद में एक रामायण की रचना की जा चुकी थी। न तो रंगनाथ ने और न भास्कर ने अपनी रचना को अपना नाम दिया था। इन दोनों रामायणों को एक दूसरे से पृथक करने के लिए लोगों ने इन्हें उन कवियों के नाम से प्रसिद्ध किया होगा, जैसा कि साधारणतः होता है। मल्लिकार्जुन भट्ट और कुमार रुद्रदेव भास्कर के क्रमशः पुत्र और शिष्य थे। इसलिए उन्होंने पितृ और गुरु गौरव के कारण भास्कर के नाम से ही प्रसिद्ध होने दिया होगा जो बहुत स्वाभाविक और समीचीन है। अब यह भी प्रश्न उठता है कि भास्कर ने स्वयं उत्कृष्ट कवि होते हुए भी रामायण की रचना में अन्य कवियों की सहायता क्यों ली थी ? इसके उत्तर के लिए अनुमान के सिवाय कोई ठोस व अकाट्य प्रमाण नहीं मिलता। ग्रंथ के प्रारंभ में कोई अवतरण न होने के कारण इस पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। यह अनुमान लगाया जाता है कि जब भास्कर को रामायण लिखने की इच्छा हुई थी तब तक वे बहुत वृद्ध हो गये होंगे, किंतु अपने जीवन काल में उसे पूरा देखने की अभिलाषा से अपने पुत्र मल्लिकार्जुन और शिष्य कुमार रुद्रदेव की सहायता ली होगी और तीनों ने एक साथ प्रथम तीन कांडों की रचना प्रारंभ की होगी। बालकांड मल्लिकार्जुन को, अयोध्याकांड कुमार रुद्रदेव को देकर अशुभ माने जाने के कारण अरण्यकांड भास्कर ने स्वयं लिया होगा। इन तीनों की रचना पूरी होने के बाद उसी क्रम से किष्किंधा, सुन्दर और युद्धकांडों की रचना का आयोजन किया होगा। और प्रथम तीन कांडों की रचना पूरी होने के बाद वैसा ही किया होगा। लेकिन

किसी कारण से अयोध्याकांड पूरा करके कुमार रुद्रदेव ने रचना का कार्य छोड़ दिया होगा और अतः मल्लिकार्जुन ने किष्किधाकांड की रचना पूरी करने के बाद सुंदर कांड प्रारंभ किया होगा क्योंकि तब तक भास्कर युद्ध कांड बहुत बड़ा होने के कारण पूरा न कर सके होंगे। युद्ध कांड में ११३४ पद्य और गद्य तक आते आते वे अस्वस्थ हो गये होंगे अतः शीघ्रातिशीघ्र उसे पूरा देखने की इच्छा से अपने मित्र के भतीजे अय्यलार्य को बुलाकर युद्धकांड को पूरा कराया होगा जिसका प्रमाण अय्यलार्य यह कहकर देते हैं कि युद्ध कांड का जो शेषांश हुलक्कि भास्कर पूरा करना चाहते थे उसे मैंने पूरा किया।[1]

कवियों का परिचय :—

हुलक्कि भास्कर और अन्य कवियों की जीवनियों के विषय में अधिक ज्ञात नहीं है। "सोमदेव राजीयमु" नामक ग्रंथ के आधार पर भास्कर ओरुगल के काकतीय राजा द्वितीय प्रतापरुद्र की सभा में रहते थे। उससे यह भी विदित होता है कि उनके यहाँ साहिणिमार अश्वसेनाध्यक्ष थे। अश्वसेनाध्यक्ष होते हुये भी साहिणिमार एक छोटे मंडल के राजा भी थे। उसी साहिणिमार को हुलक्कि भास्कर ने अपनी रामायण समर्पित की। अतः भास्कर का समय भी वही हो सकता है और उसने ई० १३३० के आसपास रामायण की रचना करके साहिणिमार को समर्पित किया[2] भास्कर वैदीकि ब्राह्मण थे। ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने रामायण के पहले "दशगति" नामक संस्कृत ग्रन्थ का अनुवाद करके साहिणिमार को समर्पित किया था। किंतु वह ग्रन्थ अब उपलब्ध नहीं है।[3]

भास्कर के वंश का नाम पहले हुलक्कि नहीं था; "मंगल-पल्ली" था। कहा जाता है कि भास्कर के आश्रयदाता राजा ने एक दिन रत्नखचित सोने के थाले में कर्पूरयुक्त तांबूल और कुछ आभरण रखकर अपनी सभा के कवियों से कहा कि जो कवि सबसे अधिक सरस कविता बनायेंगे उनको यह तांबूल दिया जायगा। इस पर भास्कर ने जो कविता बनायी वह सबकी कविता से अधिक सरस होने के कारण तांबूल उसी को मिला और उसी आधार पर आगे से वे और उनके वंशज "हुलक्कि" के वंश—नाम से प्रसिद्ध हुये। कन्नड़ भाषा में

---

१. श्री रामकृष्ण शास्त्री—आँध्र वाङ्मय चरित्र सर्वस्व—पृ० ५८९-५९०।
२. ,, ,, ६२७।
३. श्री चागंटि शेषय्या—आँध्र कवि तरंगिणी—भाग ३ पृ. २७०।

"हुलक्कि" का अर्थ तांबूल होता है।[1] ये अपने समय के बड़े पंडित कवि थे। जिसका प्रमाण अन्य कवियों के उनके गौरवपूर्ण नामोल्लेख में मिलता है। जन-श्रुति के अलावा इसके लिये कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है।

ऊपर बताया गया है कि भास्कर रामायण के दूसरे कवि मल्लिकार्जुन भट्ट थे। वे हुलक्कि भास्कर के पुत्र थे और शिव भक्त थे। उन्होंने अपने रचित कांडों को भगवान शिव को समर्पित किया था।

तीसरे कवि कुमार रुद्रदेव ग्रन्थ के कृतिपति साहिणिमार के पुत्र और हुलक्कि भास्कर के शिष्य थे। भास्कर के आदेशानुसार अयोध्याकांड की रचना की थी।

चौथे कवि अय्यलार्य के विषय में इतना ही विदित है कि वे भास्कर के मित्र शाकल्यमल्ल के भतीजे थे और भास्कर के अनुरोध पर युद्धकांड के उत्तर भाग की रचना की थी। इसके अतिरिक्त भास्कर रामायण के कवियों के जीवन के संबंध में विशेष कुछ अब तक ज्ञात नहीं हो सका है।

. एर्रन्न:—

कालक्रम की दृष्टि से तेलुगु के रामसाहित्य पर विचार करते समय भास्कर रामायण के कवियों के बाद एर्रन्न का नाम स्मर्तव्य है यद्यपि इनकी लिखी रामायण अब अप्राप्य है। इनको "एर्राप्रगड" भी कहते हैं। इससे विदित होता है कि ये नियोगी ब्राह्मण थे क्योंकि "प्रगड़" नाम नियोगियों का ही होता है। ये श्रीवत्सगोत्र और आपस्तंब सूत्र के थे। इनके पिता का नाम सूरन्न और माता का पोतांबा था। इन्होंने शंकर स्वामी नामक गुरु से विद्या प्राप्त की। ये पहुँचे हुए शिव-भक्त होने के कारण शंभुदास के नाम से प्रसिद्ध हुए। कवित्वशक्ति के आधार पर ये "प्रबंध परमेश्वर" की उपाधि से भी भूषित थे।[2]

ई० सन् १३२८ तक आँध्र देश मुसलमानों के शासन से मुक्त हो चुका था जब मुहम्मद-बीन-तुगलक दिल्ली का बादशाह था। द्वितीय प्रतापरुद्र के बाद काकतीयों का साम्राज्य नष्ट हो गया तो अनेक देश भक्त वीरों ने मुसल-मानों का वीरता के साथ सामना करके उनको हराया और छोटे-छोटे राज्यों का निर्माण कर लिया। उन वीरों में "प्रोलय वेमारेड्डी" और उनके छोटे भाई

---

१. श्री तेवप्पेरुमाल्लय्य—भास्कर—रामायण की भूमिका—आनंद प्रेस से प्रका-शित।

२. श्री शि. रामकृष्ण शास्त्री, आँध्र वाङमय चरित्र सर्वस्व पृ. ६५४

"मल्ला रेड्डी" प्रसिद्ध थे जिन्होंने मुसलमानों से विध्वस्त मंदिरों का पुर्ननिर्माण कराकर प्राचीन हिन्दू संस्कृति और साहित्य की पुन:प्रतिष्ठा की थी।[१] इन्होंने गुंटूर मंडल में अपना राज्य स्थापित किया। वेमारेड्डी ने ई० सन् १३२४-१३५३ तक राज्य किया और एर्रन्न ने अपनी रामायण और हरिवंश उन्हीं को समर्पित किया। अत: एर्रन्न उसी समय वर्तमान रहे थे।[२]

एर्रन्न पहले वेमारेड्डी के छोटे भाई मल्लारेड्डी के यहाँ रहते थे जो राज-प्रतिनिधि होकर गुड्लूरु और चदलुवाड़ प्रांतों का शासन करते थे। एर्रन्न के लिखे "हरिवंश" काव्य की पीठिका में कहा गया है कि मल्लारेड्डी ने एर्रन्न को वेमारेड्डी की सभा में प्रतिष्ठित किया और तब से लेकर एर्रन्न को राजाश्रय मिल गया। इनके निवास-स्थानों के विषय में श्री नंडूरि कृष्णमाचार्य ने अपने "कवित्रय" में लिखा है कि "आँध्र महाभारत" की रचना के समय एर्रन्न गुड्लूरु में थे जो चदलुवाड़ के समीप है। यहीं मल्लारेड्डी और एर्रन्न में मित्रता हुई। बाद में उन्होंने चदलुवाड़ जाकर धन संपत्ति प्राप्त कर ली और राजधानी अद्दंकि पहुँचकर वेमारेड्डी का आश्रय प्राप्त किया और आजीवन वहीं रहे।[३] वहाँ रहकर उन्होंने क्रमश: रामायण और हरिवंश लिखा और वेमारेड्डी को समर्पित किया और अंत में उनके अनुरोध पर नृसिंह पुराण लिखकर अहोबल के भगवान नृसिंह को समर्पित किया।

ये बड़े उदार कवि थे। इनकी उदारता का परिचय केवल इसी बात से मिलता है कि इन्होंने महाभारत जैसे उत्कृष्ट ग्रंथ के अरण्यपर्व के लगभग १६०० गद्य-पद्य लिखकर भी उसकी पुष्पिका में नन्नय का ही कवि के रूप में नाम दिया और उन्हीं के आश्रयदाता राजराज नरेंद्र को समर्पित किया। जैसाकि पहले कहा गया है, उनकी लिखी रामायण अब अप्राप्य है। किंतु श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्रीजी ने कुछ पद्य "भारती" में प्रकाशित किए जो उनके अनुसार एर्रन्न की रामायण के थे। यही नहीं "सर्व लक्षण सार संग्रह" नामक लक्षण ग्रंथ में और कुछ पद्य इनकी रामायण के उद्धृत किए गये। उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि एर्रन्न ने वाल्मीकि के अनुसार विस्तार से रामायण लिखी होगी। इन्होंने महाभारत के जिस भाग की रचना की उसमें रामोख्यान आता है जो एक छोटे काव्य के रूप में अलग रखा जा सकता है। उसी के

१. श्री नं० रामकृष्णाचार्य, "कवित्रयमु", एर्रन्न पृ. ८
२. श्री शि. रामकृष्ण शास्त्री, आँध्र वाङमय चरित्र सर्वस्व पृ. ६५५
३. श्री नं० रामकृष्णाचार्य, कवित्रयमु, एर्रन्न पृ. १३

आधार पर प्रस्तुत प्रबंध में इनको स्थान दिया गया है। यथा-स्थान उस पर विचार किया जायगा।

५. कोरवि सत्यनारायणः—

ये भी नियोगी ब्राह्मण थे। हरितस गोत्र और आपस्तंब सूत्र के थे। इनके पोते श्री कोरवि गोपराजु ने अपने "सिंहासन द्वात्रिंशिति" नामक काव्य में लिखा है कि उन्होंने रामायण लिखी और ये आँध्र कविता पितामह कहलाये। किंतु एर्रन्न की रामायण की भाँति यह भी अब उपलब्ध नहीं है। ये ई० सन् १३८० के आसपास वर्तमान थे।[१] इनके पूर्वज अमात्य पदों पर रहे थे। इनके संबंध में इससे अधिक ज्ञात नहीं हो सका है।

६ आतुकूरि मोल्लाः—

ये तेलुगु साहित्य की प्रसिद्ध कवयित्री थीं जिन्होंने रामायण काव्य लिखा। यही इनका एकमात्र काव्य है। इनका समय ई० सन् १५२५ के आसपास का था और ये विजयनगर के श्री कृष्णदेवराय के समकालीन थीं।[२] ये जाति की कुम्हारिन थीं और केसन सेट्टि की पुत्री थीं। बचपन में ही ये विधवा हो गई थीं। नेल्लूर मंडल के आत्मकूरु नामक ग्राम की निवासिनी थीं। इनकी जीवनी के बारे में बहुत-सी दंत-कथाएँ कही जाती हैं। कहा जाता है कि स्त्री होने के कारण इनकी हँसी उड़ाते हुए कृष्णदेवराय के अष्ट दिग्गज कवियों में एक तेनालि रामकृष्ण ने इनको अपने हास्य प्रसंगों का शिकार बनाया। किंतु यह नहीं कहा जा सकता कि इसमें कहाँ तक सचाई है।

इनके पिता केसन सेट्टि बड़े शिव भक्त थे। ये गोपवरम् के "श्रीकंठ मल्लेश्वर" की भक्ति करती थीं और उन्हीं की कृपा से इन्हें काव्य रचना की शक्ति प्राप्त हुई थी यद्यपि ये स्वयं पढ़ी लिखी नहीं थी। पर्याप्त प्रमाणों के अभाव के कारण इनकी जीवनी के बारे में अब तक इससे अधिक ज्ञात नहीं हो सका है।

७. अय्यलराजु रामभद्र कवि—

ई. सन् सोलहवीं शताब्दी में और उसके बाद अनेक कवि हुए जिन्होंने विभिन्न साहित्यांगों में राम-कथा पूरी या आंशिक लिखी। रामभद्र कवि ने "रामाभ्युदय" नामक प्रबंध काव्य लिखा। ये नियोगी ब्राह्मण थे और अक्काचार्य

---

१. श्री चा. शेषय्या, आँध्र कवि तरंगिणी भाग ४ पृ. १५१-१५२

२. श्रीमती ऊ. लक्ष्मीकांतम्मा, "आँध्र कवयित्रुलु"

के पुत्र थे। इनका वासस्थान कड़पा मंडल का ओंटिमेट्ट ग्राम था। परवस्तु मुम्मडि वरदाचार्य के यहाँ इन्होंने विद्याध्ययन किया ये वैष्णव धर्म के अनुयायी थे। इनकी जन्मतिथि का पता नहीं चलता, किंतु यह मानाजाता है कि ई. सन् १५३० के आसपास इनका रचनाकाल था। ये विजयनगर के प्रसिद्ध विद्वत्कवि और सम्राट् श्रीकृष्णदेवराय के "अष्ट दिग्गज" कवियों में से थे। किंतु इनका अधिकांश जीवन कृष्णदेवराय के बाद ही बीता। कृष्णदेवराय की मृत्यु के बाद ये इधर-उधर भटककर अंत में उनके जामाता रामराजु के भानजे गोब्बूरि नरसराजु के यहाँ रहे और अपना "रामाभ्युदय" उन्हीं को समर्पित किया। इसके अलावा इन्होंने "सकल कथासार संग्रह" नामक ग्रंथ लिखा।

ये बहुत गरीब थे। कृष्णदेवराय की मृत्यु के बाद लगभग ४०,५० वर्ष जीवित रहे और बड़ी वृद्धावस्था में सन् १५८० के आसपास मृत्यु को प्राप्त हुए। इनका रामाभ्युदय तेलुगु साहित्य के राम-साहित्य के प्रधान ग्रंथों में से है।[1]

८. पिंगलि सूरनार्य—

ये तेलुगु साहित्य के श्लेप काव्य परंपरा के प्रवर्तक माने जाते हैं। इन्होंने "राघव पांडवीय" नामक श्लेष काव्य लिखा जिससे श्लेष अलंकार के विविध भेदों के आधार पर रामायण और भारत के दोनों अर्थ निकलते हैं। ये यजु:शाखाध्यायी नियोगी ब्राह्मण थे और गौतम गोत्र तथा आपस्तंब सूत्र के थे। "पिंगलि" इनके वंश का नाम था। इनके पिता अमरनार्य और माता अब्बम्मा थीं। कहा जाता है कि ये विजयनगर के श्रीकृष्णदेवराय के "अष्ट दिग्गज" कवियों में से थे। किंतु स्व० श्री कं० वीरेशलिंगम पंतुलु ने इनको ई. सन् १५६६ में वर्तमान माना था।[2] कृष्णदेवराय की मृत्यु सन् १५३० में हो चुकी थी। अतः उनको "अष्ट दिग्गज" कवियों में एक नहीं माना जा सकता।[3] इन्होंने अपना "राघव पांडवीय" आकुवीडु के राजा पेदवेंकटराय की प्रेरणा से लिखकर उन्हीं के आराध्य देव विरूपाक्ष को समर्पित किया। इन्होंने इसके अतिरिक्त कलापूर्णोदय, प्रभावती प्रद्युम्न नामक प्रसिद्ध प्रबंध काव्यों की रचना की थी।

---

१ श्री कं. वीरेशलिंग—आंध्र कवुल चरित्र के आधार पर।

२. श्री कं. वीरेशलिंगम—आंध्र कवुल चरित्र।

३. श्री श. वेंकटरंग शास्त्री—राघव पांडवीय का उपोद्घात—वाविल्ला प्रकाशन।

९. कंदुकूरि रुद्रकवि—

ये "सुग्रीव विजयमु" नामक यक्ष-गान के कवि थे। इस यक्ष-गान की पीठिका के लेखक श्री वे. प्रभाकर शास्त्री जी ने लिखा है कि ये ई. सन् १५६८ के पहले हुए थे और उसके बाद भी जीवित थे। ये जाति के सोनार थे।[1] ये पेदलिंगनार्य के पुत्र थे और गुरुवराचार्य के शिष्य थे। नेल्लूर मंडल का "कंदुकूर" इनका निवास-स्थान था। ये कृष्णदेवराय के "अष्ट दिग्गज" कवियों में से बताये जाते हैं। किंतु इस नाम के और भी कवि होने के कारण यह संदेह होता है कि ये वे हा रुद्रकवि थे या और कोई कवि जो इसी नाम के हों। इन्होंने "निरंकुशोपाख्यान" नामक एक काव्य लिखा।

१०. रघुनाथ नायक—

ये तंजाऊर के राजा थे और ई. सन् १६००-१६३१ के बीच में राज्य किया। इनके और पुत्र (१६३३-१६७३) विजय राघव नायक ने तेलुगु साहित्य की बड़ी श्रीवृद्धि की। विजयनगर साम्राज्य के पतन के बाद आंध्र के नायक राजाओं ने तमिलनाडु के कुछ भाग पर शासन किया। उनमें रघुनाथ नायक और विजयराघव नायक साहित्यिक दृष्टि से बहुत प्रसिद्ध थे। रघुनाथ नायक ने रामायण लिखी जो "रघुनाथ रामायण" के नाम से प्रसिद्ध है। किंतु वह काव्य अब पूरा-पूरा उपलब्ध नहीं है। उसका प्रथम भाग "आंध्र साहित्य परिषद्" काकिनाडा के द्वारा प्रकाशित हुआ है जिस पर सातवें अध्याय में विचार किया जायगा। विजयराघव नायक ने "रघुनाथाभ्युदय" नामक काव्य लिखा जिससे रघुनाथ नायक के जीवन पर प्रकाश पड़ता है। रघुनाथ नायक बड़े कला प्रेमी ही नहीं बल्कि स्वयं संगीत और नाट्य के विशारद थे। उनके महल में कई नाट्यशालाएँ थीं जहाँ अक्सर यक्ष गानों का मनमोहक ढंग से अभिनय होता था। इन्होंने "जानकी कल्याण" नामक एक और काव्य लिखा किंतु वह उपलब्ध नहीं। इनके पुत्र विजयराघव नायक ने भी "जानकी कल्याण" नामक यक्ष-गान लिखा। वह भी अलभ्य है।[2]

११. रामदास —

इनका असली नाम कंचेर्ले गोपन्न था। इन्होंने यद्यपि राम की जीवनी लेकर कोई काव्य नहीं लिखा किंतु राम को अपना इष्ट देव मानकर उनकी स्तुति में अनेक पद और एक शतक "दाशरथी शतक" नाम से लिखा था।

---

१. श्री वे. प्रभाकर शास्त्री—सुग्रीव विजयमु की पीठिका—पृ. १६।

२. श्री एस. वी. जोगाराव—आंध्र यक्ष गान वाङ्मय चरित्र।

इनका जन्म सन् १६२० में खम्ममेट जिले के नेलकोंडपल्ले नामक गाँव में हुआ था। बचपन से ही इनके हृदय में राम के प्रति असीम भक्ति थी। जब एक बार इनके प्रांत में अकाल पड़ा तब इन्होंने अपनी सारी संपत्ति अकाल-पीड़ितों को दान में दे दी और स्वयं दरिद्र बन गये। इनके दो मामा अक्कन्न और मादन्न उस समय के गोलकोंड के सुल्तान अबुलहसन शाह के मंत्री थे उनकी सिफारिश से इनको सुलतान के राज्य में भद्राचल नामक पर्वतीय ग्राम के तहसीलदार का पद मिल गया। एक बार इनको जंगल में राम-लक्ष्मण और सीता की मूर्तियाँ पड़ी मिलीं तो इन्होंने बड़ी भक्ति के साथ उनके लिए एक भव्य मंदिर बनवाया और मूर्तियों के अलंकार के लिए कुछ आभूषण भी बनवाये जिसके लिए सरकारी धन छ: लाख वरहा (एक वरहा आजकल के लगभग चार रुपये के समान था) खर्च कर दिया। यह समाचार पाकर सुल्तान बड़ा क्रोधित हुआ और उनको कैद कर लिया। जेल में रहकर इन्होंने राम की प्रार्थना करते हुए अनेक पद बनाये। अंत में विष पीकर आत्महत्या करने के लिए भी तैयार हो गये। तब भगवान राम की कृपा हुई और उन्होंने लक्ष्मण के साथ स्वयं जाकर सुल्तान को धन दे दिया जिसपर इनको जेल से छुटकारा मिल गया। बाद में सुल्तान ने पश्चाताप करके फिर इनको भद्राचल का तहसीलदार नियुक्त करके भेजा जहाँ रामदास के नाम से प्रसिद्ध होकर ये आमरण रहे।

१२. कट्टा वरदराजु—

ये ई. सन् १६३० के आसपास वर्तमान थे।[१] इन्होंने द्विपद छंद में रामायण लिखी है। इन्होंने अपने को सूर्यवंशी क्षत्रिय कहा है। ये वैष्णव धर्मावलंबी थे किंतु यह ज्ञात नहीं होता कि ये कहाँ रहते थे। हो सकता है कि ये दत्तमंडल (बल्लारी, कड़प, कर्नूल और अनंतपुरम इन चार जिलों के प्रदेश को दत्तमंडल कहते हैं) या मैसूर राज्य के निवासी हों।[२] इन्होंने अपनी रामायण के प्रारंभ में कहा है कि भगवान वेंकटेश्वर ने इनको स्वप्न में दर्शन देकर द्विपद छंद में रामायण लिखकर अपने को समर्पित करने का आदेश दिया। ये यतिराज योगी के शिष्य थे और भक्ति के साथ रामायण के प्रारम्भ में उनका स्मरण किया। इन्होंने द्विपद रामायण के पहले और दो काव्य लिखे—"परम भागवत चरित्र" तथा "श्रीरंग माहात्म्य"।

---

१. श्री निडदवोलु वेंकटराव—"द्विपद रामायण" की भूमिका।

२. चा. शेषय्या—"आंध्र कवि तरंगिणी" भाग ११, पृ. २३५।

१३. कंकंटि पापराजु—

इन्होंने प्रबंध काव्य की शैली में "उत्तर रामायण" की रचना की थी जो तेलुगु साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। ये नियोगी ब्राह्मण थे और श्रीवत्स गोत्र और आपस्तंब सूत्र के थे। इनके पिता का नाम अप्पय और माता का नरसम्मा था। ये नेल्लूर मंडल के निवासी थे और "प्रलय कावेरी" नगर में राजकर्मचारी थे। इनके समय के बारे में पंडितों में मतभेद है। श्री वीरेशलिंगम जी ने जनश्रुति के आधार पर इनको सन् १७९० के आसपास का बताया।[1] किंतु मद्रास के प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक भंडार की ९ नंबर वाली ताड़पत्रों की प्रति में, जो बहुत शिथिल हो गयी है, अंतिम पृष्ठ पर लिखा हुआ है कि "संवत् "प्रजोत्पत्ति" के पुष्य व. एकादशी शनिवार तक मुनगाल तिरुवेंगलय्य का लिखा हुआ उत्तर रामायण सम्पूर्ण।" इस तिथिकी ही श्री स्वामी कन्नुपिल्लै ने "इंडियन एफिमेरिस्" के अनुसार परीक्षा की तो यह ई. सन् ७-१-१६३१ की ठीक पड़ी और इसलिए इसको प्रमाणित माना जा सकता है। यह तिथि प्रतिलिपि की है तो कवि का समय इसके पहले का होना चाहिए। "समीर कुमार विजय" नामक काव्य के कवि पुष्पगिरि तिम्मकवि और तेकुमल्ल रंगशायी सन् १५७५-१६६२ के बीच में थे और कंकंटि पापुराज उनके समकालीन थे और तिम्मकवि के मित्र भी थे। अतः पापुराजु का भी यह समय माना जाना चाहिए।[2] यह मत परीक्षा पूर्वक निश्चित किए जाने के कारण ठीक माना जा सकता है। ये कृष्णभक्त थे और अपना काव्य "मदन गोपाल" को समर्पित किया। इन्होंने "विष्णु माया विलास" नाम का यक्ष-गान गान भी लिखा। वह भी "मदनगोपाल" को समर्पित किया गया है।

कूचिमंच तिम्मकवि—

इन्होंने "अच्च तेलुगु रामायण" की रचना की है। "आंध्र वाङ्मय चरित्र संग्रह" के अनुसार ये ई. सन् १७५६ तक जीवित थे।[3] इनके पिता गंगनामात्य और माता लामांबा थीं और ये कौडिन्य गोत्र के थे। पूर्व गोदावरी जिले के पिठापुर के राजा रावमाधव भूपति के समय में कंदराड नामक गाँव के पटवारी थे। इनकी कविता पर मुग्ध होकर राजा ने इनको "कविसार्वभौम" की उपाधि दी थी। इन्होंने अपनी कृतियाँ राजाओं को

---

१. श्रीवीरेशलिंगम—आंध्र कवुल चरित्र।
२. ,, यस्वी. जोगाराव—"आंध्र यक्षगान वाङ्मय चरित्र—भाग २, पृ. १४-१५
३. ,, के. वेंकट नारायण राव—आंध्र वाङ्मय चरित्र संग्रह पृष्ठ २३४।

नहीं बल्कि पिठापुर के अपरु इष्टदेव "कुकुटेश्वर" को सर्पापित कीं। इनकी विशेषता यह थी कि उस समय की प्राय: सब काव्य धाराओं में इन्होंने रचना की जैसे माहात्म्य शतक, (पुण्य तीर्थों की कथा) लक्षण ग्रंथ, ठेठ तेलुगु की कविता और शृंगारी प्रबंध काव्य "अच्च तेलुगु रामायण" ठेठ तेलुगु में लिखी हुई संक्षिप्त रामायण है। इन्होंने जितनी रचनाएँ की उतनी उस समय के किसी कवि ने नहीं कीं। इनकी अन्य कृतियाँ हैं—

(१) रुक्मिणी परिणय, (२) सिंहाचल माहात्म्य, (४) नीलासुंदरी परिणय, (६) राजशेखर विलास, (५) सारंगधर चरित्र, (६) सागर संग माहात्म्य, (७) रसिकजन मनोभिराममु, (८) सर्व लक्षण सार संग्रह, (९) सर्पपुर माहात्म्य, (१०) शिव लीला विलास, (११) कुक्कुटेश्वर शतक।

इनके बारे में एक मजेदार किंवदंती कही जाती है जो इस प्रकार है—

इनका "रसिकजन मनोभिराममु" पढ़कर कोई वेश्या बहुत प्रभावित हुई और एक दिन जब ये कहीं जा रहे थे तो अचानक उसने इनका आलिंगन कर लिया। तब इन्होंने अपना मुँह फेर लिया। यह देखकर वह वेश्या आश्चर्यचकित हुई और एक आशु कविता कहने लगी;

चं ॥ चतुरुल लोन नीवु गडु जाण वटंचुनु नेनु गौगिलिं
चिति निटु मारुमोमिडग जेल्लुने यो रसिकाग्रगण्य।

यह आधा पद्य ही उसने कहा जिसका भाव है कि आपको चतुर रसिक पुरुषों में श्रेष्ठ समझकर मैंने गले लगाया तो क्या इस प्रकार मुँह फेर लेना ठीक है? झट इन्होंने पद्य के उत्तरार्द्ध को इस प्रकार पूरा किया—

"अद्भुत मगुनट्टि बंगरपुंगव बोलु नी कुच
द्वितयमु रोम्मु नाटि यल वीपुन दूसे नटंचु जूचितिन् ॥"

अर्थात्, मैंने पीछे की ओर इसलिए देखा कि सोने के लट्टुओं के समान दीखनेवाले तुम्हारे कुच कहीं मेरे हृदय के पार होकर पीठ तक न आ गये हो: यह सच हो या नहीं, किंतु इससे इतना तो पता चलता है कि इनकी कविता बड़ी सरस होती है और ये बड़े हाजिर जवाब रसिक थे।

१४. त्यागराजु—

रामदास के समान ये भी राम के बड़े भक्त थे और उनके गुण-गान में सैकड़ों कीर्तन रचे जिनमें कहीं-कहीं मुक्तक के रूप में राम के जीवन की कुछ घटनाओं का वर्णन हुआ है। यद्यपि उनका उद्देश्य रामायण को लेकर काव्य

लिखना नहीं था। इनका जन्म सन् १७५९ में तंजाऊर के पास तिरुवारूर नामक गाँव में हुआ। बचपन से इनके हृदय में जितनी राम-भक्ति थी उतना ही संगीत के प्रति प्रेम भी था। ये इतने गरीब थे कि भिक्षाटन के द्वारा अपने परिवार का पालन-पोषण करते थे। इनके संगीत से मुग्ध होकर तंजाऊर के राजा ने इनको अपनी सभा का गायक बनाना चाहा, किंतु इन्होंने नहीं माना। कहते हैं कि इनको भगवान राम ने अनेक बार दर्शन दिये थे और अंत में इनके स्वर्गारोहण का समय भी इनको सूचित कर दिया। तब इन्होंने सन्यास हण कर लिया और अंत में मोक्ष प्राप्त कर किया। इन्होंने दो यक्षगान लिखे, 'नौका विहार'' और ''प्रहलाद विजय''। कवि की अपेक्षा ''गायक'' के रूप में इनकी दक्षिण में अधिक प्रसिद्धि है। ये कर्नाटक संगीत के ''त्रिमूर्ति'' में अग्रगण्य थे।

छठा अध्याय

हिन्दी में राम साहित्य क वस्तुगत अध्ययन

कवि को ब्रह्मा माना जाता है। वह अपनी भावानुभूति के द्वारा प्रेरणा पाकर ऐसे काव्य की सृष्टि करता है जिसके चरित्र विभिन्न लोगों को विभिन्न रूपों में दिखाई पड़ते हैं और हृद्गत होते हैं। इस विभिन्नता के होते हुए भी उसमें एक अंतर्निहित एकता होती है जो सार्वदेशिक होती है। आदिकवि वाल्मीकि की रामायण ने विश्व को इसी प्रकार प्रभावित किया। जिस संस्कृत भाषा में उसकी रचना हुई थी उसी में परवर्ती काल में रामायण संबंधी ऐसे साहित्य का भी निर्माण हुआ जो मूलत: वाल्मीकि के ढाँचे पर चलकर भी अपना अलग अस्तित्व, विशेषकर चरित्र-चित्रण और घटना-सन्निवेश में रखता है जैसे अध्यात्म रामायण, प्रसन्न राघव, रघुवंश आदि। आधुनिक देशी भाषाओं में जो राम साहित्य मिलता है उसके संबंध में भी यही बात कही जा सकती है।

हिन्दी और तेलुगु भाषाओं में जो राम साहित्य मध्यकाल में निर्मित हुआ वह एक दूसरे से विभिन्न सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक परिस्थितियों के प्रभाव का फल है जो तत्वत: एक है। इस तात्विक एकता का कारण यही है कि संस्कृत साहित्य ने समूचे भारत की भाषाओं को समान रूप से प्रभावित किया है। विभिन्न परिस्थितियों के प्रभाव के कारण उनके राम साहित्य का वस्तुगत विकास भी थोड़ा भिन्न है और अपनी अलग विशेषता लिए हुए है। प्रस्तुत अध्याय में हिन्दी के राम साहित्य के वस्तुगत विकास का अध्ययन उपस्थित किया जायगा। अस्तु।

हिन्दी और तेलुगु के राम साहित्यों का मूलाधार वाल्मीकीय रामायण होने के कारण उसी की दृष्टि से इन दोनों के वस्तुगत विकास पर विचार करते हुए यह दिखाने का प्रयत्न किया जायगा कि आलोच्य काल के दोनों भाषाओं के कवियों ने वाल्मीकि रामायण से कौन-कौन से परिवर्तन और परिवर्धन अपने ग्रंथों में किये हैं और किन-किन आधारों पर किये हैं। जब कवियों के सामने अपनी काव्य वस्तु से संबंध रखनेवाला विस्तृत साहित्य संस्कृत में उपस्थित था जिसमें भी बहुत से बाल्मीकीय प्रसंग कहीं-कहीं एक ही समान मिलते हैं तब निश्चित रूप से यह कहना कठिन है कि कवि ने किस का प्रभाव ग्रहण किया है। वैसे भी, कोई भी कवि अपने अध्ययन से प्राप्त ज्ञान और अपनी अनुभूति दोनों का समन्वय करके पूर्व प्रसिद्ध काव्यवस्तु का अपनी आवश्यकताओं के अनुसार विकास करता है। उसके मस्तिष्क और हृदय पर सब ग्रंथों का एक सामूहिक प्रभाव पड़ता है जिसके साथ उसकी भावना का संयोग होता है और वस्तु कुछ नया रूप धारण कर लेती है। हिन्दी और तेलुगु के राम कवियों के बारे में भी यह बात घटती है। अतः इन अध्यायों में इसी दृष्टि से उनके अवाल्मीकीय प्रसंग उनके पूर्व के ग्रंथों में जहाँ-जहाँ मिलते हैं उन स्थानों का निर्देश किया जायगा। बहुत से प्रसंग ऐसे मिलते हैं जो एक ही रूप में एक से अधिक संस्कृत ग्रंथों में मिलते हैं और उनके पौर्वापर्य का निर्णय करने के लिए पुष्ट प्रमाण, अनुमान को छोड़कर, उपलब्ध नहीं हैं और वह प्रयास प्रस्तुत प्रबंध के लिए अवांतर विषय है।

वि. सोलहवीं शताब्दी

सूर राम चरित—

सूर रामचरित अलग कोई ग्रंथ नहीं है। सूरदास के सूरसागर के अंतर्गत यह कथा आती है। सूर सागर संस्कृत के महाभागवत पर आधारित है यद्यपि विषय-निर्वाह और शैली की दृष्टि से सर्वथा स्वतंत्र है। इसका रचना-काल डा० रामकुमार वर्मा सं० १५८७ के बाद ही मानते हैं।[1] अतः सूर रामचरित का आधार महाभागवत का राम लीलावर्णन है जो नवमस्कंध के दशम और एकादश अध्यायों में मिलता है। रामावतार की कथा के प्रारंभ में सूरदास ने कहा है—

---

१. डा० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, २ (चतुर्थ संस्करण)

"नृपसों ज्यौं सुकदेव सुनायौ । सूरदास त्यौंही करि गायौ ॥"
(सू० सागर ९-१५)

सूरसागर के अन्य भागों में सूरदास की जो मौलिकता दृष्टिगत होती है वह रामचरित में भी मिलती है। भागवत के दशम सर्ग में रामराज्याभिषेक तक की कथा संक्षेप में शुकदेव के द्वारा राजा परीक्षित के सम्मुख वर्णित है और एकादश सर्ग में उत्तर रामायण की कथा कही गई है।

सूरदास ने अपनी कथा को राम के राज्याभिषेक तक ही सीमित रखा है। यह कथा मूल भागवत में ५६ श्लोकों में कही गई है। किंतु सूरदास ने अपनी साहित्यिक और भक्तिपरक भावना के आधार पर १५८ छोटे बड़े पदों में उसका वर्णन किया है जो एक स्वतंत्र काव्य ही कहा जा सकता है। इसकी कथा छः कांडों में विभक्त है। इसमें वस्तु विकास की दृष्टि से ऐसे प्रसंग भी कई मिलते हैं जो मूल भागवत में नहीं पाये जाते।

बालकांड—

१. मूल भागवत में प्रारंभ में चार श्लोकों में राम के जन्म से लेकर रावण वध तक की कथा अति संक्षिप्त रूप में कही गई है और उसके बाद थोड़े विस्तार के साथ ५२ श्लोकों में पूरी कथा बतायी गई है। एक तो इतने संक्षिप्त रूप में होने के कारण उसका विभाजन कांडों में नहीं किया गया है। और दूसरे, उसके पुराणांतर्गत होने के कारण ऐसा विभाजन अनपेक्षित भी है। किंतु सूरदास की दृष्टि काव्यात्मक थी; इसलिए उन्होंने अपनी वस्तु को सम्यक् रूप देकर उसका विभाजन रामायणवत् किया था।

२. मूल भागवत के समान सूरदास ने दाशरथियों के जन्म से ही कथा का प्रारंभ किया। दशरथ की पुत्रेष्टि यज्ञ आदि प्रसंग नहीं लिए।

३. इसमें सूरदास ने बालक राम की लीलाओं की शर क्रीड़ा का सुन्दर वर्णन किया है जो मूल भागवत में नहीं है। (सू० सागर ९-१९, २०)

४. मूल भागवत में अहल्योद्धार की बात नहीं कही गई है। सूरदास ने उसका भी वर्णन करके कथा की कड़ी मिलायी। इसमें अध्यात्म रामायण के समान अहल्या पाषाण रूपा बतायी गयी है और उद्धार होने पर दिव्य शरीर धारण कर देव लोक को चली जाती है। (सू० सागर ९-२२)

अयोध्याकांड:—

१. मूल भागवत में यद्यपि केवट प्रसंग नहीं है तथापि सूरदास ने अपने रामचरित में उसको स्थान दिया। उसमें लक्ष्मण केवट से गंगा के पार उतार-

कर उतराई लेने को कहते हैं जिसे केवट अस्वीकार करता है। वह अपना भय प्रकट करता है कि राम के चरणों की धूल के स्पर्श से कहीं उसकी नाव स्त्री में परिणत न हो जाय। (सू० सागर ९-४०, ४२) केवट का यह कथन वाल्मीकि रामायण में नहीं है।

इसका मूलाधार अध्यात्म रामायण में मिलता है जिसमें केवट कहता है—

क्षालयामि तव पाद पंकजं नायदारु दृषदोः किमंतरम्
मानुषी करण चूर्ण मस्ति ते पादयो रिति कथा प्रथीयसी ॥
पादांबुज ते विमलं हि कृत्वा पश्चात्परं तीरमहं नयामि।
नोचेत्तरी सद्युवती मलेन स्याचेद्विभो विद्धिकुटुंबहानिः ॥

[अ. रा. बा. ६-३,४]

किंतु इसमें यह प्रसंग अहल्या के शापमोचन के बाद और शिव-धनुष-भंग के पहले आजाता है। इसमें सूरदास ने वाल्मीकि रामायण और अध्यात्म रामायण का समन्वय करके अपनी काव्यात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है। आगे तुलसीदास पर भी इसका प्रभाव पड़ा है। यह बात आनंद रामायण में भी मिलती है। [आ. रा. सा. १-२६]

ग्रामवधूटियाँ राम और लक्ष्मण के साथ वन मार्ग में जानेवाली सीता से उनके पारस्परिक संबंधों के बारे में पूछती हैं और सीता से उचित उत्तर पाती हैं। यह प्रसंग मूल भागवत में नहीं है। [सू. सागर. ९-४४] वाल्मीकि रामायण में भी नहीं है। हनुमन्नाटक में यह भाव मिलता है जिस में पथिक स्त्रियाँ सीता से पूछती हैं—

पथि पथिक वधूभिः सादरं पृच्छ्यमाना
कुवलयदलनीलः कोऽयमार्ये तवेति।
स्मित विकसित गंडं व्रीड विभ्रांत नेत्रं
मुखमवनमयंती स्पष्टमाचष्ट सीता। [हनु. ३-१५]

तुलसीदास के रामचरित मानस और कवितावली पर भी उसका प्रभाव है।

३. मूल भागवत में राम और भरत के चित्रकूट में मिलन प्रसंग नहीं है। सूरदास ने इसको ग्रहण किया है और सुंदर ढंग से वर्णित किया है। सागर. ९-५१.५५]

अरण्यकांड—

१. इसमें सीताहरण के पहले कुटी के सामने लक्ष्मण के एक जलबंधन मय रेखा खींचकर जाने का वर्णन है जो मूल भागवत या वाल्मीकि रामायण

में नहीं है। [सू. सागर. ९-५९] । इसका मूलाधार आनंद रामायण में है। किंतु उसमें धनुष से रेखा खींचने की बात है। [आ. रा. सा. ९८-१००] तंत्र शास्त्र में इस प्रकार की रेखाओं या रेखाचित्रों का विधान मिलता है जिनका कुछ विशेष प्रकार का मानसिक प्रभाव पडता है। कहा जाता है कि ऐसी रेखायें जिस घर के सामने मंत्र-पूर्वक खींची जाती हैं उन घरों में पराये लोग प्रवेश नहीं कर सकते। इस आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है इस लक्ष्मण रेखा का उस तंत्र विधान से कोई संबंध रहा हो।

२. मूल भागवत में शबरी का प्रसंग नहीं है। सूरदास ने यह प्रसंग लिया हैं जिसमें शबरी राम को जूठे बेर खिलाती है जिनको राम बड़े प्रेम से खाते हैं और उसे हरि लोक भेजते हैं [सू. सागर. ९-६७]

किष्किधा कांड में मूल से कोई उल्लेखनीय परिवर्तन या परिवर्धन नहीं है। हाँ जो विषय मूल में उल्लिखित मात्र हुए हैं वे कुछ विस्तार से वर्णित हैं।

सुन्दरकांड—

१. मूल भागवत में इस कांड की घटनायें वर्णित नहीं हैं। सूरदास ने इसकी सब घटनाओं का वर्णन प्राय: वाल्मीकि रामायण के अनुसार किया है। एकाध स्थान में कुछ नवीनता मिलती है।

२. अशोक वाटिका में पहुँचकर हनुमान सीता को देखता है और सोचता है कि ये सीता हैं कि नहीं। उस समय आकाशवाणी होती है कि यही सीता हैं। तुम उनको नमस्कार करना। [सू. सागर. ९-७६]

३. इसमें हनुमान से मुद्रिका लेकर सीता उसे आशीर्वाद देती हैं और दीनता से उनके चरण पकड़ लेती हैं इसके बाद उसे फल खाने की अनुमति देकर प्रार्थना करती हैं कि अब अवश्य प्रभु के दर्शन कराना।

निकट बुलाइ बिठाय निरखि मुख अंचर लेत बलाइ
चिरजीवौ सुकुमार पवन-सुत, गहति दीन है पाइ।
बहुत भुजनि बल होइ तुम्हारै, ये अमृत फल खाहु।
अब की बेर सूर प्रभु मिलवहु बहुरि प्रानकिन जाहु ॥

[सू. सागर ९-८३]

लंकाकांड—

१. इसमें विभीषण पर रावण के चरण प्रहार का उल्लेख है। [सू. सागर ९.१११] यह बात वाल्मीकि रामायण में नहीं है। हाँ, उसके पश्मोत्तरीय

पाठ में मिलती है। [वा.रा. प. सुं. ९०-३-४] वाल्मीकि रामायण के गौड़ीय मठ में इसका उल्लेख है । [वा. रा. गौ. सुं. ८१-८७]

२. मूल भागवत में अंगद का दौत्य नहीं है । सूरदास ने इसका समावेश किया है और रावण की भेदनीति को भी दिखाया है जो वह अंगद को फोड़ने के लिए प्रयुक्त करता है । [सू. सागर ९-१२८-१३५]

३. इसमें द्रोण पर्वत ले जाते हुए हनुमान को भरत नीचे गिराते हैं और बाद में राम का दास जानकर पश्चाताप करते हैं । लक्ष्मण की मूर्च्छा की बात सुनकर कौशल्या हनुमान के द्वारा राम को संदेश भेजती हैं कि

लछिमन सहित कुसल बैदेही, आनि राजपुर कीजै
नातरु सूर सुमित्रा-सुत पर वारि अपनुपौ दीजै ।

[सू. सागर ९-१५३]

सुमित्रा भी संदेश देती हैं—

सेवन जूझि परै रनभीतर, ठाकुर तउ घर आवै ।

[सू. सागर ९-१५४]

इससे दोनों के पारस्परिक प्रेम पर प्रकाश पड़ता है ।

४. मूल भागवत में रावण वध के बाद राम स्वयं जाकर सीता को देखते हैं और उन्हें पुष्पक विमान पर चढ़ा लेते हैं । [महाभागवत ९. १०.३०. ३३] सीता की अग्नि परीक्षा की बात उसमें नहीं है । सूरदास के रामचरित में लक्ष्मण जाकर सीता को देखते हैं और उनको विमान में बिठाकर राम के पास ले आते हैं । उसके बाद राम के मुँह मोड़ने से सीता की अग्नि परीक्षा होती है । [सूर सागर ९.१६१, १६२]

शेष कथा वाल्मीकि रामायण के अनुसार है । ऊपर के विवेचन से विदित होता है कि सूरदास ने यद्यपि भागवत के अनुसार रामचरित लिखा तो भी उसे सुगठित रूप देने के लिए ऐसे प्रसंगों को भी भिन्न-भिन्न आधारों से ग्रहण किया है जो भागवत में नहीं हैं जिससे मूल कथा में टूटी कड़ियाँ मिल गयी हैं । इससे यह सिद्ध होता है कि सूरदास की दृष्टि जहाँ साहित्यिक वर्णनों पर है वहाँ वस्तु का सम्यक् विकास करने की ओर भी रही है ।

इसके अतिरिक्त सूरसागर के दशम स्कंध में भी कुछ ऐसे पद हैं जिनमें राम के जीवन से संबंधित घटनाओं का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उल्लेख हुआ है और राम और कृष्ण की अभिन्नता की ओर संकेत किया गया है ।

वि. सत्रहवीं शताब्दी

रामचरित मानस—

इसकी रचना सं. १६३१ में की गई है। [रा.मा. बा. ३३.२]।

"रामचरित मानस" मूलतः वस्तु की दृष्टि से वाल्मीकि रामायण पर ही आधारित है यद्यपि आवश्यकतानुसार उसमें अनेक परिवर्तन किए गये हैं और अन्य राम साहित्य का प्रभाव ग्रहण किया गया है। अतः यह सर्वथा समीचीन होगा कि वाल्मीकि रामायण की दृष्टि से ही इस बात की परीक्षा की जाय कि तुलसीदास ने किन-किन अवाल्मीकीय प्रसंगों को लिया, वाल्मीकि के किन-किन प्रसंगों को छोड़ दिया और ऐसा परिवर्तन क्यों किया। अतः यहाँ इसी दृष्टिकोण से "रामचरित मानस" के वस्तुगत विकास का अनुशीलन प्रस्तुत किया जाता है।

किसी काव्य की वस्तु के विकास पर उसके कवि की वस्तु संबंधी मान्यता, और विश्वास का बड़ा प्रभाव पड़ता है। राम कथा के प्रति तुलसीदास की मान्यता "मानस" के वस्तु-विकास के अध्ययन में बहुत सहायता पहुँचाती है। इस संबंध में वे मानस में कहते है—

नानाभाँति राम अवतारा। रामायन सतकोटि अपारा।।
कल्प भेद हरि चरित सुहाये। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाये।।
[रा.मा.बा. ३२ ख.४]

राम जनम के हेतु अनेका। परम विचित्र एकतें एका।
कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नाना विधि करहीं।।
[रा. मा. बा. १२३-१]

तब तब कथा मुनीसन्ह गाई। परम पुनीत प्रबन्ध बनाई।
हरि अनंत हरिकथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहुत विधि संत।।
रामचंद्र के चरित सुहाये। कलप कोटि लगि जाहि न गाये।।
[रा. मा. बा. १३९-१-३]

तुलसीदास की इस मान्यता पर एक तो उनका दृढ़ विश्वास और भावना तथा दूसरे, उनके समय तक के संस्कृत राम साहित्य का पूरा प्रभाव हैं। आनंद रामायण में भी कहा गया है—

पुनः. पुनः कल्प भेदाज्जात श्री राघवस्थ च।
अवतारः कोटिशोऽत्र तेषु भेद क्वचित् क्वचित्।।

अतः तुलसीदास ने इसी विश्वास से मानस के बालकांड में रामावतार ॓ अनेक कारण बताये हैं। [रा. मा. बा.]

रामचरित मानस के प्रणयन में तुलसीदास की दृष्टि सर्वप्रथम भक्ति-परक थी। वाल्मीकि रामायण के आदर्श और विष्णु के अवतार माने जानेवाले राम के चरित्र में परवर्ती काल के साहित्य में अध्यात्म रामायण, आनंद रामायण, योगवासिष्ठ आदि में परब्रह्म विराट भगवान का जो तत्व भी सम्मिलित किया गया है और उसके द्वारा भगवान राम का जो सम्पूर्ण चित्र तुलसीदास के समय तक उपलब्ध था उसीने उनको आकृष्ट किया तथा वही रूप उनके हृदय में रम गया। अपने हृदय-गृहीत इसी रूप को जन-जन के लिए उपलब्ध कराने और उसकी भक्ति को ही ध्येय मानकर उसके अवश्यंभावी परिणाम स्वरूप शाश्वत विश्राम प्राप्त करने के लिए उन्होंने रामचरित मानस की रचना की। इसी उद्देश्य को सामने रखकर तुलसीदास ने वाल्मीकि रामायण की कथा को अपने "मानस" में आवश्यकतानुमार परिवर्तित और परिवर्धित किया। और उसका संकेत स्पष्ट रूप से दिया है—

नानापुराण निगमागम सम्मतं यत्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि
स्वांन्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा
भाषा निबंध मति मंजुल मातनोति ॥

[रा. मा. बा. ७]

ऊपर तुलसीदास के जिस उद्देश्य का उल्लेख किया गया है उसकी पूर्ति में ही उनका स्वांतःसुख निहित है।

बालकांड के प्रारंभ से प्रधान कथा के प्रारंभ तक इष्टदेव वंदना, साधु संतो और सत्कवियों की प्रशंसा, दुर्जनों और प्राकृत कवियों की निंदा, राम नाम की महिमा, रामावतार के विभिन्न कारणों का वर्णन आदि के रूप में जो विस्तृत भूमिका दी गई है वह तुलसीदास के काव्योद्देश्य का पुष्ट प्रमाण है।[1] इस अंश के सब प्रसंगों का बाल्मीकि रामायण में अभाव है। उनको तुलसीदास ने संवृत रामायण, अगस्त्य रामायण, मंजुल रामायण, सौहार्द रामायण, अद्भुत रामायण, शिवपुराण आदि अनेक ग्रंथों से लिया है। रामचरित मानस की कथा शिव और पार्वती के संवाद के रूप में प्रस्तुत की गई है जबकि वाल्मीकि रामायण में वाल्मीकि और नारद के सम्वाद तथा कुश और लव के गान के

१. **तुलसीदास—रामचरित मानस—गीता प्रेस संस्करण—प्रारम्भिक १७७ दोहों तक**

रूप में कही गई है। यह तुलसीदास का सर्वप्रथम परिवर्तन है जिस पर अध्यात्म रामायण का प्रभाव है जिसमें भी रामकथा शिव और पार्वती के संम्वाद के रूप में वर्णित है।[१] इसमें शैव और वैष्णव तत्वों का अच्छा समन्वय है। अब यहाँ मुख्य परिवर्तनों पर विचार किया जायगा—

१. "मानस" में रावण, कुंभकर्ण आदि राक्षसों का जन्म बालकांड में प्रधान राम कथा के प्रारंभ के पहले ही वर्णित है जो वाल्मीकि में उत्तरकांड में वर्णित है। यह परिवर्तन गीता के निम्नलिखित वचनों के अनुसार रामावतार को सकारण निरूपित करने के लिए किया गया है जो वस्तु विकास की दृष्टि से समीचीन है। गीता में कहा गया है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानंमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।। गी. ४-७
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।। गी. ८

इसके अनुसार उन्होंने दिखाया है कि रावणादि राक्षसों के अत्याचारों के कारण भगवान विष्णु को रामावतार लेना पड़ा।

२. "मानस" का पायस विभाजन यद्यपि अध्यात्म रामायण के अनुसार है तो भी उससे थोड़ा भिन्न भी है। चरु लेने के लिए कौसल्या आदि रानियाँ जाती हैं। तब राजा ने—

अर्ध भाग कौसल्यहि दीन्हा। उभयभाग आधे कर कीन्हा।
कैकेयी कहँ नृपसो दयऊ। रह्यो सो उभय भाग पुनि भयऊ।।
[रा. मा. बा. १८९-१. २]

कौसल्या कैकेयी हाथ धरि। दीन सुमित्रहि मन प्रसन्न करि।।

अध्यात्म रामायण में—

कौसल्यायै सकैकेय्यै अर्धमर्धं प्रयत्नतः
ततः सुमित्रा संप्राप्ता जगृध्नुः पौत्रिकं चरुम् ।
कौसल्यातु स्वभागार्धं ददौतस्यै मुदान्विता
कैकेयी च स्वभागार्धं ददौ प्रीति समन्विता ।।
[अध्या. रा. ब. ३, १०. ११.२१]

---

१. **अध्यात्म रामायण—बालकांड—गीता प्रेस—प्रारम्भिक ५ श्लोक**

अध्यात्म रामायण का यह विभाजन पद्मपुराण के अनुसार है।[1] किंतु वाल्मीकि रामायण में—

कौसल्यायै नरपतिः पायसार्थं ददौ तदा।
अर्धादर्धं ददौचापि सुमित्रायै नराधिपः॥
कैकेय्यै चावशिष्टार्धं ददौ पुत्रार्थकारणात्।
प्रददौ चावशिष्टार्धं पायसस्यामृतोपमम्
अनुचिंत्य सुमित्रायै पुनरेव महामतिः
एवं तासां ददौ राजा भार्याणां पायसं पृथक्॥

[वा. रा. बा. १६. २७. २८]

इस प्रकार तुलसीदास ने वाल्मीकि से अलग होकर अध्यात्म रामायण का अनुकरण करके उसमें भी परिवर्तन किया। सुमित्रा को कौसल्या और कैकेयी के द्वारा चरु न दिलाकर राजा के द्वारा दिलाया और उन दोनों से स्पर्श मात्र कराया।

३. "मानस" में राम जन्म के समय भगवान विष्णु कौसल्या को दर्शन देते हैं और बाद में उसके स्तुति और प्रार्थना करने पर शिशु रूप धारण कर लेते हैं। (रा. मा. बा. १९१ के बाद के छंद) वाल्मीकि रामायण में स्वाभाविक रूप से राम का जन्म होता है। तुलसीदास का यह परिवर्तन अध्यात्म रामायग के आधार पर किया गया है। (अ. रा. बा. ३-२०-३५) जिसमें राम विष्णु के रूप में पहले दर्शन देते हैं और बाद में शिशु रूप लेते हैं। पद्म पुराण में भी ऐसा वर्णन मिलता है। (पद्म पुराण, उत्तर खंड २४९ अध्याय)।

धन्यास्मि देव देवेश। लब्ध्वा त्वां तनय प्रभो।
प्रसीद मे जगन्नाथ पुत्रस्नेहं प्रदर्शय
एवमुक्तो हृषीकेशो मात्रा सर्वगतो हरिः
मायामानुषतां प्राप्य शिशु भावादुरोदसः

(पद्म पुराण—उत्तर खंड २४९) "गुरुमंडलसीरीज, कलकत्ता।"

४. विश्वामित्र के राम और लक्ष्मण को यज्ञ रक्षार्थ माँगने पर दशरथ जब पहले विनयपूर्वक इनकार करते हैं तब मानस में, विश्वामित्र वाल्मीकि रामायण के समान क्रोधित नहीं होते बल्कि हर्षित होते हैं—

"सुनि नृपगिरा प्रेमरस सानी। हृदय हरष माना मुनि ज्ञानी॥"

---

१. पद्म पुराण—उत्तर खंड—२४२-५९-६१

तब वशिष्ठ के समझाने पर दशरथ अपने पुत्रों को विश्वामित्र के साथ भेजते हैं। इस परिवर्तन पर तुलसीदास की भक्ति भावना का प्रभाव है। राम में दशरथ का प्रेम और ज्ञान की दृष्टि देखकर विश्वामित्र प्रसन्न होते हैं। यह परिवर्तन तुलसी के भक्ति विशिष्ट दृष्टिकोण का प्रमाण है।

५. "राम चरित मानस" में अध्यात्म रामायण के समान अहल्या के शिला बन जाने का उल्लेख है। वाल्मीकि रामायण में तो केवल अदृश्य होने की बात है। अध्यात्म रामायण में अहल्या जिस भक्ति भावना से राम की स्तुति करती है उसी भावना से रामचरित मानस में भी करती है। अतः मानस के इस प्रसंग पर अध्यात्म रामायण का पूरा प्रभाव है। (रा. मा. बा. दोहा २९०— उसके बाद के छंद, वा. रा. बा. ४८—३०-३१, अ. रा. बा. ५—३५-६१)

६. मिथिला जाते समय वाल्मीकि रामायण में जो अवांतर कथाएँ गंगावतरण आदि की आती हैं वे सब मानस में छोड़ दी गई हैं। केवल यह उल्लेख किया गया है कि विश्वामित्र ने उसकी कथा राम को सुनाई। (रा. मा. बा. २११-१)

७. मिथिला नगर देखने के लिये राम और लक्ष्मण का जो विहार मानस में वर्णित है वह वाल्मीकि में नहीं। यह तुलसीदास की उद्भावना है जो कथा को स्वाभाविक गति देती है।

८. नगर विहार करते समय उन्हें देखकर नगर की स्त्रियाँ उनके सौंदर्य की प्रशंसा करती हैं और राम को लक्ष्य करके आपस में कह लेती हैं—

"देखि राम छबि कोउ एक कहई। जोगु जानकिहि यह बरु अहई।"
(रा. मा. बा. २२१–१)

ऐसी ही बातें आनंद रामायण में नगर की स्त्रियाँ कहती हैं जब विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को साथ लेकर जनक के भवन में जाते हैं :—

"तदा परस्परं प्रोचुः सीतायोग्यो वरस्त्वयम्
रामोऽस्माकं रोचते हि करोत्वेवं विधिस्तु सः"
(आ, रा. सा. ३-४-६)

आगे चलकर भी मानस की स्त्रियाँ कहती हैं कि "एहि बिबाह अतिहित सब ही का"। उसी प्रकार आनन्द रामायण में भी स्त्रियों के द्वारा कहा जाता है कि "अस्माकं सुकृतैरचैव तदोरेतो पती शुभौ" (आनन्द रा० सा० २— ४७)।

९. वाल्मीकि रामायण की राम कथा में तुलसी का एक महत्वपूर्ण परिवर्धन है पुष्पवाटिका प्रसंग जिसमें राम और सीता के प्रथम दर्शन में पारस्परिक प्रेम का वर्णन मिलता है। (रा. मा. बा. २२६-२३६) राम और लक्ष्मण अपने गुरु विश्वामित्र की पूजा के लिए पत्र पुष्प, लाने जनक की वाटिका में जाते हैं वहाँ वे सखियों सहित गौरी की पूजा करने के लिए उसी वाटिका में आई सीता को देखते हैं। राम और सीता के हृदय में पारस्परिक प्रेम जाग्रत होता है। थोड़ी देर तक पारस्परिक अवलोकन के बाद दोनों चले जाते हैं। सीता गौरी से प्रार्थना करती हैं कि इच्छित वर की प्राप्ति हो जाय और उनको गौरी का तदनुरूप अशीर्वाद मिल जाता है। शिवधनुर्भंग के पहले वीर्य-शुल्का सीता के राम के साथ इस पूर्वानुराग का समर्थन "प्रीति पुरातन" कहकर किया जाता है जिसमें तुलसी का अवतारवाद लक्षित होता है। इस प्रसंग पर प्रसन्न राघव नाटक का प्रभाव है किंतु उसके निर्वहण में तुलसी ने मर्यादा का बहुत ध्यान रखा है जो प्रसन्न राघव में नहीं दिखायी पड़ता। इसमें तुलसी ने अपनी भक्ति-भावना और काव्य नायक के लक्षणों का सुन्दर समन्वय किया है। इसके द्वारा कथा विकास में नया मोड़ आया है।

१०. रामचरित मानस में धनुष यज्ञ में रावण और बाण भी आते हैं और धनुष को देखकर धीरे से खिसक जाते हैं (रा० मा० बा० २४९-१) रावण और बाण प्रसन्न राघव नाटक में भी आते हैं, किन्तु वे कुछ वाद-विवाद करने के बाद धनुष को छुए बिना ही चले जाते हैं। (प्र० रा० १)

११. "मानस" में शिवधनुर्भंग का जो प्रसंग है उस पर निर्वाह की दृष्टि से संस्कृत के हनुमन्नाटक का प्रभाव है, यद्यपि मूलवस्तु वाल्मीकि रामायण के अनुसार ही है, जिसमें भक्ति तत्व का अच्छा पोषण हुआ है। इस प्रसंग की अनेक पंक्तियाँ हनुमन्नाटक के पद्यों का अनुवाद सी लगती हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं—

हनुमन्नाटक—

आद्वीपात् परतोऽप्यमी नृपतयः सर्वे समभ्यागताः
कन्यायाः कलधौत कोमलरुचेः कीर्तेश्चलाभः परः ।।
नाकृष्टं न च टंकितं न नमितं नोत्थापितं स्थानतः ।
केनापीदमहो महद्धनुरिदं निर्वीरमुर्वीतलम् ।।

(हनुमन्नाटकः प्रथमांक १०)

मानस—

दीप दीप के भूपति नाना। आये सुनि हम जो पन ठाना
... ...

कुअँरि मनोहर विजय बड़ि कीरति अति कमनीय।
पावनिहार बिरंचि जनु रचेउ न धनुदमनीय॥
कहहु काहि यह लाभ न भावा। काहु न संकर चाप चढ़ावा
रहउ चढ़ावत तोरब भाई। तिलु भरि भूमि न सके छुड़ाई॥
अब जनि कोउ माखै भट मानी। बीर बिहीन मही मैं जानी॥

दोनों में अन्तर यह है कि हनुमन्नाटक में बातें राम कहते हैं और मानस में जनक। इस परिवर्तन से राम का निरभिमान और जनक की स्वाभाविक चिंता व्यक्त होती है।

जब राम धनुष उठाते हैं तब लक्ष्मण रामचरित मानस में कहते हैं——

दिसिकुंजरहु कमठ अहि कोला। धरहु धरनि धरि धीर न डोला
रामु चहहिं संकर धनुतोरा। होहु सजग सुनि आयसु मोरा।

इस पर भी हनुमन्नाटक का प्रभाव है। उसमें भी लक्ष्मण कहते हैं :—

पृथ्वि स्थिरा भव भुजंगम धारयैनां
त्वं कूर्मराज तदिदं द्वितयं दधीथाः
दिक्कुंजराः कुरुत तत्रितये दिधीर्षां
रामः करोति हर कार्मुकमाततज्यम्॥

(हनु० १–२१)

यह श्लोक थोड़े अन्तर के साथ राजशेखर कृत बाल रामायण नाटक में भी मिलता है। (बा० रा० १-३८) इसमें प्रहस्तक यह श्लोक तब पढ़ता है जब रावण शिव-धनुष उठाता है। इसमें चौथे चरण में रामः की जगह "देवः" लिखा है।

१२. इस कांड में तुलसीदास का एक महत्वपूर्ण परिवर्तन है परशुराम के गर्वभंग के प्रसंग में। वाल्मीकि रामायण में यह प्रसंग राम विवाह के उपरांत आता है। तब दशरथ सपरिवार अयोध्या को लौट रहे थे। तुलसीदास से इसका प्रवेश हनुमन्नाटक के अनुसार धनुर्भंग के तुरंत बाद ही कराया है। धनुष के टूटने के बाद सब के आनन्द का वर्णन करते हुए मानस में यह कहा गया है कि——

"महिपाताल नाक जसु व्यापा। राम बरी सिय भंजेउ चापा।"

(रा० म० बा० २६४–३)

इसे सुनकर परशुराम तुरन्त आ जाते हैं। परशुराम का यह प्रवेश बड़े नाटकीय ढंग से होता है जिसका अपना साहित्यिक महत्व है। किंतु जिस ढंग से इस प्रसंग का निर्वाह किया गया है उस पर प्रसन्न राघव का प्रभाव लक्षित होता है। उसमें राम-लक्ष्मण और परशुराम का जो संवाद है उसी के समान राम चरित मानस में उनके संवाद का वर्णन किया गया है। कहीं-कहीं कुछ ऐसी पंक्तियाँ भी मिलती हैं जो प्रसन्न राघव की पंक्तियों का अनुवाद सी लगती हैं। जैसे—

रा. मा. "देवएक गुन धनुष हमारे। नवगुन परम पुनीत तुम्हारे॥
(बा० २८१–४)

प्र. रा. "यस्मादेकगुणं शरासनमिदं सुव्यक्त मुर्वीभृताम्
अस्माकं भवतां पुनर्नवगुणं यज्ञोपवीतम् बलम्।" (४–२५)

ये ही पंक्तियाँ थोड़े अन्तर के साथ हनुमन्नाटक में भी मिलती हैं—

'यस्मादेकगुणं शरासनमिदं सुव्यक्तमुर्वीभुजाम्
अस्माकं भवतो यतो नवगुणं यज्ञोपवीतं बलम्॥ १-४०

शेष कथा वाल्मीकि के अनुसार है। हाँ "मानस" में राम विवाह का विस्तृत वर्णन है जिसका सांस्कृतिक महत्व है।

अयोध्याकांड—

इस कांड की प्रमुख घटनाएँ राम के राज्याभिषेक की तैयारियाँ, मंथरा के द्वारा विघ्न डाला जाना, राम वन गमन, दशरथ की मृत्यु, भरत का अयोध्या आगमन, उनकी चित्रकूट की यात्रा, राम और भरत का मिलन, भरत का राम की पादुकाएँ लेकर अयोध्या में पुनरागमन आदि सब वे ही हैं जो वाल्मीकि के रामायण में हैं। यद्यपि उनके प्रतिपादन में अन्तर अवश्य पाया जाता है जिसमें तुलसीदास की भक्ति भावना काम करती है।

निम्नलिखित परिवर्तन उल्लेखनीय हैं—

(१) वाल्मीकि रामायण में दशरथ राम को अपने पास बुलाकर उनको युवराज बनाने का अपना निश्चय कहते हैं। इस सम्बन्ध में भरत के विषय में अपनी शंका भी प्रकट करते हैं जिससे यह ध्वनित होता है कि राम के राज्याभिषेक के सम्बन्ध में दशरथ कुछ षडयंत्र कर रहे हैं। वे कहते हैं—

सहृदश्चाप्रमत्तास्त्वां रक्षन्त्वद्य समंततः
भवंति बहुविघ्नानि कार्याण्येवंविधानि हि ।,
विप्रोषितश्च भरतो यावदेव पुरादितः
तावदेवाभिषेकस्ते प्राप्त कान्नो मतो मम ॥
कामं खलु सतां वृत्ते भ्राता ते भरतः स्थितः ।
ज्येष्ठानुवर्ती धर्मात्मा सानुक्रोशो जितेंद्रियः ॥
किंतुचित्तं मनुष्याणांमनित्यमिति मे मतम्
सतां च धर्मनित्यानां कृतशोभि च राघव ॥
[वा. रा. अयो ४-२४-२७]

इससे पाठकों को यह शंका होती है कि कहीं दशरथ ने पहले भरत को युवराज बनाने का वचन तो न दिया हो जिसे वे अब तोड़ना चाहते हैं। इस शंका की पुष्टि भी राम की इस बात से होती है जो वे भरत से चित्रकूट में कहते हैं:—

पुरा भ्रातः पिता नः स मातरं ते समुद्वहन्
माता महे समाश्रौषीद् राज्य शुल्कमनुत्तमम् ॥[अयो० १०७-३]

हमें यह मालूम नहीं कि यह बात राम को कब किसने बतायी। जब दशरथ ने राम को अभिषेक की बात बतायी तब निश्चित रूप से राम को इस राज् शुल्क की बात का ज्ञान नहीं था। यह भी बड़े आश्चर्य की बात है कि इसका ज्ञान स्वयं कैकेयी या मंथरा को भी नहीं था। इसीलिए उनमें किसी ने उसका उल्लेख नहीं किया था। राम को उसी समय यह बात विदित रहती तो निश्चित ही वे अपने राज्याभिषेक के लिए आपत्ति उठाते क्योंकि उनका अभिषेक उस परिस्थिति में अधर्म था। यदि यह मान लिया जाय कि यह बात जानते हुए भी राम ने अपने अभिषेक के लिए कुछ भी आपत्ति नहीं की तो स्पष्ट है कि उनके मन में भी कुछ खोट अवश्य थी जो उनके आदर्श गुणों के सर्वथा विरुद्ध होती। ऐसी परिस्थिति में यही संभव जान पड़ता है कि राम ने यह बात अयोध्या छोड़ने के पहले किसी के द्वारा सुनी होगी जिसका उल्लेख वाल्मीकि ने ने नहीं किया था। इससे जहाँ एक ओर दशरथ के चरित्र पर कलंक लगता है यहाँ दूसरी ओर कथा के विकास में एक उलझन पैदा हो जाती है जो किसी तरह सुलझती नहीं।

तुलसीदास ने अपने मानस में उसे सुलझाकर कथा को स्वाभाविक विकास देने का सबल प्रयत्न किया। इसमें राज्यशुक्ल की बात भी नहीं उठायी

गयी जिससे यह समस्या आप ही आप सुलझ गई। दशरथ राम को उनके अभिषेक का समाचार स्वयं न देकर वशिष्ठ के द्वारा दिलाते हैं।

तब नरनाह् वसिष्ठ् बोलाए। रामधाम सिख देन पठाए॥

]रा. मा. अ. ८.१]

यह निश्चय केवल राम के ज्येष्ठत्व और सर्वगुण संपन्नता पर आधारित है। राम के राज्याभिषेक का निश्चय करते हुए दशरथ को कुछ भी शंका नहीं होती कि किसी के द्वारा विघ्न उपस्थित किया जायगा। उन्होंने इसमें केवल नृपनीति का ही स्थान रखा। तभी कैकेयी से कहते हैं—

लोभु न रामहिं राजु कर बहुत भरत पर प्रीति।
मैं बड़ छोट बिचारि जियँ करत रहेऊँ नृपनीत॥

[रा. मा. अयो. ३१]

इस प्रकार तुलसी ने राज्य शुल्क और दशरथ की शंका की बात न उठाकर कथा को स्वाभाविक रूप से विकसित किया। इस परिवर्तन का कारण यह था कि तुलसी के दशरथ साधारण महाराज न होकर ऋषि कश्यप का अवतार थे जिसने भगवान विष्णु से वर प्राप्तकर पृथ्वी में जन्म लिया। दूसरे राम स्वयं परब्रह्म हैं जिन्होंने अधर्म का नाश करने के लिए पृथ्वी में अवतार लिया। ऐसे आदर्श, मर्यादा पुरुषोत्तम राम में वे कोई चारित्रिक दुर्बलता नहीं दिखा सकते थे।

(२) "मानस" में गंगा पार करते समय गुह (केवट) राम से कहता है कि आपके चरणों की धूल में कोई ऐसी औषधि है जिसने पत्थर को स्त्री रूप में बदल दिया। अगर मेरी नाव आपके चरणों का स्पर्श कर स्त्री में परिणत हो जाय तो मैं कहाँ जाऊँ? अत: आपके चरण धोकर ही मैं आपको नाव पर चढ़ाऊँगा। यह बात वाल्मीकि रामायण में नहीं है, अध्यात्म रामायण[१] और आनंद रामायण[२] में है। [यही अध्याय—सूर रामचरित—अयो० अनु १] इस प्रसंग में तुलसी ने भक्ति भावना से प्रेरित होकर वाल्मीकि और आध्यात्म रामायणों का समन्वय कर दिया।

(३) मानस में यमुना के पास एक अज्ञात तपस्वी आकर राम के दर्शन कर लेता है जिसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण में नहीं है। [रा. मा.

---

१. **"अध्यात्म रामायण" बालकांड ६-३**

२. **"आनंद रामायण"—सारकांड ३-२६**

अयो. १०९-४] कहा जाता है कि तुलसी ने इस रूप में स्वयं अपने को राम के सम्मुख पहुँचाया है।[1] श्री सत्यदेव चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक 'गोस्वामी तुलसीदास और रामकथा'' में 'सुब्रह्म रामायण'' में भारद्वाज की पहुनाई के बाद ''तापस मिलन'' का उल्लेख किया है। संभवतः मानस का तापस मिलन उसी पर आधारित हो।

(४) वाल्मीकि रामायण में राम को चित्रकूट पर रहने की सलाह ऋषि देते हैं। किंतु मानस में वाल्मीकि राम को १४ आध्यात्मिक भवन दिखाकर कहते हैं कि आप उनमें रहें। यह पूरा लक्षणों से भरा हुआ है[2] जो वाल्मीकि रामायण में नहीं है, अध्यात्म रामायण में है।[3] वाल्मीकि रामायण में राम चित्रकूट पहुँचने के बाद वाल्मीकि से भेंट करते हैं और मानस में अध्यात्म रामायण के अनुसार उसके पहले ही मिलते हैं।

इस कांड की शेष घटनाएँ कथा विकास की दृष्टि से वाल्मीकि रामायण के समान ही हैं। हाँ, उनके प्रतिपादन की शैली में बहुत अंतर है।

अरण्यकांड—

इस कांड की प्रधान घटनाएँ भी कथा-विकास की दृष्टि से वाल्मीकि रामायण के अनुसार ही हैं। हाँ, कहीं-कहीं थोड़ा-सा परिवर्तन दिखाई पड़ता है।

(१) वाल्मीकि रामायण में इंद्र पुत्र के कौए के रूप में आकर सीता के स्तनों के बीच में चोंच मारकर घायल करने का उल्लेख है। [सुंदरकांड ३८-२२] किंतु मानस में तुलसी ने सीता के चरणों में चोंच मारने का वर्णन किया है। [रा. मा. अ. १-४] इसमें तुलसी का मर्यादा पालन का भाव दिखाई पड़ता है। इस पर आनंद रामायण का प्रभाव है जिसमें कहा गया है—

ऐंद्रः काकस्तदागत्य नखैस्तुंडेन चासकृत्
सीतांगुष्टे मृदु रक्तं विददाराभिषाशया ॥

[आ. रा. सा. ६-८६]

(२) मानस में राम लक्ष्मण और शबरी के सामने भक्ति का निरूपण

---

१. पं० रामचंद्र शुक्ल—गोस्वामी तुलसीदास

२. रा० मानस—अयो. १२७-१३२

३. अध्यात्म रामाणय—अयो. ६-५०

करते हैं जो वाल्मीकि रामायण में नहीं मिलता। (रा. मा. अ. १४-१६, ३४-३५-८] ये दोनों अंश भक्ति निरूपण के, अध्यात्म रामायण में मिलते हैं नका प्रभाव मानस पर पड़ा है। [अ. रा. अ. ४-१६-५१, अ. रा. अ. १०-२०-४३] तुलसी का राम कथा के प्रति भक्ति विशिष्ट दृष्टिकोण ही सका कारण है।

(३) रामचरित मानस के खर दूषण के वध के प्रसंग में कहा गया है कि राक्षस एक-दूसरे को राम के रूप में देखकर युद्ध करके मरने लगे [रा. मा. अ. १५ ख-२०] इस पर आनंद रामायण का प्रभाव दिखाई पड़ता है जिसमें कहा गया है—

चतुर्दश सहस्राणि स्वीयरूपाणि राघवः
कृत्वातेषां च पुरतः शरै स्तानमर्दयत् क्षणात् ।। (आ०रा०सा० ७-६१)

खर और दूषण की राक्षस सेना मृत्यु के पश्चात् राम के धाम को (बैकुंठ को) पहुँच जाती है। यह बात वाल्मीकि रामायण में नहीं है। हाँ आनंद रामायण में इसका उल्लेख मिलता है—

चतुर्दशसहस्रांस्तान् प्रेषयामास स्वं पदम् । (आ०रा०सा० ७.६१-६३)

(४) खर और दूषण के वध के पश्चात् राम वास्तविक सीता को अग्नि में और माया सीता को अपने पास रख लेते हैं [रा.मा. अ. २३-१-२] यह बात वाल्मीकि में नहीं हैं। इस पर अध्यात्म रामायण का प्रभाव है।

उसमें कहा गया है—

त्वं तु छायां त्वदाकारां स्थापयित्वोटजेविश । (अ०रा०अ०७-२)
अग्नावदृश्यरूपेण वर्षं तिष्ठ ममाज्ञया । (अ०रा०अ०३)

माया सीता का वृत्तांत कूर्म पुराण, आनंद रामायण आदि में भी मिलता है।

(५) सीताहरण का प्रधान नैमित्तिक कारण वाल्मीकि रामायण के अनुसार खर और दूषण का राम के द्वारा वध था। उसमें अकंपन नामक राक्षस जो युद्ध में बच गया था रावण के पास जाता है और राम के पराक्रम का वर्णन करके कहता है कि "यदि आप उनको जीतना चाहें तो उनकी प्रिय पत्नी सीता का हरण करें। तब रावण उसकी सलाह मानकर सीधे मारीच के पास जाता है किंतु मारीच राम के अतुलित बल और पराक्रम का वर्णन करके रावण को सीताहरण के प्रयत्न से विरत कर देता है और रावण लंका लौट जाता है। उसके बाद शूर्पणखा उसके पास जाती है और अपने विरूपीकरण की

और सीता के अनुपम सौंदर्य की बात कहकर रावण के मन में क्रोध और काम वासना को जगाती है। इस बार फिर रावण मारीच के पास जाकर उसकी सहायता माँगता है। अब भी मारीच रावण को उस प्रयत्न से विरत करने का प्रयास करता है। किंतु रावण के हठ के सामने उसकी एक नहीं चलती। वह मृग रूप धारण कर सीताहरण का साधन बन जाता है। [वा. रा. अ. ३१, ४१] तुलसीदास ने इस प्रसंग में अध्यात्म रामायण के अनुसार खर दूषणों का वध और सीताहरण इन दोनों ही प्रधान घटनाओं को लिया और उनको भक्ति विशिष्ट दृष्टिकोण में उपस्थित किया। इसके अनुसार रावण को पहले ही मालूम था कि राम विष्णु के अवतार हैं और उनके हाथों मरकर मुक्ति पाने के लिए वह सीता का हरण करता है। [रा. मा. अ. २२-१-८]। यह परवर्ती काल में विकसित भक्ति भावना के विशिष्ट दृष्टिकोण का ही प्रभाव है। हाँ, इसके द्वारा कथा के स्वाभाविक विकास में अवश्य बाधा पड़ती है।

(६) लक्ष्मण के कुटी में सीता को छोड़कर राम की सहायता के लिए जाते समय रामचरित मानस में यद्यपि कुटी के आगे रेखा खींचने का वर्णन नहीं है तथापि लंकाकांड की एक पंक्ति से यह बात ध्वनित होती है जिसमें मंदोदरी रावण से कहती है—

रामानुज लघु रेख खँचाई। सोउ नहिं नाघेहु असि मनुसाई॥

(रा०मा०लं० ३५(ख)—१)

(७) मानस में राम जटायु से कहते हैं—

सीताहरन तात जनि कहेहु पिता सन जाइ।
जौं मैं राम, त कुल सहित कहिहि दसानन आइ॥

(रा०मा०अ० ३१)

इस बात से राम के चरित्र पर जहाँ अच्छा प्रकाश पड़ता है वहाँ कवि की काव्य सामग्री के संचय की कुशलता भी अच्छी तरह व्याप्त होती है। वाल्मीकि में यह बात नहीं है। किन्तु हनुमन्नाटक में मिलती है। उसमें राम जटायु से कहते हैं—

तात त्वं निजतेसैव गमितः स्वर्गं व्रज स्वस्ति ते
ब्रूमस्त्वेकमिमां वधूहृतिकथां तातांतिके मा कृथाः।
रामोऽहं यदि तद्दिनैः कतिपयैर्व्रीडानमत्कंधरः
सार्धं बंधुजनेन सेंद्र विजयी वक्ता स्वयं रावणः॥

(हनुमन्नाटक ५-१६)

किष्किंधाकांड—

इस कांड की प्रधान घटनाएँ ये हैं : राम और सुग्रीव की मैत्री, बाली वध, सीतान्वेषण के लिए वानरों का भेजा जाना, हनुमान आदि के द्वारा स्वयंप्रभा और संपाति के दर्शन। इसकी कथा में उल्लेखनीय परिवर्तन निम्नलिखित हैं—

(१) वाल्मीकि रामायण में कहा गया है कि मायावी और वाली का युद्ध जब गुहा में हो रहा था तब एक वर्ष तक सुग्रीव ने गुहा के द्वार पर बाली की प्रतीक्षा की। किंतु जब वह नहीं आया और अंदर से केवल मायावी का ही गर्जन सुन पड़ा और रक्त बहने लगा तब सुग्रीव ने सोचा कि बाली मारा गया होगा। रामचरित मानस में वाली स्वयं सुग्रीव से कहता है कि—

"परिखेसु मोहि एक पखवारा। नहिं आवौं तब जानेसु मारा ॥
(रा० मा० कि० ५-४)

बाली की इस आज्ञा के अनुसार सुग्रीव एक मास तक उसकी प्रतीक्षा करता है और तब गुफा के द्वार एक शिला रखकर चला जाता है। बाली की उपरोक्त आज्ञा का उल्लेख अध्यात्म रामायण में भी नहीं है, किंतु सुग्रीव के एक मास तक प्रतीक्षा करने की बात कही गई है।[1] इस के आधार पर तुलसी ने अपनी उद्भावना के द्वारा वाली से वह आज्ञा दिलाई। इसी प्रकार के परिवर्तन में सुग्रीव का चरित्र निर्दोष हो जाता है और बाली के दोषी होने से राम के द्वारा उसका वध अधिक संगत ठहरता है। इसमें राम भक्त सुग्रीव का चरित्र निर्दोष चित्रित करना भक्त तुलसीदास को अभीष्ट था।

(२) बाल्मीकि रामायण में बाली और राम में बहुत वाद-विवाद होता है। वाली राजनीति की दृष्टि से राम के कार्य को अन्यायपूर्ण सिद्ध करने का प्रयत्न करना है। किन्तु राम राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक दृष्टियों से अपने कार्य का औचित्य सिद्ध करते हैं। (वा०रा० वि० १७, १८ सर्ग)। किंतु मानस में दोनों की चर्चा बहुत संक्षिप्त है जिस पर भक्ति भावना का प्रभाव है। राम बाली के शरीर का स्पर्श करके उसे अचल करने की अपनी इच्छा व्यक्त करते हैं, जिसे बाली नहीं मानता। (रा०मा०कि ६-१-४) वह भक्ति की माँग करता है और परमपद को पाता है। यह बाद वाल्मीकि रामायण में नहीं है। अध्यात्म रामायण में है, किंतु उसमें भी बाली का शरीर अचल करने की बात नहीं कही गयी (अ. रा. कि. ३.७०-७१) इसमें

१. अध्यात्म रामायण—कि. १-४९-५०

वाल्मीकि रामायण के समान बाली के अंगद को सुग्रीव के हाथों में सौंपने का भी वर्णन नहीं है।

(३) रामचरित मानस में तारा विलाप और राम का सांत्वना प्रदान बहुत संक्षिप्त है जिस पर कवि की आध्यात्मिकता का प्रभाव है। तारा के विलाप में वह मानवीय स्वाभाविकता नहीं है जो वाल्मीकि रामायण में है। उसके स्थान में भक्ति भावना है। (रा. मा. कि. १, २-३)

(४) रामचरित मानस में स्वयंप्रभा के राम के पास जाकर उनकी अनपायनी भक्ति प्राप्त करने का उल्लेख है जो वाल्मीकि रामायण में नहीं है। (रा. मा. कि. २४-८) इसका विस्तृत वर्णन अध्यात्म रामायण में मिलता है। (अ. रा. कि. ६ सर्ग) जिसका प्रभाव रामचरित मानस पर है।

इस कांड में और कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं मिलता जिसने वस्तु को नया मोड़ दिया हो। हाँ, कवि की भक्तयात्मक दृष्टि से आया हुआ अंतर तो है ही।

सुन्दरकांड—

हनुमान का समुद्रोल्लंघन तथा लंका प्रवेश, लंका का अवरोध, सीता के लिए हनुमान का अन्वेषण, रावण के वैभव और विलासिता का वर्णन, अशोक-वाटिका में सीता के दर्शन, रावण सीता सम्वाद, मुद्रिका प्रदान, हनुमान सीता संवाद, सीता के द्वारा शिरोरत्न दिया जाना, लंकादहन, हनुमान का लौटना, राम को सीता का समाचार देना, ये इस कांड की प्रधान घटनाएँ हैं।

(१) वाल्मीकि रामायण में रावण के वैभव और विलासिता का विस्तृत वर्णन मिलता है जिसमें जुगुप्सा मिश्रित शृंगार की अधिकता है। (वा. रा. सुं. ४-११) तुलसी के भक्त हृदय ने इसको छोड़ दिया और संक्षेप में उसका उल्लेख मात्र कर दिया। (रा. मा. सुं. ४-३)

(३) सीतान्वेषण के सिलसिले में रामचरित मानस में हनुमान के विभीषण से मिलने का वर्णन है जो वाल्मीकि रामायण में नहीं है। हनुमान उसके घर तुलसी के पौधों को देखता है। विभीषण हनुमान को सीता का पता बता देता है। (रा. मा. सुं. ५-७. ३ तक) हनुमान के विभीषण को देखने का देखने का उल्लेख आनंद रामायण में मिलता है। (आ. रा. सा. ९-२४) उसके आधार पर रामभक्त होने के कारण विभीषण के मिलन का वर्णन मानस में विस्तार से किया गया है।

(३) रामचरित मानस में रावण सीता को चंद्रहास नामक खड्‌ग से मारने को उद्यत होता है जब वे उसकी रानी बनना स्वीकार नहीं करतीं और उसका अपमान करती हैं। किंतु मंदोदरी उसे रोकती है। तब वह एक मास की अवधि देकर चला जाता है। (रामचरित मानस-सुंदरकांड ९-१०) वाल्मीकि रामायण में रावण खड्‌ग लेकर मारने को उद्यत नहीं होता यद्यपि वह भी कहता है—

अनयेनाभि संपन्नं अर्थहीनमनुव्रते ।
नाशया म्यहमद्य त्वां सूर्यः संध्यामिवौजसा ॥

(वा. रा. सुं. २२-३१)

तब धान्यमालिनी उसे रोकती है। रावण दो मास की अवधि देकर चला जाता है। खड्‌ग से मारने को तैयार होने और मंदोदरी के रोकने की बात अध्यात्म और आनंद रामायणों में मिलती है। (अध्या. सु.२. ३६-३७, आ.रा. सा. ९-८४) सीता को रावण के चंद्रहास से मारने को उद्यत होने की घटना प्रसन्नराघव से ली गई है। उसमें सीता चंद्रहास से कहती है—

"चंद्रहास ! हर मे परितापं, रामचन्द्र विरहानल जातम्"

मानस में भी सीता यही बात कहती है—

"चंद्रहास ! हरु मम परितापं ! रघुपति विरह अनल संजातं ।"

(रा. मा. सुं. ९.३)

(४) वाल्मीकि रामायण में सीता रावण से त्राण पाने के लिए अपनी वेणी की फाँसी लगाकर आत्महत्या करने को उद्यत होती हैं। तब हनुमान शिंशिपा वृक्ष पर से राम का गुणगान करने लगता है जिसे सुनकर सीता अपने प्रयत्न से विरत होती हैं। (वा. रा. सुं. २८. १७-१८) रामचरित मानस में वे त्रिजटा से प्रार्थना कर चिता चुनवा लेती हैं और अंगारे के लिए अशोक वृक्ष से प्रार्थना करती हैं जिसके नीचे वे बैठी थीं। उसी समय वृक्ष पर बैठा हुआ हनुमान मुद्रिका नीचे डाल देता है जिसे सीता उठा लेती हैं। जब उस मुद्रिका को पहचानती हैं तब उसे हृदय से लगा लेती हैं और आत्महत्या के प्रयत्न से विरत होती हैं। (रा. मा. सुं. ११-२ से १२-२) यह प्रसंग तुलसीदास ने प्रसन्न राघव नाटक से लिया है। (प्रा. रा. ६-३५-३८ तक)।

(४) वाल्मीकि रामायण में हनुमान सीता को स्वयं राम के पास ले जाने की बात कहता है। (वा. रा. सुं. ३७. २३-२६) किन्तु मानस में हनुमान यह बात नहीं कहता। इसका कारण तुलसी की भक्ति भावना है।

(६) वाल्मीकि रामायण में लंकादहन के पहले ही सीता हनुमान को अपनी चूड़ामणि देती हैं। किंतु मानस में लंकादहन के पश्चात् देती हैं।

(७) मानस में रावण विभीषण को लात मारकार निकालता है। इसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण के गौड़ीय तथा पश्चिमोत्तरीय पाठों में पाया जाता है। (गौ० रा० ५ सर्ग ८१-८७, प० रा० ५ सर्ग ८१-८३, ८९-९०)।

(८) रामचरित मानस के सुन्दरकांड में वाल्मीकि रामायण के युद्धकांड की थोड़ी कथा भी आ गई है। वाल्मीकि रामायण में राम के लंका की ओर जाने के प्रयत्न के साथ सुन्दरकांड समाप्त होता हैं। किन्तु मानस में सागर के किनारे पहुँचना, विभीषण की शरणागति, रावण के दूतों का आना, सागर से राम की विनय तथा क्रोध, और सागर को क्षमा दान आदि युद्धकांड की घटनाएँ भी आई हैं।

(९) मानस में कहा गया गया है कि शुक रावण की लात खाकर राम की शरण में में आने के बाद अपना वास्तविक मुनि रूप धारण कर अपने आश्रम में चला जाता है। (रा. मा. सु. ५६ (ख) ४-६) यह बात वाल्मीकि रामायण में नहीं है किंतु अध्यात्म रामायण में है। उसमें उसके पूर्व जन्म और शाप का वृत्तांत भी दिया गया है। उसी का प्रभाव मानस पर है। (अ.रा-गु.५)

(१०) मानस में सागर के विप्ररूप धारण करके राम के सामने आने का वर्णन है। (रा० मा० सु० ५८-४) किन्तु वाल्मीकि रामायण में राजवेश में आने का वर्णन है। (वा० रा०यु० २२)

शेष कथा में विस्तार की न्यूनाधिक मात्रा और प्रतिपादन शैली के अतिरिक्त और कोई विशेष अंतर नहीं है।

लंका कांड—

इस कांड की कथा की प्रधान घटनाएँ हैं: सेना सहित राम का समुद्र की ओर प्रस्थान, रावण की सभा और विभीषण का तिरस्कार, विभीषण की शरणागति, सेतु बंधन, रावण के गुप्तचर शुक और सारण, राम का मायामय सिर, सुग्रीव और रावण का द्वंद्व, अंगद का दौत्य, नागपाश बंधन में राम और लक्ष्मण तथा उनकी गरुड़ के द्वारा मुक्ति, धूम्राक्ष, वज्रदंष्ट, अकंपन तथा प्रहस्त का वध, रावण-लक्ष्मण और रावण—राम का युद्ध, कुंभकर्ण का वध, लंका दहन, इंद्रजीत का युद्ध तथा वध, रावण वध, सीता की अग्नि परीक्षा, अयोध्या प्रवेश और राम का राज्याभिषेक।

यद्यपि इस कांड की कथा का विकास उपरोक्त ढाँचे पर ही हुआ है तो भी कहीं-कहीं कुछ ऐसे प्रसंग भी हैं जो अवाल्मीकीय भी हैं।

(१) रामचरित मानस में युद्धकांड को लंका कांड कहा गया है। वाल्मीकि रामायण के पश्चिमोत्तरीय पाठ की कुछ प्रतियों में भी लंकाकांड कहा गया है। घटना-स्थान की दृष्टि से यह अनुचित नहीं है। (वा. रा. प. लाहौर प्रकाशन—पृ. ४५५)।

(२) रामचरित मानस में सागर पार करने के पूर्व राम के समुद्र के तीर पर शिवलिंग की प्रतिष्ठा का वर्णन है जो वाल्मीकि रामायण में नहीं है, (रा. मा. लंकाकांड १. २. २.) आनंद रामायण और अध्यात्म रामायण में भी इसका उल्लेख है। आनंद रामायण में तो कुछ विस्तृत रूप से यह प्रसंग मिलता है जिसमें हनुमान का गर्व भंग भी वर्णित है। तुलसी के इस घटना सन्निवेश का सांस्कृतिक महत्व है। (आ. रा. सा. १०, अ. रा. यु. ४-१)।

(३) रामचरित मानस में राम के लंका प्रवेश के बाद तुरंत मंदोदरी रावण को उपदेश देती है। (रा. मा. लं. ५-७)। यह घटना वाल्मीकि रामायण में युद्ध के प्रारंभ होने के बाद आती है। वस्तु विकास की दृष्टि से तुलसीदास का यह परिवर्तन बहुत समीचीन है।

(४) रामचरित मानस में राम के मायासिर का प्रसंग छोड़ दिया गया है जो वाल्मीकि रामायण में है।

(५) रामचरित मानस में लंका प्रवेश के बाद राम सब वानर वीरों से परिवेष्ठित बैठते हैं और पूर्व दिशा में उदित चंद्रमा को देखकर उसके कलंक का कारण सबसे पूछते हैं। सब अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार इसका उत्तर देते हैं। हनुमान कहता है—

कह मारुत सुत सुनहु प्रभु ! ससि तुम्हारु निजदास।
तब मूरति बिधुउर बसति सोइ स्यामता अभास ॥
(रा. मा. लं. १२ क)

यह प्रसंग वाल्मीकि में नहीं मिलता है। इस पर तुलसी की भक्ति भावना का ही प्रभाव है जो सचराचर विश्व को सियाराममय देखती है। उस समय राम के एक ही बाण के द्वारा रावण के मुकुटों को गिराने का भी वर्णन है जिससे मंदोदरी भयभीत होती है और दुबारा रावण को उपदेश देती है जिसमें राम के विराट रूप का प्रसिद्ध रूपक मय वर्णन है। (रा. मा. लं. १३ (ख)। रावण

के मुकुटों को गिराने का वर्णन अध्यात्म रामायण में मिलता है । उसी का मानस पर प्रभाव है (अ. रा. यु. ५-४२-४५)

(६) रामचरित मानस में अंगद का दौत्य वाल्मीकि रामायण की अपेक्षा बहुत ही विस्तृत और कलात्मक दृष्टि से भी विशिष्ट है। अंत में अंगद अपनी भुजायें पृथ्वी पर इतने जोर से मारता है कि पृथ्वी डगमगाने लगती है और रावण सिंहासन पर से गिरते-गिरते सँभल जाता है । उसके मुकुट पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं तो कुछ को उठाकर वह अपने सिर पर रख लेता है। शेष मुकुटों को अंगद राम के पास भेज देता है जिनको देखकर वानर डरते हैं कि ये कहीं उल्काएँ तो नहीं हैं ! तब राम उनको वस्तुस्थिति समझाते हैं और हनुमान उनको उछल-कर पकड़ लेता है । उधर रावण बहुत लज्जित होता है और अंगद सभा में अपना पाँव रोप कर कहता है कि यहाँ कोई यदि मेरा पाँव हिलाए तो मैं सीता को राम की तरफ से हार जाऊँगा, राम लौट जायेंगे । कोई भी उसके पैर को नहीं हिला सकता । यहाँ तक कि स्वयं रावण को भी उसका पैर पकड़ना पड़ता है जिस पर अंगद व्यंग्य से उससे कहता है कि "मेरे पाँव पकड़ने से लाभ नहीं, राम के चरण पकड़ो तो तुम्हारा भला होगा।" रावण लज्जित होता है और अंगद अंतिम चेतावनी देकर चला जाता है। यहाँ तीसरी बार मंदोदरी रावण को निंदा भरे शब्दों में फिर उपदेश देती है, किन्तु रावण नहीं मानता। मानस का यह प्रसंग बहुत ही स्वाभाविक और सुंदर वर्णित किया गया है। बाद में जब अंगद राम के पास लौट आता है तो राम पूछते हैं कि हे अंगद जो तुमने चार मुकुट यहाँ भेजे वे कैसे पाये ? इसके उत्तर में अंगद कहता है कि वे मुकुट नहीं थे बल्कि राजा के गुण थे—साम, दाम, भेद और दण्ड जो राजधर्म के अंग हैं और आपके पास आ गये हैं। इसका भाव यह है कि रावण को राजधर्म ने भी छोड़ दिया है। (रा० मा० लं० १९—३८ ख)। हनुमन्नाटक आधार पर तुलसी ने इस घटना का विकास किया है। (हनुमन्नाटक ८) किंतु अंगद के चरण रोपने और रावण के मुकुटों को राम के पास भेजने की बात उसमें नहीं है। भारतीय हिन्दी परिषद् द्वारा प्रकाशित हिन्दी साहित्य के द्वितीय खण्ड में किन्हीं ईश्वरदास की लिखी "अंगद पैज" नामक रचना की सूचना दी गई है जिसमें रावण की सभा में की गई अंगद की प्रतिज्ञा का वर्णन है। इसकी रचना लगभग सं. १५५८ (सन् १५०१) में मानी जानी चाहिए।[1]

१. भारतीय हिंदी परिषद्—हिंदी साहित्य—२ पृ. ३०५।

(७) रामचरित मानस में लक्ष्मण इंद्रजीत के द्वारा वीरघातिनी शक्ति से मूर्च्छित किये जाते हैं जिस पर राम बहुत विलाप करते हैं। तब जांबवान राम को सांत्वना देकर लंका में रहनेवाले सुषेण नामक वैद्य को बुला लाने के लिए हनुमान को भेजता है कि वह आकर लक्ष्मण की मूर्च्छा दूर करे। हनुमान लघुरूप धारण कर लंका में प्रवेश करता है और भवन समेत सुषेण को ले आता है। सुषेण राम को नमस्कार करके हनुमान को संजीवनी लाने भेजता है। हनुमान के मार्ग में रावण का भेजा हुआ कालनेमि कपटी मुनि का वेष धारण कर हनुमान का अंत कराने के लिए आता है। जब हनुमान आकाश में उड़ता जा रहा था तो उसे प्यास लगती है और वह उस ऋषि को देखकर उसके पास जल माँगने जाता है। वह हनुमान की अपने कमंडल का जल पीने को देता है किंतु हनुमान की प्यास नहीं बुझती। इस पर वह मुनि उससे कहता है कि पास के सरोवर में स्नान कर आओ तो मैं तुम्हें दीक्षा दूँगा जिससे तुमको ज्ञान की प्राप्ति हो जाय। हनुमान के तालाब में उतरते ही एक मगर उसको पकड़ लेता है तो हनुमान उसे मार डालता है। परन्तु वह मगर एक अप्सरा के रूप में परिणत हो जाता है। वह अप्सरा हनुमान को कपटी मुनि का हाल बताकर स्वर्ग चली जाती है। हनुमान यह जानकर मुनि को मार डालता है। वह मरते समय अपना असली रूप धारण कर राम नाम लेता है जिसे सुनकर हनुमान प्रसन्न होता है। वाल्मीकि रामायण में इंद्रजीत ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करके राम और लक्ष्मण को मूर्च्छित कर देता है। तब जांबवान के कहने पर हनुमान हिमालय के पास जाकर संजीवनीवाले पर्वत को लाता है जिससे राम, लक्ष्मण तथा अन्य वानर भी स्वस्थ होते हैं। हनुमान फिर उसे यथा-स्थान स्थापित कर आता है। यहाँ सुषेण की बात नहीं आती। (वा. रा. यु. ७३-७४) इंद्रजीत की मृत्यु के बाद रावण शक्ति का प्रयोग करके लक्ष्मण को मूर्च्छित करता है जस पर राम बहुत विलाप करते हैं। तब सुषेण राम को सांत्वना देकर हनुमान को फिर संजीवनी लाने के लिए भेजता है और उसके द्वारा लाई गई संजीवनी से लक्ष्मण को स्वस्थ करता है। यह सुषेण लंका का निवासी नहीं था। वह तो वाली का ससुर और तारा का पिता था। कालनेमि वध का प्रसंग वाल्मीकि रामायण में नहीं है। हाँ, उसके पश्चिमोत्तरीय पाठ तथा गौड़ीय पाठ में (वा. रा. प. यु. ८१, ५०—१६२, गौ० ८२ वां सर्ग) तथा आनन्द रामायण और अध्यात्म रामायण (अ. रा. यु. ७, आ. रा. सा. ११) में मिलता है। हनुमन्नाटक में सुषेण लंका का निवासी बताया गया है जिसे हनु-

मान बुला लाता है (ह. १३–२०) तुलसीदास ने इस प्रसंग में इन सब का समन्वय किया। कालनेमि प्रसंग पर अध्यात्म रामायण का या आनन्द रामायण, वाल्मीकि रामायण के गौड़ीय या पश्चिमोत्तरीय अथवा आनन्द रामायण का प्रभाव है और सुषेण को लंका से भवन समेत लाने में हनुमन्नाटक का प्रभाव है।

(८) रामचरित मानस में हनुमान जब औषधि पर्वत को लेकर अयोध्या के ऊपर से उड़ा जा रहा था तब भरत उसे कोई निशाचर समझकर बाण के द्वारा नीचे गिराते हैं। हनुमान आहत होकर राम नाम लेते हुए नीचे गिरता है। यह देखकर भरत पश्चात्ताप करते हैं कि किसी रामभक्त को मैंने गिराया। तब अपनी रामभक्ति की शपथ खाकर भरत हनुमान को सचेत करते हैं। उससे सारी राम-कहानी सुनकर बड़े दुखी होते हैं और अपने को धिक्कारते हैं। बाद में विलंब होने के डर से हनुमान चला जाता है। यहाँ भरत हनुमान से कहते हैं कि "मेरे बाण पर यदि तुम बैठोगे तो मैं शीघ्र राम के पास तुम्हें पहुँचा दूँगा जिस पर हनुमान सोचते हैं कि मेरे भार को भरत का बाण कैसे सँभाल सकेगा? किंतु राम का प्रताप समझकर निश्शंक होता है। यह घटना वाल्मीकि रामायण में नहीं है। हाँ, वाल्मीकि रामायण के गौड़ीय पाठ में इसका समावेश है। (वा. रा. गौ. ८२ सर्ग) हनुमन्नाटक में (१३ वें अंक में) भी यह प्रसंग प्राया जाता है।

(९) रामचरित मानस में वाल्मीकि रामायण की घटनाओं का स्थान परिवर्तन भी किया गया है। वाल्मीकि रामायण में कुंभकर्ण के वध का प्रसंग लक्ष्मण की मूर्च्छा के पहले ही आ जाता है। किंतु मानस में अध्यात्म रामायण के आधार पर लक्ष्मण की मूर्च्छा और कालनेमि के वध के बाद आता है। (अ. रा. यु.) आनंद रामायण में भी यह प्रसंग अध्यात्म रामायण के अनुसार है। (आ० रा० सा० ११–१४०–१६३)। रामचरित मानस में युद्ध भूमि में कुंभकर्ण और विभीषण के मिलन और वार्तालाप का वर्णन है। विभीषण कुंभकर्ण के पास जाकर नमस्कार करता है और अपनी राम शरणागति का सारा वृत्तांत कह सुनाता है। कुंभकर्ण उससे प्रसन्न होता है और विभीषण की प्रशंसा करता है कि तुमने उचित काम किया। वह राम की सेवा करने का उपदेश भी देता है। वह राम के ईश्वरत्व का ज्ञान कराकर रावण को भी उपदेश देता है कि सीता को लौटाकर राम की शरण में जाय। यह बात वाल्मीकि रामायण में नहीं है। किन्तु अध्यात्म और पश्चिमोत्तरीय पाठ की कुछ प्रतियों में तथा

आनन्द रामायण में मिलती है। (वा० रा० प० यु० ४६–८२—९१, आ० रा० यु० ८, आ० रा० स० ११)। राम से हत कुंभकर्ण का सिर रावण के आगे गिरता है।

(१०) वाल्मीकि रामायण में इंद्रजीत अपने पहले युद्ध में राम और लक्ष्मण को नागपाश में बंधित कर देता है। (वा० रा० यु० ४४) बाद में द्वितीय युद्ध में ब्रह्मास्त्र के द्वारा उन दोनों को मूच्छित कर देता है और तभी हनुमान द्रोणपर्वत ले आता है। (वा. रा. यु. ७३, ७४) किंतु रामचरित मानस में हनुमान के द्रोणपर्वत लाने और कुंभकर्ण वध के बाद राम लक्ष्मण के नागपाश बंधन का प्रसंग आता है। (रा. मा. लं. ७२. ५—७४ (ख)।

(११) वाल्मीकि रामायण में इन्द्रजीत की मृत्यु के बाद रावण क्रोध में सीता को अपने मृत्यु का कारण समझकर उन्हे मार डालने के लिए अशोक-वाटिका में जाता है। किंतु सुपार्श्व नामक राक्षस के द्वारा रोक दिया जाता है। (वा०रा०यु० ९२) किंतु रामचरित मानस में यह छोड़ दिया गया हैं। कारण यह है कि रावण सीता को श्रद्धा की दृष्टि से देखता था।

(१२) इन्द्रजीत की मृत्यु से क्रोधित होकर रावण अपनी सारी सेना लेकर राम की सेना पर आक्रमण करता है जिसमें राम विभीषण के सामने प्रसिद्ध धर्म रथ का वर्णन करते हैं जो वाल्मीकि में नहीं मिलता। यह कवि पर आध्यात्मिकता का प्रभाव है। (रा०मा०लं२ ७९ : १-६)

(१३) वाल्मीकि रामायण में दो बार संजीवनी पर्वत लाया जाता है, पहली बार राम, लक्ष्मण और अन्य वानरों को स्वस्थ करने के लिए जो इंद्रजीत द्वारा मूच्छित कर दिए जाते हैं और दूसरी बार रावण के द्वारा मूच्छित कये गये लक्ष्मण को स्वस्थ करने के लिए (वा०रा०यु० १०१) किन्तु राम चरित मानस में एक ही बार संजीवनी लाने का वर्णन है। दूसरी बार जब लक्ष्मण रावण की शक्ति से मूच्छित होते हैं तब राम इतना ही कहते है—

कह रघुबीर समुझु जिय भ्राता तुम कृतांतभच्छक सुरत्राता ॥

(राम०मा०लं०८३-३)

क लक्ष्मण उठ बैठते हैं।

(१४) रामचरित मानस में रावण अजेय होने की इच्छा से एक यज्ञ करने लगता है जिसका रहस्य विभीषण राम को बता देता है। तब राम हनुमान अंगद आदि वानरों को उसका यज्ञ ध्वंस करने के लिए भेजते हैं जो

यज्ञ-स्थान में जाकर चुभती बातें कहकर उसे उत्तेजित कर यज्ञ से विरत करने का प्रयत्न करते हैं। जब इस पर भी वह विचलित नहीं होता तो उसकी नारियों के केश पकड़कर महल के बाहर खींच लाते हैं। जब वे स्त्रियाँ करुणा-पूर्ण विलाप करती हैं तो रावण कृतांत के समान उठकर वानरों को पकड़कर पटकने लगता है। इस प्रकार वानर अंत में रावण को यज्ञ से विचलित करने में सफल होते हैं। यह प्रसंग वाल्मीकि रामायण के पश्चिमोत्तरीय पाठ से है (वा०रा०प०यु० ८२)। अध्यात्म रामायण में भी है। (अ०रा०यु०१०) किंतु उसमें अंगद के मंदोदरी के केशों को पकड़कर खींच लाने का वर्णन है। यथा—

प्रविश्यान्तःपुरे केश्यन्यंगदो वेगवत्तरः
समानयत् केशबंधे गृहीत्वा मंदोदरीम् शुभाम् ।।
(अ०रा०यु० १०-२४)

आनंद रामायण में भी इस यज्ञ का उल्लेख मिलता है। उसमें अनेक वानरों के मंदोदरी को खींच लाने का उल्लेख है।

तदाते वानरा दृष्ट्वा तूष्णीमेवस्थितंरिपुम्
समानयन्केशपाशे धृत्वा मंदोदरीं शुभाम् ।। (आ०रा०सा० ११-३९)

मानस पर इसी का प्रभाव विदित होता है। किंतु उसमें एक मंदोदरी के स्थान पर अनेक नारियों को खींच लाने का वर्णन है—

छं०—नहिं चितव जब कि कोप कपि गहि दसन लातन्ह मारहीं।
धरि केश नारि निकारि बाहेर तेऽतिदीन पुकारहीं ।।
(रा०मा० लं० ८४ छं०)

(१५) रामचरित मानस में रावण के मायामय युद्ध का वर्णन है। (रा०मा०लं० ८८-४, ९५-३) जो वाल्मीकि रामायण में नहीं है।

(१६) रामचरित मानस में ऐसा वर्णन मिलता है कि जितनी भी बार राम रावण के सिरों और भुजाओं को काटते हैं उतनी ही बार वे फिर उगते हैं। अंत में विभीषण के द्वारा उन्हें मालूम होता है कि रावण के नाभिकुंड में अमृत है जिसके कारण उसके सिर बार बार उगते हैं। तब राम एक साथ इकतीस बाणों का संधान करते हैं जिनमें एक तो उसके नाभिकुंड में स्थित अमृत को सुखा देता है, बीस शर उसकी बीस भुजाओं को काटते हैं और बाकी दस बाण दस सिरों को काट देते हैं और इस प्रकार रावण का वध हो जाता है। (रा०मा० लं० १०१ ख—१०२-१) वाल्मीकि रामायण में रावण

के नये-नये सिरों के उगने की बात तो है (वा०रा०यु०१०७-५३-५८) किंतु अमृत की बात नहीं है। वहाँ मातलि राम को ब्रह्मास्त्र का ध्यान दिलाता है जिसका प्रयोग करके राम रावण का वध करते हैं। (अ०रा० १०८-२-२०) रावण के नाभिदेश में अमृत की बात अध्यात्म रामायण (अ०रा०यु०११-५३) और आनंद रामायण (आ० रा०सा० ११-७९) पद्मपुराण के गौणीय पाठ के उत्तर खंड आदि (१८४२, ११२२) में मिलती हैं। अध्यात्म रामायण में भी मातलि राम को ब्रह्मास्त्र का स्मरण दिलाता है । (अ०रा०यु० ११-६१) वह और भी कहता है कि रावण का सिर आप मत काटिये क्योंकि सिर काटने से यह मरेगा नहीं, बल्कि मर्म स्थान में मारने पर ही यह मरेगा (अ०रा०यु० ११-६२-६३)

(१७) रावघ और कुम्भकर्ण के वध के पश्चात् उनके तेज के राम में विलीन हो जाने का वर्णन है जिस पर तुलसी के अवतारवाद और भक्ति भावना का प्रभाव है। (रा०मा०लं०१०३–५. ७०-४) ।

इस कांड में कुछ प्रतियों में क्षेपकांश के रूप में सुलोचना की कथा और अहिरावण के युद्ध का प्रसंग भी मिलता है जिस पर आनंद रामायण का प्रभाव हैं।

इस कांड की शेष कथा में और कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं है।

उत्तरकांड—

रामचरित मानस का उत्तर कांड वाल्मीकि रामायण के उत्तरकांड से सर्वथा भिन्न है। वाल्मीकि रामायण के उत्तरकांड में रावणादि भाइयों के जीवन, राम-राज्य, राम और सीता के सुखमय जीवन, सीता परित्याग, कुश और लव का जन्म, राम के अश्वमेध यज्ञ, सीता का रसातल प्रवेश, राम के निर्वाण आदि का वर्णन है। रामचरित मानस में इनका बहुत ही संक्षेप में उल्लेख किया गया है। राम राज्याभिषेक और उनके राज्य का थोड़ा बहुत वर्णन हुआ है। वाल्मीकि रामायण के रावणादि के जन्म का प्रसंग भी छोड़ दिया गया है और उसको दूसरे रूप में बालकांड में समाहित किया गया है। रामचरित मानस में अधिकांश उत्तरकांड ज्ञान, भक्ति आदि दार्शनिक तत्वों के निरूपण में लगाया गया जो मानस की रचना का प्रधान उद्देश्य है। वस्तु-विकास की दृष्टि से इसमें कोई विशेष रूप से उल्लेखनीय बात नहीं है। हाँ, प्रक्षिप्तांश में राम के अश्वमेध यज्ञ तथा कुश और लव के साथ दाशरथियों के

युद्ध का भी वर्णन है। इसमें काक-भुशुंडि और गरुण का संवाद है जिसका विषय राम भक्ति का प्रतिपादन है और यह संवाद "भुशुंडि रामायण" से गृहीत है।[1]

इस प्रकार वस्तुविकास के अतिरिक्त तुलसीदास के कई भाव और विचार भी अनेक संस्कृत ग्रंथों के भावों और विचारों से मेल खाते हैं; कहीं-कहीं उनके अनुवाद से लगते हैं। इनकी एक लम्बी सूची स्व० रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी "तुलसीदास और उनका काव्य" नामक पुस्तक में दी है।[2]

गीतावली—

मानस के अतिरिक्त तुलसीदास की बड़ी रचनाओं में गीतावली और कवितावली तथा छोटी रचनाओं में रामाज्ञा प्रश्न, बरवै रामायण और जानकी मंगल प्रमुख हैं जिनमें राम कथा का वर्णन किया गया है यद्यपि कथा संक्षिप्त है। गीतावली मुक्तक शैली में लिखी गयी है जिसमें कवि की दृष्टि वस्तु-विकास और चरित्र-चित्रण की अपेक्षा साहित्यिक सौंदर्य अर्थात् काव्यकला के अन्य पक्षों पर अधिक रही है। इसका रचना काल सं० १६४३ (सन्० १५८६) है।[3]

गीतावली जैसा कि नाम से ही प्रकट है, गीतों में लिखी गयी है जो विभिन्न रागों और तालों में गाये जाते हैं। इसकी कथा यद्यपि बहुत संक्षिप्त है तो भी घटनाओं के क्रम के अनुसार लिखी गई है जो मानस के समान सात कांडों में विभाजित है, यद्यपि उन घटनाओं के बीच में संबंध नहीं बैठाया गया। प्रायः किसी घटना या भाव को लेकर एक से अधिक गीत लिखे गये हैं। प्रायः सारी कथा वही है जो मानस की है। किंतु मानस में भक्ति भावना राम कथा को आप्लावित करती है वह इसमें अंतर्धारा होकर बहती है और जो कभी-कभी प्रत्यक्ष दिखाई पड़ती है। कहीं-कहीं ऐसी बातें भी मिलती हैं जो "मानस" में नहीं हैं। ऐसी प्रमुख बातों का विवरण नीचे दिया जाता है—

बालकांड—

इसमें ११० गीत हैं जिनमें निम्नलिखित घटनाओं का वर्णन किया गया

---

१. भारतीय हिन्दी परिषद—हिन्दी साहित्य २ पृ. ३०३

२. स्व० रामनरेश त्रिपाठी—तुलसीदास और उनका काव्य—पृ. १३५-१५९

३. डा० रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. ३८६

है—दाशरथियों के जन्म पर दशरथ को बधाई, उनका नामकरण, उनके प्रति वात्सल्य और उनकी लीलाएँ, विश्वामित्र का आगमन और राम-लक्ष्मण का उनके साथ जाना, अहिल्या का उद्धार, मिथिला प्रयाण, पुष्पवाटिका में सीता और राम का परस्पर दर्शन, शिव धनुर्भंग तथा सीता और राम का विवाह।

(१) इसमें राम और उनके भाइयों के शैशवकाल में किसी ज्योतिषी के आगमन और चारों भाइयों के शुभ लक्षण बताने का वर्णन है। (गी०बा० १७) यह मानस या वाल्मीकि रामायण में नहीं है। इसमें जितनी राम की लीलाएँ वर्णित हैं उतनी "मानस" में नहीं। इसमें कवि का सामाजिक दृष्टिकोण और वात्सल्य लक्षित है।

(२) विश्वामित्र के आने पर दशरथ उनका स्वागत आदि करके पहले ही कह देते हैं कि राम को छोड़कर आपके लिए मेरे पास कोई अदेय वस्तु नहीं है। फिर भी, बाद में विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को माँगते हैं। वाल्मीकि रामायण और मानस में विश्वामित्र पहले राम और लक्ष्मण को माँगते हैं फिर दशरथ उस पर अपना असंतोष प्रकट कर कहते हैं कि राम को मैं दे नहीं सकूँगा। यहाँ ऐसा विदित होता है कि कवि की दृष्टि घटनाओं के पौर्वापर्य क्रम के निर्वाह की अपेक्षा दशरथ के पुत्र वात्सल्य और तज्जनित अकारण आशंका को ध्वनित करने पर केन्द्रित है। वे कहते हैं—

देखि मुनि ! रावरे पद आज
भयो प्रथम गनती में अब तें हौं जहँ लौं साधु-समाज।
चरन वंदि, कर जोरि निहोरत, कहिय कृपा करि काज।
मेरे कछु न अदेय राम बिनु, देह गेह, सब राज॥

(गी०बा० ४९)

(३) इसमें जनक के पुरोहित शतानंद के द्वारा राम के शिवधनुष को तोड़ने का समाचार और लग्न पत्रिका भेजी जाती है। यह समाचार पहले भरत सुनते हैं और फिर जाकर कौसल्या को देते हैं। (गी०बा० १०२) वाल्मीकि रामायण या 'मानस' में ऐसा नहीं है। वाल्मीकि रामायण में मंत्री समाचार ले जाते हैं। (वा०रा०बा० ६७-२४, २५) और मानस में दूत पत्रिका ले जाते हैं (रा०मा०बा० २८९-१)।

(४) इसमें ऐसा वर्णन मिलता है कि राम विवाह के बाद जब अयोध्या पहुँचते हैं तब कौसल्या आदि नारियाँ अपनी सात सौ सौतों को सीता के द्वारा प्रणाम कराती हैं—

"पालागनि दुलहियन सिखावति सरिस-सासु सत साता"

(गी०बा० ११०)

वाल्मीकि रामायण या "मानस" में दशरथ की इतनी पत्नियों का उल्लेख नहीं है। हाँ बृहद्धर्म पुराण की राम कथा में साढ़े सात सौ पत्नियों का उल्लेख है।

यज्वा दाता धर्म परः शास्त्रतः पराक्रमः
सार्द्ध सप्तशतं भार्यास्तस्यासन् पृथिवी पतेः

(अध्याय १८-२)

(५) सबमें परशुराम का प्रसंग नहीं है। कौसल्या के द्वारा उसका गूढ़ उल्लेख मात्र हुआ है। (गी०बा० १०९-४)

अयोध्याकांड—

इसमें निम्नलिखित घटनाएँ और विषय ९१ गीतों में वर्णित है।

राम के राज्याभिषेक की तैयारी, राम वन गमन, वन मार्ग में ग्रामीणों का दुख, चित्रकूट, कौसल्या का पुत्र वियोग, दशरथ का शरीर त्याग, भरत का दुख और चित्रकूट प्रस्थान, राम भरत मिलन, राम से शून्य दुखी अयोध्या।

(१) इसमें मंथरा का प्रसंग नहीं है। कहा गया है कि नगर का आनंद देखकर स्वयं कैकेयी रोने लगी और देवमाया के वश होकर कठोर और कुटिल बन गयी। (गी०अयो० १)

(२) इसमें बताया गया है कि कौसल्या पथिकों के द्वारा वनवासी राम को संदेश भेजती हैं कि वे सबसे अधिक राम और लक्ष्मण के घोड़ों की चिंता करती हैं जो उनके वियोग के कारण बहुत व्याकुल हैं। इस प्रकार संदेशा भेजने के वर्णन पर सूरसागर का प्रभाव है जिसमें कृष्ण के वियोग में गोपियों और यशोदा का ऐसा वर्णन किया गया है। (गी० अयो० ८७)

(३) राम के विंध्य पर्वतों तक पहुँचने का समाचार निषादराज से एक पत्रिका के द्वारा भरत को भेजा जाता है। (गी० अयो० ८७-८९) ऐसा न तो वाल्मीकि रामायण में है और न "मानस" में।

अरण्य कांड—

इसमें आठ गीत हैं जिनमें मारीच वध, सीता हरण, जटायु वध, राम का वियोग, जटायु और शबरी से भेंट आदि वर्णित हैं।

(१) इसमें भी "मानस" के समान सीता को छोड़कर जाते समय पर्णकुटी के आगे लक्ष्मण के रेखा खींचने का उल्लेख है। (गी०अ० ७)

(२) इसमें सीता हरण के बाद राम को देवताओं के सीता की सुधि ने का उल्लेख है।

जबहिं सिय सुधि सब सुरनि सुनाई ॥ (गी०अ० ११)

यद्यपि भक्ति-भावना की दृष्टि से यह ठीक माना जा सकता है तो भी कथा की स्वाभाविक गति में इससे बाधा पहुँचती है।

किष्किंधाकांड—

इसमें केवल दो ही पद हैं जिनमें ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव के यहाँ सीता के आभूषण देखकर राम का दुख और वानरों को सीता की खोज में भेजना वर्णित है। बाली वध का उल्लेख भी नहीं है।

सुन्दरकांड—

इसमें ५१ गीत हैं जिनमें अशोक वन में हनुमान और सीता की भेंट, रावण और हनुमान की भेंट, सीता से हनुमान का विदा लेना, हनुमान का राम के सामने सीता के दुख का वर्णन, वानरों की लंका यात्रा, रावण की मंत्रणा, विभीषण की शरणागति और सीता-त्रिजटा संवाद आदि वर्णित हैं।

(१) इसमें सीता और राम-मुद्रिका का संवाद एक उल्लेखनीय विशेषता है। हनुमान जब पेड़ पर से मुँदरी गिराता है तब उसे उठाकर सीता उससे राम और लक्ष्मण का कुशल क्षेम पूछती हैं और मुंदरी उसका उत्तर देती है। (गी० सुं० ३-४)

(२) राम के आगमन के संबंध में पूछते हुए सीता हनुमान के सामने अपनी यह अभिलाषा प्रकट करती हैं कि कब विभीषण राज्य पायेंगे—

"यह अभिलाष रैन-दिन मेरे, राज विभीषण कब पावहिंगे"

(गी० सुं० १०)

यह बात न तो वाल्मीकि रामायण में है और न "मानस" में। इसमें राम की सी उदारता और शरणागत-वत्सलता सीता में भी दिखाने का प्रयत्न लक्षित होता है। काव्य की दृष्टि से इसमें काल-संबंधी दोष है क्योंकि सीता की यह इच्छा विभीषण के राम की शरण में जाने के पहले ही दिखायी गयी है।

(३) इसमें लंका दहन की बात नहीं है।

(४) इसमें विभीषण की शरणागति के प्रसंगे में कुछ विशेषता पायी जाती है। अपनी छाती पर लात खाकर विभीषण सीधे अपनी माँ के पास जाता है जो उसे शांति का उपदेश देकर राम की शरण में जाने की सलाह देती

है। उसके बाद वह धर्म संकट में पड़कर अपने भाई कुबेर के पास जाता है। कुबेर भी यह समाचार सुनकर सुमेर पर्वत पर सोच-विचार करने लगता है। उसी समय वहाँ महादेव आते हैं और विभीषण को राम की शरण में जाने का परामर्श देते हैं क्योंकि वे दुख समुद्र को सोखने के लिए अगस्त्य के समान हैं। इसके बाद वह बहुत विचार करके अंत में राम की शरण में जाता है। (गी० सु० २६-३०) इसमें विभीषण की विचार-शीलता और कवि के हरिहर तत्वों के समन्वय की भावना व्यक्त होती है। इस प्रसंग में विभीषण के अपनी माता के मिलने का वर्णन वाल्मीकीय रामायण के पश्चिमोत्तरीय पाठ में मिलता है। (वा०रा० प० ५-९१) कुबेर से मिलने का उल्लेख गौड़ीय पाठ में मिलता है। (बा०रा०गौ० सु० ८९. ४-४२)

लंकाकांड—

इसमें २३ गीत हैं जिनमें मंदोदरी का रावण को उपदेश, अंगद का दौत्य, लक्ष्मण मूर्च्छा, राम की विजय, अयोध्या में कौसल्या की राम की प्रतीक्षा, राम का अयोध्या-गमन, और राम का राज्याभिषेक वर्णित है। इसमें एक विशेषता दिखाई पड़ती है कि जब संजीवनी लाते हुए हनुमान भरत के द्वारा नीचे गिराये जाते हैं तब लक्ष्मण की मूर्च्छा का समाचार उनको सुनाते हैं। यह सुनकर सुमित्रा लक्ष्मण के राम के प्रति किये गए भक्तिपूर्ण आचरण से प्रसन्न होती है और शत्रुघ्न को हनुमान के साथ राम की सहायता के लिए जाने का आदेश देती हैं। शत्रुघ्न भी तैयार होते हैं (गी० लं० १३) कौसल्या राम को हनुमान के द्वारा ध्वनिपूर्ण संदेश भेजती हैं कि "हे लाल ! तुम्हारा नाम लाल लक्ष्मण के साथ ही शोभित होता है।"

"लाल ! लोने लषन सहित सुललित लागत नाँय ॥[गी. लं. १४]

ध्वनि यह है कि राम लौटें तो लक्ष्मण के साथ ही।

अन्य घटनाओं में "मानस" से कोई परिवर्तन नहीं है। हाँ, सीता की अग्नि - परीक्षा की बात इसमें नहीं है। अवधि बीतते देखकर कौसल्या का शकुन विचार करना इसकी एक सांस्कृतिक विशेषता है।(गी०लं० १९)

उत्तरकांड—

इसमें ३८ गीत हैं जिनमें राम-राज्य, राम-हिंडोला, दीपमालिकोत्सव, वसंत - विहार, अयोध्या का आनंद, सीता का वनवास, लव कुश जन्म आदि वर्णित है। अंतिम गीत में संक्षेप में सारा राम चरित वर्णित है।

(१) इसमें राम बारह हजार पाँच सौ वर्ष के होने के बाद सीता-त्याग चते हैं कि अब थोड़ी ही आयु मेरी शेष है और उसके बाद मुझे पिता जी की आयु भोगनी हैं और इसलिए सीता को साथ रखना ठीक नहीं। इसके अनंतर चरों के द्वारा सीता के बारे लोकमत जानने का उल्लेख किया गया है। (गी०उ० २५-२७)

इसके अतिरिक्त वस्तु विकास की दृष्टि से मानस से कोई परिवर्तन या विशेषता इसमें नहीं है। इस पर सूरसागर शैली का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है।[1]

कवितावली—

तुलसीदास की रचना में राम-कथा खंडित रूप से वर्णित है। इसमें कवि का उद्देश्य गीतावली के समान ही मानस की वस्तु के सम्यक् विकास पर न रहकर उसके चुने हुए प्रसंगों को कलापूर्ण ढंग से प्रतिपादित करने का है। इसमें कवित्व, सवैया, छप्पय और झूलना छंदों का प्रयोग किया गया है जिन सबको कवित्त ही कहा जाता था और इसीलिए यह "कवितावली" के नाम से प्रसिद्ध हुई।[2] इसमें गीतावली से भी कम कथा-प्रसंग गृहीत हैं और सुन्दर साहित्यिक ढंग से प्रस्तुत किये गये हैं। अतः इसकी कथा घटनात्मक न होकर भावात्मक है जिसका विभाजन सात कांडों में हुआ है। यह मुक्तक शैली का काव्य है। इसका रचना काल संवत् १६६९ के लगभग माना जाता है।[3]

बालकांड—

इसमें २२ कवित्त हैं जिनमें दाशरथियों के द्वार दर्शन के समय लोगों का आनंद, चारों भाइयों की बाल लीलाएँ, जनक की सभा में शिव धनुर्भंग, राम और सीता का विवाह, लक्ष्मण और परशुराम का संवाद, विश्वामित्र का उत्तर तथा परशुराम का प्रस्थान वर्णित है।

(१) इसमें राम आदि भाइयों का जन्म, विश्वामित्र का दशरथ के यहाँ आगमन, उनके यज्ञ की रक्षा, अहिल्या का उद्धार आदि का वर्णन नहीं है।

(२) इसमें परशुराम का प्रसंग मानस के विपरीत और वाल्मीकीय रामायण के समान विवाह के उपरांत आता है (क० बा० १८-२२)

---

१. डा० रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—पृ. ३९०-३९५
२. स्व० लाला भगवानदीन—कवितावली— अंतर्दर्शन पृ. ६
३. डा० माता प्रसाद गुप्त—तुलसीदास, पृ. २५३

अयोध्याकांड—

इसमें २८ छंद है जिनमें राम-वन-गमन, कौसल्या का दुख और सुमित्रा की सांत्वना, गंगा पार करते समय केवट प्रसंग, वन मार्ग में राम, सीता और लक्ष्मण, आदि प्रसंग वर्णित हैं। इसमें मंथरा प्रसंग, दशरथ की मृत्यु, राम और भरत का मिलन आदि मुख्य प्रसंग नहीं हैं।

अरण्यकांड—

इसमें केवल एक ही छंद है जिसमें पंचवटी में राम, सीता और लक्ष्मण का वर्णन करके राम के माया मृग के पीछे दौड़ने की सूचना दी गई है। इस कांड की अन्य सब घटनाएँ छोड़ दी गई हैं।

किष्किंधाकांड—

इसमें भी एक ही छंद है जिसमें हनुमान के सागरोल्लंघन का वर्णन है। सुग्रीव की मैत्री, बाली का वध आदि अन्य घटनाएँ नहीं हैं।

सुन्दरकांड—

इसमें ३२ छंद हैं जिसमें हनुमान का अशोक वन में सीता को देखना, अशोक-वाटिका का ध्वंस, और लंका दहन वर्णित हैं। लंका दहन का वर्णन तुलसीदास ने रस विभोर होकर किया है। ऐसा वर्णन उनकी अन्य किसी भी रचना में नहीं मिलता है।

लंकाकांड—

इसमें ५८ छंद हैं जिनमें त्रिजटा और सीता का संवाद, रावण की सभा में अंगद का चरणरोपना, मंदोदरी का रावण को उपदेश, वानरों और राक्षसों का युद्ध, लक्ष्मण की मूर्च्छा पर राम का दुख, हनुमान की वीरता, राक्षसों और रावण का संहार आदि घटनाएँ वर्णित हैं। इसमें भी युद्ध का वर्णन बड़े साहित्यिक ढंग से किया गया है।

उत्तरकांड—

इसमें १८३ छंद हैं जिनका संबंध राम कथा से बिल्कुल नहीं है। फिर भी यह इस ग्रन्थ का सबसे बड़ा कांड है। इसमें, तुलसी के जीवन की कतिपय घटनाओं का चित्रण मिलता है जिनसे उनकी जीवनी पर प्रकाश पड़ता है। इसके अतिरिक्त भक्ति, नीति, कलियुग के दुख, रुद्रबीसी आदि बहुत-सी बातों का वर्णन किया गया है।

ऊपर के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि "कवितावली" में कथा का

महत्व नहीं हैं । उसकी विशेषता, जहाँ तक राम कथा का संबंध साहित्यिक हैं ।

रामाज्ञा प्रश्न

इसकी रचना तुलसीदास ने संवत् १६२१ में की थी ।[1] इसे दोहावली रामायण भी कहते हैं ।[2] इसमें यद्यपि राम कथा ही लिखी गयी है तो भी शकुन विचार की दृष्टि इस ग्रन्थ की प्रधानता है । इसमें जो दोहे लिखे गये है जहाँ एक ओर राम कथा को अग्रसर करते हैं वहाँ दूसरी ओर अनेक प्रश्नों का फल भी बता देते हैं । प्रायः इनका क्रम ऐसा है कि दोहे के पूर्वार्द्ध में कथा की सूचना मिलती है और उत्तरार्द्ध किसी प्रश्न के फल की सूचना दी गयी है जैसे—

चलो नहाइ प्रयाग प्रभु लखन सीय रघुराज
तुलसी जानब सगुनफल होइहि साधु समाज ॥

(रा० प्र० २-१-७)

इसमें सात सर्ग हैं । प्रत्येक सर्ग के सात सप्पक हैं और प्रत्येक सप्तक के सात दोहे । इस प्रकार इसमें कुल ३४३ दोहे हैं । कथा इसकी बहुत संक्षिप्त है । कथा की दृष्टि से यद्यपि यह प्रबंधात्मक है यथापि प्रतिपादन की शैली के विचार से मुक्तक है ।

प्रथम सर्ग -

इसमें राम - जन्म से लेकर राम - विवाह तक की कथा है । इसकी विशेषता यह है कि इसमें दशरथ की मृगया और शाप का वर्णन "रघुवंश" के समान ही पहले ही कर दिया गया है । (रा० प्र० १-२-३) इसमें परशुराम के गर्वभंग का प्रसंग वाल्मीकि रामायण के समान विवाहोपरांत ही आता है । (१-६-४)

द्वितीय सर्ग—

इसमें राम राज्याभिषेक की तैयारी से लेकर राम के पंचवटी-निवास तक की कथा है ।

तृतीय सर्ग—

इसकी कथा शूर्पणखा के विरूपीकरण से लेकर सीता की खोज करनेवाले

---

१. डा० माता प्रसाद गुप्त—"तुलसीदास—पृ, २२३

२. डा० रामकुमार वर्मा—"हिन्दी साहित्य का आ० इतिहास, पृ० ३८०

हनुमान आदि वानरों के संपाति से मिलने तक चली। इसमें कहा गया है कि हनुमान ने राम की दी हुई मुद्रिका अपने मुँह में रख ली थी। (रा०प्र०३-७-१)

चतुर्थ सर्ग—

इसमें विचित्रता यह है कि फिर से राम जन्म लेकर विवाह तक की कथा कही गई है जिसका कोई संतोषजनक कारण ज्ञात नहीं होता। डा० रामकुमार वर्मा कहते हैं कि कथा के मध्य में भी शकुन का मंगलमय और और आनंदमय रूप रखने लिए तुलसीदास ने ऐसा किया होगा।[1]

पंचम सर्ग—

हनुमान के सागरोल्लंघन से लेकर रावण वध के अनंतर विभीषण के राज्याभिषेक तक की कथा इसमें वर्णित है। इसमें विभीषण की शरणागति और सेतु बंधन का, क्रम बदल दिया गया है। पहले समुद्र पर राम के क्रोध करने की बात कही गयी है और बाद में विभीषण की शरणागति वर्णित है। (रा०प्र० ५-५-६, ५-६-१)

षष्ठ सर्ग—

इसमें सीता की अग्नि परीक्षा से लेकर भू-प्रवेश तक की कथा कही गयी है। इसमें गृध-उलूक की कथा का उल्लेख किया गया है (रा०प्र०६-६-२) जो वाल्मीकि रामायण के पश्चिमोत्तरीय पाठ और पद्मपुराण के सृष्टि खंड में मिलती है। (वा०रा०प०उ० ६३; पद्म सृ० ३४)

सप्तम सर्ग—

इसमें शकुन विचार संबंधी स्फुट दोहे हैं। कहा जाता है कि इसकी रचना तुलसीदास ने अपने मित्र गंगाराम के लिए की थी।

इसकी कथा अधिकतर वाल्मीकि रामायण के अनुसार चली है। षष्टम सर्ग में वाल्मीकि रामायण के उत्तर कांड की कुछ कथायें भी मिलती हैं जैसे राम का ब्राह्मण को जीवित करना (६-५-४), श्वान और ब्राह्मण की कथा आदि। किंतु इसमें ब्राह्मण कुमार को जीवित करने के प्रसंग में शंबूक वध की बात नहीं कही गयी है। जैसे ही मृत बालक को लेकर ब्राह्मण दंपति आते हैं, आकाशवाणी होती है—

बिबुध बिमल बानी गगन, हेतु प्रजा अपचारु
राम राज परिनाम भल कीजिय बेगि बिचारु ॥

---

१. डा० रामकुमार वर्मा—हिंदी सा० का आ० इतिहास पृ. ३८१।

तब राम—

कोशल पाल कृपाल चित बालक दीन्ह जिआइ।
सगुन कुसल कल्यान सुभ रोगी उठै नहाइ ॥४॥

इस प्रकार के प्ररिवर्तन में तुलसीदास राम की भगवन्महिमा ही दिखाना चाहते थे।

इसके कुछ दोहे दोहावली और "वैराग्य संदीपनी" में मिलते हैं। काव्यात्मक दृष्टि से इसका कोई महत्व नहीं है क्नोंकि शकुन विचार ही इसका प्रधान लक्ष्य है। यद्यपि इसकी भाषा अवधी अधिक है तथापि व्रज भाषा का पुट भी मिलता है।

बरवै रामायण

तुलसीदास की यह रचना बरवै छंदों में लिखी जाने के कारण बरवै रामायण कहलायी। यद्यपि इसमें राम कथा कही गई है किन्तु वस्तु के सम्यक् विकास पर कवि की दृष्टि नहीं रही और न इसमें उल्लिखित घटनाओं का परस्पर संबंध ही रहा। अत: इस दृष्टि से इसे मुक्तक काव्य कहा जा सकता है।

इसकी कथा सात कांडों में विभक्त है जो यों हैं—
बालकांड में १९ छंद हैं—इसमें राम और सीता का सौंदर्य, शिवधनुर्भंन, और सखियों का विनोद वर्णित हैं।

अयोध्याकांड—

इसमें ८ छंद है और मंथरा की कुटिलोक्ति, राम वग-गमन, केवट प्रसंग और राम, लक्ष्मण के संबंध में वाल्मीकि वचन का उल्लेख है।

अरण्यकांड—

इसमें ६ छंद हैं। दसमें शूर्पणखा का विरूपीकरण और सीता हरण के पश्चात् राम का दुख वर्णित है।

किष्किधाकांड—

इसमें २ छंद हैं। रास और सुग्रीव की मैत्री।

सुन्दरकांड—

इसमें ६ छंद हैं। इसमें हनुमान के प्रति सीता की बातें और लंका से लौटकर श्रीराम के प्रति हनुमान का वचन है।

लंकाकांड –

इसमें एक ही छंद है जिसमें राम की सेना का वर्णन है ।

उत्तरकांड—

इसमें २७ छंद हैं जिनमें राम - नाम की महिमा बताकर उसका जप करने का उपदेश दिया गया है ।

इस विवरण से यह स्पष्ट होता है कि इसकी कथा शृंखलाबद्ध नहीं। कवि की दृष्टि में आलंकारिक शैली-प्रधान विदित होती है । केवल उत्तरकांड में ही भक्ति की बात आती है । अन्यथा अन्य कांडों की रीत्यात्मक दृष्टि मिलती है । इसके स्फुट छंदों का संकलन सं० १६६९ में (सन् १६१२) किया गया होगा ।[1]

'जानकी मंगल'

इसकी रचना संवत् १६२७ के लगभग हुई थी ।[2] यह खंड काव्य है जिसमें राम और सीता का विवाह वर्णित है । इसका प्रारंभ वाल्मीकि रामायण या मानस के समान राम जन्म से न होकर जानकी के स्वयंवर की तैयारी से होता है जो रचना के नामकरण के बहुत अनुकूल है । प्रारंभ में कवि इष्टदेव वंदना करके स्वयंवर की तैयारी का वर्णन करते हैं । आगे की परशुराम गर्व भंग तक की घटनाएँ जो वर्णित हैं सब प्रायः वाल्मीकि रामायण के ही अनुसार हैं । शिव धनुषभंग के समय इसमें भी मानस के समान लक्ष्मण पृथ्वी और पर्वतों को स्थिर रहने को कहते हैं । (जा०मं० ९८) इसकी रचना में आठ-आठ अरुण छंदों के बाद एक हरिगीतिका छंद प्रयुक्त हुआ है । यही क्रम काव्य भर में रहा जो १९२ अरुण छंदों और २४ हरिगीतिकाओं में पूरा हुआ है । अंत की हरिगीतिका में काव्य की फल-श्रुति भी कही गई है । (जा०मं०२४)

विनय पत्रिका

तुलसीदास का यह ग्रंथ उनके व्यक्तित्व पर अच्छा प्रकाश डालता है । इसी दृष्टि से इस पर कुछ विस्तार से विचार किया जाता है यद्यपि कथा-वस्तु इसमें कुछ नहीं है । उसकी वस्तु भावात्मक और साधनात्मक है जो इसकी शास्त्रीय परीक्षा के द्वारा व्यक्त की जा सकती है । शास्त्रीय परीक्षा का क्रम यों है—

उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम्
अर्थवादोपपत्तीच लिंगेतात्पर्यनिर्णये ॥

---

१. डा० रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. ३७६

२. डा० माताप्रसाद गुप्त—तुलसीदास–पृ० २२७

"विनय पत्रिका" भगवान राम की सेवा में भेजी गई तुलसीदास की प्रार्थना भरी पत्रिका है जिसकी रचना का परम उद्देश्य है—भक्त का भगवान के द्वारा अपनाया जाना। भगवान के द्वारा अपनाये जाने के लिए भक्ति साधन रूप संबल है जो अंततः साध्य भी बन जाती है। इस मान्यता को लेकर विनय पत्रिका का आरंभ (उपक्रम) किया जाता है। गणेश की वंदना से, जिसमें कहा गया है—

माँगत तुलसीदास कर जोरे। बसहिं रामसिय मानस मोरे॥

इसके बाद विभिन्न देवी देवताओं की स्तुति की जाती है और उस राम की भक्ति की याचना की जाती है जो "विधि हरि शंभु नचावनिहारे" परब्रह्म हैं जिससे भगवान की आत्मीयता प्राप्त हो जाय। यही ग्रंथ का उपक्रम है।

विनय पत्रिका का उसंहार वहाँ मानना चाहिए जहाँ २७५ वें पद में कहा गया है—

तुलसी तिहारो भये, भयो सुखी, प्रीति प्रतीति बिना हूँ।
नाम की महिमा, शील नाथ को, मेरो भलो बिलोकि अबतें सकचाहुँ सिहाहूँ

यहाँ तक आकर तुलसीदास को विश्वास हो जाता है कि वे राम के हो गये हैं। और आगे लक्ष्मणजी की सिफारिश के द्वारा पत्रिका पर राम की सही पड़ जाती है और पत्रिका के उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है।

अभ्यास की दृष्टि से पत्रिका के बहुत से पद उद्धत किये जा सकते हैं जिनमें तुलसीदास ने नाम जप का उपदेश दिया है। विभिन्न देवी देवताओं की स्तुति के बाद ६५ वें पद में पत्रिका का वास्तविक विनय भाग अभ्यास के द्वारा ही शुरू होता है जिसमें तुलसी अपनी जिह्वा को राम नाम रटने की शिक्षा और मन को हठपूर्वक राम में प्रति रखने का उपदेश देते हैं।

राम राम रटु राम राम रटु राम राम जपु जीहा।
रामनाम नवनेह मेह को मन ! हठि होहि पपीहा॥

जहाँ कहीं उनको अवसर मिला है तुलसीदास ने अनेक उदाहरण और उपमाएँ देकर मन को नाम जप के द्वारा राम की भक्ति करने का उपदेश दिया है क्योंकि स्वयं राम-भक्ति साधन होने के साथ-साथ साध्य भी है जिसका अवश्यंभावी परिणाम राम के द्वारा अपनाये जाने में प्राप्त होगा।

किसी ग्रंथ की अपूर्वता वहाँ मानी जाती है जहाँ किसी विलक्षण बात का वर्णन तात्पर्यनिर्णय में साधक बनता है। विनय पत्रिका की अपूर्वता उन

स्थानों में है जहाँ तुलसीदास ने नाम महिमा के द्वारा अजामिल, गणिका, व्याध आदि पापियों को सद्गति मिलने का वर्णन किया है और इसलिए कलिकाल में राम नाम को कामतरु बताकर धोखे से भी सही, नाम लेने का उपदेश दिया है। "कलि नाम कामतरु राम को!" तुलसी का यह विश्वास उनकी इस मान्यता पर आधारित है कि—

निरगुन तें एहि भाँति बड़ नाम प्रभाउ अपार
कहउँ नाम बड़ राम तें निज विचार अनुसार ।।

तुलसी का यह विश्वास पत्रिका भर में व्याप्त है। विनय पत्रिका का २२८ वाँ पद इसका सुंदर उदाहरण है—

प्रिय राम नाम तें जाहि न रामो
ताको भलो कठिन कलिकालहुँ आदि मध्य परिनामो ।।१।।
सकुचत समुझि नाम-महिमा, मद लोभ मोह कोह कामो ।
राम नाम जप निरत सुजन पर करत छाँह घोर घामो ।।२।।
नाम प्रभाउ सही, जो कहै कोउ सिला सरोरुह जामो ।
जो सुनि, सुमिरि भाग भाजन भइ सुकृतशील भील भामो ।।३
बाल्मीकि अजामिल के कछु हुतो न साधन सामो ।
उलटे पलटे नाम महातम गुंजनि जितो ललामो ।।४।।
राम तें अधिक नाम करतब जेहि किये नगर-गत गामो ।
भये बजाइ दाहिने जो जपि तुलसीदास से बामो ।।५।।

पत्रिका का फल वहाँ माना चाहिए जहाँ तुलसीदास अपने को तरा हुआ और सुधारा हुआ कहते हैं। ऊपर के पद में "भये बजाइ दाहिने जो जपि तुलसिदास से बामो ।", "औरनि की कहाचली, एकै बात भलै भली, राम नाम लिए तें तुलसी से हूँ तरत" (२५१ वाँ पद) और

"मैं तोहिं अब जान्यो संसार ।
बाँधि न सकहि मोहि, हरि के बल, प्रगट कपट आगार [१८८]

आदि पंक्तियों में पत्रिका का फल वर्णित है।

प्रतिपाद्य विषय के फल तथा स्वरूप का बोध करानेवाले प्रशंसात्मक या व्याख्यात्मक वाक्य अर्थबाद के अंतर्गत आते हैं। पत्रिका के १३५ वें पद के "जपि नाम, करहि प्रनाम, कहि गुन ग्राम, रामहि धरि हिए बिचरहि अवनि अवनीस—चरन सरोज मन—मधुकर किए ।। और १३७ वें पद के "हैं काके द्वै

सीस, ईस के जो हठि जन की सींव चरै । तुलसिदास रघुवीर बाहुबल सदा अभय काहू न डरै ।। आदि वाक्यों में अर्थवाद देखा जा सकता है ।

अनेक युक्तियों के द्वारा अपने प्रतिपाद्य विषय को सिद्ध करना उपपत्ति कहलाता है । विनय पत्रिका के वे सब स्थल उपपत्ति के उदाहरण हैं जहाँ जहाँ तुलसी ने अपनी दीनता और राम की महिमा और शील का वर्णन कर यह सिद्ध किया है कि राम कम से कम अपने आश्रितवत्सल बिरुद की रक्षा के लिए उन्हें अपनायेंगे । जैसे—

१. **तुमसुखधाम राम स्रमभंजन, हौं अति दुखित त्रिविध श्रम पाई ।।**
   यह जिय जानि दास तुलसी कहँ राखहु सरन समुझि प्रभुताई ।। २४२ ।।

२. **पाथ—माथे चढ़े तृन तुलसी ज्यों नीचे ।**
   बोरत न बारि, ताहि जानि आपु सींचो ।। ७२ ।।

३. **उथपेथपन, उजारि बसावन, गई बहोरि बिरद सदई है ।**
   तुलसी प्रभु आरत—आरतिहर, अभय बाँह केहि-केहि न दई है ।। १३९ ।।

४. **जेहि कौतुक बक स्वान को प्रभु न्यावनिबेरो**
   तेहि कौतुक कहिये कृपालु "तुलसी" है मेरो ।। १४६ ।।

आदि ।

कभी अपने में अहं के कारण दीनता का अभाव पाकर भी तुलसी राम को गरीब निवाज जानकर विदग्ध ढंग से कहते हैं—

नाथ गरीब निवाज हैं, मैं गही न गरीबी
तुलसी प्रभु निज ओर तें बनि परै सो कीबी ।। १४८ ।।

तुलसी जैसे मलिन मन रूपी मीन को विषय वारि से निकालना राम के लिए कौतुक मात्र है । इसीलिए कहते हैं—

कृपा डोरि, बनसी पद अंकुस, परम प्रेम मृदु चारो
एहिबिधि बेधि हरहु मेरो दुख, कौतुक राम तिहारो ।। १०२ ।।

कभी राम को उलाहना देते हुए भी कहा जाता है—

केसव, कारन कौन गुसाईं ।
जेहि अपराध असाधु जानि मोहिं तजेहु अग्य की नाईं ।
परम पुनीत संत कोमल चित तिनहिं तुमहिं बनि आई ।
तौ कत बिप्र व्याध गनिकहि तारेहु कछु रही सगाई ? ।।

इन सब उदाहरणों में उपपत्ति के द्वारा पत्रिका के प्रतिपाद्य विषय की सिद्धि का प्रयत्न देखा जा सकता है ।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि विनय पत्रिका का परमोद्देश्य व प्रतिपाद्य विषय है राम की शरणागति और यही इसकी प्रधान वस्तु है। इसकी साधना प्रणाली पर आगे विचार किया जायगा।

रामचंद्रिका

केशवदास की रामचंद्रिका वस्तु संगठन और विकास की दृष्टि से कुछ शिथिल है क्योंकि उनकी दृष्टि वर्णनों पर जितनी थी उतनी वस्तु-विकास और चरित्र-चित्रण पर नहीं। उन्होंने भी वाल्मीकीय रामायण को ही अपना आधार बना लिया। किंतु अन्य ग्रंथों से भी पर्याप्त सामग्री ली, विशेषत: जयदेव के "प्रसन्न राघव" से। इसकी रचना संवत् १६५८ में हुई है जैसाकि कवि ने स्वयं कहा है। (रा. चं. १-६)

यह पूरा ग्रंथ उनचालीस प्रकाशों में बँटा है। प्रत्येक प्रकाश के आरंभ में उसमें आनेवाली प्रधान घटनाओं का उल्लेख कर दिया गया है। पहले प्रकाश में इष्ट देव वंदना के बाद कविवंश का परिचय, ग्रंथ रचना काल, ग्रंथ रचना का कारण देकर कथा का प्रारंभ दशरथ और उनके चारों पुत्रों के उल्लेख के साथ किया गया है। उसके बाद विश्वामित्र के आगमन और अयोध्या का वर्णन किया गया है। यह संस्कृत काव्य परिपाटी के अनुसार किया गया है जिसमें सरयू, दशरथ के हाथी, बाग, नगर निवासी लोगों का वर्णन आलंकारिक शैली में मिलता है। यहाँ से लेकर वाल्मीकीय रामायण के अंत तक की कथा संक्षिप्त रूप में कही गई है जिसमें काव्यात्मक दृष्टि के अपेक्षाकृत कम होने के कारण रसोद्दीपक भावपूर्ण प्रसंगों को छोड़ दिया गया है और फलत: प्रबंध काव्य की दृष्टि से वस्तु विकास में शिथिलता आ गई है। आगे उन मुख्य-मुख्य प्रसंगों पर प्रकाश डाला जायगा जो उन्होंने वाल्मीकि—इतर साहित्य से ग्रहण किए।

(१) राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ जाकर उनकी यज्ञरक्षा करते हैं तब मिथिला से विश्वामित्र के आश्रम में एक ब्राह्मण आता है जो जनक के धनुषयज्ञ के दृश्यों का वर्णन करता है। जनक की सभा में सुमति और विमति धनुष-यज्ञ में भाग लेने के लिए आये हुए अनेक राजाओं का वर्णन करते हैं। रावण और बाणासुर भी उसमें भाग लेकर सीता का पाणिग्रहण करने के उद्देश्य से आते हैं किंतु धनुष की गुरुता देखकर बाण निराश होता है और बहाना बनाकर कि यह मेरे गुरु का धनुष है और सीता मेरी माता है, दोनों दृष्टियों से मेरा प्रयत्न अनुचित होगा, सहर्ष चला जाता है। रावण तो

कहता है कि मैं सीता को लिए बिना नहीं जाऊँगा और प्रतिज्ञा करता है कि जबतक मैं अपने किसी सेवक की आर्त पुकार नहीं सुनूँगा तब तक यहाँ से नहीं टलूँगा। इसी क्षण उसे किसी राक्षस की आर्त्तवाणी सुन पड़ती है और रावण उसकी रक्षा के लिए स्वयंवर सभा छोड़ कर निकल पड़ता है। अपने सम्मान की रक्षा के लिए रावण की भी यह चालवाजी है। यह पूरा प्रसंग प्रसन्न राघव नाटक से लिया गया है। [प्र०रा० १] किंतु अंतर यह है कि प्रसन्न राघव के मंजीरक और नूपुरक के स्थान में इसमें सुमति और विमति आते हैं। दूसरे प्रसन्नराघव में वाण नंदनवन को उखाड़ने के बहाने से चला आता है और इसमें शिव और सीता के प्रति भक्ति भाव दिखाकर युक्तिपूर्वक चला जाता है। यह सारा वर्णन ब्राह्मण के द्वारा होता है। वह आगे और भी कहता है कि जब लोगों को सीता के बिवाह के संबंध में संदेह होने लगा तब एक ऋषि की स्त्री सीता के साथ एक सुंदर राजकुमार को लिए आयी। यह तो केवल सीता का चित्र था जिसमें वह राजकुमार भी चित्रित था। वास्तविक राजकुमार नहीं। राजकुमार का वह चित्र आपके पास बैठे हुए इस राजकुमार [राम] का सा है। ब्राह्मण की ये बातें सुनकर विश्वामित्र राम और लक्ष्मण के साथ मिथिला जाते हैं [रा. चं. ५, १-३] राम और लक्ष्मण के मिथिला जाने का यह कारण बस्तुस्थिति की दृष्टि से बिलकुल असंगत और उपहासास्पद है।

(२) इसमें परशुराम के गर्वभंग के प्रसंग में राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चारों भाई भाग लेते हैं और परशुराम को अपने व्यंग्य वाणों से परास्त करने का प्रयत्न करते हैं। किंतु परशुराम जब हारते नहीं और राम के साथ रार बढ़ाते ही जाते हैं तब स्वयं भगवान शिव आते हैं और दोनों को उनके अवतारों का ज्ञान कराकर शांत करने का प्रयत्न करते हैं। (रा. चं. ७, ४३-४७) तब भी परशुराम राम को विष्णु का धनुष देते हैं जिस पर बाण चढ़ाकर राम परशुराम की गति मार देते हैं। यह प्रसंग भी यद्यपि प्रसन्न राघव नाटक से लिया गया है (प्र. रा. ४) तथापि निर्वहण में केशव की मौलिकता भी दिखाई देती है। प्रसन्न राघव में केवल राम और लक्ष्मण ही भाग लेते हैं। किंतु कवि इसमें भरत और शत्रुघ्न को भी स्थान देकर समयानुकूल उनकी चित्तवृत्ति का भी परिचय देते हैं। प्रसन्नराघव में परशुराम और राम दोनों लड़ने के लिए जाते हैं। किंतु इसमें स्वयं शिव आकर जिनका धनुष तोड़ दिया गया है, परशु-राम को समझाने लगते हैं। केशव की यह कल्पना भक्ति भावना की दृष्टि से औचित्यपूर्ण है।

(३) इसमें दशरथ की मृत्यु का प्रसंग केवल उल्लिखित है। उसका काव्योचित वर्णन नहीं है। गुह का प्रसंग ही इसमें नहीं है। (रा. चं. ९—३१)।

(४) इसमें राम और भरत के मिलन के प्रसंग में कहा गया है कि भरत भागीरथी के किनारे जाकर शरीर-त्याग का संकल्प करते हैं तो गंगा सुंदर स्त्री का रूप धारण करके आती हैं और भरत को राम के अवतार का रहस्य समझाती हैं और भरत को शरीर त्याग के प्रयत्न से विरत करती हैं। (रा. चं. १०, ३८–४३) कथा को क्षिप्र गति से चलाने के लिए यह केशव की कल्पित घटना है।

(५) "रामचंद्रिका" में सीता वनवास के समय में वीणावादन करके राम को प्रसन्न करती हैं। शायद वे अपने साथ वन में वीणा भी ले गई हों। इस प्रकार के वर्णन में कवि की दृष्टि स्वाभाविक वस्तुविकास पर नहीं, बल्कि राजांत:पुर की बँधी-बँधायी रीति और रिवाजों को स्थान देने की ओर अधिक है यद्यपि यह प्रसंग विरुद्ध है। (रा. चं ११—२७)

(६) इसमें बताया गया है कि शूर्पणखा राम के शरीर की सुगंधि से आकृष्ट होकर उनके सामने आ जाती है। यह सुगंध दूती बनकर उसे ले आती है। इस पर भी रीतिकालीन नायक नायिका के परस्पराकर्षण की प्रवृत्ति का प्रभाव दिखाई पड़ता है। वात्स्यायन के काम सूत्रों में शारीरिक सुगंध का वर्णन मिलता है। (रा. चं. ११—३१)

(७) इसमें मानस के समान सीता-हरण के पूर्व राम सीता से कहते हैं—

राजसुता एक मंत्र सुनो अब। चाहत हौं भुव भार हर्यौंसब।
पावक में निज देहहि राखहु। छाय शरीर मृगै अभिलाषहु॥

(रा. चं. १२—१२)

अध्यात्म रामायण में इसका उल्लेख मिलता है। (अ. रा. अ. ७—२३)

(८) इसमें लक्ष्मण सीता को पर्णकुटी में छोड़कर राम की सहायता के लिये जाते हुए धनुष से एक रेखा खींचते हैं और कहते हैं कि जो कोई इस रेखा को लाँघेगा भस्म हो जायगा। (रा. चं. १२—१८)। इसका वर्णन आनंद रामायण में मिलता है।

मयैतां धनुषा रेखां कृतां त्वत्वरितोऽधुना।
त्वद्रक्षणार्थं दुष्टानां दुर्विलंध्यां महत्तमाम्॥

मा त्वमुक्ष्लेंवयस्वेमां प्राणैः कंठगतैरति ॥
इत्युक्त्वा धनुषः कोट्या कृत्वा रेखां समंततः
(आ. रा. सा. ७. ९८–१००)

(९) रामचंद्रिका में राम बाली से कहते हैं कि "अगले कृष्णावतार में मुझे मारकर तुम बदला लोगे और संगार से पार हो जाओगे। (रा. चं. १३—४) यह बात आनंद रामायण में मिलती है :

यद्यपि त्वं दुराचारो निहतोसि रणे मया
तथापि भिलल रूपेण द्वापरांतेऽध्रिणं मम
भित्वा प्रभासे बाणेन पूर्व वैरेण वानर।
ततो मद्धस्तमरणस्यास्य कारण गौरवात्
मुक्ति गच्छसि त्वं वालिन् शुभां जन्मांतरेण हि।
(आ. रा. सा. ८. ६६—६८)

इसी का प्रभाव रामचंद्रिका पर लक्षित होता है। इसकी सूचना हनुमन्नाटक में मिलती है। (हनु. १४. ७५)

(१०) इसमें सीता प्रसन्न राघव की सीता के समान अशोक वृक्ष से अग्निकण माँगती है और उसी समय हनुमान ऊपर से राम की मुद्रिका गिराता है जिसे सीता चिनगारी समझती हैं। [रा. चं. १३. ६५-६६)

(११) रामचंद्रिका में यह बताया गया है कि रावण ने विभीषण के सिर पर लात मारी जिससे खिन्न होकर वह राम की शरण में गया है। [र. चं. १५-१३] इसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण के गौड़ीय तथा पश्चिमोत्तरीय पाठों में मिलता है [गौ. रा. ५ सर्ग ८१-८७, प. रा. ५ सर्ग ८१-८६, ८९ और ९०]

(१२) रामचंद्रिका में राम सेतुबंध के बाद उसके मूल स्थान पर एक शिव लिंग की प्रतिष्ठा करते हैं। [रा. चं. १५-३४] अध्यात्म और आनंद रामायणों में इसका उल्लेख मिलता है।

(१३) उसमें अंगद दौत्य के प्रसंग में रावण अंगद को भेद नीति के द्वारा राम से फोड़ने का प्रयत्न करता है। (रा. चं. १६) इस पर हनुमन्नाटक का प्रभाव मालूम होता है। उसमें रावण अंगद को धिक्कारता है कि पितृहन्ता राम का वह दूत बना। [हनु. ८ अंक]

(१४) इसमें विभीषण के द्वारा बताया गया है कि वही वीर इंद्रजीत

को मार सकता है जो बारह वर्ष तक आहार छोड़कर निद्रा और स्त्री से दूर रहता है ।

सोई वाहि हलै कि नर वानर रीछ जो को कोइ ।
बारह वर्ष छुधा त्रिया निद्रा, जीते होइ ।।

[रा. चं. १८-३१]

अध्यात्म और आनंद रामायणों में इसका उल्लेख मिलता है ।

विभीषणोऽपि तं प्राह नासावन्यैर्निहन्यते ।
यस्तु द्वादशवर्षाणि निद्राहार विवर्जितः ।
तेनैव मृत्युर्निर्दिष्ये ब्रह्मणास्य दुरात्मनः ।

[अ. रा. यु. ८-६४-६५]

ये ही पंक्तियाँ आनंद रामायण में भी मिलती हैं । [आ. रा. सार. ११-१७५ –१७६]

(१५) रामचंद्रिका में इन्द्रजीत के वध के बाद रावण राम के पास एक दूत के द्वारा संदेश भेजता है कि राम उसे परशुराम को जीतकर प्राप्त किया हुआ परशु दे दें जिसके बदले में वह सीता को लौटा देगा । [रा. चं. १९-१७) इसके उत्तर में राम कहला भेजते हैं—

भूमि दई भुवदेवन को भृगुनंदन भूपनसो वर लैकै
वामनस्वर्ग दियो मघवै सो बली बाँधि पाताल पठै कै ।।
संधि की बातन को प्रति उत्तर आपुन ही कहिये हित कैकै ।
दीन्हीं है लंक विभीषण को अब देहिं कहा तुमको यह दै कै ।।

[राम०चं० ११-२१]

हनुमन्नाटक में यह प्रसंग पाया जाता है जिसका प्रभाव रामचंद्रिका पर लक्षित होता है । [हनु०१४ अंक] । केशवदास थोड़ा और आगे बढ़कर मंदोदरी और रावण के चरित्रों पर भी नया प्रकाश डालते हैं । रावण का यह संधि प्रस्ताव देखकर मंदोदरी उसकी निंदा करते हुए वीर नारी बनकर कहती है—

तब सब कहि हारे राम को दूत आयो ।
अब समझ परी जो पुत्र भैया जुझायो ।।
दसमुख सुख जीजै रामसौं हौं लरौं यों ।
हरिहर सब हारे देवि दुर्गा लरी ज्यों ।।

[रा०चं०१९-२२]

हनुमन्नाटक में मंदोदरी कहती है कि "हे लंकेश आप दुख मत कीजिये। मुझे आज्ञा दीजिये तो सुक्षत्रिया होने के कारण मैं युद्ध में कूद पड़ूँगी।" [हनु. १४-७] इस पर रावण अपनी कपट नीति का परिचय देते हुए कहता है—

छल करि पठयो तो पावतो जो कुठारै।
रघुपति बपुरा को धावतो सिंधुपारै।
हति सुरपति भर्ता विष्णु माया विलासी।
सुनहि सुमुखि तों को ल्यावतोलक्षि दासी॥

[रा०चं० १९-२३]

इससे रावण की वीरता में कलंक लगता है। राम के प्रति भक्ति के कारण प्रतिनायक रावण का चित्रण उसे नीचा दिखाने के लिए इस प्रकार निम्न स्तर का किया गया है जिसमें सांप्रदायिक दृष्टिकोण से रावण के प्रति कवि की सहानुभूति का अभाव लक्षित होता है। रावण की यह चरित्रगत दुर्बलता मूल हनुमन्नाटक में नहीं है।

(१६) इसमें रावण राम पर विजय पाने के लिए शुक्र के परामर्श से गूढ़ में एक यज्ञ करता है जिसका ध्वंस करने के लिए राम के द्वारा बानर भेजे जाते हैं और अंगद मंदोदरी के केश पकड़कर रावण के सामने खींच लाता है। तब रावण उसे मारने के लिए यज्ञ छोड़कर उठ जाता है। [रा. चं० १९, २४-३३] इस होम का वर्णन वाल्मीकि रामायण के पश्चिमोत्तरीय पाठ में, अध्यात्म और आनंद रामायणों में मिलता है जैसाकि पहले दिखाया गया है।

(१७) इसमें राम के राज्याभिषेक के बाद अंगद राम को अपने साथ युद्ध करने की चुनौती देता है जिसका कारण यह है कि राम ने उसके पिता का वध किया था। किन्तु राम यह कहकर उसे शांत करते हैं कि मेरे वंश का कोई पुरुष तुम्हारे साथ युद्ध करेगा [रा. चं. २६. ३४-३५] इसका मूलाधार हनुमन्नाटक में मिलता है। [हनु. १४, २२-७५] किन्तु उसमें अंगद को शांत करते हुए आकाशवाणी होती है कि कृष्णावतार में तुम्हारा पिता बाली राम का वध कर बदला लेगा जिसे सुनकर अंगद रण से निवृत्त होता है।

(१८) रामचंद्रिका में सीता और राम के विहारों और क्रीड़ाओं का वर्णन मिलता है। बँधी-बँधायी काव्य परिपाटी पर सीता की किसी सखी

के द्वारा शिव-नख का वर्णन भी किया गया है। सीता का वर्णन करने में कवि को भक्ति भावना के कारण संकोच होता है। अट्ठाइसवें से तैंतीसवें प्रकाश तक के प्रायः सब वर्णन राम कथा से विशेष संबद्ध नहीं है उनको यदि अलग कर दिया जाय तो भी कथा की गति में कोई शिथिलता नहीं आती है।

(१९) इसमें सीता निर्वासन के प्रसंग में ब्रह्मा का भी कुछ हाथ दिखाया गया है। एक दिन ब्रह्मा राम और सीता के दर्शन करने जाते हैं और और सीता से प्रार्थना करते हैं कि राम का कार्य पूरा हो गया है। अब आप ऐसा कीजिये कि वे शीघ्र बैकुण्ठ चले चलें। इसके बाद सीता की वन के ऋषियों को वस्त्र देने की इच्छा और लोकापवाद के कारण सीता के त्याग का वर्णन किया जाता है। किन्तु ब्रह्मा की प्रार्थना के अनुसार राम की वैकुण्ठ यात्रा का वर्णन नहीं मिलता। इससे कथा के गठन में शिथिलता आ गई है। [रा. चं. ३३-१८]

(२०) सीता के निर्वासन के बाद राम अश्वमेध यज्ञ करते हैं और यज्ञाश्व को शत्रुघ्न की रक्षा में छोड़ते हैं। सीता का पुत्र लव उसे पकड़ता है और शत्रुघ्न से लड़कर मूर्च्छित होता है तो शत्रुघ्न उसे रथ में चढ़ाकर ले जाते हैं। यह समाचार पाकर कुश आ जाता है और शत्रुघ्न को परास्त कर लव को छुड़ाता है। उसके बाद राम घोड़ा छुड़वाने लिए क्रमशः लक्ष्मण और भरत को भेजते हैं जिन को भी कुश और लव हराकर मूर्च्छित कर देते हैं। भरत के साथ आये हुए जांबवान और हनुमान भी बेहोश कर दिये जाते हैं। अंत में राम अंगद को लेकर आ जाते हैं और उन बालकों देखकर मोहित होते हैं किंतु युद्ध करने की आज्ञा अंगद को देते हैं। अंगद को दोनों भाई हरा देते हैं जिससे उसका गर्व भंग हो जाता है जिसकी बात राम ने पहले कही थी। लव के बाणाघात से सारी सेना जब मूर्च्छित होती है तब राम भी रथ में स्वयं लेट जाते हैं। यह विजय समाचार जब जाकर वे माता सीता को देते हैं तो वे उनकी भर्त्सना करती हैं कि पिता और चाचाओं को मारने का उन्होंने पाप किया। इस पर कुश कहता है कि मुझे विदित नहीं था कि राम हमारे पिता हैं, अन्यथा हम उनसे युद्ध न करते। इतने में वाल्मीकि वहाँ आते हैं और सीता को समझाकर रणस्थल में ले जाते हैं जहाँ वे अपने पातिव्रत्य की शपथ खाकर सब को जीवित करती हैं। राम और सीता का मिलन होता है। राम सीता और पुत्रों को अयोध्या ले जाते हैं और चारों भाइयों के पुत्रों में राज्य बाँट देते हैं। इनको राजनीति का उपदेश देते हैं और उनको राज्य भार सौंपकर स्वयं अपने समाज के साथ सुखी रहते हैं जिसमें सीता भी थीं।

इस प्रकार इस काव्य का अंत वाल्मीकीय रामायण के विपरीत सुखमय हुआ है। (रा. चं. ३५—अंत तक)

कुश और लव के राम के साथ युद्ध की कथा जैमिनी भारत-अश्व-मेध पर्व—में मिलती है। (अध्याय २९-३६) पद्मपुराण के पातालखंड में भी है। (अ. ६०-६५) भवभूति के उत्तर राम चरित नाटक में भी इसकी कथा मिलती है। (अंक ५-७)

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि केशव ने वाल्मीकि रामायण के आधार पर ही अपनी रामचंद्रिका लिखी थी तथापि अन्य रामायणों और संस्कृत नाटकों का प्रभाव भी प्रर्याप्त मात्रा में ग्रहण किया था जैसे प्रसन्न-राघव, हनुमन्नाटक, अध्यात्म रामायण आदि। फिर भी प्रबंधात्मक दृष्टि से वस्तु को सुगठित नहीं कर सके क्योंकि उनकी दृष्टि विशेषत: अपने कवि कर्म पर, विभिन्न छंदों और अलंकारों की योजना में और कल्पना की ऊँची उड़ान आदि पर अधिक रही। इनकी प्रबंध पटुता पर विचार करते हुए हिन्दी के कई समालोचकों ने यही मंतव्य प्रकट किया है।[1]

"हनुमन्नाटक"

यह हृदय राम के द्वारा संस्कृत के हनुमन्नाटक के आधार पर लिखा गया है। नाम से यद्यपि यह संस्कृत नाटक का अनुवाद सा मालूम होता है किंतु वस्तुत: यह बात नहीं है। हृदय राम ने संस्कृत नाटक का ढाँचा मात्र लिया है और उसके आधार पर अपनी कल्पना व अन्य ग्रंथों के आधार पर इसकी कथा वस्तु का विकास किया है।

मूल हनुमन्नाटक के समान इसके भी चौदह अंक हैं। किंतु नाटकीयता इसमें कुछ भी नहीं है। इस दृष्टि से ये दोनों समान हैं। जहाँ-जहाँ विभिन्न पात्रों का संभाषण आता है वहाँ कवि अपनी ओर से कह देता है कि राम उवाच, सीता उवाच या लक्ष्मण जी का वचन आदि। शेष सब कथा पद्यों में वर्णित है। पहले ग्यारह अंकों में कविता, दोहा, सवैया, सोरठा छंदों का प्रयोग किया गया है। अंतिम दो अंकों में दोहा, चौपाई और सोरठा शैली का प्रयोग मिलता है, एकाध स्थानों में कवित्त और सवैये भी मिलते हैं। इसमें राम के शिवधनुर्भंग से लेकर राम के राज्याभिषेक तक की कथा है। इसमें कवि ने

१. स्व. पं. रामचंद्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास
श्री चंद्रबली पांडे—केशव दास

मूल के संक्षिप्त प्रसंगों का अधिक विस्तार किया है जिसमें उनकी वर्णन प्रियता दिखाई पड़ती है। कवि ने इसे श्रीराम गीता कहा है।

प्रथमांक—

इसका नाम सीता वैवाहिकांक है। कथा का प्रारंभ विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा की चिंता से होता है और सीता और राम के विवाह के साथ इसकी समाप्ति होती है। इसमें राम की कोमलता तथा शिवधनुष की कठोरता देखकर सीता निराश होती है और अंत में मन में निश्चय कर लेती है कि या तो राम से विवाह करूँगी या विष खाकर मर जाऊँगी। (हृ. ना. १-५८) यह बात मूल नाटक में नहीं है।

(२) इसमें परशुराम का प्रवेश राम के अयोध्या लौटते समय मार्ग में होता है (हृ. मा. १)। मूल नाटक में धनुर्भंग के तुरंत बाद ही जनक की सभा में होता है (हृ. १)

द्वितीयांक—

इसका नाम श्रीरामचंद्र वियोगांक है। इसमें राम वन-वास और दशरथ की मृत्यु तक की कथा है। यह कथा मूल नाटक के तृतीयांक में आती है। उसके द्वितीयांक में राम और सीता के भोग विलासों का शृंगारी वर्णन है जो भक्ति के विरुद्ध है। अतः हृदय राम ने भक्ति भावना से प्रेरित होकर उसको छोड़ दिया होगा। दोनों ही नाटकों में मंथरा का पात्र नहीं है। मूल नाटक में कैकेयी दशरथ से कहती है कि सीता के लक्षण अच्छे नहीं हैं। अतः उसे देश हित के लिए राम के साथ वन में भेजकर भरत को राजा बनाया जाय (हृ. ३-३)। किन्तु इसमें कैकेयी यह बात नहीं कहती। इसकी कैकेयी मूल नाटक की कैकेयी की अपेक्षा अधिक तर्क करती है। (हृ. मा. २)।

तृतीयांकः—

इसका नाम कपटमृगागमनांक है। मूल तृतीयांक की कथा के दो भाग करके इसमें द्वितीय और तृतीय अंक बना दिए गये हैं। इसमें दशरथ की मृत्यु से लेकर मारीच के मृग के रूप में आने तक की कथा वर्णित है। इसमें भरत राम को धमकी देते हुए कहते हैं—

जौ न चलहु घर आज सुनहु भ्रात प्रभु कान दै।
जात वंश ते राज, तुमवन में हम तात ढिग ॥ (३-३२)

मूल नाटक में खर दूषण की बात नहीं है। इसमें उनके युद्ध और वध

का उल्लेख मात्र है। शूर्पणखा विकृत होकर सीधे रावण के पास जाती है जो मेघनाद आदि के कहने पर खर और दूषण को राम से युद्ध करने के लिए भेजता है। इसी प्रकार आगे चलकर गोविंद रामायण में भी वर्णित है। रावण जब मारीच की सहायता से सीता का हरण करने की बात सोचता है तभी मंदोदरी इसमें उसे उपदेश देती है कि इससे वंश का नाश हो जायगा। यह बात मूल नाटक में नहीं है।

चतुर्थांक:—

यह सीताहरणांक है। इसमें मूल के समान लक्ष्मण के कुटी छोड़ते समय उसके आगे रेखा खींचने की बात है। (ह० मा० ४-५)

पंचमांक:—

यह बालिबधांक है। मूल से इसमें कोई परिवर्तन नहीं है। सीता-हरण से लेकर बाली के बध तक की कथा इसमें वर्णित है। इसमें स्वयं बाली को सुग्रीव के साथ युद्ध में अपनी जीत के विषय में संदेह होता है। (ह० मा० ४-६३)

षष्ठांक:—

यह हनुमल्लंकादहनांक है। इसमें बाली वध से लेकर हनुमान के लंका दहन तक की कथा वर्णित है। इसके अनुसार हनुमान स्वयं रावण की सभा में अपनी देह जलाने की बात कहता है। (ह० मा० ६-८६)। इसमें रावण और हनुमान का विस्तृत संवाद है जो मूल में नहीं है।

सप्तमांक:—

यह सेतुबंधनांक है जिसमें लंकादहन से लेकर सेतुबंधन तक की कथा कही गयी है।

अष्टमांक:—

यह रावणांगद संवादांक है जिसमें अंगद के दौत्य तक की कथा है रावण और अंगद संवाद इसमें मूल की अपेक्षा बहुत विस्तृत है। कहीं-कहीं मूल के कुछ अंश को छोड़ भी दिया गया है। मूल का ४५वें श्लोक का भाव जिसमें रावण के प्रतीहार के ब्रह्मा, बृहस्पति आदि को डाँटने का वर्णन है, छोड़ दिया गया है। इसमें रावण अंगद से कहता है कि "राम यहाँ आवें तो मैं उसके बीस विवाह करा दूँगा और सुख से वह जीवित रह सकेगा। किंतु सीता नहीं दूँगा (७७)। इसमें अंगद रावण की सभा में अपना चरण रोप

देता है और रावण को चुनौती देता है कि कोई उसे उठाये तो देखा जाय (९९)। यह बात मूल हनुमन्नाटक में नहीं है। संभवतः तुलसी के रामचरित मानस का इस पर प्रभाव है। किंतु उसके समान इसमें अंगद सीता को हारने की बात नहीं कहता है।

नवमांकः—

यह मंत्र्युपदेशांक है जिसमें रावण को उसके मंत्रियों के उपदेश देने का वर्णन है जो प्रायः मूल के समान ही है, किंतु विस्तार के साथ।

दशमांकः –

यह रावण प्रपंचरचनांक है जिसमें रावण के माया राम और लक्ष्मण के सिर बनवाकर सीता के सामने दिखाने का वर्णन है।

एकादशांकः—

यह कुंभकर्णवधांक है। इसमें कोई विशेषता नहीं है।

द्वादशांकः—

यह इंद्रजीत वधांक है। जब इंद्रजीत राम और लक्ष्मण को नागपाशी से बंधित करता है तब इसमें नारद देवताओं के बीच से पुकार कर कहते हैं कि राम और लक्ष्मण नागपाश में बँध गये हैं जिसे सुनकर गरुण आता है और उनको छुड़ाता है (४७-४४)। मूल नाटक में नारद की बात नहीं है।

त्रयोदशांकः—

यह लक्ष्मण जीवनांक है जिसमें इंद्रजीत के वध से लेकर लक्ष्मण के मूर्च्छित किए जाने और फिर संजीवनी के द्वारा जीवित होने की कथा वर्णित है।

(१) इसमें रावण के बीसों हाथों के विविध शस्त्रों का वर्णन है। (१९-२९)

(२) इसमें ऐसा वर्णन किया गया है कि रावण लक्ष्मण पर सैहथी शक्ति छोड़ता था जिसे बीच में हनुमान पकड़कर व्यर्थ कर देता था। इससे क्रुद्ध होकर रावण ब्रह्मा को मारने के लिए जाता है। ब्रह्मा उसे देख—डर जाते हैं और रावण के क्रोध का कारण जानकर नारद को रण भूमि में भेजते हैं कि हनुमान को दूर ले जाकर लक्ष्मण को मारने में रावण की सहायता करें। नारद ऐसा ही करते हैं तो रावण लक्ष्मण को मूर्च्छित कर देता है।

(३) संजीवनी बूटी लाने का प्रश्न जब आता है तब सब बानर अपनी अपनी शक्ति का उल्लेख करते हैं जो मूल नाटक में नहीं है (१६५-१६८)

(४) हनुमान के द्रोण पर्वत पर जाने के बाद उधर अयोध्या में सुमित्रा एक बुरा स्वप्न देखती है—

इतहि कुसपन सुमित्रा देख्यो । २०२
काल भुजंग रह्यो लपटाई । बाम अंग सब रह्यो चबाई ।

यह वृत्तांत तुरंत वह कौसल्या से कह देती है तब कौसल्या भरत और वशिष्ठ को बुलवाती है । वशिष्ठ स्वप्न की बात सुनकर यज्ञ और जप करते हैं जिसकी रक्षा धनुष बाण लेकर भरत करते हैं (२०२-२०८) । द्रोण पर्वत लेकर जब हनुमान अयोध्या के ऊपर से उड़ रहा था तब भरत उसे कोई विघ्नकारी समझ बाण के द्वारा नीचे गिराते हैं किंतु उसके मुँह से राम नाम सुनकर पश्चात्ताप करते हैं । उस समय सुमित्रा और कौसल्या भी वहाँ आती हैं और राम की सारी कहानी सुनकर बहुत दुःखी होती हैं । कौसल्या अंत में राम को संदेशा भेजती हैं—

सियसों लछिमन जो मिलै, तौ आवहु इहि देस ।
बीर तिया बिन वन भलो, कीजे गोरख भेस ॥ २२९ ॥

ये स्वप्न और संदेश की बातें मूल नाटक में नहीं हैं । उसमें केवल इतना कहा गया है कि जब भरत और वशिष्ट शांति मंडप में होम करते हैं तब हनुमान को ऊपर से जाते देखते हैं और भरत उसे नीचे गिराते हैं ।

(५) इसमें हनुमान भरत की शक्ति की परीक्षा लेने के लिए कहता है कि आपने मुझे यहाँ मार गिराया जिससे बहुत विलंब हो गया । सूर्योदय के पहले यह पर्वत लंका में पहुँच जाना चाहिए । मैं तो इस थोड़े समय में नहीं जा सकता । आप इसे लंका पहुँचाइए । यह सुनकर भरत कहते हैं कि तुम पर्वत समेत मेरे बाण पर बैठो तो मैं तुम्हें लंका पहुँचा दूँ । हनुमान बाण पर चढ़ा और सोचने लगा कि अब यदि मैं इससे अलग जा कर गिरूँ तो राम से मिल नहीं सकूँ । यह सोचकर उसने भरत की शक्ति को मान लिया और वाण से उतरकर भरत से क्षमा माँगने लगा । यह बात मूल नाटक में भी है; किंतु उसमें हनुमान के विचार की बात नहीं है । (ह. १३)

चतुर्दशांक—

यह रघुनाथ राज्याभिषेकांक है जिसमें रावण का वध, राम का अयोध्या

गमन आदि मूल के समान ही वर्णित हैं। इसमें मृत्यु के बाद रावण के शिवलोक जाने का उल्लेख है। (६७)

ऊपर के कथा-निरूपण से यह विदित होता है कि इसका मूलाधार संस्कृत का हनुमन्नाटक होने के कारण उसके सब अवाल्मीकीय प्रसंग इसमें भी एकाध को छोड़कर गृहीत हुए हैं और उनके अलावा कुछ नये प्रसंग भी जोड़कर वस्तु का काव्यमय विस्तार किया गया है जिसके पीछे कवि की भक्ति-भावना का पुट है।

वि. अठारहवीं शताब्दी

रामायण वर्णन और राम रसायन वर्णन

यह कोई अलग पुस्तक नहीं है जैसाकि पहले दिखाया गया है। ये दोनों वर्णन सेनापति के "कवित्त रत्नाकर" के अंतर्गत हैं। इनमें रामायण वर्णन में राम कथा का समावेश है और राम रसायन वर्णन में राम के प्रताप और महिमा का। रामायण वर्णन के प्रारंभ में सर्वप्रथम राम की पादुकाओं और चरणों की वंदना दो कवित्तों में की गई है। उसके अनंतर राम का विश्व मंगल करनेवाले राजाधिराज, त्रिलोक नायक, और त्रिलोक तिलक के रूप में स्मरण किया गया है। छठे कवित्त में कवि सेनापति रामायण वर्णन के लक्ष्य और विस्तार के बारे में कहते हैं:—

गाई चतुरानन सुनाई रिषि नारद कौं
संख्या सतकोटि जाकी कहत प्रबीने हैं
नारद तैं सुनी बालमीकि, बालमीकि हूँ तैं
सुनी भगतन, जे भगति रस भीने हैं।
एती राम-कथा, ताहि कैसे कै बखानैं नर,
जातैं ए बिमल बुद्धि बानी के बिहीने हैं।
सेनापति यातैं कथा क्रम कौं प्रनामकरि
काहू-काहू ठौर के कबित्त कछू कीने हैं॥

(क. र. ४-६)

अत: रामायण वर्णन में राम कथा का कोई क्रम नहीं है। चुने हुए प्रसंगों का वर्णन मात्र है और वही कवि का लक्ष्य भी है। निम्नलिखित प्रसंगों का कवि ने इसमें वर्णन किया है:—

जनक के यहाँ स्वयंवर सभा, शिव धनुषभंग, कंकण मोचन, द्यूत क्रीड़ा,

परशुराम का गर्वभंग, राम का वन-गमन, माया सीता का हरण, हनुमान का सागर लंघन, लंका दहन, विभीषण की शरणागति, सागर पर क्रोध, सेतु बंधन, अंगद का दौत्य, राम और रावण का युद्ध, रावण का वध, सीता की अग्नि-परीक्षा, रामराज्य और राम नाम की महिमा। इससे यह स्पष्ट होता है कि कवि की कथा विकास और पात्रों के चरित्र चित्रण पर दृष्टि नहीं रही। उपर्युक्त प्रसंगों का वर्णन—सो भी आलंकारिक शैली में—कवि का प्रधान लक्ष्य है। इन प्रसंगों के वर्णन में वस्तु की दृष्टि से यद्यपि वाल्मीकि की राम-कथा ही गृहीत है तथापि कहीं-कहीं अन्य राम कथाओं—संस्कृत और हिन्दी का भी प्रभाव है।

(१) कंकण मोचन के प्रसंग में गाली गाते हुए स्त्रियाँ कहती हैं:—

मा जू महारानी कौं बुलावौ महाराजहू कौ
लीजै मत केकई सुमित्रा हू के जिय कौं,
रातिन कौं बीच सात रिषिन के बिलसत
सुनौ उपदेस ता अरुंधती के पिय कौं।
सेनापति बिस्व मैं बखानै बिस्वामित्र नाम
गुरु बोलि पूछियै प्रबोध करै हिय कौं।
खोलियौ निसंक, यह धनुष न संकर कौं,
कुँवर मयंक मुख ! कंकन है सिय कौ॥
(क. र. ४-१९)

सूर रामचरित में भी इसी प्रकार का भाव वर्णित है।

गावत नारि गारि सब दै दै, तात भ्रात की कौन चलावै
तब कर डोरि छुटै रघुपति जू जब कौसल्या माता आवै॥
(सू. सागर ९. २५)

(२) राम और सीता की द्यूत-क्रीड़ा में कहा गया है—

पहुँचो के हीरन मैं दंपति की झाँई परी
चंद बिबि मानौं मध्य मुकुद निकट के।
भूलि गयौ खेल, दोऊ देखत परस्पर
दुहुन के दृग प्रतिबिंबित सौं अटके॥
(क. र. ४-२०)

तुलसीदास की कवितावली में सेनापति के पहले यह भाव इस प्रकार वर्णित मिलता है:—

राम को रूप निहारति जानकि कंकन के नग की परछाहीं
यातें सबै सुधि भूलि गयी, कर टेकि रही पल टारत नाहीं।
(कवितावली—बा. १७)

(३) इसमें अध्यात्म रामायण के अनुसार रावण के माया सीता को हरने का वर्णन किया गया है:—

राघव की जाया, ताकी कपट की काया,
सोई छाया हरि लै गयौ गगन पथ धाइ कै॥
(क. र. ४. ३१)

(४) तुलसीदास के राम चरित मानस के अनुसार इसमें अंगद के रावण की सभा में चरण रोपने का वर्णन किया गया है:—

आइ कै उठावौ, बाहु बल कौं गुमान जाहि,
दीपति बढ़ाऔ सुभटाई को सु ओपि कै।
बैरिन तरजि, भुज ठोकि कै गरजि, कही
महाबली बालि के कुमार पाउँ रोपि कै॥
(क. र. ४-५४)

कथाथस्तु का जहाँ तक संबंध है, अन्य प्रसंग प्राय: वाल्मीकि के अनुसार ही वर्णित हैं। हाँ भक्ति भावना तुलसीदास की-सी है।

गोविंद रामायण

हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में इस पुस्तक का उल्लेख तक नहीं मिलता यद्यपि हिन्दी संसार में यह सं० २०१० में आ चुकी थी क्योंकि इसका विशेष प्रचार नहीं हुआ।

इसकी कथा यद्यपि अधिकांशत: वाल्मीकीय राम कथा ही है तथापि कुछ परिवर्तनों और नई बातों का समावेश भी हुआ है। सारी कथा कांडों में न विभक्त होकर कुछ अध्यायों में विभक्त हुई है जिनका नामकरण उनकी प्रमुख घटना के आधार पर किया गया है जैसे रामावतार, सीता स्वयंवर, अवध प्रवेश कथनम्, वनवास कथनम्, खर-दूषण युद्ध कथनम् आदि। कथा संक्षिप्त है। वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित हृदयरामकृत "हनुमन्नाटक भाषा" की प्रस्तावना में श्री नंदकिशोर देव शर्मा ने लिखा है कि यह हनुमन्नाटक गुरु गोविंद सिंह जी के लिए इतना प्रिय रहा कि किसी भी समय वे अपने देह से जुदा नहीं करते थे। उनकी अपनी कृति पर इतने प्रिय ग्रंथ का प्रभाव पड़ना

स्वाभाविक ही था। अतः इसकी वस्तु पर "हनुमन्नाटक भाषा" का प्रभाव दिखाई पड़ता है। वस्तु विकास की दृष्टि से इसके प्रधान परिवर्तन और परिवर्धन यों हैं—

(१) इसमें दशरथ के विवाहों की बात कही गई है जो वाल्मीकि रामायण में नहीं है। आनंद रामायण में दशरथ और कौसल्या के विवाह का वर्णन ग्रंथारंभ में मिलता है।

(२) इसमें पुत्र प्राप्ति के लिए दशरथ जो राजसूय यज्ञ करते हैं उसमें ऋष्यशृंग को लाने का वर्णन नहीं है।

(३) परशुराम के प्रसंग में घोर युद्ध का वर्णन इसमें मिलता है जिसमें राम विजयी होते हैं। यह वाल्मीकि रामायण में नहीं है। परशुराम और राम का तीक्ष्ण सम्वाद भी मिलता है [सीता स्वयंवर नामक अध्याय]

(४) इसमें एक उल्लेखनीय परिवर्तन यह है कि जब राम सीता के साथ विवाह करके अयोध्या लौट आते हैं तब दशरथ शेष तीन पुत्रों का विवाह करने का निश्चय करते हैं और तीनों की बारात निकलती है। राम अपने भाइयों को आशीर्वाद देकर विदा करते हैं। तीनों भाई राजा जनक की तीन पुत्रियों से ब्याह करके लौट आते हैं। वस्तु-विकास की दृष्टि से इस परिवर्तन का महत्व नहीं दिखाई पड़ता। [अवध प्रवेश कथनम्]

(५) इसमें मंथरा को ब्रह्मा से भेजी गयी बताया गया है।

मंथरा, गंधर्विनी ब्रह्मा पठी तिहिकाल,
बाज साज सने चढ़ी सबशुभ्र धवल उताल॥

[गो. रा. अवध प्रवेश पृ. ४९]

इस पर महाभारत के रामोपाख्यान का प्रभाव मालूम होता है जिसमें ब्रह्मा के आदेश से दुंदुभी नामक गंधर्विणी मंथरा के रूप में जन्म लेती है। [म. भा. वन पर्व २७६-१०]।

(६) वन प्रवेश कथनम् के अध्याय में शूर्पणखा का प्रवेश इस प्रकार कराया गया है कि राम और लक्ष्मण को गोदावरी में स्नान करते देखकर उस भूभाग के पालक या रक्षक अपनी स्वामिनी शूर्पणखा के पास आकर उनके बारे में कहते हैं जिसे सुनकर वह उनके पास चली जाती है—

लखराम रूप। अद्भुत अनूप
जहँ हुती सूप। तहँ गये भूप

कही ताहिघाति। सुनि सूप बाति
ह्वै अतिथिन्हात। लहे अनुपगात
सूपनखा इह भांत सुनी जब, धाय चली अविलंबत्रिया तब ।।

[गो. रा. वन प्रवेश पृ. ८८]

हृदयराम के हनुमन्नाटक में भी शूर्पणखा का प्रवेश इसी प्रकार कराया गया है।

[हनुमन्नाटक भाषा—३-६७-६८]

(७) इसमें शूर्पणखा अपने विरूपीकरण के बाद सीधे रावण के रास जाकर रोती है। उसकी दशा देखकर रावण राम और लक्ष्मण से युद्ध करने के लिए खर और दूषण को भेजता है जो राम के साथ युद्ध करते मर जाते हैं।

[गो. रा. खर दूषण युद्ध कथनम्]

(८) इसमें मारीच वध के प्रसंग में सीता जब लक्ष्मण को राम की सहायता करने के लिए भेजती है तव लक्ष्मण धनुष से रेखा खींचकर जाते हैं तब रावण भिक्षुक रूप में आकर सीता से भिक्षा माँगते हुए कहता है कि यह रेखा मिटाकर हमें भिक्षा दो। रेखा के मिट जाने पर रावण सीता को लेकर उड़ जाता है।

[गो. रा. वन प्रवेश पृ. ९६]

(९) इसमें घटनाओं का क्रम परिवर्तित किया गया है। युद्ध में अकंपन का वध करने के बाद सुग्रीव और राम अंगद को अपना दूत बनाकर रावण के पास भेजते हैं। अंगद रावण के यहाँ अपना दौत्य कार्य करके अंत में विभीषण को लेकर राम के पास चला जाता है। तब राम विभीषण को शरण देकर उसे 'लंकेश" कहते हैं।

[गो. राम. पृ. १०६-१०८]

(१०) इसमें रावण युद्ध के अध्याय में रावण के बीसों हाथों के शस्त्रों का उल्लेख किया गया है और दसों सिरों के कार्य का वर्णन भी किया गया है। [गो०रा० पृ० १६८-१६९] इस पर हनुमन्नाटक भाषा का प्रभाव है। उसमें भी इसी प्रकार शस्त्रों का वर्णन है।

[हृ. भा. १३-२०-२९]

राम रावण को मार कर शिवलोक भेज देते—

"दै दस बाण विमान दसो सिर काट दिए शिवलोक पठै कै।"

[गो० रा० पृ० १७७]

(११) इसमें उत्तर कांड की कथा में सीता के परित्याग का कोई कारण नहीं बताया गया है। गर्भ धारण करने के बाद एक दिन सीता जंगलों में घूमने की अपनी इच्छा प्रकट करती हैं। इस पर राम लक्ष्मण का साथ देकर

सीता को जंगल में भेज देते हैं। लक्ष्मण सीता को जंगल में छोड़कर चले जाते हैं। [गो. रा. सीता वनवास पृ० २०४-२०५] तो इसमें राम की प्रसिद्ध लोक निंदा की बात नहीं है।

[१२] वाल्मीकि रामायण में सीता के गर्भ से दो बच्चों के जन्म का उल्लेख किया गया है–

"यामेव रात्रिं शत्रुघ्नः पर्णशालां समाविशत्
तामेव रात्रिं सीतापि प्रसूता दारकद्वयम् ॥"

गोविंद रामायण में ऐसा वर्णन है कि वाल्मीकि के आश्रम में सीता के एक पुत्र हुआ है मानों राम की प्रतिकृति हो–

"भयो एक पुत्र तहाँ जानकी कै
मनो राम कीनो दुती राम लै लै ॥"

एक दिन उस पुत्र को लेकर सीता जी नहाने के लिए जाती हैं। वाल्मीकि आते हैं और बच्चे के पालने को सूना देखकर बहुत दुखी होते हैं। वे तुरंत एक कुश हाथ में लेकर पहले बच्चे के समान रूपरंग वाले दूसरे बच्चे की सृष्टि करते हैं। सीता जब लौटती हैं तब अपने बच्चे के समान दूसरे बालक को देखकर आनंदित होती हैं कि मुनि की कृपा से दूसरा बालक मिल गया है। [गो. रा. सीता वनवास पृ० २०६-२०७]

कथा सरित्सागर में कुश और लव के जन्म का इसी प्रकार का वर्णन मिलता है। सर्वप्रथम इसके मूल ग्रन्थ गुणाढ्य कृत बृहत्कथा में यह बात मिलती है। इसकी कथायें देश भर में बहुत व्याप्त हो चुकी थीं जिनके आधार पर भी कवियों ने अपनी रचनाएँ की थीं। काश्मीरी रामायण में भी ज्यों का त्यों यही वृत्तांत मिलता है [नं० २९][1] लेकिन लव का जन्म दूसरी तरह से वर्णित है। गोविंदसिंह की रचना पर कथा सरित्सागर का प्रभाव ही लक्षित होता है।

(१३) इसमें एक और उल्लेखनीय परिवर्धन यह है कि राम जब अश्वमेध यज्ञ करते हैं तब शत्रुघ्न के संरक्षण में अश्व को छोड़ते हैं जो अनेक राज्यों में घूमता हुआ अंत में वाल्मीकि आश्रम के पास पहुँचता है। वहाँ सीता पुत्र लव उसे पकड़कर एक वृक्ष से बाँध देता है। तब उसे छुड़ाने के लिए जब शत्रुघ्न आ जाते हैं तो दोनों में बड़ा युद्ध होता है जिसमें शत्रुघ्न हार जाते हैं। इसके बाद क्रमशः लक्ष्मण, भरत और राम भी लव और कुश के साथ

१. डा० बुलके—रामकथा पृ. ४४७

युद्ध करते हैं। राम जब युद्ध करते हैं तब विभीषण, सुग्रीव और सारी बानर सेना भी उनकी सहायता करती है। अंत में राम भी उनके हाथों मारे जाते हैं। यह समाचार सुनकर सीता बड़ी दुखी होती हैं और पुत्रों से कहती है कि तुमने मुझे विधवा बना दिया।

देखि सिया पति मुख रो दीना
कहयो पूत विधवा मोहि कीना ॥

[गो. रा. सीता वनवास पृ.२२८]

तब दुखी सीता सती होने को तैयार होती हैं। किंतु यह आकाशवाणी सुनकर कि "कहा भई सीता तैं अयानी" उस प्रयत्न से विरत होती है और जल हाथ में लेकर प्रतिज्ञा करती हैं कि

जो मन बच करमन सहित राम बिना नहिं और
तनु ए राम सहित जिऐं कह्यो सिया तिह ठौर ॥

तुरन्त सारी सेना राम के साथ जीवित हो जाती है। वाल्मीकि रामायण में इस युद्ध का वर्णन नहीं है। लव और कुश के युद्ध का प्रसंग जैमिनी भारत में मिलता है जिसका प्रभाव रामचरित मानस के क्षेपकांश और रामचंद्रिका पर भी पड़ा है। इसके अतिरिक्त पउमचरिय में भी लव और कुछ के साथ राम के युद्ध का वर्णन है, किंतु उसका रूप बिलकुल भिन्न है। काश्मीरी रामायण, पद्म पुराण के पातालखंड में भी यह प्रसंग मिलता है। [पद्म पुराण पातालखंड अध्याय ५४, ६४]। भवभूति के उत्तर राम चरित में भी इस युद्ध का वर्णन है।

(१४) आगे की कथा में भी कुछ नवीन बातें मिलती हैं। सीता के सतीत्व की महिमा से पुनर्जीवित होकर राम पत्नी, पुत्रों और भाइयों के साथ अयोध्या लौटते हैं और यज्ञ पूर्ण करते हैं। उसके बाद अनेक प्रकार के यज्ञ जैसे राजसूय, अश्वमेध, गवालंभ, अजमेध और नागमेध आदि करते हुए दस हजार वर्षों तक राज्य करते हैं। उसके बाद क्रमशः कौसल्या, कैकेयी और सुमित्रा की मृत्यु का उल्लेख है। एक दिन सीता कुछ स्त्रियों के कहने से दीवार पर रावण का चित्र बनाती हैं जिसे देखकर राम सीता के चरित्र पर शंका करते हैं। यह जानकर सीता को क्रोध आता है और वे प्रतिज्ञा-पूर्वक पृथ्वी से प्रार्थना करती हैं।

जनु मेरे मन बच क्रमन हृदय बसत रघुराय
पृथिवि पैंड मोहिं दीजिए, लीजै मोहि मिलाय ॥

इस पर पृथ्वी फट जाती है और वे उसमें समा जाती हैं। सीता के द्वारा रावण के अँगूठे का चित्र बनाये जाने की बात आनन्द रामायण में कही गई है। [आ. रा. जन्म कांड ३-३७-४२]।

[१५] सीता-वियोग जब राम से न सहा गया तो एक दिन उन्होंने लक्ष्मण को द्वार पर बैठाकर यह आज्ञा दी कि अंदर किसी को नहीं आने देना, फिर राम अंतःपुर में जाकर योगमार्ग से शरीर छोड़कर स्वर्ग सिधारते हैं। लक्ष्मण को द्वार पर बैठाकर राम के उपरोक्त आज्ञा देने की बात वाल्मीकि रामायण में भी है। किंतु उसका कारण और आगे का प्रसंग इसमें छोड़ दिया गया है। [वा.रा.उ. १०३-१४]। राम के अनन्तर क्रमशः भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी योगमार्ग से अपने प्राण छोड देते हैं। इसके उपरांत तीनों भाइयों की पत्नियाँ भी सती हो जाती हैं। अन्त में सारी अयोध्या नगरी के साथ राम के स्वर्गवासी होने का उल्लेख है।

इस प्रकार इस रामायण के वस्तु विकास में नये अंश कुछ तो हनुमन्नाटक भाषा और कुछ अन्य ग्रन्थों तथा मौलिक उद्भावना के आधार पर छोड़े गये हैं।

साधना प्रणाली की छाया

हिन्दी का सम्पूर्ण रामसाहित्य प्रायः भक्ति रस प्रधान है जिसके विभिन्न रूप मिलते हैं। भक्ति की साधना प्रणाली की दृष्टि से इसके विभिन्न रूप बनते हैं। हिंदी में जो रामभक्ति का जो साहित्य निर्मित हुआ वह स्वामी रामानन्द के भक्ति आन्दोलन से बहुत प्रभावित है; अथवा यों भी कहा जा सकता है कि वह उसी भक्ति आन्दोलन का परिणाम है, रामानन्द के दार्शनिक भक्ति सिद्धांतों को प्रतिपादित करनेवाले ग्रंथ वैष्णव मताब्ज भास्कर और "रामार्चन पद्धति" हैं जो संस्कृत में लिखे गये हैं। इसके अतिरिक्त हिन्दी में लिखी गई कतिपय रचनाएँ भी इधर मिली हैं जिनका संपादन स्व० डा० पीतांबर दत्त बड्थ्वाल ने नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की ओर से किया है। उस पुस्तक की भूमिका भाग में डा० बडथ्वाल ने उन रचनाओं के आधार पर रामानंदीसंप्रदाय का विवेचन प्रस्तुत किया है जिससे स्पष्ट होता है कि रामोपासना दो रूपों में की जा सकती है, निर्गुण रूप में और सगुण रूप में। वैष्णव मताब्ज भास्कर के अनुसार "सृष्टि में तीन तत्व हैं—ईश्वर, चित् [जीव] और अचित [माया] परम तत्व इन तीनों में निहित है। ये तीनों तत्व अनादि

और नित्य हैं। ईश्वर, जीव और माया यह ब्रह्म की त्रिपाद विभूति है और समस्त व्यक्त सृष्टि लीला विभूति। जीव में भी ईश्वर के गुण विद्यमान हैं, वह चित् [चेतन] ज्ञान शक्ति वाला, ज्ञानानंद स्वरूप और स्वयं प्रकाश है, वह एक रस है अर्थात् उसका आदि मध्य और अवसान नहीं। वह नित्य और अजन्मा है। ईश्वर में और उसमें यह भेद है कि ईश्वर प्रभु है और जीव अधीन। प्रत्येक शरीर में जीव का निवास है और व्यापक होने से विभुरूप से प्रत्येक शरीर में ईश्वर भी व्याप्त है।.........विश्व की समस्त विभूतियाँ राम की भोगी हुई हैं, इस मनोवृत्ति के साथ जो उन विभूतियों को भोगता है और राम के ध्यान में मग्न रहता है [वै. भा. १४२] जो राम के गुणों का अनुसंधान करता हुआ उनकी कायिक, वाचिक और मानसिक सेवा में तत्पर रहता है [वै. भा. १४३], जो आत्मा को छोड़ अन्य पदार्थों को दुःख समझता है अथवा जो आत्मानुभूति में तल्लीन रहता है [वै. भा. १४४] वह बद्ध जीव भी मुक्त हो जाता है।"[1] ये संक्षिप्त रूप में रामानंद के दार्शनिक विचार हैं।

अब साधना पक्ष में कहा गया है कि मुक्ति के लिए प्रधान साधन है पराभक्ति या परा अनुरक्ति। प्रभु राम में परा अर्थात् निष्काम अनुरक्ति ही भक्ति है जो तैल धारावत् अविच्छिन्न होनी चाहिए। महाभागवत् में इस भक्ति के नौ भेद माने गये हैं :

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।

ये नवों रूप वैष्णव मताब्ज भास्कर में भी माने गये हैं। रामानंदी संप्रदाय में प्रपत्ति का बड़ा महत्व है जिसमें साधक अपने को संपूर्णतः भगवान की शरण में छोड़ देता है। आत्म-समर्पण की भावना से "रां रामाय नमः" इस षडक्षर मंत्र के जप का भी विधान है। उँ प्रणव है, रां प्रणवि, रां में उँ निहित है। ....राम सब दिव्य गुणों के आकार हैं। दया वत्सलता आदि गुणों का राम के साथ नित्य संबंध है और राम के विग्रह का राम साथ......... द्विभुज, चतुर्भुज, किशोर, बालक आदि राम के जिस किसी भी रूप में भक्त अपने भगवान की पूजा कर सकता है।.........राम ईश्वर हैं; सीता माया

---

१. डा० पीतांबर दत्त बड़थ्वाल—"रामानंद की हिन्दी रचनाएँ" भूमिका पृ० ११-१२

और लक्ष्मण शेष जीव।[1] आचार्य प्रवर श्री नंददुलारे बाजपेयी जी ने भी रामानंद की उपासना पद्धति का निरूपण किया है।[2]

स्वामी रामानंद के दार्शनिक सिद्धांतों और साधना पद्धति के इस संक्षिप्त परिचय से यह ज्ञात होता है कि इसमें राम के निर्गुण और सगुण रूप का समान महत्व है। निर्गुण राम की साधना के लिए जहाँ ज्ञान मार्ग अपेक्षित है वहाँ सगुण राम की साधना के लिए दोनों प्रकार की भक्ति—रागात्मिका और वैधी—आवश्यक है। इन दोनों साधना पद्धतियों में रामानंद के शिष्य कबीरदास ने ज्ञान प्रधान मार्ग को अपनाया और तुलसीदास ने भक्ति मार्ग को प्रधानता देते हुए अन्य ज्ञान तथा कर्म मार्ग भी ग्रहण कर लिये और सबका समन्वय किया।

ज्ञान मार्ग के द्वारा निर्गुण राम की प्राप्ति का उपदेश देते हुए कबीर ने कोई काव्य नहीं लिखा। इसी प्रकार राम को कृष्ण से अभिन्न मानकर उनका नामरस पीनेवाली मीरा ने भी राम का जीवन लेकर किसी काव्य का निर्माण नहीं किया। अतः इनकी राम-भक्ति में राम के लोक-कल्याणकारी रूप का अभाव है। इस दृष्टि से प्रस्तुत अनुशीलन में उस साधना पद्धति पर विचार न करके तुलसीदास और अन्य कवियों की सगुण साधना पर विचार किया जायगा जिसका संबंध मध्यकालीन राम साहित्य से है।

तुलसीदास की साधना भक्ति प्रधान है। उन्होंने अन्य सभी साधना-मार्गों का भक्ति के साथ समन्वय कर दिया और उसे सार्वभौम स्थान पर प्रतिष्ठित किया। उनकी भक्ति श्रुति-सम्मत हरिभक्ति है जो विरति और विवेक युक्त है। इस भक्ति पद्धति का सफल निरूपण श्री डा० बलदेव प्रसाद मिश्र ने अपने "तुलसी दर्शन" नामक ग्रंथ में किया है।[3] तुलसीदास के समय में इस्लाम, नाथपंथ, कबीर ग्रंथ जैसे अनेक प्रकार के धार्मिक पंथ प्रचलित थे जिसके कारण जनता के सामने कोई धार्मिक आदर्श नहीं रह गया था। ऐसी परिस्थिति में सब ग्रंथों का समन्वय करके उन्होंने लोगों के सामने हरिभक्ति पथ उपस्थित किया जिससे जन-जन का कल्याण हो।[4] रामचरित मानस के प्रणयन

१. डा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल—रामानंद की हिन्दी रचनाएँ—भूमिका पृ० १३-१९।
२. आचार्य श्री नंददुलारे बाजपेयी—महाकवि सूरदास—पृ० ४१-४४।
३. डा० बलदेव प्रसाद मिश्र—तुलसीदर्शन—६ अध्याय।
४. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य—६ अध्याय।

में तुलसी का इसी भक्ति के प्रचा का दृष्टिकोण प्रधान रहा। इसी उद्देश्य से उन्होंने विभिन्न पात्रों के सामने राम के मुँह से भक्ति के विभिन्न रूपों को उपस्थित कराया। रामचरित मानस की प्रत्येक पंक्ति इस भक्ति भावना से ओतप्रोत है। अतः इस दृष्टि से रामचरित मानस भक्ति शास्त्र का अनुपम ग्रंथ कहा जा सकता है। उनकी राम भक्ति में शिव और विष्णु का भी समन्वय है। राम शिव भक्त के रूप में और शिव राम-भक्त के रूप में चित्रित हैं। वैष्णव कथावस्तु वाले रामचरित मानस का प्रारंभ गणेश, भवानी तथा शंकर की वंदना से किया गया है। उसका प्रणयन भी शिव और पार्वती के संवाद के रूप में हुआ है। श्रुति सम्मत होने के कारण उसमें प्राचीन भारतीय संस्कृति के मेरुदंड वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रति अधिक आस्था दिखाई गई है। ऐसी भक्ति का परिणाम है जीव को चिर विश्राम की प्राप्ति। "मानस" की शास्त्रीय परीक्षा के द्वारा डा० श्रीकृष्णलाल अपने "मानस दर्शन" नामक ग्रंथ में इसको निरूपित कर चुके हैं।[1] रामचरित मानस के कतिपय प्रसंगों और उक्तियों के आधार पर यद्यपि तुलसीदास को अद्वैतवादी या विशिष्टाद्वैतवादी आदि किसी न किसी दार्शनिक वाद का पक्षपाती सिद्ध किया जा सकता है तथापि अंततः वे भक्ति का ही पक्ष लेते हुए दिखाई पड़ते हैं और उन्होंने उसी का उपदेश दिया है। ये दार्शनिक वाद भी उनकी भक्ति के सहायक हैं न कि बाधक। अतः रामचरित मानस में प्रतिपादित भक्ति पद्धति के पीछे उनकी प्रचारात्मक दृष्टि थी जिसके मूल में लोक संग्रह की भावना काम करती है। उनके निर्गुण राम सर्वव्यापी परब्रह्म हैं जो विधि, हरि, शंभु नचावनिहारे हैं और लोक रक्षा के लिए अवतार लिया करते हैं। भक्ति की दृष्टि से दोनों में कोई अंतर नहीं है।

"अगुनहिं सगुनहिं नहिं कुछ भेदा। गावहिं मुनि पुराण बुध वेदा"

इन दोनों रूपों की भक्ति तुलसीदास ने सेव्य सेवक भाव से करने का उपदेश दिया है।

अतः भक्ति के नौ रूपों में उनकी भक्ति दास्य भक्ति है तथापि गीतावली के कुछ पदों में मधुर भावना की झलक भी दिखाई पड़ती है। भक्ति प्रधान साधक होने के कारण तुलसीदास दर्शन की दृष्टि से विशिष्टाद्वैत की ओर ही अधिक झुकते दिखाई पड़ते हैं।[2] यह उनकी भक्ति साधना का पहलू है।

---

१. डा० श्रीकृष्णलाल—मानस दर्शन।

२. डा० रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—पृ० ४४५।
पं० रामचंद्र शुक्ल—तुलसी ग्रंथावली—३—पृ० १४५।

उनकी भक्ति साधना का दूसरा पहलू विनय पत्रिका में दिखाई पड़ता है जिसमें उनकी व्यक्तिगत साधना का पक्ष उभर आया है। इसकी शास्त्रीय परीक्षा के द्वारा—उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, अर्थवाद, उपपत्ति और फल की दृष्टि से यह सिद्ध होता है कि विनय-पत्रिका का परमोद्देश्य राम की शरण पाना है।

विनय पत्रिका त्रिविध ताप संतप्त हृदय की रचना है जो बंधन मुक्त होकर आत्मोद्धार के लिए छटपटाता है। किंवदंती के अनुसार कलिकाल से प्रत्यक्षतः त्रस्त होकर तुलसीदास ने हनुमान की सलाह से यह पत्रिका लिखकर भगवान राम के दरबार में भेजी थी और उसमें अपने चंचल मन और संतप्त हृदय को खोलकर त्राण के लिए राम की शरण माँगी। इसमें हम उस साधक भक्त के दर्शन करते है जो अपने चंचल मन को बार-बार भक्ति की शिक्षा देते हुए राम नाम का संबल लेकर भगवान राम के दरबार की ओर अग्रसर होता है। मन की चंचलता के कारण वह कई अवस्थाओं से गुज़रता है जहाँ उसे कभी-कभी अपनी दीनता का ख्याल होता है जिससे वह बड़ा दुखी होता है।

१. तू दयालु, दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी
हौं प्रसिद्ध पातकी तू पाप पुंजहारी ॥ [७९]

२. द्वार द्वार दीनता कही, काढ़ि रद, परिपाहूँ
हैं दयालु दुनि, दस दिसा दुख दोष दलन छम कियो न संभाषण काहूँ ॥२
तनु जन्यो कुटिल कीट ज्यों, तज्यो मातु पिता हूँ। [२७५]

३. हाहा करि दीनता कही द्वार-द्वार बार-बार परी न छार मुँह बायो
असन बसन बिनु बावरो जहँ जहँ उठि धायो ॥२७६॥

आदि पदों में दीनता का सजीव चित्रण है जिसमें केवल भौतिक दीनता ही नहीं आध्यात्मिक दीनता भी लक्षित होती है। ऐसे दीन के लिए राम को छोड़कर और कहीं शरण नहीं मिल सकती।

साधक का मन बड़ा चंचल होता है। यद्यपि उसे विश्वास है कि राम की शरण में जाने पर और कहीं भटकना नहीं पड़ेगा तो भी अपनी चंचलता के कारण पागल बना फिरता है जिसकी शिकायत तुलसीदास राम से करते हैं :—

सुनहु नाथ ! मन जरत त्रिबिध जुर, करत फिरत बौराई।
कबहु जोग रत, भोग निरंतर सठ, हठ बियोग बस होई।

कबहुँ मोह बस द्रोह करत बहु कबहुँ दया अति सोई ॥२॥
कबहुँ दीन मतिहीन रंकतर, कबहुँ भूप अभिमानी
कबहुँ मूढ़ पंडित बिडंबरत कबहुँ धर्मरत ग्यानी ॥३॥
कबहुँ देव ! जग धनमय, रिपुमय कबहुँ नारिमय भासै

जैसे चंचल मन के लिए हरि-कृपा ही एक मात्र औषधि बन सकती है क्योंकि—

संजम जप तप नेम धर्म व्रत बहु भेषज समुदाई ।
तुलसिदास-भव-रोग रामपद-प्रेम हीन नहिं जाई ॥५॥

मन की ये सब अवस्थायें प्रत्येक साधक की होती हैं । मन की यह चंचलता १५८ वें पद में और भी विस्तृत रूप से दर्शायी गई है । इस चंचलता के कारण भक्ति की साधना में जब बाधा पड़ती है तब पुराणों की भक्ति कथाएँ सुनाकर उसे शिक्षा दी जाती है (७६) और सीतापति के गुणों का वर्णन करके उनके प्रति भक्ति दृढ़ करने का प्रयत्न किया जाता है ।

सुनि सीतापति शील सुभावु ।
मोद न मन तन पुलकि, नैन जल, सो नर खेहर खाउ ॥
आदि

राम का स्वभाव अकारण करुणा दिखाने वाला है जिसका स्मरण करके तुलसी के मन में अनुराग बढ़ता है और विश्वास भी होता है कि जिस राम ने साधन धाम बिबुध दुर्लभ तनु देकर अनुग्रह किया वही जीव को मोह-पाश से छुड़ाएगा । (१०२) । इस बात का ज्ञान होने के बाद वह निश्चय कर लेता कि—(९१)

अब लौं नसानी अब न नसैहौं ।
रामकृपा भव निसा सिरानी, जागे पुनिन डसैहौं ॥१॥
पायो नाम चारु चिंतामनि उर-करते न खसैहौं ।
स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी चित-कंचनहिं कसैहौं ॥२॥
परबस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन निजबस है न हँसैहौं ।
मन मधुकर पन कै तुलसी रघुपति पद कमल बसैहौं ॥३॥ [१०५]

और उस दिन की प्रतीक्षा करता है जब वह संत स्वभाव ग्रहण करेगा—

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो ।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा तें संत-सुभाव गहौंगो । [१७२]

इस संत स्वभाव में यथालाभ संतोष, परहित करने का नियम, परुष वचन न सुनना, मान-अपमान का ध्यान नहीं करना, मन में समता लाना, दूसरों के दोष न कहकर उनका गुण गान करना, देह जनित चिंता छोड़ना, दुख और सुख में समबुद्धि आदि गुण सम्मिलित हैं। तुलसीदास के अनुसार ये ही मानवता के गुण हैं जो राम की कृपा से प्राप्त होंगे।

यद्यपि साधक इन गुणों की लालसा करते हुए मन को बार बार समझाता है और राम से कृपा की भिक्षा माँगता है तो भी कुछ लाभ नहीं होता। राम की कृपा नहीं ही मिली। तब अंत में वह प्रणपूर्वक हठ करता है—

प्रन करि हौं हठि आज तें राम द्वार पर्यौहौं।

"तू मेरो" यह बिन कहे उठिहौं न जनम भरि प्रभु की सौं करि निबर्यौ हौं।

साधक की नीचता देख यदि राम उसे प्रकट रूप से अपनाने में संकोच करें तो मन में ही, सही, अपनाएँ तो !

प्रगट कहत जो सकुचिये, अपराध भर्यौ हौं।

तौ मन में अपनाइये तुलसिहिं कृपा करि, कलिबिलोकि हहर्यौ हौं ॥ [२६७]

राम से अपनाये जाने का विश्वास कैसे हो ? उसके लिए भी परीक्षा है—

तुम अपनायो तब जानि हौं, जब मन फिरि परि है

जेहि सुभाव विषयनि लग्यो तेहि नाथ सों नेह, छांड़ि छल करि है।

[२६८]

यह एक साथ साधक की कठिन परीक्षा भी है और विषय-वासनाओं में फँसे मानव को राम से प्रेम करने का मार्ग दर्शन भी है। जब मन इस अवस्था तक पहुँचेगा कि—

हरषि है न अति आदरे, निदरे. निदरे न जरि मरि है।

हानि लाम दुख सुख सबै सम चित हित अनहित कलि-कुचाल परिहरिहै

प्रभु गुन सुन मन हरषिहै, नीर नयनि नयननि ढरि है।

तब यह मानेगा कि—

तुलसीदास भयो राम को, बिस्वास प्रेम लखि आनंद उमगिउर भरिहै ॥

[२६८]

फिर अंतिम बार साधक अपने कष्टों का वर्णन करके राम से विनती करता है और अंत में भगवान की आत्मीयता तथा शरण प्राप्त करता है। इस प्रकार दीनता और लघुता तथा नीचता का अनुभव, आराध्य भगवान की महिमा की

अनुभूति, धीरता, शंका, हठीलापन, कठिन परीक्षा आदि विभिन्न मानसिक अवस्थाओं से भरे इस लंबे साधना-क्रम में तुलसी का मानवता के लिए महान संदेश भरा हुआ है जिसमें विनय पत्रिका का महत्व निहित है। यह पत्रिका जहाँ तुलसी की व्यक्तिगत भक्ति साधना और केवल भक्ति साधना का परिचायक है वहाँ मानवता का प्रतिनिधित्व करते हुए उसे आशा का संदेश भी देती है जो गीता की इस एक पंक्ति में निहित है कि—

"आत्मना आत्मानमुद्धरेत्"

तुलसी की यह भक्ति पद्धति प्रबंधात्मक रूप में राम चरित मानस में परिलक्षित होती है जिसमें कवि की लोक-कल्याण की भावना व्यक्त होती है और उसी में तुलसी की साधना की सार्थकता है।

तुलसीदास की यह राम भक्ति मर्यादापूर्ण है यद्यपि गीतावली में थोड़ी-बहुत मधुर भावना की छाया भी मिलती है। इस संबंध में स्व० पं० रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि तुलसीदासजी ने भक्ति को उसके पूर्ण रूप में, श्रद्धा प्रेम समन्वित रूप में, सब के सामने रखा और धर्म या सदाचार को उसका नित्य लक्षण निर्धारित किया।[1]

तुलसीदास की इस भक्ति पद्धति का प्रभाव हृदयराम हनुमन्नाटक और सेनापति के कवित्त रत्नाकर में देखा जा सकता है। हृदयराम ने इसी मर्यादा की भावना से मूल हनुमन्नाटक के जानकी विलास अंक को छोड़ दिया है जिसमें राम और सीता की रहःकेलियों का वर्णन है। इस बात को इसी अध्याय में दिखाया गया है। सेनापति की भक्ति पद्धति पर तुलसी का प्रभाव निम्न-लिखित छंदों में देखा जाय :—

पाल्यौ प्रहलाद, गज ग्राह तैं उबार्यो जिन
जाकौ नाभि कमल बिधाताहू कौं भौन है।
ध्यावैं सनकादि, जाहि गावैं बेद-बंदी सदा
सेवा के रिझावैं सेस रवि ससि पौन है।
ऐसे रघुबीर कौं अधीर ह्वै सुनावौ पीर
बंधु भीर आगे भली मौन है।
साँवरे-बरन, ताही सारंगधरन बिनु
दूजो दुख-हरन हमारो और कौन है।
(क. र. ५—३)

---

१. स्व. पं० रामचन्द्र शुक्ल—"हिन्दी साहित्य का इतिहास—पूर्व मध्यकाल—प्रकरण—६

राम के बिराट रूप का वर्णन करते हुए वे कहते हैं ।

लछि ललना है, सारादउ रसना है जाकी
ईसमहामाया हू कौं निगमन गायौ हैं ।
लोचन बिरोचन-सुधाकर लसत, जाको
नंदन बिधाता, हर नाती जाहि भायौ है ।।
चारि दिगपाल हैं बिसाल भुजदंड, जाके,
सेस सुख सेज, तेज तीनि लोक छायो है ।
महिमा अनंत सिय कंत राम भगवंत
सेनापति संत भागिवंत काहू पायो है ।।
(क. र. ५-६)

किन्तु कवित्त रत्नाकर के अध्ययन से यह विदित होता है कि सेनापति की भक्ति की अनुभूति साधना की दृष्टि से उतनी तीव्र नहीं है जितनी गोस्वामी तुलसीदास की है । इसका कारण यह है कि सेनापति की दृष्टि काव्य के साहित्यिक पक्ष की भी ओर बराबर रही जो उनकी प्रयत्नपूर्वक की गयी अलंकार योजना में लक्षित होती है । स्वयं तुलसीदास की कवितावली और गीतावली में भी यह बात हमें देखने को मिलती है कि साहित्यिक दृष्टि के प्रधान होने के कारण उनमें भक्ति का वह तीव्र रूप नहीं है जो रामचरित मानस में है । सेनापति ने अपने रामायण और राम रसायन वर्णनों में राम की वीरता और उदारता का ही वर्णन किया है । रामचंद्रिका में केशवदास की भक्ति केवल परंपरागत है न कि अनुभूति प्रधान । अतः साधना की दृष्टि से उनकी भक्ति का कोई महत्व नहीं है यद्यपि राम के परब्रह्मत्व को उन्होंने भी तुलसीदास के समान निरूपित करने का प्रयत्न किया । (रामचंद्रिका—२० श्रीराम स्तुति) सूरदास यद्यपि कृष्ण भक्त थे तथापि उन्होंने उसी तल्लीनता के साथ रामचरित का वर्णन किया जो उनकी कृष्ण लीलाओं के वर्णन में दिखायी पड़ती है । यही कारण है कि उन्होंने मूल के अति संक्षिप्त राम कथा को विस्तृत और सुगठित रूप देने का सफल प्रयत्न किया है, हाँ, कृष्ण चरित और रामचरित के विस्तार के अनुपात में अंतर अवश्य है । इसका कारण-लीला विषयक प्रधानता है । उन्होंने रामके सगुण रूप का ही वर्णन किया हैं । गुरु गोविंदसिंह की रामायण में साधना की दृष्टि से हृदय राम का प्रभाव दिखायी पड़ता है । अब साधना की दृष्टि से राम की सगुण भक्ति के दूसरे रूप पर विचार करना है । जो प्रथम वर्णित

तुलसीदास की मर्यादापूर्ण दास्य भक्ति से भिन्न है और वह है राम की मधुर भक्ति।

मधुर भक्ति की साधना प्रणाली:—

भगवान राम के श्रृंगारी रूप को लेकर उनकी उपासना जिस पद्धति से की जाती है उसे मधुर भक्ति कहते हैं और उस भक्ति के संप्रदाय को रसिक संप्रदाय। यह भक्ति पद्धति एकांतिक है जो राम के केवल श्रृंगारी रूप को लेकर चलती है। इसमें राम के वीर, उदार और लोक रक्षक रूप के लिए कोई स्थान नहीं। इसके साधक अपने को राम की पत्नी या सखी मानकर पति-पत्नी भाव या नायक-नायिका भाव से राम की उपासना करते हैं। यह भक्ति पद्धति हिन्दी के राम साहित्य की एक विशेषता है जो तुलसीदास के समय तक गुप्त रही और उनके समकालीन अग्रदास जी के द्वारा संसार के सामने उपस्थित की गई। उनकी "ध्यान मंजरी" इस भक्ति संबंधी हिन्दी साहित्य की सर्व-प्रथम, पुस्तक है।[1] इस रसिक संप्रदाय के मूलोद्‌गम के संबंध में विचार करते हुए डा० भगवती प्रसाद सिंह कहते हैं कि रसिक संप्रदाय के संत तो वाल्मीकि रामायण को आराध्य की श्रृंगारी लीलाओं का आदिस्रोत ही मानते हैं।[2] श्री भुवनेश्वरनाथ मिश्र अपने "राम भक्ति में मधुरोपासना" में लिखते हैं कि गलता गद्दी के स्वामी मधुराचार्य ने संपूर्ण वाल्मीकीय रामायण की श्रृंगारपरक व्याख्या करते हुए अनेक वचनों को उद्धृत करके बताया है कि पुरुष किस प्रकार भगवान के कमनीय मुख को देखकर उसी प्रकार रमणेच्छुक हो जाते हैं जिस प्रकार सती स्त्री अपने कांत को देखकर हो जाती है।[3] (पृ० १६३) वाल्मीकि रामायण के बाद बहुत से ऐसे संस्कृत राम काव्य और नाटक मिलते हैं जिनमें राम की श्रृंगारी लीलाओं का वर्णन मिलता है जैसे कालिदास का "रघुवंश", कुमारदास का "जानकी हरण", हनुमन्नाटक, और जयदेव का प्रसन्न राघव आदि। इनके अतिरिक्त अनेक उपनिषद्, संहितायें और रामायणें आदि ग्रंथ भी इस भक्ति पद्धति के मिलते हैं जैसे रामतापनीयोपनिषद्, राम रहस्योपनिषद्, हनुमत्संहिता, लोमश संहिता, बृहत्कोशल खंड, भुशुंडि रामायण आदि। मधुर भक्ति प्रधान इस विस्तृत

---

१. डा० भगवती प्रसाद सिंह—रामभक्ति में रसिक संप्रदाय—पृ० ८८।

२. डा० भगवती प्रसाद सिंह—रामभक्ति में रसिक संप्रदाय—पृ० ६९।

३. श्री भुवनेश्वरनाथ मिश्र—राम भक्ति साहित्य में मधुरोपासना—७ अध्याय।

साहित्य के आधार पर डा० श्री भगवती प्रसाद सिंह अपने ग्रंथ में लिखते हैं कि इधर माधुर्य धारा का जो साहित्य उपलब्ध हुआ है उससे विदित होता है कि गोस्वामी तुलसीदास की पूर्ववर्ती, समकालीन और परवर्ती रामोपासना इसी से ओतप्रोत थी। वास्तव में इस पद्धति के साधक कवियों की संख्या इतनी अधिक है कि तुलसी अपने समकालीन भक्ति क्षेत्र में प्रस्तुत शृंगारी राम भक्ति के अपवाद से प्रतीत होते हैं।[1] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी इस भक्ति पद्धति के राम साहित्य पर कृष्ण भक्ति की एकांतिक प्रेम साधना का प्रभाव मानते हैं।[2] संस्कृत के ललित साहित्य (काव्य और नाटक) में भक्ति-साधना का दृष्टिकोण नहीं था क्योंकि उनके कवि स्वयं साधक नहीं थे; केवल कवि थे। इसलिए उन ग्रंथों को इस रसिक संप्रदाय के मूल स्रोत के रूप में नहीं लिया जा सकता। इसका समर्थन डा० भगवती प्रसाद सिंह के कथन से भी होता है।[3] माधुर्य भक्तिपूर्ण कृष्णोपासना से प्रभावित होकर राम भक्ति में भी रसिक संप्रदाय चल पड़ा होगा और अपने समर्थन के लिए संस्कृत के ललित साहित्य की काव्य कल्पना का सहारा पाकर संस्कृत में भी समय-समय पर अनेक सांप्रदायिक ग्रंथों का निर्माण हुआ होगा। वस्तुस्थिति चाहे जो भी हो इतना तो निश्चित है कि हमारे आलोच्य काल के अंतिम चरण में राम की मधुर भक्ति का साहित्य हिन्दी में भी मिलने लगा जो १९वीं शताब्दी में आकर बहुत विकसित हुआ।

हमारे आलोच्यकाल में जो मधुर भक्ति पूर्ण राम साहित्य हिन्दी में निर्मित हुआ है उसमें चरित्र प्रधान प्रबंध काव्य प्राय: नहीं मिलते। इस शाखा के सर्व प्रथम साधक स्वामी अग्रदास माने जाते हैं जिनकी दो प्रसिद्ध पुस्तकें "अष्टयाम" और "ध्यान मंजरी" हैं। भारतीय हिन्दी परिषद् से प्रकाशित हिन्दी साहित्य के द्वितीय भाग में "राम ज्योनार" नामक पुस्तक का भी उल्लेख किया गया है।[4]

ध्यान मंजरी—

इसमें ८० छंद हैं जिसमें राम की वंदना करके अवधपुरी का ध्यान

---

१. डा० भगवती प्रसाद सिंह—राम भक्ति में रसिक संप्रदाय—पृ० ६७।
२. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी—हिंदी साहित्य—पृ० २४८।
३. डा० भगवती प्रसाद सिंह—रामभक्ति में रसिक संप्रदाय—पृ० ७६।
४. भारतीय हिन्दी परिषद—हिन्दी साहित्य २ पृ. ३०७

किया गया है। उसके बाद उस नगर के वासियों और राम के अंतःपुर की सेविकाओं का वर्णन मिलता है। इसका सरयूजी का वर्णन बहुत ही सुन्दर है। इसके उपरांत सरयू नदी के किनारे अशोक वन में स्थित कल्पवृक्ष के नीचे एक स्वर्ण वेदिका, उसके बीच में रत्नसिंहासन, उस पर सुन्दर पद्मों का आसन और उसके बीच में स्थित कर्णिका पर शोभित सीताराम की युगल सरकार वर्णित है। अंत में भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और अन्य पार्षदों का भी वर्णन किया गया है जो राम का दिव्य सौंदर्य देख प्रसन्न होते हैं और उनकी सेवा करते हैं। इसका विषय यही है। इस समूचे वर्णन में साधक की मधुर भावना दिखाई पड़ती है जो युगल सरकार के दिव्य सौंदर्य से आकृष्ट होती है। उसी का ध्यान साधक करता है।

अपनी इस मधुरोपासना के संबंध में अग्रदास कहते हैं—

"अमल अमृत रस धार रसिक जन यहि रस पागे।
तेहि को नीरस ज्ञान योग तप छोई लागे।। (ध्या. मं. ७३ ।।)

वे यह भी कहते हैं—

यह दंपति बरध्यान रसिक जन नित प्रतिध्यावै
रसिक बिना यह ध्यान और सपनेहु नहीं पावै।। (ध्या. मं. ७२)

इनके "अष्टयाम" में राम की दैनिक लीलाओं का वर्णन है।

रामाष्टयाम—

यह नाभादास की रचना है जिसमें राम के दैनिक कार्य कलापों का वर्णन है जो बहुत ही शृंगार प्रधान है। राम को एक शृंगारी नायक और सीता को नायिका के रूप में ही वर्णित किया गया है। इस संप्रदाय से अनभिज्ञ कोई पाठक इसे पढ़कर यदि यह समझे कि साधारण नायक और नायिका ही इसमें वर्णित है और यह भक्ति-प्रधान नहीं है तो कोई आश्चर्य नहीं। सखियों के सामने परस्पर एक दूसरे के मुँह में कौर देते हुए—सीता और राम के भोजन, सहजा, रसमंजरी, चंद्रकला आदि सखियों के नृत्य और संगीत, सीता और राम के शयन आदि का वर्णन जब तक साधना के परिपार्श्व में रखकर न देखा जाय तब तक उसकी विशिष्टता और भक्ति के दर्शन नहीं होते।

इसलिए यह कहा जा सकता है कि इस संप्रदाय के साहित्य का महत्व

एक विशिष्ट साधना-पद्धति के चित्रण में है।[1] डा० भगवतीप्रसाद सिंह के अनुसार इस संप्रदाय ने अध:पतित समाज के विषयग्रस्त वातावरण में भी राम भक्ति की मर्यादा से पुष्ट मधुर उपासना के प्रति जनसाधारण की भावना उद्बुद्ध की और उसकी शृंगारी प्रवृत्ति को आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख कर, परिष्कृत किया है।[2] इस उपासना के प्रवर्तक स्वामी अग्रदास ने आगमों की पद्धति पर शक्ति और शक्तिमान अर्थात् सीता और राम की रति-क्रीड़ाओं का वर्णन भक्त कवियों के लिए अनिवार्य कर दिया है।[3] किंतु स्थूल दृष्टि से साधक में भक्ति के प्रादुर्भाव के लिए आराध्य की दिव्य महिमा के जिस निर्द्वंद्व प्रतिपादन की आवश्यकता है उसका इसमें अभाव है। फिर भी यह साधना के बल पर भक्ति प्रधान माना जाता है।

हमारे आलोच्य काल में बाल अली आदि साधकों का जो साहित्य मिलता है वह सब इसी कोटि का है। रीतिकालीन कृष्ण साहित्य में राधा और कृष्ण का जो स्थान है वही इस रसिक संप्रदाय के साहित्य में सीता और राम का है। इस साहित्य के साथ गीतावली के आधार पर तुलसीदास का जो संबंध जोड़ा जाता है वह ठीक नहीं है। गीतावली में राम और सीता का जो शृंगारी वर्णन मिलता है वह राम के शक्ति, शील, सौंदर्य पूर्ण संपूर्ण जीवन का एक छोटा-सा अंग मात्र है। अत: उस वर्णन से सच्ची भक्ति में कोई बाधा नहीं पड़ती। उसको सांप्रदायिक मधुर भावना-प्रधान नहीं माना जा सकता। किंतु इस रसिक संप्रदाय के साहित्य में जो वर्णन मिलता है वह एकांतिक मधुर भाव से पूर्ण होने के कारण राम की शील और शक्ति संबंधी विशेषताओं से रहित है और उनके जीवन का ऐसा खंड चित्र उपस्थित करता है जिसका सामाजिक जीवन से कोई स्वस्थ संबंध नहीं हो सकता। इसमें रामावतार के प्रधान उद्देश्य का—दुष्ट दलन और शिष्ट पालन—कोई महत्व नहीं है। अत: इस शाखा में राम का वह लोकरक्षक रूप नहीं मिलता जो तुलसी और उनसे प्रभावित भक्त कवियों की रचनाओं में मिलता है।

---

१. डा० भगवती प्रसाद सिंह रामभक्ति में रसिक संप्रदाय पृ. ३५७

२. ,, ,, ,, पृ. ३५७

३. डा० विश्वंभरनाथ उपाध्याय—"संत-वैष्णव काव्य पर तांत्रिक प्रभाव" पृ० ४२७।

आलोच्य काल के कुछ अन्य हिन्दी राम काव्यों की सूची[1]

१	आदि रामायण	...	सोढ़ी मेहरवान
२	लक्ष्मणायन	...	रामानंद
३	राम रासो	...	माधवदास
४	हनुमंतमोक्ष्यगामी कथा	...	ब्रह्मरायमल
५	अवध विलास	...	लालदास
६	रामचरित	...	नरहरि दास
७	रामचरित रामायण	...	भूपति
८	दशरथ राय	...	सुखदेव मिश्र
९	बालि चरित्र	...	केशव
१०	श्री रामायण	...	झामदास
११	सीताहरण	...	शिवदत्त
१२	रामायण महा नाटक	...	प्राणचंद चौहान
१३	सीतायन	...	रामप्रिया शरण
१४	अवधी सागर	...	जानकी रसिक शरण
१५	वाल्मीकि रामायण	...	कलानिधि
१६	आनंद रामायण रामायण आदि	...	विश्वनाथ सिंह

---

१. श्री बदरीनारायण श्रीवास्तव—"उत्तर भारत का मध्यकालीन राम काव्य" शीर्षक लेख

और

डा० रामकुमार वर्मा—"हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास" के आधार पर

सातवाँ अध्याय

तेलुगु के राम साहित्य का वस्तुगत अध्ययन

पिछले अध्यायों में तेलुगु के राम साहित्य के विभिन्न रूपों और लेखकों का परिचय दिया जा चुका है। इस अध्याय में विवरणात्मक रूप से प्रमुख कृतियों का वस्तुगत अध्ययन काल-क्रम से प्रस्तुत किया जायगा।

तेरहवीं शताब्दी—

निर्वचनोत्तर रामायणः—यह तेलुगु का प्रथम राम काव्य है जो तिक्कन्न का लिखा हुआ है और महाराज मनुमसिद्धि को समर्पित है जिनके थे मंत्री थे। इसमें वाल्मीकि रामायण के उत्तर कांड की कथा वर्णित है। तिक्कन्न ने इसे महाकाव्य की शैली में लिखा है और औचित्य की दृष्टि से कतिपय प्रसंगों को घटाया, कुछ को बढ़ाया और कुछ को अनावश्यक समझकर छोड़ दिया। इसी में कवि की वस्तु विन्यास की प्रतिभा दिखाई पड़ती है। वाल्मीकि रामायण के उत्तर कांड के निम्नलिखित प्रसंगों को निर्वचनोत्तर रामायण में छोड़ दिया गया है—

(१) ५३ वें सर्ग से ६० वें सर्ग तक—जिनमें मृग के शाप, राजानृग, निमि, ययाति आदि की कथाएँ कही गई हैं। इनमें नृग, निमि का उल्लेख एक पद्य में किया गया है। (२) ७७ वें सर्ग से लेकर ९२ वें सर्ग तक, जिनमें स्वर्गीय पुरुष श्वेत का शव भक्षण प्रसंग, राजा दंड की कथा, वृत्रासुर वध, पुरुरव के जन्म आदि प्रसंग वर्णित है। ये मूल कथा से असंबद्ध मालूम होने के

कारण छोड़ दिए गये हैं । इनके अलावा राम और उनके भाइयों के निर्वाण का प्रसंग भी संभवतः अमंगलकारी समझकर छोड़ दिया गया है। शेष प्रसंग वाल्मीकि के अनुसार वर्णित है, हाँ न्यूनाधिक मात्रा में। कथा के विकास की दृष्टि से तिक्कन्न ने कुछ सुन्दर वर्णन भी जोड़ दिए हैं—जैसे प्रारंभ में अयोध्या का वर्णन, राम और सीता के विहारों का वर्णन आदि। इसके अलावा वस्तु विकास की दृष्टि से इसमें कोई नवीनता नहीं है। मूल की कथा इतनी संक्षिप्त कर दी गई है कि मूल के १११ सर्गों की कथा १० आश्वासों में आ गई है। किंतु इसमें कवि ने अपनी अद्भुत काव्य प्रतिभा दिखाई और वर्णनों में अपने समय की परिस्थितियों का चित्र उपस्थित किया जिसपर अन्यत्र विचार किया जायगा।

चौदहवीं शताब्दी:—

रंगनाथ रामायण—यह तेलुगु की प्रथम पूर्व-रामायण है। इसके कर्तृत्व के संबंध में पाँचवें अध्याय में विचार किया गया है और यह निष्कर्ष निकाला गया है कि इसकी रचना रंगनाथ के द्वारा ही हुई थी। जिस राजा विट्ठल की प्रेरणा से इसकी रचना हुई उनका उद्देश्य था कि तेलुगु में ऐसी रामायण लिखी जाय जो क्रमानुसार हो (वाल्मीकि रामायण के अनुसार) और कवींद्रों और पंडितों की प्रशंसा पाकर संसार में प्रसिद्ध हो जाय। राजा विट्ठल के इस प्रकार कहने का एक कारण था। उस समय आँध्र देश में वीरशैव धर्म का बड़ा बोलबाला था। वीरशैव कवि अपने धर्म का प्रचार करने के लिए साधारण जनता को दृष्टि में रखकर रगड़, द्विपद आदि गीतात्मक देशी छंदों में शिवभक्ति संबंधी काव्यों की रचना करते थे जिन्हें जन-साधारण में तो प्रसिद्धि प्राप्त होती थी, किंतु पंडितों का आदर नहीं मिलता था। राजा विट्ठल अपने नाम पर लिखी जानेवाली रामायण को इस अवस्था में देखना चाहते नहीं थे। अतः उन्होंने उपर्युक्त ढंग से कहा जिसका भाव यह है कि रामायण में वे दोनों तत्व मिलें जो एक साथ पंडितों, कवींद्रों और जनसाधारण की प्रशंसा प्राप्त कर सकें। वाल्मीकि रामायण अपने काव्य-सौंदर्य और आदर्श चरित्र चित्रण के कारण पंडितों में पहले ही आदर प्राप्त कर चुकी है। जब से उसकी कथा में अंतर्निहित भक्ति तत्व का सम्यक् विकास हुआ तब से लेकर वह साधारण जनता की भक्तिभावना का आधार बनकर अनन्य लोक प्रसिद्धि प्राप्त कर सकी है। अतः अपनी रचित रामायण को लोकप्रसिद्ध बनाने के लिए रंगनाथ को रामायण में उपर्युक्त दोनों तत्वों का समन्वय करना आवश्यक हो

गया था। अतः उन्होंने वाल्मीकीय रामायण का स्वतंत्र रूप से अनुवाद सा करते हुए भी अनेक नये प्रसंगों का अन्य स्थानों से संचय करके या स्वतंत्र उद्भावना के द्वारा समावेश किया है। उनके समय तक तेलुगु देश में राम कथा बहुत प्रचलित हो गई थी और उसमें विभिन्न स्रोतों से आकर नये-नये आख्यान भी जुड़ते गये जो वाल्मीकीय रामायण में नहीं मिलते। अब आगे यह दिखाया जायगा कि रंगनाथ ने कथावस्तु में कौन-कौन से प्रधान परिवर्तन किए; कौन-कौन से नये आख्यान जोड़े और किस प्रकार अपनी रामायण की वस्तु का विकास किया जिससे वह लोगों को रोचक लगे।

बालकांड—

संक्षेप में बालकांड का वस्तु विभाजन इस प्रकार है—

प्रारंभ में इष्ट-देवता की स्तुति, ग्रंथ की रचना का कारण, वाल्मीकि और नारद समागम और वाल्मीकि का संक्षेप में रामकथा श्रवण, अयोध्या और दशरथ के वैभव और शासन का वर्णन, संतानहीनता के कारण दशरथ की चिंता, पुत्रकामेष्टि यज्ञ का संकल्प, ऋष्यश्रृंग की कथा, ब्रह्मा और विष्णु से देवताओं की प्रार्थना, श्रीराम का अवतार, रामादि का बचपन, विश्वामित्र के माँगने पर राम और लक्ष्मण का उनके साथ यज्ञ की रक्षा के लिए भेजा जाना, ताड़का वध और विश्वामित्र का राम और लक्ष्मण को शस्त्रास्त्र प्रदान, विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा, मिथिला प्रयाण, विश्वामित्र, कार्तिकेय, गंगावतरण, अमृतमंथन, अहल्या आदि का इतिहास, मिथिला में शिवधनुष का राम के द्वारा तोड़ा जाना, सीता और राम का विवाह, परशुराम का गर्व भंग और अयोध्या प्रवेश। इस विषय-विभाजन से यह विदित होता है कि कवि ने अपनी रचना में वाल्मीकि का ही अनुसरण किया है। किंतु उन घटनाओं के बीच में आवश्यकतानुसार अन्विति लाने का प्रयत्न किया है।

कथा के प्रारंभ से लेकर वस्तु-विकास पर जब दृष्टिपात किया जाता है तब सर्वप्रथम दृष्टिगत होनेवाली विशेषता है—दशरथ का पुत्र-कामेष्टि-यज्ञ। वाल्मीकि रामायण में दशरथ पुत्र प्राप्ति के लिए पहले अश्वमेध यज्ञ करने की बात सोचते हैं। जब दशरथ अपना यह विचार वशिष्ट आदि मुनियों के सम्मुख उपस्थित करते हैं तो सब उसे सहर्ष स्वीकार करते हैं और वह यज्ञ संपन्न होता है। अश्वमेध यज्ञ की समाप्ति पर दशरथ ऋषि ऋष्यश्रृंग से प्रार्थना करते हैं कि आप ऐसा कीजिए कि मेरे कुल की वृद्धि हो जिस पर श्रृष्यश्रृंग कहते हैं कि तुम्हारे चार पुत्र होंगे। इसके अनन्तर अगले सर्ग में थोड़ा ध्यान लगाकर ऋष्य-

श्रृंग फिर दशरथ से कहते हैं कि पुत्र प्राप्ति के लिए मैं अथर्व मंत्रोक्त विधि से इष्टि करूँगा। इससे व्यक्त होता है कि दशरथ को पहले इष्टि की बात मालूम नहीं थी, किंतु ऋष्यश्रृंग ने स्वयं राजा के लिए इष्टियज्ञ किया। इससे यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि पुत्रेष्टि यज्ञ की बात वाल्मीकि रामायण में पीछे जोड़ दी गई है और परवर्ती साहित्य में केवल पुत्रेष्टि यज्ञ का ही वर्णन मिलता जैसे रघुवंश, भट्टिकाव्य, अध्यात्म रामायण आदि।[1] रंगनाथ रामायण में दशरथ पहले से ही जानते थे कि अश्वमेध यज्ञ करने के बाद पुत्रकामेष्टि यज्ञ किया जाता है और इसीलिए अपने मंत्रियों से कहते हैं कि पहले अश्वमेध यज्ञ करके बाद में पुत्रकामेष्टि यज्ञ करूँगा।

"तलकोनि यश्वमेधमु चेसि पिदप—नेलमितो पुत्रकामेष्टि वेल्चेदनु"

(रं. रा. बा. पृ. १० पंक्ति २७५)

[रायलु एण्ड कम्पनी से प्रकाशित]

दशरथ के इस विचार को आगे वशिष्ठ आदि मुनि भी सहर्ष स्वीकार करते हैं। इस प्रकार इन दोनों यज्ञों का दशरथ के मुँह से उल्लेख कराकर रंगनाथ ने दोनों में समन्वय कर दिया जिससे इनमें किसी को भी क्षेपक मानने की गुंजाइश नहीं रह गई।

२. वस्तु-विकास की दृष्टि से इस कांड में कवि का सबसे महत्वपूर्ण घटना सन्निवेश है दाशरथियों की बाल्यावस्था और कंदुक-क्रीड़ा का वर्णन जिसका प्रभाव राम के भविष्य जीवन पर पड़ा। चारों भाई बचपन में सब लोगों के प्रेम के पात्र होकर अपनी अटपटी चालों तथा तोतली बोलियों से सब को आनंद पहुँचाते थे। एक दिन राम अपने मित्रों के साथ गेंद और डंडा लेकर खेल रहे थे। इतने में कैकेयी की दासी ने आकर कौतूहलवश गेंद को अपने हाथ से मारा तो राम को बड़ा गुस्सा आया और मंथरा की टाँग पर डंडा दे मारा। बेचारी मंथरा की टाँग टूट गई। तब उसने जाकर कैकेयी से शिकायत की और उसने दशरथ से कहा। दशरथ ने तब विचार कर वशिष्ट को बुलाया बालकों की शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध किया।

(रं. रा. बा. पृ. पंक्तियाँ ५९० से ६०० तक)।

यह घटना वाल्मीकि रामायण में नहीं है और रंगनाथ की स्वतंत्र भावना है। अग्नि-पुराण में इसका आधार मिलता है। इससे कथा के विकास

---

१. डा. कामिल बुल्के—रामकथा का विकास—पृ. २६७।

में मानवोचित स्वाभविकता आ गई है। बालकों के विकास के क्रम में कभी एक ऐसी अवस्था भी आ जाती है जब उनको अपने खेलों में दूसरों को बाधा डालते देखकर उन पर गुस्सा आ जाता है और ढिठाई से उनको उस चीज से मारते हैं जो उस समय उनके हाथ में रहती है। वही समय उनको शिक्षा में लगाने का होता है, अन्यथा उनकी ढिठाई दिन-दिन बढ़ती जाती है। जब दशरथ ने सुना कि राम ने गुस्से में आकर मंथरा की टाँग तोड़ दी तब उन्होंने सोचा कि अब बच्चों को सुशिक्षित बनाने का समय आ गया है, ऐसे ही छोड़ देना नहीं चाहिए। तुरंत उनकी शिक्षा का प्रबंध कर दिया। इस घटना का अन्त नहीं हुआ। इसका बुरा परिणाम अयोध्याकाण्ड में देखा जाता है जब मंथरा इस क्रोध को मन में रखकर राम के राज्य-निर्वासन का कारण बनती है और उनकी जीवनधारा को ही अदृष्ट दिशा की ओर मोड़ देती है। इसको अयोध्याकाण्ड के विकास के विश्लेषण में दिखाया जायगा। इस घटना का सन्निवेश इस बात का प्रमाण है कि रंगनाथ ने राम को विष्णु मानते हुए उनमें अलौकिकता की अपेक्षा माननीय स्वाभाविकता दिखाने का प्रयत्न किया है।

३. वाल्मीकि रामायण में गौतम के आश्रम का वृत्तांत सुनाते हुए विश्वामित्र ने राम से कहा कि गौतम ने अहल्या को शाप दिया—

इह वर्ष सहस्राणि बहूनि निवसिष्यसि। बा. ४८—२९
वातभक्षा निराहारा तप्यन्ती भस्मशायिनी।
अदृश्या सर्वभूतानामाश्रमेऽस्मिन् वसिष्यसि। ,, ३०
यदा त्वेतंत् वनंघोरं रामो दशरथात्मजः
आगमिष्यति दुर्धर्षस्तदा पूता भविष्यसि। ,, ३१

रंगनाथ रामायण में गौतम ने अहल्या को शाप दिया कि—

पडति ! पाषाणमै पडियुंडुमीवु
करमुग्रमगु नेंड 'गालि पेंधूलि'
बोरलुचुंडुम नीवु पोड गान बडक"

(रं. रा. बा. पृ. ५०, पं. १४८१—१४८२)

अर्थात् "तुम शिला बनकर तेज धूप और वायु को सहती हुई धूल में अदृश्य होकर लोटती रहो।" इस पर अहल्या गौतम से पूछती है कि "शाप का अन्त कैसे होगा ?"

तब गौतम कहते हैं—

वैकुंठधामु डवाप्तकामुंडु
लोकरक्षण कला लोलमानुसुडु
रामुडै वच्चि पुराणपूरुषुडु
भूमिपै जन्मिंचि पोगडु दीपिंप
जनुदेंचि कौशिकु जन्नंबु गाचि
यिनकुलाधीश्वरु डी त्रोव वच्चि
तोलगि पोवक निन्नु द्रोक्किन जालु
जलजलोचन नीडु शापंबु दीरु ॥

(रं. रा, बा. पृ. ५० पं. १४८४–१४८७)

अर्थात्—"बैकुंठवासी, अवाप्तकामी, लोकरक्षण में तत्पर रहने वाले पुराणपुरुष (विष्णु) भूमि पर सूर्यवंश में राम बनकर जन्म लेंगे और विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करके यहाँ आकर जब अपने पैरों से तुम्हारा स्पर्श करेंगे तब शाप का अन्त होगा।"

अहल्या के शिला बनने शाप की कथा "रघुवंश" में पायी जाती है। उसमें लिखा है—

प्रत्यपद्यत चिराय यत्पुनश्चारु गौतम वधूः शिलामयी
स्वं वपुः स किल किल्बषच्छिदां रामपाद रजसामनुग्रहः।

(रघुवंश–११–३४)

इसके अतिरिक्त अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण (सार ३. १६) नृसिंह पुराण (४७ वाँ अध्याय) स्कंद पुराण (रेवा खण्ड १३६ वाँ अध्याय) पद्म पुराण (पाताल खण्ड, गौडीय पाठ) आदि में भी अहल्या के शिला होने और राम के पाद-स्पर्श से शापमुक्त होने का उल्लेख पाया जाता है।

यही कथा आँध्र में बहुत व्याप्त हुई जिसे रंगनाथ ने ग्रहण किया। रंगनाथ रामायण की विशेषता यह है कि गौतम क्रोध में आकर अहल्या को पहले शाप दे देते हैं। बाद में उसके पूछने पर कि इसका अंत कब होगा, शापांत की बात कहते हैं। यह क्रमिक वर्णन वाल्मीकि रामायण में नहीं पाया जाता है। उसमें गौतम एक ही साथ शाप और उसका अंत बता देते हैं।

४. रंगनाथ ने सीता के पूर्वानुराग की एक सुंदर घटना का सन्निवेश किया है। राम अपने भाई लक्ष्मण और विश्वामित्र के साथ राजा जनक की सभा में आते हैं और उनके सामने विश्वामित्र के कहने पर शिवधनुष लाया

जाता है। उस समय जनक के अंत:पुर की दासियाँ सीता, ऊर्मिला और जनक की पत्नी के पास जाकर कहती हैं कि हमारे महाराज की सभा में ऋषि विश्वामित्र के साथ दो राजकुमार आये हैं जो आजानुबाहु और देव तथा गंधर्वों से भी अधिक तेजस्वी हैं। महाराज के पूछने पर विश्वामित्र ने बताया कि ये राजकुमार दशरथ के पुत्र हैं और शिवधनुष पर तीर चढ़ाने के लिए आये हैं। महाराज ने यह सुनकर धनुष मँगवाकर उनके सामने रखवाया। चलिए हम उनको झरोखों से देख सकते हैं। दासियों का यह कथन सीता के कानों में अमृत सा पड़ता है और उनके हृदय में प्रेम पैदा हो जाता है तथा उसके तन में रोमांच हो आता है। उनके हृदय में प्रेम और भय एक साथ जाग उठे तो अपनी नीति (मर्यादा) का ख्याल करके विशेष कर वीर्यशुल्का होने के ख्याल से, वह लज्जा से सिर झुकाए खड़ी रही। तब परिचारिकाओं ने उनका उपचार और बाद में अलंकरण किया। तब माता उन्हें झरोखे के पास ले गई तो उन्होंने उन सुंदर राजकुमारों को देखा। दासियों ने स्त्रीसुलभ स्वभाव के वश वर-वधुओं का चुनाव कर लिया कि राम के लिए सीता ठीक होंगी लक्ष्मण के लिए ऊर्मिला। यह पूरा प्रसंग वाल्मीकि रामायण में नहीं है और रंगनाथ की उद्भावना है जिस पर आनंद रामायण का प्रभाव है। आनंद रामायण में भी पुरनारियाँ राम और लक्ष्मण को देखकर इसी प्रकार कहती हैं—

श्रुत्वाच पुरनार्यश्च वीरौ श्रीराम लक्ष्मणौ
समागताविति मुदा गोपुराट्टालसंस्थिताः
कंजनेत्रैर्ददृशुस्तौ ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः
तदा परस्परं प्रोचुः सीतायोग्योवरस्त्वयम् ॥
रामोऽस्माकं रोचते हि करोत्वेवं विधिस्तु सः
उर्मिलायास्तु योग्योऽयं लक्ष्मणोऽस्ति सुलक्षणः

(आनंद रामायण सार कांड २-४४-४७)

स्त्रियों के गवाक्षों के द्वारा देखने का भी उल्लेख है—

ततः शनैः शनैर्वीरौ गवाक्षैः स्त्रीभिरीक्षितौ ।
जग्मतुर्वाद्यघोषाद्यैर्जनकस्य सभांप्रति ॥

(आ० रा० सा० कांड २-५३)

शिवधनुर्भंग के समय भी स्त्रियों के गवाक्षों के द्वारा देखने का वर्णन मिलता है—

गवाक्षणालरंध्रैश्च प्रासादोपरि संस्थिताः
ददृशुः सुकुमाररांगं रामं पंकजलोचनम् ।।
(आ० रा० सा० २-९८)

अध्यात्म रामायण में भी इस प्रकार गवाक्षों का उल्लेख है यद्यपि वर्णन ऐसा नहीं है। (अ० रा० बा० ६-३२) यह सारा वर्णन सीता के हृदय में राम के प्रति पूर्वराग पैदा करने के लिए आयोजित किया गया है। उसके बाद धनुष उठाने के लिए उद्यत राम की मनोहर मूर्ति और मुद्रा का वर्णन किया गया है जिससे सीता का प्रेम दृढ़ हो जाय। राम का यह वर्णन भी वाल्मीकि-रामायण में नहीं है।

५. राम जब शिवधनुष पर तीर चढ़ाने को उद्यत हुए तब रंगनाथ रामायण में विश्वामित्र पृथ्वी और उसके धारण कर्ताओं को संबोधित कर कहते हैं—

हरुनि चापमु रामु डतिसत्वयुक्ति
बेरिगि नेडिदे एक्कु वेट्टुचुन्नाडु
अदरकु भूदेवि यात्मलो नीवु
चेदरि चलिपक शेषाहि नीवु
कडक धरिंपुमु कमठेंद्र नीवु
कडु नेमरुकुडु दिक्करुलार मीरु ।।

अर्थात् "राम आज शिव का धनुष चढ़ाते हैं। पृथ्वी ! तुम चौंकना नहीं ; शेषनाग ! तुम विचलित नहीं होना ; हे कमठ ! तुम दृढ़ता से पृथ्वी को धारे रहो ; हे दिग्गज ! तुम लोग सावधान रहना।" यहाँ रंगनाथ पर हनुमन्नाटक के निम्नलिखित श्लोक का प्रभाव है—

पृथ्वि ! स्थिरा भव ! भुजंगम धारयैनां
त्वं कूर्मराज तदिदं द्वितयं दधीथाः
दिक्कुंजराः कुरुत तत्त्रितये दिधीर्षं
रामः करोति हरकार्मुके माततज्यम्

दोनों में अंतर इतना ही है कि रंगनाथ रामायण में यह चेतावनी विश्वामित्र देते हैं। और हनुमन्नाटक में लक्ष्मण।

६. वाल्मीकि रामायण में राजा जनक दशरथ को अपना परिचय स्वयं देते हैं। किंतु रंगनाथ रामायण में जनक के पुरोहित शतानंद उनका परिचय

कराते हैं जो औचित्य को दृष्टि से ठीक है। बा० रामायण में वशिष्ठ जनक को दशरथ के वंश का परिचय देकर स्वयं ही लक्ष्मण के लिए जनक से ऊर्मिला को माँगते हैं जिसे जनक स्वीकार करते हैं (वा. रा. बा. ७०-४५)। रंगनाथ रामायण में दशरथ शतानंद के द्वारा जनक के वंश का परिचय सुनने के बाद वशिष्ठ और विश्वामित्र से कहते हैं कि आप महाराज जनक से लक्ष्मण के लिए ऊर्मिला को तथा भरत और शत्रुघ्न के लिए कुशध्वज की पुत्रियों को माँगिये। तदनुसार वे जनक से ऊर्मिला, मांडवी और श्रुतकीर्ति को माँगते हैं जिसे वे स्वीकार करते हैं। इसमें राजा के गौरव की रक्षा हुई है।

७. चारों भाइयों के विवाह के बाद सब लोग अयोध्या पहुँच जाते हैं और सुख से रहने लगते हैं। यहाँ रंगनाथ रामायण में दशरथ भरत और शत्रुघ्न को ननिहाल भेजते हुए उनसे कहते हैं कि वत्स ! ब्राह्मणों की शुश्रूषा करके उनसे अश्व, गज, रथ आदि का आरोहण, शस्त्रास्त्रों का चलाना, वेद और नीति-शास्त्र तथा अन्य सब कलाएँ सीख लेना; एक क्षण भी व्यर्थ नहीं गँवाना। अपने कुशल क्षेम का समाचार भेजते रहना।" भरत और शत्रुघ्न इसका वचन देकर चले जाते हैं और कुछ समय के बाद दशरथ को एक ब्राह्मण के द्वारा समाचार भेजते हैं कि आपके आदेशानुसार हमने सब विद्याएँ सीख लीं और अब आपके दर्शनों की इच्छा होती है।" यह प्रसंग भी रंगनाथ रामायण की उद्भावना है जिससे दशरथ की नीति पर प्रकाश पड़ता है जो आगे दिखाया जायगा। वाल्मीकि रामायण में केवल ननिहाल जाने का ही उल्लेख है।

(वा० बा० ७७-१८-२०)

उपर्युक्त घटनाओं और प्रसंगों के अतिरिक्त अयोध्या, चारों भाइयों के विवाह आदि के विस्तृत साहित्यिक वर्णन हैं जो वाल्मीकि रामायण में नहीं मिलते। उन पर यथास्थान विचार किया जायगा।

रंगनाथ रामायण के बालकाण्ड में वस्तु-विकास की दृष्टि से ये ही उल्लेखनीय प्रसंग हैं जिनका वर्णन ऊपर किया गया है। शेष प्रसंग वाल्मीकि के अनुसार ही हैं।

अयोध्या काण्ड—

इस कांड की प्रधान घटनाएँ हैं—राम के यौवराज्याभिषेक का दशरथ का निश्चय, मंथरा की कुमंत्रणा, कैकेयी का भरत को राज्य - प्राप्ति और राम वनवास का वर माँगना, दशरथ कौशल्या आदि का विलाप, राम-लक्ष्मण

और सीता की वन-यात्रा, गुह प्रसंग, दशरथ की मृत्यु, भरत का अयोध्या में आगमन, उसका शोक और चित्रकूट यात्रा, राम और भरत का मिलन, और पादुका प्रदान।

इस कांड की कथा में रंगनाथ ने बहुत कम परिवर्तन किए हैं। किंतु जो परिवर्तन किए हैं वे महत्वपूर्ण हैं।

१. इस कांड में रंगनाथ रामायण की पहली उल्लेखनीय विशेषता यह है कि प्रारंभ में दशरथ और राम के संवाद में थोड़ा-सा परिवर्तन किया गया है। वाल्मीकि रामायण में दशरथ राम को अपने पास बुलाकर कहते हैं कि सब लोग तुमको राजा देखना चाहते हैं। इसलिए मैं तुमको युवराज बनाऊँगा। और आज मैंने बुरे स्वप्न देखे, दिन में उल्कापात देखे। ऐसे निमित्तों के देख पड़ने पर प्रायः राजा की मृत्यु होती है। अतः कल पुष्ययोग में तुम्हारा राज तिलक किया जायगा। इसलिए आज तुम उपवास कर दर्भ शय्या पर सो जाना।" इतना कहकर आगे एक दूसरी बात कहते हैं कि "ऐसे कार्यों में बहुत से विघ्न हुआ करते हैं। मेरा मत है कि जब तक भरत ननिहाल में रहेगा तब तक का समय तुम्हारे अभिषेक के लिए योग्य समय है। यह ठीक है कि तुम्हारा भाई भरत सज्जन है, तुम्हारा अनुवर्ती, धर्मात्मा, दयावान जितेंद्रिय है। किंतु धर्मरत सज्जनों का मन भी अनित्य होता है।" (वा. अयो. ४—१७२७) दशरथ की इन बातों से विदित होता है कि उनके मन में भरत के प्रति शंका थी कि कहीं उसकी ओर से विघ्न न आ जाये। इस शंका का कोई कारण होना चाहिए जिसे दशरथ ने व्यक्त नहीं किया। आगे जब चित्रकूट में राम और भरत का मिलाप होता है तब राम भरत से कहते हैं—

> **पुरा भ्रातः पिता नः स मातरं ते समुद्वहन्।**
> **मातामहे समाश्रौषीद् राज्यशुल्कमनुत्तमम्॥ [अयो. १०७-३]**

इस बात को दशरथ ने उस समय प्रकट नहीं किया था। इसी कारण, संभवतः उनको भय था कि भरत के यहाँ रहने से कहीं राम के राज्याभिषेक में विघ्न न पड़े। इसीलिए उन्होंने उस कार्य को शीघ्रातिशीघ्र संपन्न करना चाहा। इसमें दशरथ के कपटपूर्ण व्यवहार का आभास मिलता है।

रंगनाथ ने इसमें थोड़ा परिवर्तन करके दशरथ को और भी गूढ़, गंभीर तथा चतुर बनाने का प्रयत्न किया। राम को अपने पास बुलाकर दशरथ

कहते हैं कि "हे पुत्र ! मुझे स्वप्नों में बुरे शकुन दिखाई पड़े, बुरे ग्रह और उल्कापात मैंने देखे । मेरा मन व्याकुल हो गया है । इसलिए कल पुष्ययोग में तुम्हारा राजतिलक हो जाय तो मेरी इच्छा पूर्ण होगी । अब इसमें विलंब क्यों ? सारा संसार तुम्हारी उन्नति चाहता है ।" इसके बाद राम पिता की आज्ञा लेकर माता के यहाँ चले जाते हैं । यहाँ दशरथ भरत के संबंध में कोई शंका प्रकट नहीं करते हैं । वे राजतिलक में जल्दी करते हैं इसलिए कि दुश्शंका व दुश्शकुनों से उनका मन व्याकुल हो गया था कि कहीं कोई अनिष्ट न हो जाय, जिसे अपने मुँह पर नहीं लाते; किंतु उनके पूर्वाचरण को देखकर पाठकों को यह शंका होती है कि कहीं दशरथ के मन में कपट तो नहीं है । क्योंकि यद्यपि बालकांड के अंत में जैसा कि पहले दिखाया गया है, भरत और शत्रुघ्न ने ननिहाल से पितृ दर्शनों की इच्छा प्रकट करते हुए समाचार भेजा था तो दशरथ ने उनको नहीं बुलवाया । इसके अतिरिक्त आगे राम चित्रकूट में भरत से कहते हैं कि "महाराज दशरथ को अपनी कन्या देते समय तुम्हारे मातामह ने यह शर्त रखी कि मेरी कन्या का पुत्र ही राजा बने और इस बात का विश्वास दिलाने पर ही उनका बिवाह सम्पन्न हुआ (रं० रामा० अयो० पृ० १४१, पं० १७४७) ।" दशरथ ने इस बात को बहुत गुप्त रखा यहाँ तक कि इस सम्बन्ध में अपनी कोई शंका भी प्रकट नहीं की । इस प्रकार दशरथ रंगनाथ रामायण में अपनी गंभीर राजनीतिज्ञता का परिचय देते हैं यद्यपि वह सफल नहीं हुई ।

२, वाल्मीकि रामायण में पहले संसद के सदस्यों के सामने राम को युवराज बनाने की अपनी इच्छा प्रकट करते हैं जिसे वे सहर्ष स्वीकार करते हैं । फिर अचानक अनजान के समान दशरथ उनसे पूछते हैं कि जब मैं धर्मपूर्वक शासन करता आया तब आप राम को राजा क्यों देखना चाहते हैं ? (वा. अयो–२, २३-२५) । इस पर सदस्य फिर राम का गुणगान करते हैं और कहते हैं कि उन गुणों के कारण वे राम को युवराज के रूप में देखना चाहते हैं । इससे स्पष्ट है कि दशरथ लोगों के मुँह से राम का गुणगान सुनना चाहते हैं और उनको यह दिखाना चाहते हैं कि आप ही के कहने के कारण मैं राम को युवराज बनाना चाहता हूँ । यह बाल्मीकि के दशरथ की कूटनीति है जो भरत के आने के पहले ही राम को राजा बनाना चाहती है । रंगनाथ रामायण में दशरथ अपनी बात लोगों के सामने रखते हैं और लोग उस पर विचार करके अपना निर्णय सुनाते हैं और राम का गुणगान करके कहते हैं कि उनको युवराज

बनाया जाय। यह दशरथ के चित्रण पर तब तक की राम-विषयक भक्ति भावना का प्रभाव हो सकता है।

३. रामायण में मंथरा का प्रवेश एक ऐसी प्रमुख घटना है कि जिसने राम की जीवन धारा में एक विशेष मोड़ उपस्थित कर दिया था जिससे उसका प्रवाह अदृष्ट उद्देश्य की ओर अग्रसर हुआ। वाल्मीकि रामायण में मंथरा का प्रवेश अयोध्याकांड में अचानक होता है और वह अज्ञात कुलोत्पन्ना कही गई तथा स्वाभाविक ईर्ष्यालु के रूप चित्रित की गई है। किंतु रंगनाथ रामायण में उसका प्रवेश बालकांड में ही होता है जैसा कि पहले दिखाया गया है। बालकांड की उससे संबद्ध घटना इस कांड में उसके प्रवेश का कारण बन जाती है और वह अपना बैर निकालने के लिए राम के राजतिलक में विघ्न उपस्थित करती है। इस प्रकार इसमें मंथरा स्वभावतः ईर्ष्यालु न होकर वैरिणी के रूप में चित्रित की गयी है। रंगनाथ के इस घटना सन्निवेश का मूल अग्निपुराण में पाया जाता है जैसे—

पादौ गृहीत्वा रामेण कर्षिता साऽपराधतः
तेन वैरेण सा रामं बनवासं च कांक्षति ॥

(अग्नि पुराण अ. ६-८)

इस मूल आधार को लेकर रंगनाथ ने मंथरा को वैरिणी के रूप में चित्रित करने के उद्देश्य से बालकांड में ही उसका प्रवेश कराया जिसमें उनकी कथा-विकास सम्बन्धी सूक्ष्म मौलिकता का परिचय मिलता है। रंगनाथ रामायण की मंथरा ने भी वही काम किया जो वाल्मीकि रामायण की मंथरा ने किया था। किंतु अपनी लक्ष्य सिद्धि की ओर जाने के मार्ग में इन दोनों में अंतर है। इसमें रंगनाथ की विशेषता यह है कि उन्होंने मानव के जीवन धारा को मोड़ देने वाली घटनाओं के सकारण घटित होने का निरूपण किया है।

४. शृंगबेरपुर में गंगा के तट पर जब राम और सीता सो जाते हैं तब लक्ष्मण धनुष बाण लेकर उनकी रक्षा में प्रवृत्त होते हैं। यहाँ रंगनाथ रामायण में एक छोटी सी विचित्र घटना होती है। पहरा देते हुए लक्ष्मण एक प्रतिज्ञा करते हैं कि चौदह वर्षों तक वनवास भर में वे नहीं सोयेंगे और उनकी रक्षा करते रहेंगे। इस समय निद्रा देवी माया का रूप धारण कर उनके सामने आकर कहती है—

"येनु निद्रादेवि; येपँड देल्पु—
गा नाकु निकेद्लु मानाढ्य! तंत

विधि विधिचेनु वेंट वेंट वर्तिप
विधिमेदि निन्नु ने विडुचु किक ?"
ननिन, ,'नूर्मिलथंडु नहरहंबुलुनु–
जनियुंडुमंत नी समयंबु दीर्चि
वञ्चिन गैकोंदु वरुस निन्ननिन
निच्च, "नौ गाकंचु" नेगे निद्रयुनु
नलरुचु "नी देवतानुग्रहंबु
गलिगे नाकनुचु लक्ष्मण देवुडुंडि
(रं.रा.वा. पृ. ११९ पं० १०५७-१०६१)

अर्थात्, मैं निद्रादेवी हूँ। हे मानी ! विधि ने मेरे लिए तुम्हारे साथ-साथ रहने का विधान बनना है। मैं कैसे आपको छोड़ सकती हूँ ? कोई मार्ग बताइये।" तब लक्ष्मण कहते हैं कि, "तुम ऊर्मिला में जाकर दिन रात वास करो। वनवास की अवधि पूरी होने के बाद आकर मैं तुमको ग्रहण करूँगा।" निद्रादेवी इसे स्वीकार करके चली जाती है और लक्ष्मण भी प्रसन्न होते हैं कि मुझे इस देवी का अनुग्रह प्राप्त हुआ।

यह घटना रंगनाथ की कल्पना प्रसूत है। इसके सन्निवेश में ऊर्मिला के प्रति कवि की सहानुभूति व्यक्त होती है। कुछ समय पहले तक यह जो माना जाता रहा कि भारतीय साहित्य में ऊर्मिला उपेक्षिता नायिका रही, और उसके प्रति किसी कवि ने सहानुभूति नहीं दिखाई, वह भ्रम है। चौदहवीं शताब्दी में निर्मित इस रंगनाथ रामायण की उक्त घटना में उसके प्रति कवि की सहानुभूति दिखाई पड़ती है।

५. वाल्मीकि रामायण में सुमंत्र को विदा करते हुए राम ही दशरथ, कौसल्या आदि को संदेश भेजते हैं, लक्ष्मण कोई संदेश नहीं देते। (अयो.सर्ग ५२) किंतु सुमंत्र दशरथ के पास जाकर कहते हैं कि राम और लक्ष्मण ने आपको संदेश भेजे हैं। इस असंगति को दूर करने के लिए रंगनाथ अपनी रामायण में सुमंत्र को विदा करते समय राम और लक्ष्मण दोनों से संदेश भिजवाते हैं। राम कहते हैं कि "हे सुमंत्र ! अब रथ पर जाना ठीक नहीं। तुम अयोध्या लौट जाओ। राजा की सेवा करो। उनको और माता को मेरे भक्तिपूर्वक नमस्कार पहुँचाओ।" इस पर लक्ष्मण क्रोध से कहते हैं कि "ये कैसी बातें हैं ? राजा ने पत्नी के वशवर्ती होकर बिना सोचे विचारे हमें यों जंगल में भेज दिया है। अब

उनसे यह मेरी बात कहना कि अपनी प्रिय पत्नी और पुत्र को लेकर राज्य-सुख भोगें। तब राम ने लक्ष्मण को किंचित् क्रोध से रोकते हुए कहा, कि "सुमंत्र ! ये बातें राजा से नहीं कहना, क्योंकि इससे वे और भी दुखी होंगे।" इनसे राम के चरित्र पर भी प्रकाश पड़ता है।

६. दशरथ के शाप की घटना में रंगनाथ रामायण में थोड़ा परिवर्तन किया गया है। वाल्मीकि में मुनिकुमार का कोई नाम नहीं दिया गया है यद्यपि यह कहा गया है कि वह शूद्रा में उत्पन्न वैश्य का पुत्र है। रंगनाथ रामायण में भी उसे शूद्रा में उत्पन्न वैश्य का ही पुत्र माना गया है। किंतु उसका नाम यज्ञदत्त दिया गया है। इस नाम का उल्लेख वाल्मीकि रामायण के गौड़ीय तथा पश्चिमोत्तरीय पाठों में किया गया है। (गो—६६-६; गं० रा० ७०, ६) आगे चलकर ब्रह्मपुराण (अध्या० १३३) पद्मपुराण, (गौड़ीय पाताल खंड,) अध्याय १४ आदि में उसका श्रवण कुमार नाम भी पाया जाता है।

७. रंगनाथ रामायण में चित्रकूट में राम और वाल्मीकि की भेंट का वर्णन नहीं है जो वाल्मीकि रामायण में पाया जाता है। इसके बदले चित्रकूट में कई तपस्वियों को देखने का उल्लेख मात्र है।

८. वाल्मीकि रामायण में कौसल्या दशरथ की मृत्यु पर सती हो जाने की बात कहती है। किंतु रंगनाथ रामायण में ऐसी बात नहीं हैं।

९. वाल्मीकि रामायण में अयोध्याकांड के अन्त में अत्र्याश्रम का प्रसंग आता है। किंतु रंगनाथ रामायण में वह प्रसंग अरण्य कांड के प्रारंभ से आता है जो उचित मालूम होता है।

१०. चित्रकूट पहुँचने के बाद काकासुर का प्रसंग रंगनाथ रामायण में नया है जो वाल्मीकि रामायण में नहीं है। एक दिन जब राम सीता की जाँच पर सिर रखे सो रहे थे तब एक दुष्ट कौआ वहाँ आया और सीता के स्तनों पर चोंच मारने लगा जिससे खून बहने लगा। इतने में राम की आँख खुली तो उन्होंने कौए को देखकर उस पर एक तीर फेंका जो उसका पीछा करता गया। कौआ तीनों लोकों में गया। किंतु कहीं उसको शरण नहीं मिली। अंत में वह राम की ही शरण में आया। राम ने कृपा करके उसकी एक आँख को अपने तीर का लक्ष्य बनाया और उसकी रक्षा की। हाँ, इसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण में सुन्दर कांड में किया गया है जब सीता हनुमान के द्वारा राम को संदेशा भेजती है। (वा० रा० सुं० ३८)

इस कांड के शेष प्रसंग प्राय: वाल्मीकि के अनुसार ही चले हैं यद्यपि विस्तार में थोड़ा-सा अंतर है जिसका कोई विशेष महत्व नहीं है।

अरण्य कांड—

इस कांड की प्रधान घटनाएँ हैं—राम का अनेक ऋषि-मुनियों के दर्शन करना, विराध वध, पंचवटी प्रवेश, शूर्पणखा का विरूपीकरण, खर दूषण से युद्ध, मारीच और रावण का संवाद, सीताहरण, जटायु की मृत्यु, राम का विलाप, कबंध का वध, शबरी का सत्कार आदि।

१. इसमें रंगनाथ का पहला परिवर्तन यह है कि इन्होंने वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकांड के अंतवाले अत्र्याश्रम प्रवेश को लाकर अरण्यकांड के प्रारंभ में रख दिया है जो कथावस्तु के विकास के अवस्था-विभाजन की दृष्टि से अधिक संगत मालूम पड़ता है। वाल्मीकि रामायण में राम के चित्रकूट को छोड़ने का कारण यह बताया गया है कि वहाँ के मुनियों को जनस्थान में रहनेवाले राक्षस खर के अनुचर बहुत दुख देते थे और इसलिए उन्होंने उस स्थान को छोड़ किसी प्राचीन तपोवन में जाने का निश्चय किया तथा राम को भी वह स्थान छोड़कर जाने का परामर्श दिया क्योंकि सपत्नीक ऐसे भयप्रद स्थान में रहना उनकी दृष्टि में ठीक नहीं था। यह परामर्श देकर ऋषि लोग अपने कुलपति के साथ चले जाते हैं। बाद में राम को भी वह स्थान (चित्रकूट) अच्छा नहीं लगा क्योंकि वह भरत के साथ असंख्य घोड़ों और हाथियों के आगमन के कारण दूषित हो गया है और दूसरे, राम को पिता की मृत्यु का समाचार वहीं मिला जिसकी स्मृति बार-बार मन को दुख पहुँचाती रहेगी। इसलिए उन्होंने वह स्थान छोड़ दिया और अत्रि के आश्रम में चले गये। रंगनाथ रामायण में दूसरे ही कारण बताये गये हैं। राम सोचते हैं कि अब यहाँ प्रतिदिन मुझे देखने के लिए नागरिकों का आगमन होता रहेगा और यह सारा वन उनके और घोड़ों तथा हाथियों के पैरों से रौंदा जायगा। अत: अब यहाँ रहना ठीक नहीं। राजा होने के नाते राम ने यह देखना अपना कर्तव्य समझा कि ऋषि मुनियों का स्थान नागरिकों के सतत आगमन से दूषित न हो जाय। एक और कारण बताया गया है कि वहाँ के मुनियों ने राम से प्रार्थना की कि आप खर दूषण आदि राक्षसों का संहार कर हमें उनकी पीड़ा से मुक्त कीजिए। कथा विकास की दृष्टि से रंगनाथ का यह परिवर्तन सार्थक है। और राम को सोद्देश्य आगे बढ़ानेवाला है क्योंकि राम के जन्म का उद्देश्य ही राक्षसों का संहार था।

२. वाल्मीकि रामायण में जटायु राम से अपने प्रथम मिलन में अपना विस्तृत परिचय, वंश वर्णन के साथ देता है। किंतु रंगनाथ रामायण में ऐसा परिचय नहीं देता। संक्षेप में कह देता है—मैं आपके पिता का मित्र हूँ। वाल्मीकि रामायण में जटायु राम और लक्ष्मण की अनुपस्थिति में सीता की रक्षा करने की बात कहता है।

इदं दुर्गं हि कांतारं मृग राक्षस सेवितम्।
सीतां च तात रक्षिष्ये त्वयि याते सलक्ष्मणे॥
(वा० रा० अर० ४८-३४)

रंगनाथ रामायण में जटायु यह बात नहीं कहता। राम को सावधान करते हुए कहता है कि यह वन राक्षसों का स्थान है इसलिए सजग होकर वैदेही की रक्षा करो। वाल्मीकि के जटायु की अपेक्षा रंगनाथ के जटायु की बात अधिक संगत है।

३. रंगनाथ रामायण में अरण्य कांड में जंबुकुमार या जंबुमाली का प्रसंग अपना विशेष महत्व रखता है जो सीता-हरण की रावण को प्रेरणा देनेवाली शूर्पणखा के प्रवेश का कारण बनता है। पंचवटी में रहते समय लक्ष्मण एक दिन प्रातःकाल कंदमूल आदि प्राप्त करने के लिए बन में घूम रहे थे। घूमते-घूमते वे एक पहाड़ी के पास पहुँचते हैं जहाँ एक देदीप्यमान खड्ग देखते हैं जो गंभीर वाणी में कह रहा था कि हे दैत्याधीश पुत्र! तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न होकर सूर्य ने मुझे तुम्हारे लिए भेजा है। अपना बदला लेने के लिए तुम मुझे ग्रहण करो। किंतु उस दैत्यपुत्र ने उसे ग्रहण नहीं किया क्योंकि स्वयं सूर्य ने आकर उसे नहीं दिया। लक्ष्मण इस खड्ग को उठा लेते हैं और उसकी धार की जाँच करने के लिए एक बाँस की झुरमुट पर चलाते हैं। झुरमुट तो कट जाती है, उसके साथ एक मुनि का शरीर भी कट जाता है जो उसके बीच में बैठकर तपस्या कर रहा था और जिसके लिए वह खड्ग आया था। इसे देखकर लक्ष्मण बड़े दुखी होते हैं कि अनजान में उसी प्रकार उनसे एक मुनि का वध हो गया जिस प्रकार उसके पिता दशरथ से भी एक मुनिकुमार का वध अनजान में हो गया था। तब अपराधी की भाँति जाकर वे राम के पास खड़े होते हैं और सब बातें कह सुनाते हैं। राम को भी यह सुनकर आश्चर्य होता है। इतने में वहाँ के ऋषि लोग उनके पास पहुँचकर कहते हैं कि उसके वध पर दुख करने की आवश्यकता नहीं। वह तो राक्षस थ। और विद्युज्जिह्व तथा शूर्पणखा का पुत्र था। शूर्पणखा

लंका के राजा रावण की बहिन है। रावण ने एक बार क्रोध में आकर अपने बहनोई विद्युज्जिह्व का वध कर दिया और अपनी बहिन को विधवा बनाया। फिर शूर्पणखा की दीनता पर दया करके उसने उससे कहा कि तुम स्वेच्छा विहारिणी बनकर अपने इच्छित पुरुष का संग प्राप्त कर सकती हो। उस समय शूर्पणखा गर्भवती थी और कुछ समय के उपरांत उसके एक लड़का पैदा हुआ जिसका नाम था जंबुकुमार। उसने बड़ा होकर अपने पिता की मृत्यु का प्रतिकार रावण से लेना चाहा और तदर्थ सूर्य की तपस्या की। उसी सूर्य का भेजा हुआ खड्ग था जिससे लक्ष्मण ने अनजान में उस राक्षस जंबुकुमार का वध कर दिया। उस दुष्ट राक्षस की मृत्यु से सब लोग आनंदित हैं। इसलिए उसके लिए आप लोगों को दुख करने की आवश्यकता नहीं।" यह कहकर मुनि लोग चले जाते हैं। उधर शूर्पणखा अपने पुत्र के लिए भोजन लाती है और उसे मृत देखकर बहुत विलाप करती है और अंत में उसकी दहन क्रिया कर देती है। तदनंतर वहाँ के मुनियों को डरा-धमकाकर यह जान लेती है कि किसी ऋषिवेषधारी व्यक्ति ने उसे मार डाला। उनसे उसके जाने की दिशा का पता लगाकर शूर्पणखा सीधे राम की पर्णकुटी के पास पहुँच जाती है जहाँ काम को भी जीतनेवाले सुंदर राम को देखकर वह उस पर मोहित हो जाती है। इसके बाद की कथा उसी प्रकार चलती है जिस प्रकार वाल्मीकि रामायण में चलती है। इस घटना के सन्निवेश के द्वारा कवि शूर्पणखा का प्रवेश उसी प्रकार सकारण कराते हैं; जिस प्रकार मंथरा का कराते हैं, इन दोनों पात्रों का राम के जीवन में इतना महत्व है कि इनके अभाव में रामायण की कथा ही दूसरी धारा में बहती है। इन घटना सन्निवेशों के द्वारा रंगनाथ की यह मान्यता व्यक्त होती है कि मानव जीवन को प्रभावित करनेवाली बुरी घटनाएँ अचानक नहीं घटित होती हैं; उनके पीछे कोई प्रबल कारण होता है। अतः मनुष्य के लिए भाग्य को दोष देने की गुंजाइश नहीं रहती।

यह वृत्तांत आनंद रामायण और विमल सूरि के तथा स्वयंभू रचित पउम चरित्र में मिलता है। "पउम चरित्र" जैन धर्म प्रतिपादक ग्रंथ है। उसके आधार पर कन्नड़ भाषा में कवि नागचंद्र या "अभिनव पंप" ने "रामचंद्र चरित पुराण" लिखा है जो पंप रामायण के नाम से सुप्रसिद्ध है। उसकी रचना लगभग ई० ११०० के आसपास हुई थी।[1] रंगनाथ पर या तो आनंद

---

१. **श्री ए० जनार्दन—"कन्नड़ में राम काव्य की परंपरा" शीर्षक लेख—साहित्यानुशीलन—मद्रास।**
डा० हिरण्मय—"कन्नड़ और हिंदी में भक्ति आन्दोलन" पृ० १८६-१८७।

रामायण का या पंप रामायण का प्रभाव पड़ा होगा जिससे उन्होंने इस घटना को लिया। किंतु पंप रामायण में जंबुकुमार को "शंबूक" कहा गया और आनंद रामायण में "साँप"। जैन धर्म प्रतिपादक पंप रामायण के प्रभाव की अपेक्षा हिन्दू धर्म प्रतिपादक आनंद रामायण का प्रभाव मानना ही अधिक संगत है क्योंकि रंगनाथ हिन्दू थे। उन दिनों जीवन में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान था।

४. वाल्मीकि रामायण में नाक कान कटी शूर्पणखा रावण के पास जाकर कहती है कि मैं राम की पत्नी सीता को तुम्हारे लिए लाने को उद्यत हुई तो उसके भाई लक्ष्मण के द्वारा विरूप बनायी गई। किंतु अपने मोह की बात नहीं कहती। रंगनाथ रामायण में शूर्पणखा स्पष्ट कह देती है कि कामवासना से पीड़ित होकर राम के पास गई तो उन्होंने मेरी यह दशा कर दी क्योंकि रावण से उसे पहले ही से स्वेच्छा-बिहार का अधिकार मिल गया था।

५. सीताहरण के प्रसंग में रंगनाथ रामायण की एक नई बात यह है कि लक्ष्मण सीता को पर्णकुटी में अकेली छोड़कर जाते समय कुटी के सामने सात रेखाएँ खींचते हैं और सीता से कहते हैं कि आप इन रेखाओं को न पार करें। कोई आकर इनको पार करके अंदर जाय तो उसके सिर के टुकड़े-टुकड़े हो जायँ। आप इसको न भूलें। यह बात वाल्मीकि रामायण में नहीं है। आनंद रामायण में यह बात पाई जाती है। (१-७, ९८) रंगनाथ रामायण में लक्ष्मण अग्नि से प्रार्थना भी करते हैं कि सीता की रक्षा करें और सीता को उन्हें सौंपकर जाते हैं।

६ रंगनाथ रामायण में सीताहरण के बाद जब राम मारीच को मारकर अपनी कुटिया में लौटते हैं तब एक दूसरे मृग का वध करके उसका मांस और खाल भी अपने साथ लाते हैं, संभवतः सीता को देने जिसके लिए उन्होंने मायामृग का वध करने के लिए राम को भेजा था। राम को मृग के पीछे भेजते समय सीता यह भी कहती हैं कि यदि हो सके तो उसे पकड़ लाइये, हमारा वनवास भी अच्छा कटेगा और अयोध्या जाने पर सासों, भरत आदि का मनोरंजन भी किया जा सकेगा।

७. सीता के लिए विलाप करते हुए रंगनाथ रामायण में राम कहते हैं कि प्रिये ! मैंने तुम्हारे लिए सब की पूजा के योग्य शिवधनुष तोड़ा, ब्राह्मण

देव परशुराम का मानभंग किया और इस प्रकार इन दोनों निंदाओं का भाजन बन गया। अब तुम्हारे लिए कपटी मृग को मारकर लाया हूँ। अब उसकी खाल किसको दूँ ?" राम के इस प्रकार कहने में मनोवैज्ञानिक स्वाभाविकता है और वस्तुतः किसी हरिण को मारकर लाते भी हैं जैसा ऊपर दिखाया गया है। यह वाल्मीकि रामायण में नहीं है।

८. शबरी रंगनाथ रामायण में राम की ईश्वर के रूप में स्तुति करती है जो वाल्मीकि रामायण में नहीं है। (रं० रा० अर० पृ० १९३)। यह तब तक की राम भक्ति के विकास का प्रभाव है। अंत में राम का ध्यान करते हुए अग्नि में जलकर देव लोक को प्राप्त करती है।

इसके अतिरिक्त इस कांड में शेष कथा में कोई महत्वपूर्ण विशेषता नहीं है।

किष्किधाकांड—

रंगनाथ रामायण में राम और लक्ष्मण शबरी का सत्कार पाकर अरण्य कांड के अंत में ही ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँच जाते हैं। किष्किधा कांड का प्रारंभ पंपासरोवर के वर्णन से होता है। उसके बाद सुग्रीव की मैत्री का प्रसंग वाल्मीकि रामायण की अपेक्षा अधिक युक्तिपूर्वक और कथा के स्वाभाविक विकास में अच्छा योग देनेवाला है। वालि वध और सीतान्वेषण के लिए वानरों को भेजने के प्रसंग वाल्मीकि रामायण के समान ही है।

पंपा के तट पर घूमनेवाले राम और लक्ष्मण को देखकर सुग्रीव डर जाता है कि कहीं ये दोनों मुझे मारने के लिए वालि के भेजे हुए तो नहीं आये। तब अपने सचिव हनुमान को उनके पास भेजता है कि वह उनके साथ बात करके जान ले कि वे कौन हैं और क्यों आये हैं। हनुमान ब्रह्मचारी का वेष धरकर उनके पास जाता है। हनुमान ने पहले ही अनुमान से यह जान लिया कि वे कोई महापुरुष होंगे और उनसे रिक्त हस्तों से नहीं मिलना चाहिए। इसलिए वह एक फल हाथ में लेकर जाता है। इसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण में नहीं है। राम के सामने जाकर हनुमान कुछ बोलता नहीं। बड़ी भक्ति के साथ उनको प्रणाम कर फल देता है मानो सीता का शिरोरत्न राम को दे रहा हो और हाथ जोड़ कर खड़ा रहता है। तब राम उसकी भक्ति देखकर प्रसन्नता से पूछते हैं कि "हे वनचर। तुम कहाँ से आये हो ? तुम्हें देखते ही हमें ऐसा लग रहा है कि हमारे सब काम पूर्ण होगये हैं। तुम बड़े वीर

मालूम होते हो। किस काम से आये हो ? इहलोक और परलोक की उन्नति तुम्हारी इच्छा के अनुसार तुमको दूँगा। तुम्हारे शरीर की कांति असाधारण है जो और बानरों में नहीं देखी जाती। तुम्हारे शरीर पर शोभित होनेवाले आभूषण शेषनाग से भी अवर्णनीय हैं। तुम्हारे माता-पिता कौन हैं ? तुम्हारा नाम क्या है ? तुम्हारा जन्म कैसे हुआ ?" इस पर हनुमान अपना परिचय देते हुए कहता है—"एक दिन शिव और पार्वती आकाश मार्ग से विहार कर रहे थे। उस समय कुछ बानर मिथुन रति क्रीड़ा कर रहे थे। उसे देखकर पार्वती ने लज्जा से शिव की ओर तिरछी नजर देखा तो शिव ने मन का भाव समझकर वानर का रूप धारणकर उसकी इच्छा पूरी की। उस समय उनका शुक्र पृथ्वी पर गिर पड़ा तो वायु ने उसे ले जाकर पुँजिकस्थल में तपस्या करनेवाली मेरी माता अंजनी के हाथों में डाल दिया। झट मेरी माता ने उसे निगल लिया और दस हजार वर्ष तक गर्भवती रहकर मुझे जन्म दिया। उस समय सूर्योदय हो रहा था। मैंने उगते हुए सूर्य को देखकर कोई फल समझ लिया और पक्षी के समान उसे पाने के लिए आकाश में एक लाख योजन तक उड़ा और उसे खाने के लिए पकड़ लिया। तब इन्द्र ने मेरे मुँह पर वज्र दे मारा तो मैं पूर्वाद्रि पर गिर पड़ा। वज्र की चोट से मेरी हनु (जबड़ा) टूट गयी और तब से मैं हनुमान के नाम से प्रख्यात हुआ। अंजनी-पुत्र होने के कारण मैं आंजनेय हूँ। अब भिक्षुक बनकर आपको देखने आया हूँ। जन्म के बाद मैंने ब्रह्मा की तपस्या की तो उन्होंने दर्शन देकर मुझसे पूछा कि तुम क्या चाहते हो ? तब मैंने उनसे निवेदन किया किया कि हे देव ! अब आप बताइये कि मेरी कामनाओं को पूर्ण करके मुझे मोक्ष दिलानेवाले मेरे प्रभु कौन हैं ? मैं उनकी सेवा करूँगा। तब ब्रह्मा ने कहा कि तुमको देखकर तुम्हारे आभूषणों को जो पहचानें वही तुम्हारे प्रभु होंगे और वही विष्णु हैं। तब से लेकर मैं ऐसे प्रभु की खोज में हूँ जो मेरे आभूषणों को पहचाने। आज आपने उनको पहचाना। मैं कृतार्थ हुआ। आज से मैं आपका सेवक हूँ।" इतना कहकर हनुमान राम और लक्ष्मण का परिचय पूछता है तो लक्ष्मण सब बताते हैं। तब हनुमान उनसे कहता है कि "बानरों के राजा सुग्रीव का राज्य उनके भाई बाली ने छीन लिया और वे अब बड़े दुखी होकर इस पर्वत पर रहते हैं। मैं उनको आपका मित्र बना सकता हूँ।" (रं० रा० दि० पृ०—२००–पं० ७५-१८०) इसके बाद वाल्मीकि रामायण के समान ही इसमें भी राम और सुग्रीव की मैत्री स्थापित होती है। यहाँ वाल्मीकि रामायण में हनुमान राम से कहता

है कि सुग्रीव आप लोगों की मित्रता चाहते हैं। (वा० कि० ३-२२) किंतु रंगनाथ रामायण का हनुमान का कथन अधिक समयोचित है। रंगनाथ रामायण की कथा से मिलती-जुलती कथा शिव पुराण में मिलती है जिसमें कहा गया है कि शिव के पतित वीर्य को सप्तर्षियों ने गौतम की पुत्री अंजना के कान में रख दिया था। (अध्याय २०) डा० कामिलबुल्के ने अपने राम कथा नामक ग्रंथ में किसी दक्षिण भारत के वृत्तांत का उल्लेख किया है जिसमें शिव और पार्वती के वानर रूप में क्रीड़ा और फलस्वरूप पार्वती के गर्भ धारण तथा वायु के द्वारा उनके गर्भ से भ्रूण को अंजना के गर्भ में पहुँचाने का वर्णन है। सम्भवत: रंगनाथ रामायण का ही वह वृत्तांत हो।

इसमें हनुमान की जन्म-कथा के कथन के द्वारा राम और हनुमान के मिलन और संभाषण में स्वाभाविकता आ गई है जो मूल में नहीं है। अपने संबंध में कुछ कहने के पहले नवागंतुक व्यक्ति के बारे में जान लेना और तब अपना परिचय देना स्वाभाविक और आवश्यक है। इसमें इस जिज्ञासा का भी समाधान मिल जाता है कि देखते ही देखते हनुमान राम का सेवक क्यों बन गया? हनुमान की यह जन्म-कथा वाल्मीकि रामायण की उन कथाओं से थोड़ा भिन्न है जो उत्तर कांड के ३५ वें सर्ग में और किष्किंधा के ६६ सर्ग में दी गई है।

१. सुग्रीव से मैत्री स्थापित होने के बाद राम प्रतिज्ञा करते हैं कि मैं तुम्हारे दुश्मन को मार डालूंगा और उसी प्रकार सुग्रीव भी प्रतिज्ञा करता है कि समझ लीजिये कि आपने रावण को मार कर सीता को प्राप्त कर लिया। उनकी बातें जब हो रही थीं तब अंगद अपने मित्रों के साथ वहाँ खेलते हुए आ पहुँचता है और उनका संभाषण सुन लेता है। वहाँ से जाकर तारा को वे सब बातें सुनाता है जो उसने सुनी थीं जिन्हें सुनकर तारा का हृदय शंकाकुल होकर दुखी होता है। इस घटना के सन्निवेश से कवि ने तारा का सम्बन्ध प्रधान कथावस्तु से जोड़ दिया जो वस्तु विकास की दृष्टि से आवश्यक था। अन्यथा राम के वीरत्व के बारे में तारा का वाली को उपदेश देना स्वाभाविक नहीं लगता। वाली को सुग्रीव के युद्ध में जाने से रोकते हुए तारा ने इस बात का जिक्र किया (रं० रा० पृ० २०५-पं०२२०-२२५)। वाल्मीकि रामायण में वाली को उपदेश देते समय तारा इस बात का उल्लेख

१. डा० बुल्के—रामकथा—पृ. ४२६

करता है कि अंगद के द्वारा मैंने सुना कि सुग्रीव ने अयोध्यापति के पुत्र राम और लक्ष्मण में मैत्री कर ली है। (वा. रा. कि. १५—१५-१८)

३. वाल्मीकि की कुछ बातों को रंगनाथ ने अनावश्यक समझकर छोड़ दिया। वाल्मीकि रामायण में लक्ष्मण सुग्रीव के दिखाये गये सीता के आभूषणों को देखकर कहता है कि मैं केयूर और कुण्डलों को नहीं बल्कि नित्य पदाभिवन्दन करने के कारण नूपुरों को पहचानता हूँ। रंगनाथ ने इस प्रसंग में लक्ष्मण को मौन रखा।

इस प्रसंग में राम सीता के उत्तरीय को देखकर दुख से कहते हैं कि हाय ! जो उत्तरीय मेरी प्राणेश्वरी सीता के उन्नत स्तनों को ढँकता था, मेरे चरण-कमल धोकर सीता जिससे उनको पोंछती थी, जिसे पंखा बनाकर मेरे श्रम बिंदुओं को सुखाती थी और जिसे पाँवड़े के रूप में मेरे चरणों के तले बिछाती थी उसकी आज यह कैसी दशा हो गयी है। (रं. रा. कि. पं० ५३८-३४१) यह बात वाल्मीकि रामायण में नहीं है। इसका मूल हनुमन्नाटक में मिलता है जिसका विकास रंगनाथ ने किया है। (हनु० ५—१)

४. रंगनाथ रामायण में राम की शक्ति की परीक्षा लेने के लिए सुग्रीव एक अच्छा कारण बताता है। वह राम से कहता है कि हे महाराज ? मतंग नामक ऋषि ने मुझसे कहा था कि इन सात ताल वृक्षों को जो एक ही बाण से गिराये उसी के हाथों वाली का वध होगा। इस पर राम ने एक ही बाण से सातों ताल वृक्षों को गिरा दिया तो आकाश में एक विमान में से एक सुंदरी कन्या ने यों कहा—"हे परमात्मा ! मैं देवेंद्र के यहाँ रहनेवाली करुणावती नामक कन्या हूँ—पूर्वकाल में मैंने ऋषि दुर्वासा की निंदा की तो उन्होंने क्रोधित होकर मुझे शाप दिया कि तुम ताल वृक्षों के रूप में पड़ी रहो। आज आपसे मुझे शाप से मुक्ति मिल गई। अब मुझे आज्ञा दीजिये।" यह कहकर वह देवेंद्र के यहाँ चली जाती है। (रं० रा०कि० पं० ३७५-३९०) इसमें राम के शरों की शक्ति की परीक्षा सकारण बताई गई हे। करुणावती की बात का संबंध प्रचलित दंतकथा से होगा। ये बातें वाल्मीकि रामायण में नहीं हैं।

५. राम के बाण से गिरकर वाली उनकी निंदा करता है कि उन्होंने अन्याय से उसका वध किया है। रंगनाथ रामायण में वाली इस प्रसंग में एक तर्कपूर्ण बात कहता है। वह कहता हैं कि—

धरणि पै मेमोक तप्पु चेसितनु
भरतुंड दगुणाक पट्टिशिक्षिप

नीकु गारणमेमि ? नीवु भूपतिवे ?
चेकोनकिट्लु चेसिति गाक नन्नु ? (रं. रा. कि. ५४८-५५०)

अर्थात्,"यदि हम कोई अपराध करते हैं तो भरत को अधिकार है कि हमें दंड दें। तुमने क्यों दिया? क्या तुम राजा हो?" यह बात वाल्मीकि रामायण में वाली नहीं कहता। हाँ राम वाली को उत्तर देते हुए कहते हैं कि यह सारी भूमि इक्ष्वाकुओं की है और भरत इसके शासक हैं। (वा. रा. कि. अध्याय १८) रंगनाथ ने यह बात वाली के मुँह से कहलाकर इस धारणा को मान्यता दी कि रामायण काल में सारे भारत के शासक इक्ष्वाकु वंशी राजा थे और वाली भी उसको मानता था। वाल्मीकि रामायण में हनुमान के समुद्र पार करने का वर्णन सुन्दर कांड के प्रारम्भ में है जब कि रंगनाथ रामायण में किष्किंधा कांड के अन्त में आया है।

इस कांड के शेष प्रसंग प्राय: वाल्मीकि के अनुसार ही हैं।

सुन्दर कांड—

इस कांड की प्रधान घटनाएँ हैं—हनुमान की सीता से भेंट और वार्तालाप अशोक वन का विध्वंस और लंका दहन। सारी लंका में खोज करने के बाद हनुमान अशोक वन में शिंशिपा वृक्ष के नीचे सीता को देखता है और रावण की बातें सुनकर यह निश्चय कर लेता है कि यही सीता हैं। उसके बाद सोच विचार कर सीता के सामने आता है और उसके साथ वार्तालाप करता है। इस घटना का वर्णन रंगनाथ रामायण में वाल्मीकि की अपेक्षा यद्यपि संक्षिप्त है तथापि कथा-सौष्ठव और विकास की दृष्टि से अधिक सुगठित है; वाल्मीकि रामायण की सी शिथिलता और पुनरुक्ति इस में नहीं है। यह घटना इस प्रकार वर्णित है।

१. रावण के चले जाने के बाद सीता राक्षसियों से पीड़ित होकर निराशावश आत्म-हत्या करने पर उद्यत होती है। तब उसके शुभांग फड़कते हैं जिसे वह अच्छा शकुन मानती है और आत्म-हत्या के प्रयत्न से विरत होती है और अपनी निस्सहायता पर दुख करती है। उसी समय वृक्ष पर से हनुमान मनुष्यों की भाषा में कहता है कि "हे साध्वी! महीनंदिनी! आपके पति राम सकुशल हैं। आपको दुख करने की आवश्यकता नहीं। सागर को पारकर लक्ष्मण की सहायता से रावण का संहार कर आपको ले जायेंगे। अभी वे माल्य-पर्वत पर निवास करते हैं और सारी कपि-सेनाएँ उनकी सेवा करती हैं।" पहले सीता इसे अशरीरवाणी समझती है। बाद में ऊपर हनुमान को देखकर वप्न

समझती है और अन्त में निश्चय कर लेती हैं कि यह स्वप्न नहीं, सत्य है। तब वे विचार करती हैं कि वानर इस प्रकार नहीं बोल सकते। अत: शायद यह राक्षसों की माया हो। तब हनुमान राम की अँगूठी दिखाकर अपना पूर्ण परिचय देता है जिसे सुनकर सीता को विश्वास होता है। इसके बाद हनुमान सीता को राम की अँगूठी देता है और राम तथा लक्ष्मण की दशा का वर्णन करता है। संक्षेप में वह राम की विरह दशा का वर्णन करते हुए कहता है कि "आप मेरी पीठ पर चढ़िए तो मैं आपको राम के पास ले जाऊँगा।" तब सीता कहती हैं कि यह सच है कि तुम मुझे ले जाने के समर्थ हो, किंतु एक तो, विवाह के समय से लेकर मैंने अन्य पुरुष का स्पर्श नहीं किया और दूसरे, संसार यही कहेगा कि जिस प्रकार रावण सीता को हर ले गया उसी प्रकार राम भी अपनी पत्नी को गुप्त रूप से ले गया। इसके अनन्तर वे चित्रकूट में काकासुर प्रसंग का स्मरण दिलाकर जिसका वर्णन अयोध्या कांड में किया जा चुका है कहती है कि उस दिन का मेरे प्रति राम का प्रेम अब कहाँ गया? तुमने मेरी परिस्थिति देखी। तुम उनसे कहना कि मेरे पिता जनक ने विश्वास किया कि आप झूठ नहीं बोलेंगे और मुझे आपको समर्पित किया। अब आपको मेरा त्याग करना ठीक नहीं। आपने विवाह के समय अग्नि के सामने प्रतिज्ञा की कि हमेशा मेरी रक्षा करेंगे। इस प्रकार पत्नी को खोकर जीवित रहना पुरुष की नीति नहीं हो सकती। इससे आपको अपयश मिलेगा। मुझे इसी की चिंता है। मेरा मन कभी आपका विस्मरण नहीं करता। इसके बाद वे लक्ष्मण से क्षमा माँगते हुए संदेश भेजती हैं। सबकी कुशल पूछती हैं। तब हनुमान के माँगने पर शिरोरत्न देती हैं। (रं. रा. सुं. पं ४३३–६१०)

वाल्मीकि रामायण के इस प्रसंग में जो कथात्मक शिथिलता व पुनरुक्ति आ गई है (वा. रा. सं. सर्ग ३१–४१) उसे रंगनाथ ने केवल दूर ही नहीं किया बल्कि सीता के चरित्र पर भी विशेष प्रकाश डाला है। वस्तुविकास की दृष्टि से यह रंगनाथ की कलात्मक प्रतिभा है।

२. रावण सीता से तिरस्कृत होकर रंगनाथ रामायण में उसे मारने के लिए अपना चन्द्रहास नामक खड्ग निकालता है। किंतु उसकी पत्नी मंदोदरी उसे रोकती है और उसकी गलतियों की गिनती करती है। वह कहती है कि "यह स्त्री कोई राजा नहीं जो आप इसका वध करें। आप मेरी बात मानते ही नहीं, क्या करूँ? आपका भाग्य ही ऐसा है तो क्या कहा जाय? परायी स्त्री को चुरा ले आना पहला दोष है। इससे पृथ्वी में निंदा का भाजन होना

दूसरा दोष है। उस स्त्री का आपसे वैर निभाना तीसरा दोष है। उस स्त्री के साथ रमण करने की इच्छा करना चौथा दोष है। उसके प्रति ऐसी बातें, जो सुनने योग्य नहीं, कहना पाँचवाँ दोष है। काम के वश होकर कामिनी का वध करने की इच्छा करना छठा दोष है। न्याय का विचार न करके अपने पौरुष को खो देना सातवाँ दोष है। इस तरह इस स्त्री के कारण आप दोष भाजन बन गये। यह शरीर, पापों की खान है। इसे छोड़ने पर क्या आपको सद्गति मिलेगी ? हमारे अंतःपुर की स्त्रियों में किसी की यह स्त्री सौंदर्य में समानता नहीं कर सकती। आप मेरे साथ रमण कीजिए। चलिए, यह व्यवहार आपके लिए उचित नहीं है।" यों कहकर वह रावण को बलपूर्वक से ले जाती है। तब रावण रखवाली करनेवाली राक्षसियों से कहता है कि "मीठी बातों से या डरा धमका कर इसे दो महीनों में ठीक रास्ते पर लाओ। अगर तब भी यह नहीं माने तो उसे मारकर खा लेना।" इतना कहकर वह चला जाता है। यह घटना और चन्द्रहास से मारने की बात वाल्मीकि रामायण में नहीं है। प्रसन्न राघव के आधार पर रंगनाथ ने इसका सुन्दर विकास किया है। (प्र. रा. ६) हाँ, वाल्मीकि रामायण में रावण इतना कहता है—"नाशयाम्हमद्य त्वां सूर्यः स्वंध्तामिवौजसा—(वा० रा० सुं० २२—३१) वहाँ धान्यमालिनी रावण को रोकती है।

३. रंगनाथ रामायण में अशोक वन का ध्वंस और लंका दहन भी सकारण दिखाए गये हैं जिसमें कथा में स्वाभाविक विकास आ गया है। अपना विराट रूप दिखाकर हनुमान सीता का यह संदेह दूर करता है कि तुम इतने छोटे होकर विशाल समुद्र को कैसे पार कर सके और उनसे शिरोरत्न लेकर विदा लेता है। तब उसके मन में आता है कि रावण को भी मेरे आगमन का समाचार मालूम हो। इस विचार से वह सीता से कहता है कि "माताजी ! मुझे भूख लगी है। वन में जाकर फल खा लूँगा।" यह सुनकर सीता कहती है कि "राक्षस इस वन की रक्षा करते हैं। तुम पृथ्वी पर गिरे फल उठाकर खा लेना और जल्दी चले जाना।" इस पर हनुमान कुछ सोचकर वन का विध्वंस करने के लिए वृक्षों को गिराते हुए चला जाता है। अशोक वन का विध्वंस और लंका दहन सीता की अनुमति के परिणाम हैं। लंका दहन के बाद फिर सीता के पास हनुमान के आने का कारण भी है। सारी लंका जला डालने के बाद हनुमान को अचानक यह लगता है कि सीता भी इस अग्नि में कहीं जल न गई हों। यह सोचकर उसे बड़ा पश्चात्ताप होता है।

यद्यपि एक ओर उसे इस बात का धैर्य भी होता कि जिस माता की महिमा से अग्नि मेरी पूँछ को कोई हानि नहीं पहुँचा सकी उन्हें अग्नि का क्या डर हो सकता है। फिर भी अंतिम बार सीता को देखने के लिए वह फिर उनके पास जाता है और अपनी बहादुरी का ज्ञान कराकर उनसे विदा ले जाता है। इस प्रकार लंका की ये दोनों प्रधान घटनायें स्वाभाविक बन गई हैं।

(रं. रा. सुं. पं. ६०१–६४५; ९३७–९९५)

इस कांड की अन्य घटनाएँ वाल्मीकि रामायण के ही अनुसार हैं।

युद्ध कांड—

इसकी प्रधान घटनाएँ हैं राम का ससैन्य लंका अभियान, रावण की मंत्रणा, विभीषण की शरणागति, सेतु बंधन और राम का लंका प्रवेश, अंगद का दौत्य, इंद्रजित का प्रथम युद्ध तथा राम और लक्ष्मण का नागपाश बंधन, कुंभकर्ण वध, इंद्रजित का दूसरा युद्ध, हनुमान का पहली बार संजीवनी लाना, लंकादहन (दूसरी बार), इंद्रजित का तीसरा युद्ध, और निकुंभिला में उसका यज्ञ विध्वंस, लक्ष्मण की मूर्च्छा, दुबारा हनुमान का संजीवनी लाना और लक्ष्मण का स्वस्थ होना, विभिन्न राक्षसों का युद्ध और वध, रावण वध, मंदोदरी विलाप, विभीषण का राज्याभिषेक, सीता की अग्नि-परीक्षा, अयोध्या में राम का आगमन और राम का राज्याभिषेक।

१. वस्तु-विकास की दृष्टि से रंगनाथ ने इस कांड में बहुत घटाया बढ़ाया जिससे मूल कथा में क्षेपक अंशों और अति विस्तृत पुनरुक्तिपूर्ण वर्णनों के कारण जो नीरसता आ गई है वह दूर होकर कथा सुगठित बन गई। इसके अतिरिक्त नये अंशों और आख्यानों के समावेश के कारण कथा की रोचकता, भक्ति और साहित्य की दृष्टियों से, बढ़ गई। रंगनाथ का सर्व-प्रथम उल्लेखनीय परिवर्तन विभीषण के लंका छोड़कर जाने में है। वाल्मीकि रामायण में विभीषण रावण को उपदेश देता है कि वह सीता को राम को सौंप दे और अपने कुल की रक्षा कर ले। किंतु रावण जब उसकी बातें नहीं मानता तब विभीषण उसकी निंदा कर स्वयं उसकी सभा को छोड़कर सीधे राम की शरण में जाता है। रंगनाथ रामायण में रावण विभीषण को लात मारकर प्रहस्त के द्वारा निकलवा देता है। तब विभीषण अपने चार मंत्रियों को, अनल, नल, हर और संपाति,—साथ लेकर रावण की सभा छोड़कर अपनी माता के यहाँ उसके आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए जाता है। (रं० रा० यु० पृ० ३०१—पं० ५३६-५५८)। इस परिवर्तन के द्वारा विभीषण का रावण को छोड़

जाना स्वाभाविक और अत्यावश्यक सिद्ध हो जाता है। वाल्मीकि रामायण के विभीषण पर बंधु-त्याग का दोषारोपण किया जा सकता है, पर रंगनाथ रामायण का विभीषण इस दोष से बच जाता है क्योंकि वह निकाल दिया जाता है और रावण को छोड़ने पर विवश हो जाता है। इससे विदित होता है कि रंगनाथ ने विभीषण की करनी को औचित्य प्रदान कर दोष रहित सिद्ध किया। विभीषण पर चरण प्रहार का उल्लेख वा. रा. के पश्चिमोत्तरीय पाठ में मिलता है। उसमें रावण की मंत्रणा का विस्तृत विवरण है। (वा. रा. प. सुं. सर्ग ८१-८९) अंत में विभीषण की बातों से क्रुद्ध होकर उस पर चरण प्रहार करता है।

> **आसनात्तूर्णमुत्पत्य पादेनाऽभिजघान तम्**
> **रावणः क्रोध संवेगाद् आसनस्थंविभीषणम्**
> **अभवत् पतितो भूमावासनात् स विभीषणः**
> **वज्रपात हतः श्रीमान विशीर्ण इव पर्वतः ॥** (सर्ग ९०-३-४)

वा० रा० के गौडीय पाठ में भी इसका उल्लेख है । (वा० रा० गौ० सुं० ८१-८७)

२. विभीषण के लंका छोड़ते समय रंगनाथ का एक मार्मिक और महत्व-पूर्ण घटना सन्निवेश है—कैकेशी और विभीषण का मिलन जो वाल्मीकि रामायण में नहीं है। रंगनाथ रामायण में विभीषण रावण की सभा को छोड़कर अपनी माता कैकेशी के यहाँ जाता है जो अनेक ब्रह्मराक्षसों के मुँह से पुराण, वेद और शास्त्र सुन रही थी। वह रावण की चिंता से दुखी थी। उसे देखकर विभीषण ने आँसू बहाते हुए नमस्कार किया। उसे रोते देखकर कैकेशी आश्चर्य से पूछती है, "बेटा ! कैसी विपत्ति आयी है जो तुम इस प्रकार दुखी हो रहे हो ? ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर इन तीनों में किसने हमारे ऊपर क्रोध किया ? तुम जल्दी कहो।" इस पर विभीषण सभा का वृत्तांत सुनाकर कहता है कि "अब मैं राम की शरण में जाता हूँ। उनको छोड़कर मेरे और कोई अपने नहीं हैं।" यह सुनकर कैकेशी मूच्छित होती है और थोड़ी देर में होश सँभाल-कर कहती है कि मैं यह कथा पहले से ही जानती हूँ। एक दिन भगवान अच्युत ने रावण और कुंभकर्ण के अत्याचारों से पीडित देवताओं से कहा था कि उनको मारने के लिए मैं सूर्यवंश में जन्म लूँगा। ये बातें तुम्हारे पिताजी ने मुझे बताईं। तब मैंने उनसे पूछा कि इस कुल की रक्षा करने वाला आपके पुत्रों में कौन है ? तब उन्होंने कहा कि तुम्हारा छोटा लड़का विभीषण जो

सत्य और धर्म-परायण है राम की कृपा से इस लंका का शासन करेगा। अब तुम जानो कि राम ही विष्णु हैं और सीता लक्ष्मी हैं। तुम किसी प्रकार उनकी शरण प्राप्त कर लो और राक्षस कुल की रक्षा करो। तुम्हारी आयु और श्री की वृद्धि हो।" यह कहकर कैकशी उसे अक्षतों के साथ आशीर्वाद देती है और विदा करती है (रं० रा० यु० पृ० ३०१ पं० ५६०-६१८)।

इस घटना से कथा अधिक सुगठित और चरित्र चित्रण अधिक स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक हो गया है। यह प्रसंग वाल्मीकि रामायण के पश्चिमोत्तरीय पाठ में मिलता है। (वा० रा० प० सं ९१)

३. रंगनाथ रामायण मे विभीषण राम की शरण पाकर उनसे लंका की उत्पत्ति की कथा कहता है। एक बार नारद ने शेषनाग और वायुदेव में उनको एक दूसरे से अधिक बलवान कहकर झगड़ा पैदा किया। तब दोनों ने अपनी-अपनी शक्ति की परीक्षा लेने का निश्चय किया। शेष हेमाद्रि से मजबूती से लिपट गया और वायु देव उसे हिलाने का प्रयत्न करने लगा। दोनों की इस स्पर्धा से सारी सृष्टि कांपने लगी तो ब्रह्मादि देवताओं ने पवन को अडिग देखकर शेष से प्रार्थना की कि तुम विश्व की रक्षा के विचार से अपना हठ छोड़ दो। तब शेषनाग ने अपना बंधन ढीला कर दिया तो उस पर्वत का एक शिखर वायु के जोर से टूटकर समुद्र में आ गिरा और त्रिकूट नाम से प्रसिद्ध हुआ।" इतना कहकर विभीषण रावण के वैभव का वर्णन करता है। (रं० रा० यु० पृ० ३०६ पं० ७०६-७२८) यह प्रसंग वाल्मीकि रामायण में नहीं है। विचित्र रामायण की इस कथा के समावेश से राम के सहज और मानवसुलभ कौतूहल का शमन होता है। (विचित्र रामायण बा. २) इसके द्वारा राम और अन्य वानरों का विभीषण पर अच्छा विश्वास भी जम जाता है जिन्होंने पहले विभीषण को शरण न देने की सलाह दी।

४. वाल्मीकि रामायण में बताया गया है कि नल विश्वकर्मा के वर से इस योग्य हुआ कि सागर पर पुल बाँध सके। सागर पर पुल जैसे असंभव कार्य करनेवाले की शक्ति के विषय में जिज्ञासा स्वाभाविक है। रंगनाथ रामायण में राम को यह जिज्ञासा हुई थी। तब उसको शांत करते हुए समुद्र राम से कहता है कि जब नल बच्चा था तब उसने विंध्य पर्वत के पास के जंगल में रहनेवाले पशुकण्व नामक तपस्वी की हवन सामग्री को नदी में फेंक दिया। यह जानकर उस मुनि को क्रोध आया। किंतु बालक समझकर उसे दंड देना उचित नहीं समझा। इसलिए अपनी चीजों को पुनः प्राप्त कर

पाने के उद्देश्य से उसे शाप दिया कि उस बालक की फेंकी गई कोई भी वस्तु पानी में तैरती रहेगी। इसलिए उसके हाथों फेंके जानेवाले पर्वत आदि पानी में न डूबकर तैरते रहेंगे जिससे आपका पुल आसानी से निर्मित हो सकेगा। तब राम उसे बुलवाकर सेतु बंधन का काम करवाते हैं। (रं. रा. यु. पृ. ३१५. ३१५. पं. ९७७-९८८) । नल के इस वृत्तांत का आधार आनंद रामायण में मिलता है। (आ. रा. सा. कांड. १०. ६६-६७) ।

५. सेतु निर्माण के सिलसिले में रंगनाथ रामायण में एक गिलहरी की भक्तिपूर्ण सहायता उल्लेखनीय है। जब बानर सेतु निर्माण के कार्य में लगे हुए थे तब एक गिलहरी सोचती है कि "इसका निर्माण शीघ्र हो जाना चाहिए। इसलिए मैं उनकी सहायता करूँगी।" यों सोचकर वह मन में श्रीराम के चरणों को धरकर, समुद्र में डुबकी लगाकर रेत में लोटने और अपने तन पर लगी रेत को पुल पर जाकर झाड़ देने लगती है। गिलहरी को ऐसा करते देखकर राम बहुत प्रसन्न होते हैं और लक्ष्मण को दिखाकर कहते हैं कि "यह गिलहरी अपनी नगण्यता का भी ख्याल नहीं कर हमारी सहायता करती है। उसका प्रेम देखो।" इस पर लक्ष्मण कहते हैं कि "आपके चरण कमलों का ध्यान करके जो कोई तिनका बराबर काम करे तो भी वह भक्ति के कारण मेरु सदृश हो जायगा।" इसके बाद राम उस गिलहरी को सुग्रीव के द्वारा अपने पास मँगवाते हैं और उसकी प्रशंसा कर अपना दाहिना हाथ पीठ पर फेरते हैं तो बड़े सुंदर ढंग से उस पर तीन रेखाएँ खिच जाती हैं। (रं. रा. यु. पृ. ३१९. पं. १०९८-११२०) यह घटना वाल्मीकि रामायण में नहीं है। डा० कामिल बुल्के ने अपने "राम कथा" में पंजाब और दक्षिण भारत में प्रचलित गिलहरी के वृत्तांत का उल्लेख किया है। (पृ. ३८६) संभवतः दक्षिण का वृत्तांत रंगनाथ रामायण का ही हो। स्पष्टतः इस पर भक्ति तत्व का प्रभाव दिखाई पड़ता है जिसे दिखाने के लिए कवि ने इसका सन्निवेश किया है।

६. रंगनाथ रामायण में सेतु निर्माण में समुद्र राम को ससैन्य अपने घर ले जाता है और दिव्यास्त्र, दिव्य वस्त्र, आभूषण, और एक वज्रकवच बड़ी भक्ति के साथ देकर कहता है कि "हे राम! राजपुत्रों को युद्ध में मुनियों के वस्त्र शोभा नहीं देते। आप इन वस्त्रों को पहन लें।" इस पर राम और लक्ष्मण उन वस्त्रों को पहनते हैं और समुद्र के आशीर्वाद पाकर क्रमशः हनुमान और नील के कंधों पर चढ़कर पुल पार करते हैं। (रं. रा.

यु. पृ. ३२१, पं. ११४५-११५५) इस घटना का उल्लेख वाल्मीकि रामायण में नहीं है। किंतु उसमें राम और लक्ष्मण हनुमान और अंगद के कंधों पर चढ़कर जाते हैं।

७. राम के ससैन्य सागर को पारकर सुवेल पर्वत पर डेरा डालने की बात चरों द्वारा सुनकर रावण अपने मंत्रियों को बुलाता है और उनसे मंत्रणा करता है। यहाँ रंगनाथ रामायण में कैकेशी और रावण के संवाद का प्रसंग आता है जो वाल्मीकि रामायण में नहीं है। रावण की माता कैकेशी अपने पुत्र की करतूतों से बड़ी दुखी थी। श्रीराम के आगमन का समाचार सुनकर उससे रहा नहीं जाता क्योंकि वह जानती थी कि राम ईश्वर हैं और अधर्मी रावण का वध करेंगे। इसलिए मातृसुलभ वात्सल्य से प्रेरित होकर वह अपने पिता माल्यवंत को साथ लेकर रावण की सभा में पहुँचती है और उसे राम की महिमा और शक्ति का परिचय देकर कहती है कि राम से वैर छोड़दे और सीता को उन्हें सौंप दे। वह युगांत में होनेवाले जलप्लावन का भी वर्णन करके कहती है कि तुम वास्तव में चतुर्थ ब्रह्म हो इससे तुमको इस प्रकार का नीच कार्य शोभा नहीं देता। वह यह भी कहती हैं कि तुम विष्णु के शत्रु हो और विभीषण मित्र तथा भक्त। इसलिए उसे प्रार्थनापूर्वक बुलाकर लंका राज्य का अभिषेक कर दो। इस प्रकार कैकेशी अध्यात्म, नीति और धर्म की बातों की शिक्षा देती है जिनको, सुनकर रावण संक्षेप में उत्तर देता है कि माता जी ! मैं सब जानता हूँ। यदि वे महात्मा राम विष्णु के अवतार हों तो इस तुच्छ शरीर से मैं उनको नमस्कार नहीं कर सकता। दूसरी बात यह है कि नर और वानर देवताओं से बढ़कर शूरवीर नहीं हैं। इसलिए मैं उनको अवश्य जीतूँगा या युद्ध में राम के बाण से मर जाऊँगा। लेकिन उस नीच मनुष्य के सामने झुक नहीं सकता। अब तुम अपना यह उपदेश और ममता छोड़ दो। और यदि तुमसे नहीं हो सके तो अपने कनिष्ट पुत्र के पास जाकर इस लंका का शासन करो। मैं इसका शासन बहुत वर्षों तक तुम्हारी कृपा से कर चुका।" रावण का यह उत्तर सुनकर कैकेशी दुख के साथ अपने अंतःपुर में में चली जाती है। (रं. रा. यु. पृ. ३३२- पं. ११७३-१४१०) इस घटना में रावण के पारिवारिक औन्नत्य वैभव और उसकी माता की नैतिक तथा धार्मिक दृष्टि का परिचय मिलता है।

८. अंगद के दौत्य के प्रसंग में रंगनाथ ने रावण और अंगद के संभाषण के सिलसिले में रावण की सर्वज्ञता और भेदनीति पर भी प्रकाश डाला है जो

वाल्मीकि रामायण में नहीं है । जब अंगद ने राम की शक्ति का वर्णन किया तो रावण कहता है कि यह "कहने की आवश्यकता नहीं । मैं जानता हूँ कि राम परब्रह्म हैं और हठपूर्वक राम से युद्ध करने की मेरी इच्छा है । उस युद्ध में राम के हाथों मारा जाकर वैकुंठ प्राप्त करूँगा क्योंकि अब इहलोक के सुखों से संतुष्ट हो गया ।" इतने में अकस्मात् अपना विवेक खोकर वह क्रोध से कहने लगता है कि "अपना सारा राज्य छोटे भाई से खोकर जंगलों में घूमते हुए किसी के द्वारा अपनी पत्नी को भी खोकर बंदरों से जिस राम ने मित्रता कर ली वह क्या मुझसे लड़ सकेगा ? राम तो कोई बड़ा वीर नहीं है । उसकी प्रशंसा मेरे सामने नहीं करना । हे वानराधम ! वाली का पुत्र होकर तू राम की सेवा करता है ? तुम को तो चाहिए था कि तुम भी बदले में राम का वध करते । क्या पृथ्वी में और कोई राजा नहीं मिलते ? इस प्रकार शत्रु की सेवा करने से क्या तुम्हारे देश के लोग तुम्हारा उपहास नहीं करेंगे ? पिता का बदला न चुकानेवाला पुत्र भी कैसा है ? शक्तिहीन और कायर होकर जब राम की तुम यों सेवा कर रहे हो तब यह कैसे कहा जा सकता है कि तुम वाली के पुत्र हो ? मेरी सीख मानो । मनुष्य मेरे भी शत्रु हैं और तुम्हारे भी । अब इस दूत कर्म को छोड़कर यदि तुम मेरे पक्ष में आ जाओ तो अभी तुम्हें वानरों का प्रभु बना दूँगा ।" (रं. रा. यु. पृ. ३४६-पं. १८९३-२०८०) रावण की ये बातें उसकी भेदात्म राजनीति पर प्रकाश डालती हैं और रावण जैसे राजा के लिए स्वाभाविक और औचित्यपूर्ण हैं । इस पर हनुमन्नाटक का प्रभाव है जिसमें रावण अंगद को राम का दूत बनने के कारण धिक्कारता है (हनु. ८ अंक) ।

९. रंगनाथ रामायण में अंगद के चले जाने के बाद रावण राम को डराने के लिए अपना सारा वैभव और बल का प्रदर्शन करता है । सब प्रकार के अलंकारों से अलंकृत होकर अपने सब परिवार, मंत्री, सेवक आदि को लेकर अपने भवन की सब से ऊँची छत पर रत्नजटित सिंहासन पर बैठता है और सब लोग उसकी महाराजोचित सेवा करने लगते हैं । उसका विचार था कि राम यह सब ठाट-बाट देखकर भयभीत हो जायेंगे । उसी समय सुवेलाचल पर सब वानरों से परिवेष्टित होकर सुग्रीव की जाँघ पर सिर रखे राम विभीषण से कुछ मंत्रणा कर रहे थे । झट वैभवोपेत रावण को देखकर विभीषण से पूछते हैं कि वह कौन है ? विभीषण कहता है कि वही रावण है जो आपको अपना वैभव दिखाने के लिए वहाँ बैठा है । राम ने सुनकर रावण को अपनी शक्ति दिखाने के उद्देश्य

से लक्ष्मण से धनुष-बाण लिए और लेटे ही लेटे दाहिने पैर के अंगूठे से धनुष पकड़कर, उस पर तीर चढ़ाकर छोड़ा तो उस शर ने लाखों शरों के रूप धारण कर बिना किसी को हानि पहुँचाये, बिना रावण के मुकुटों को गिराये केवल छत्रों, चामरों और व्यंजनों को काटकर नीचे गिरा कर राम के तूणीर में आगया। इसे देखकर रावण बहुत आश्चर्य चकित होकर राम की तीरंदाजी की भव्य भाषा मे प्रशंसा करता है। वह कहता है कि "हे रघुराम! नयनाभिराम! धनुर्विद्या के आचार्य! वीरावतार! दृढ़-भुजा संपन्न! शत्रुजयी! विजय संपन्न! मानव राजकुमार सिंह! हे विश्व शरण्य! महाराज राम! तुम्हारे समान कुशल धनुर्धर इस संसार में नहीं हो सकता। त्रिपुरों पर शिव का बाणाघात एक ही था और अब तुम्हारा बाणाघात एक ही है।" इस पर मंत्री लोग कहने लगते हैं कि महाराज! इस प्रकार शत्रुराजा की प्रशंसा नहीं करनी चाहिये।" यह सुनकर रावण कहता है कि "राम के समान धनुर्धर और विक्रमी, इस संसार में सचमुच नहीं हो सकता। ऐसे वीरवर की प्रशंसा नहीं करनी चाहिए?" यह कह कर रावण उस स्थान को छोड़कर चला जाता है। (रं. रा. यु. पृ. ३५३ पं० २११०-२२१०) यह घटना वाल्मीकि रामायण में नहीं है। अध्यात्म रामायण में है (अ. रा. यु. ५-४२-४५) किंतु उसमें राम की प्रशंसा नहीं। रंगनाथ ने इसकी उद्भावना के द्वारा एक साथ काव्य के नायक की अद्भुत शक्ति और प्रतिनायक की उदारता का भी चित्रण किया है।

१०. रंगनाथ रामायण में युद्ध प्रारंभ होने के बाद इंद्रजीत पहली बार अंगद से हारकर अपनी यज्ञशाला में जाता है और एक यज्ञ करके अग्नि से चार घोड़ों और नाना प्रकार के अस्त्र शस्त्रों से सज्जित एक सुवर्ण रथ को प्राप्त करता है जिस पर चढ़कर अदृश्य हो वह दूसरे दिन युद्ध करके राम और लक्ष्मण को नाग पाश से बंधित कर देता है। (रं. रा. यु. पृ. ३६३। पं २४१२-२४२८) इस प्रथम यज्ञ की बात वाल्मीकि रामायण में नहीं है।

११. राम और लक्ष्मण के नागपाश में बंधित होने पर वाल्मीकि रामायण में विभीषण विलाप करता है कि मेरी राज्य की आकांक्षा अब पूरी नहीं हो सकेगी। (वा. यु. ५००१.२०) किंतु रंगनाथ रामायण में विभीषण विलाप नहीं करता बल्कि सुग्रीव आदि वानरों को धैर्य बँधाता है और उनको आगे के प्रयत्न में प्रवृत्त करता है। इस परिवर्तन से विभीषण का चरित्र ऊँचा हो गया है।

१२. वाल्मीकि रामायण में राम और लक्ष्मण को नागपाश से मुक्त करने के लिए संजीवनी लाने का उपाय जब सुषेण कह रहा था तब अकस्मात् गरुड़ का आगमन होता है जो उनको नाग पाशों से मुक्त कर देता है और उसके स्पर्श से उनके शरीर भी स्वस्थ होते हैं। (वा. रा. यु. ५०) किंतु रंगनाथ रामायण में यह प्रसंग कुछ परिवर्तित रूप में दिखाई पड़ता है। सुषेण जब चिकित्सा की बात कह रहा था तब नारद का आगमन होता है जो परब्रह्म के रूप में राम की स्तुति करके उनके विश्व रूप का वर्णन करते हैं। अन्त में कहते हैं कि आप अपने स्वरूप का ध्यान कीजिये तो गरुड़ आकर आपको इस बंधन से मुक्त कर देगा। तब राम ऐसा ही करते हैं और गरुड़ उनको मुक्त कर देता है। (रं. रा. यु. पृ. ३७ पं. २६२७–२६९०) इस पर भक्ति-तत्व का प्रभाव स्पष्टत: लक्षित है। नारदागमन की यह बात वाल्मीकि रामायण के पश्चिमोत्तरीय पाठ में मिलती है। (वा. रा. प. यु. २७–२८)

१३. प्रहस्त के वध की बात सुनकर रावण जब स्वयं युद्ध में जाने के लिए तैयार होता है तब मंदोदरी रावण की सभा में जाती है और उससे कहती है कि आपने आदि नारायण राम की पत्नी का हरण किया और यह युद्ध मोल लिया है। राम ने आपका क्या अपकार किया है ! उनको इन त्रिलोकों में कोई जीत नहीं सकता। उनसे संधि कर लेना बुद्धिमानी का काम है। आप व्यर्थ गर्व मत कीजिए। आपने कार्तवीर्यार्जुन से संधि कर ली। उसको जीतनेवाले परशुराम को भी जिस राम ने जीत लिया है वे क्या संधि के योग्य नहीं हैं। यह प्रसंग वाल्मीकि रामायण के पश्चिमोत्तरीय पाठ में मिलता है जिसका प्रभाव रंगनाथ पर है, यहाँ तक कि यह पूरा प्रसंग उसका अनुवाद सा लगता है।

(वा. रा. प. यु. ३५)

१४. रंगनाथ रामायण में कुंभकर्ण युद्ध में जाने के पहले रावण को उपदेश देते हुए कहता है कि मैंने एक बार नारद से सुना कि सब ऋषि-मुनि और देबता आदि तुम्हारे अत्याचारों से त्रस्त होकर ब्रह्मा से त्राण माँगने लगे तो ब्रह्मा ने उनको बताया कि भगवान विष्णु आप लोगों की रक्षा कर सकेंगे। यह सुनकर देवताओं ने विष्णु से प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना मानकर विष्णु ने पृथ्वी में मनुष्य के रूप में जन्म लिया। इतना कहकर नारद चले गये। वही विष्णु राम हैं। वानर सब देवता हैं। इसलिए राम को सीता सौंप दो और उनकी शरण माँगो। किंतु रावण उसका तिरस्कार कर कुंभकर्ण की भर्त्सना

करता है। (रं. रा. यु. पृ. ४०३–३६३९. ३७३५) यह प्रसंग वा० रा० के पश्चिमोत्तरीय पाठ के प्रसंग का अनुवाद सा लगता है।

(वा० रा० प० यु० ४१)

१५. कुंभकर्ण जब युद्ध कर रहा था तब एक बार विभीषण से उसका सामना होता है। तब रंगनाथ रामायण में कुंभकर्ण विभीषण से कहता है कि "हे विभीषण सुनो ! यही अवसर है कि अपने प्रभु राम के सामने अपनी वीरता दिखाओ। भ्रातृ संबंध का विचार नहीं करना। इस महाराज राम का ही तुम्हें आधार है। इनकी कृपा तुमने पा ली, इसलिए तुम पर कोई विपत्ति नहीं आयेगी। तुम दयावान और सुगुणालंकृत हो। तुमको छोड़कर और कौन है यहाँ जो लंका का शासन कर सके ? हाँ, यह सोचकर कि पौरुष और युद्धनीति की दृष्टि से तुम मेरे साथ युद्ध करोगे, मैंने तुमसे भ्रातृ संबंध का ख्याल छोड़कर पराक्रम के साथ लड़ने को कहा। किंतु आज मेरे सामने ब्रह्मा और रुद्र आदि भी नहीं ठहर सकेंगे। इसलिए भाई। तुम हट जाओ मेरे सामने से, व्यर्थ ही मर न जाना। इस राक्षस वंश के उद्धार के लिए तुम्हारी आवश्यकता है।" इस पर विभीषण अपनी करनी की सफाई देते हुए कहता है कि भाई ! भाई रावण से मैंने नीति की बातें बहुत कहीं, किंतु उन्होंने नहीं मानी। तब मैं उनको छोड़कर राम की शरण में आ गया। यह कहकर वह आँसू बहाते हुए वहाँ से हट जाता है। (रं. रा. यु. पृ. ४१८–पं० ४०८५–४१००)। यह संवाद वाल्मीकि रामायण में नहीं है। इसमें कुंभकर्ण के चरित्र का विकास दिखाई पड़ता है। वाल्मीकि रामायण के पश्चिमोत्तरीय पाठ की कुछ प्रतियों में यह प्रसंग मिलता है और उसी का प्रभाव रंगनाथ पर है (वा. रा. पं. यु. ४६–८२–९१) यह प्रसंग अध्यातम और आनंद रामायणों में भी मिलता है। (अ. रा. यु. ८., आ. रा. सार कांड ११)

१६. रावण का पुत्र अतिकाय जब राम से युद्ध करने आता है तब रंगनाथ रामायण में वह राम से बहुत ही महत्वपूर्ण बातें कहता है जिनके द्वारा राम के ब्रह्मत्व पर अच्छा प्रकाश पड़ता है, वह यह सोचकर कि शत्रुता युत भक्ति से मैं मुक्ति प्राप्त करूँगा, निगमार्थयुक्त वाणी में राम से कहने लगा कि "हे राम ! इस युद्ध भूमि में अपना पौरुष मुझे दिखाओ। तुम कैसे हो, यह किसने नहीं जाना। मेरे पिता के कारण तुम मनुष्यों के राजा बने। तुम इंद्र, यम, वरुण आदि देवताओं में से नहीं हो जो मेरा सामना कर सको। फिर भी जब तुम आये हो तो मैं भी तुम्हारा सामना करूँगा। क्या मैं तुम्हारी बहादुरी

नहीं जानता ? तुम्हें मान और लज्जा¹ का ख्याल ही नहीं । तुम गुणहीन हो । तुम्हारी जाति क्या है ? तुम तपस्वियों के मन रूपी जंगलों में घुस जाओ, मेरे साथ युद्ध नहीं कर सकते । तुम्हारा स्थान वेद रूपी पर्वतों की गुफाओं में है । सनकादि मुनियों के हृदय समुद्र में प्रवेश करो । भवरोगों से दूर और सब दोषों से रहित होकर जंगलों में कंद-मूल खाने वाले साधुओं के हृदय में जाकर रहो । मेरे साथ युद्ध करने योग्य तुम नहीं हो ।" आगे राम के मत्स्य, कूर्म, आदि रूपों में जन्म लेने का वर्णन करके कहता है कि मैं तुम्हारा ख्याल नहीं छोड़ सकता । मैं ढूँढ ढूँढ कर तुमको पकड़ूँगा । मेरा बाण वह वटपत्र नहीं है जो तुम को ढोते हुए रण रूपी सागर में तैरता फिरे । (रं. रा. यु. पृ. ३४२—पं. ४५०५-४५४०) अतिकाय की ये बातें वाल्मीकि रामायण नहीं है और रंगनाथ की मौलिक उद्भावना है जो साहित्यिक और भक्ति की दृष्टि से सुन्दर और महत्वपूर्ण है । व्याज स्तुति अलंकार का यह सुन्दर उदाहरण है ।

१७. लक्ष्मण के हाथों जब अतिकाय की मृत्यु हो जाती है तब रावण उसका समाचार सुनकर मूर्च्छित हो जाता है और एक क्षण में होश में आकर आँसू बहाने लगता है । उस समय रंगनाथ रामायण में उसकी पत्नी मंदोदरी उसके पास आती है और वीरोचित शब्दों में कहती है कि "हे असुरेश । सब लोकों में असमान सत्वसंपन्न होकर इस प्रकार शोक करना क्या आपको उचित है ? उस दिन उस राजकुमार की पत्नी को क्यों हर लाये ? फिर उसे उन्हें नहीं सौंपा आपने । अब तो अवसर बीत गया । राम से युद्ध करने जानेवाले वीरों के लौट आने की आशा छोड़ो । अब युद्ध में अपना पौरुष दिखाओ ।" (रं. रा. पृ. ४३५ पं. ४६०५-४६१०) मंदोदरी की इन चुभती बातों का उल्लेख वाल्मीकि रामायण में नहीं है । इसमें रंगनाथ की मंदोदरी के चरित्र-चित्रण की कुशलता दिखाई पड़ती है ।

१८, इंद्रजित तीसरी बार जब युद्ध में जाता है तब रंगनाथ रामायण में यज्ञ में काले शरीर वाले की बलि देकर "कृत्ति" नामक शक्ति को प्राप्त करता है । जो अपना भयंकर रूप लेकर उसके सामने उपस्थित होती है । उसके प्रभाव से वह अदृश्य होकर राम से जब युद्ध करता है और वानर सेना को तहस-नहस कर डालता है तब राम भी निराश हो जाते हैं और लक्ष्मण से कहते हैं कि आज यह अजेय हो गया है । इस पर जो भी अस्त्र फेंका जाय वह व्यर्थ हो जाय । उस समय वायु राम के पास आता है और कहता है कि "आग्नेयास्त्र ही इससे

बचने का उपाय है। यदि आप उसका प्रयोग करें तो वह कृत्ति शक्ति उसे छोड़-कर अदृश्य हो जायगी। यह सुनकर राम आग्नेयास्त्र का प्रयोग करते हैं और इंद्रजित की माया को छिन्न-भिन्न करते हैं। (रं. रा. यु. पं. ५०७५–५२०२) इन्द्रजित के यज्ञ की बात वाल्मीकि रामायण के पश्चिमोत्तरीय पाठ में है। (वा. रा. प. यु. ५८) किंतु "कृत्ति" शक्ति की बात नहीं है। वायु की भी बात नहीं है।

१९. रंगनाथ रामायण के युद्धकांड में सबसे प्रसिद्ध प्रसंग है सुलोचना के सती होने का जो वाल्मीकि रामायण में नहीं है। इन्द्रजित की मृत्यु का समाचार उसकी पत्नी सुलोचना को मिलता है जो निकुंभिला के अंतःपुर में अपनी सखियों के साथ बैठी हुई थी। यह समाचार पा . ही दुःखातिरेक के कारण वह मूर्छित हो जाती है। थोड़ी देर के बाद सखियों के उपचारों से उसकी मूर्च्छा दूर हो जाती है तो वह विलाप करते हुए कहने लगती है कि "हाय प्राणेश्वर ! साधारण मनुष्य के हाथों तुम्हारी मृत्यु हो गई है, यह कैसी विडम्बना है ! पापी विधाता ने ईर्ष्यावश हम दोनों को इस प्रकार क्यों अलग किया ? मुझसे कहकर यदि तुम युद्ध में जाते तो क्या तुम्हारी मृत्यु होती ? मेरे पिता ने जब हमारा पाणिग्रहण कराया तब मुझे एक शिरोरत्न देकर जो यह कहा था कि जब कभी तुम्हारा पति शत्रुओं पर आक्रमण करने जायगा तब इस शिरोरत्न से उसकी आरती उतारने से वह युद्ध में अवश्य विजयी होगा, वह भी तुम भूल गये जिससे रण में विजित हो कर मारे गये हो।" यों विलाप करके वह अपने पुत्रों से कहती है "विभीषण के रहते तुम लोगों को भयभीत होने की आवश्यकता नहीं। उनकी छत्रछाया में तुम उन्नति करोगे। अब यह संसार छोड़कर पति की अनुगामिनी बनकर उनके साथ परलोक में जाना ही मेरे लिए उचित है।" इसके बाद वह सीधे अपने ससुर रावण के यहाँ जाकर कहती है कि "पति से चिर वियोग होने पर पतिव्रता स्त्री का उसके साथ सती हो जाना ही परम कर्तव्य है। अतः मैं सती होना चाहती हूँ। आप मेरे पति का शव मँगवाइये।" पुत्र के वध से स्वयं दुखी रावण पुत्र-वधू की ये बातें सुनकर चिंतित होता है और पुत्र का शव मँगवाने में अपनी असमर्थता प्रकट करता है और उसे अनुमति दे देता है कि वह जैसा उचित समझे करे। त्रिलोक विजेता रावण को इस प्रकार अपनी असमर्थता प्रकट करते देखकर सुलोचना यह सब अपने बुरे दिनों का प्रभाव मानती है और अग्नि को रथ में अग्र भाग में रखकर रावण की अनुमति से सीधे युद्ध क्षेत्र में जाती है। अपनी अनुपम सुन्दरता लेकर बड़ी नम्रता

से राम के सामने जाकर भक्ति पूर्वक भव्य शब्दों में उनकी स्तुति करती है। तब राम की आज्ञा पाकर सुग्रीव उसका परिचय पूछता है तो वह राम से कहती है कि शेषनाग मेरे पिता हैं और मेरा नाम सुलोचना है। मेघनाद मेरे पति हैं जो बड़े पराक्रमी, शूरवीर हैं और रावण तथा मंदोदरी के पुत्र हैं। ऐसे शूर-वीर को मारकर आपने मुझे विधवा बनाया है। आप तो शरणार्थियों के कृपालु रक्षक हैं। मैं आपकी शरण आयी हूँ। आपसे मेरी विनती है कि मेरे पति को जीवित करके मुझे पति भिक्षा दें। यह सुनकर राम के मन में दया आती है तो उनका भाव ताड़कर हनुमान उनसे कहते हैं कि ब्रह्मा के वर को टाल देना ठीक नहीं। उसका आदर करना चाहिए। इस पर राम सुलोचना से कहते हैं कि अगले जन्म में, तुम अपने पति को प्राप्त कर सकोगी और दीर्घकाल तक अतुलित भोगों का अनुभव करके पति के साथ वैकुंठ को प्राप्त करोगी। यह सुनकर सुलोचना विनयपूर्वक उनसे पति का शव माँगती है कि उनके साथ सती हो जाय। तब सुग्रीव सुलोचना से कहता है कि यदि तुम पतिव्रता हो तो अपने पति से अपना सारा वृत्तांत कह दो। इस पर सुलोचना शपथ खाती है कि मैं यदि मनसा-वाचा और कर्मणा पति भक्ति करती हूँ और इन्हीं को देव मानती हूँ तो वे सजीव होकर मुझसे बात करें। इस पर निर्जीव इन्द्रजीत आँखें खोलकर कहता है कि "देवी! तुम्हारे पिता ने ही मेरा वध किया है और कोई मेरा वध नहीं कर सकता। तुमको दुखी होने की आवश्यकता नहीं क्योंकि ऋणानुबंध के कारण पुरुष अपनी पत्नियों से एक सूत्र में बँधकर रहते हैं। संयोग और वियोग विधाता के विधान हैं। काल के वश होकर मैं विजित हो गया। इसलिए चिंता की कोई बात नहीं। इतना कहकर वह अपनी आँखें बंद कर लेता है। तब भगवान राम सुलोचना को इंद्रजीत की शव दिलाते हैं और सुलोचना उसे ले जाती है। अंतःपुर में जाकर अपने पुत्रों को मातामह के घर भेज देती है। उसके बाद रावण की अनुमति लेकर और सुसज्जित हो पति के शव के साथ सती हो जाती है। सती होने का विस्तृत विवरण है जिसका सांस्कृतिक महत्व है। (रं०रा० यु० पं० ५८३५-५९९६) यह प्रसंग वाल्मीकि रामायण में नहीं है। आनंद रामायण में यह कथा मिलती है, जो इस प्रकार है—

तदा क्रुद्धः स सौमित्रि र्बाणे नेंद्रजितस्यहि
सशरं दक्षिण भुजं पातयामास तद्गृहे ॥

× × ×

सुलोचनाऽपि कांतस्य भुजं केयूरभूषितम् ।
दृष्ट्वा स मार्गणं स्वीयपुरतः पतितं भुवि ।।
तदा विलापमकरोत्स्मृत्वा तत्पौरुषाणि सा ।
भुजोऽपि सांत्वयत् ता स लेख्य भूम्यांशरेणहि ।।
स्वलोहिताक्षरैः प्राह मा खेदं भज भामिनि ।
साक्षाच्छेषशराघातैः हतोऽहं मुक्तिमागतः ।।
त्वं चाऽपि गत्वा श्रीरामं नत्वा याचस्व मच्छिरः ।
तत्वां दास्यति रामोऽपि तेनाऽग्नि विश्व याहिमाम् ।।
सुलोचना पठित्वा सा लिखिता त्यक्षराणिहि
तुष्टा पृष्ट्वा रावणाय मंदोदर्यै विभूषिता ।।
ययौ रामं शिबिकया तां दृष्ट्वा वानरोत्तमाः
सीतेयं रावणेनाऽद्य भयाद्रामं विसर्जिता ।।
इति मत्वा दुद्रुवुस्ते सीताया दर्शनेच्छया
शिबिकां वेष्टयामासु र्ज्ञात्वा तां तु सुलोचनाम् ।।
शिबिका वाहकारयेना ययुः श्रीराघवं पुनः
सुलोचनापि श्रीरामं ननाम शिरसा मुहुः ।।
भर्तुः शिरः कांक्षमाणां तां रामोवाक्यमब्रवीत् ।
कृपया तव भर्तारं करोम्यद्य सजीवितम् ।।
मा विशस्वाद्य वह्नि न त्वं रोचते चेद्वदस्व माम् ।।
तदा सा प्राह श्रीरामं पुनः सौमित्रि हस्ततः ।।
कृतो भवेत्तन्मरणं मोक्षदं जीवयस्व मा ।
इत्युक्त्वा राघवं नत्वा सस्मितं कपिवाक्यतः ।।
कृत्वा शिरः पते स्तत्र लब्ध्वा सा भर्तृ सच्छिरः ।
लंकाया स्तौ समानीय भुजौ गत्वा निकुंभिलाम् ।।
भर्तृ देहेन संयज्य विवेशाग्नि यथाविधि ।
सुलोचना दिव्य देहा वैकुंठं पतिना ययौ ।।

(आ. रा. सा. ११-१८९-२१८)

इस प्रकार सुलोचना का प्रसंग आनन्द रामायण में संक्षिप्त रूप में पाया जाता है। यह वृत्तांत रंगनाथ रामायण में सुन्दर और औचित्यपूर्ण वर्णनों से युक्त है तथा राजनैतिक दृष्टि से सुगठित है। इस संबंध में डा० कामिल बुल्के लिखते हैं कि सुलोचना की कथा का प्रथम वर्णन तेलुगु द्विपद रामायण में

(यही रंगनाथ रामायण) मिलता है। आनंद रामायण में इस वृत्तांत का विकसित रूप पाया जाता है।[1] इस आधार पर "हिन्दी अनुशीलन" में प्रकाशित मेरे लेख के फुटनोट में उसके संपादक ने सूचित किया कि इस वृत्तांत का विकास आनंद रामायण में हुआ है।[2] किन्तु दोनों वृत्तांतों की तुलना करने पर स्पष्ट होता है कि आनंद रामायण का ही विकसित रूप रंगनाथ रायामण में मिलता है न कि इसके विपरीत यद्यपि दोनों में थोड़ा अन्तर है। रंगनाथ के आनन्द रामायण को छोड़कर और किसी राम काव्य में सुलोचना का प्रसंग नहीं मिलता जो उनकी कथा का मूलाधार बनता। स्व० श्री म. सोमशेखर शर्मा‌जी ने भी आनंद रामायण के सुलोचना वृत्तांत पर विचार किया है, किंतु इन दोनों के पारस्परिक संबंध पर अपना कोई स्पष्ट मत नहीं दिया।[3]

कथा विकास की दृष्टि से यद्यपि इसका सीधा संबंध प्रधान रामकथा से नहीं है तथापि भक्ति तत्व की दृष्टि से इसका महत्व है। राक्षस स्त्रियों में भी राम भक्ति दिखाना रंगनाथ का उद्देश्य था।

यहाँ इस बात का भी उल्लेख करना चाहिए कि रंगनाथ रामायण का यह कथा भाग कुछ विद्वानों के द्वारा क्षेपक माना गया है। आंध्र विश्वविद्यालय के द्वारा प्रकाशित रंगनाथ रामायण में यह अंश परिशिष्ट में तीन पाठांतरों के साथ दिया गया है। किस आधार पर इसको प्रधान ग्रंथ से अलग किया गया हैं, इस पर उसके संपादक स्व० वे० प्रभाकर शास्त्रीजी ने कुछ नहीं कहा। केवल इतना सूचित किया गया है कि उनमें एक पाठ पूर्व मुद्रित प्रतियों में ही मिलता है; हस्तलिखित प्रतियों में नहीं; शेष दोनों पाठ कुछ हस्तलिखित प्रतियों में मिलते हैं। दोनों में अंतर है यद्यपि कथा एक ही है। इस पर विचार करते हुए उसकी पीठिका के लेखक श्री पि. लक्ष्मीकांतमजी और स्व० क. रामलिंगा रेड्डी जी ने अपना यह मत प्रकट किया है कि इस वृत्तांत को प्रधान ग्रंथ के साथ ही रखना चाहिए था; न जाने क्यों संपादक महोदय ने इसे अलग रखा।[4]

---

१. डा० बुल्के—"रामकथा"—पृ. ३९५
२. भारतीय हिन्दी परिषद्—हिन्दी अनुशीलन—वर्ष १२—अंक १ पृ. १९
३. श्री म. सोमशेखर शर्मा—रंगनाथ रामायण की भूमिका—पृ. ३०
४. श्री पि. लक्ष्मीकांतमजी—"रंगनाथ रामायण—पीठिका"—पृ. २०
स्व० क. रामलिंगारेड्डी—रंगनाथ रामायण—पीठिका—२, पृ. ४

उनके विरोध में श्री शि. रामकृष्ण शास्त्रीजी ने[1] और श्री रा. अनंतकृष्ण शर्माजी ने[2] लिखा है कि वह क्षेपक है क्योंकि उसमें कुछ भाषा संबंधी अशुद्धियाँ हैं जो शेष ग्रंथ में नहीं मिलतीं। श्री शि. रामकृष्ण शास्त्रीजी ने एक और तर्क दिया है कि यह वृत्तांत वरदराजु की रामायण से मिलता है और वही रंगनाथ रामायण में जोड़ दिया गया होगा। किंतु मुद्रित वरदराजु की रामायण में, जिस पर इस प्रबन्ध में आगे विचार किया गया है, सुलोचना का वृत्तांत है ही नहीं। अतः उनका वह तर्क भ्रामक है। व्याकरण की अशुद्धियों का जहाँ तक संबंध है यह ठीक है कि कुछ अशुद्धियाँ उसमें अवश्य मिलती हैं। किंतु उनके कारण उसे रंगनाथ कीरचना न मानना कुछ ठीक नहीं है क्योंकि वे अशुद्धियाँ प्रतिलिपिकारों के प्रमाद से भी हो सकती हैं और एकाध अशुद्धि स्वयं कवि से भी हो गयी हो तो वह अक्षम्य नहीं हो सकती। "एकोहि दोषो गुण सन्निपाते निमज्जतींदों: किरणेष्यिवांक:"[3] की दृष्टि से उसे क्षम्य मानना चाहिए। यही सोचकर संभवतः स्व० श्री म. सोमशेखर शर्माजी ने, जिनका भी आंध्र विश्वविद्यालय की रंगनाथ रामायण के संपादन में हाथ था, अपने द्वारा परिष्कृत रंगनाथ में इसे क्षेपक नहीं माना और प्रधान ग्रंथ के साथ प्रकाशित किया है जिसके आधार पर प्रस्तुत प्रबंध लिखा गया है। यह रंगनाथ रामायण का आधुनिकतम प्रकाशन है। वाविल्ल प्रेस से प्रकाशित रंगनाथ रामायण के प्रथम मुद्रण में सुलोचना का वृत्तांत नहीं था, किंतु बाद के मुद्रण में मिलता है।

इन सब पर विचार करके हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सुलोचना का वह भाग जो प्रायः सब रामायणों में मिलता है, रंगनाथ का ही लिखा है।

२०. रावण की शक्ति के प्रहार से जब लक्ष्मण मूर्छित हो जाता है तब राम बड़े क्रोधित होते हैं। तब रंगनाथ रामायण में राम प्रणपूर्वक यह निश्चय कर लेते हैं कि रावण तीनों लोकों में कहीं भी जाय तब भी मेरे बाणों से बच नहीं सकता और बड़े भयंकर बाणों का प्रयोग रावण पर करते हैं जो रावण के लिए असह्य हो जाते हैं। तब वह रणक्षेत्र छोड़कर भाग जाता है और विभीषण, माल्यवंत, प्रहस्त, कुंभकर्ण, माता कैकेशि आदि के

---

१. श्री शि. रामकृष्ण शास्त्री—आंध्र वाङ्मय चरित्र सर्वस्व—पृ.
२. ,, रा. अनंत कृष्ण शर्माजी—सारस्वतालोक—पृ. ९७-१००
३. कालिदास—"कुमारसंभव"—पृ. १-२

हितोपदेश का स्मरण कर दुखी होता है कि उनका उपदेश न मानकर मैंने व्यर्थ ही अपने प्राण संकट में डाले हैं। अब राम मेरे लिए अजेय हो गये है। उनको जीतने का कोई उपाय नहीं सूझता। अब मैं भगवान शंकर की शरण जाकर उनका भजन करूँगा। यों निश्चय करके वह स्नानादि से पवित्र होकर शंकर के मंदिर में जाकर उनका ध्यान करने लगता है। उस समय उसकी पत्नी मंदोदरी वहाँ आती है और उसे जोश दिलाते हुए कहती है, "हे दशकंठ ! अपना शौर्य छोड़कर यों दीन की भाँति रहना आपको शोभा नहीं देता। आप क्रोध करें तो समुद्र शांत हो जायं। वायु की गति रुक जाय, अनल ठंडा पड़ जाय, सूर्य नहीं चमके, और सब लोग विचलित हो जायँ। अब अपना पौरुष छोड़कर यह भजन भाव क्यों ग्रहण किया आपने ? आपमें इतना बूता ही नहीं था तो उस दिन सीता को क्यों हर लाये; भाई-बंधु, मंत्री, मातामह, माता आदि का उपदेश क्यों नहीं माना ? अब अपना सारा पराक्रम भूलकर मुनि बनकर यों बैठे रहें और राम को जीत नहीं सके तो सारी दुनिया आपका उपहास करेगी। अब आपको यह सब छोड़कर युद्ध करके राम को जीतना ही शोभा दे सकता है।" पत्नी की उत्तेजनाभरी ये बातें सुनकर रावण लज्जित होता है और अंत में निश्चयकर लेता है कि अब होम करके सर्वसाधन-संपन्न होकर युद्ध में राजकुमारों का वध कर डालूँगा। (रा. रा. यु. पं. ६४८५-६५३५) यह प्रसंग वाल्मीकि रामायण में नहीं है और भगवान राम का सामना करनेवाले रावण की विभिन्न मानसिक परिस्थितियों का चित्रण करने के लिए कवि रंगनाथ ने इसकी उद्भावना की है। इसमें मंदोदरी का वीर नारी का रूप भी झलकता है जो और कहीं नहीं मिलता।

२१. राम लक्ष्मण को रावण की शक्ति से मूर्च्छित देखकर बड़े दुखी होते हैं और रावण को अपने तीव्र शरों से पीड़ित करके रणभूमि से भागने पर विवश कर देते हैं। उसके बाद सुषेण की सलाह से हनुमान को संजीवनी लाने के लिए द्रोण पर्वत पर भेजते हैं। वे हनुमान को आशीर्वाद देते हैं कि इन्द्र आदि विभिन्न देवता तुम्हारे अंगों की रक्षा करेंगे। यह समाचार गुप्तचरों से पाकर रावण उसके कार्य में बाधा डालकर उसे मरवा डालने के विचार से कालनेमि नामक राक्षस की, जो मारीच का पुत्र था, सहायता माँगता है। यह सुनकर कालनेमि उसे राम की शक्ति का परिचय कराते हुए कहता है कि उनके हाथों अनेक राक्षसों का वध हो गया है। कम से कम अब सीता को उन्हें सौंप दो, विभीषण को लंका का राजा बनाकर स्वयं मुनि बनो और कैलास पर

जाकर रहो या युद्ध में राम के शस्त्रों से मर विष्णु सायुज्य को प्राप्त कर लो। यह कपटी व्यवहार छोड़ दो।" किंतु रावण उसकी सीख नहीं मानता और डरा धमकाकर उसे उस कार्य के लिए भेज ही देता है। कालनेमि उसके कहे अनुसार द्रोण पर्वत के पास एक कृत्रिम आश्रम का निर्माण करता है और कपटी मुनि बनकर बैठ जाता है। द्रोणपर्वत की ओर जानेवाले हनुमान उसे देखकर आश्चर्य में पड़ता है और सोचता है कि पहले जब मैं आया तब यह आश्रम नहीं था, कहीं मैं पथ-भ्रांत तो नहीं हो गया हूँ। यह सोचकर मार्गदर्शन के लिए उस कपटी मुनि के पास जाकर प्रार्थना करता है और पीने के लिए जल माँगता है। तब कालनेमि उसे रोकने के लिए कहता है कि तुम आज रात को यहाँ विश्राम कर लो। मैं जानता हूँ कि तुम लक्ष्मण की मूर्च्छा दूर करनेवाली औषधियाँ लाने के लिए द्रोण-पर्वत पर जा रहे हो। वे सब औषधियाँ यहीं मेरे तपोवन में हैं। मैं कल प्रातःकाल तुम्हें दूँगा और पलक मारते ही लंका पहुँचा दूँगा।" हनुमान विनय के साथ इसका तिरस्कार करता है और प्यास बुझाने के लिए उसके दिखाये मार्ग से एक सरोवर के पास जाता है। जब वह सरोवर में उतरता है तब एक मगर उसको पकड़कर निगलने लगता है। हनुमान उसे बड़ा बलवान जानकर उसके पेट में पहुँच जाता है और उसकी आंतों और नसों आदि को काट-काटकर मार डालता है। उसे आकाश में एक अप्सरा दिखाई पड़ती है जो यह कहती है कि मैं धान्यमालिनी नामक गंधर्व स्त्री हूँ। किसी मुनि के शाप से मैं इस प्रकार मगर बन गई। अब तुम से शाप मुक्त होकर जा रही हूँ। किन्तु जाने के पहले एक बात बताऊँगी। जिस मुनि के निर्देश से तुम यहाँ आये हो वह कपटी ऋषि है। वह राक्षस कालनेमि है और रावण से प्रेरित होकर तुमको पथ भ्रांत कर मुझसे मरवा डालने के लिए यहाँ मुनि बनकर बैठा है। उसका विश्वास नहीं करना। उसका वध कर शीघ्र अपने काम पर जाओ। यह सुनकर हनुमान उसके शाप की कथा पूछता है तो कहती है "मैं एक दिन इस सरोवर में जल-विहार करने आई तो यहाँ के शांडिल्य नामक एक तपस्वी ने मुझे देखा और मोहित हुए। मैंने उनको समझाया कि आप जैसे तपस्वी के लिए इस प्रकार काम के वश होना ठीक नहीं। किंतु वे नहीं माने। तब मैंने कहा कि अब मैं रजस्वला हूँ। अतः तीन दिन के बाद शुद्ध होकर आपकी इच्छा पूरी करूँगी। यह बात शांडिल्य ने मान ली। इतने में उस दिन रात को रावण अपने दलबल के साथ इस स्थान पर आया और मुझे देखकर काम शराहत हो गया। मैंने अपने रजस्वला होने की बात कही और उसे मना किया।

किंतु उसने इसकी परवाह न करके मीठी बातों से मुझे वश में कर लिया और अपनी इच्छा पूरी कर ली तो सद्योगर्भ से मैंने अतिकाय नामक पुत्र को जन्म दिया जिसे रावण अपने साथ ले गया। तीन दिनों के बाद मुनि के पास जब मैं गई तव उन्हें दिव्यदृष्टि से यह बात मालूम हो गई और उन्होंने मुझे यहाँ मगर बनकर रहने का शाप दिया। मेरे बहुत प्रार्थना करने पर उन्होंने कहा कि कुछ काल के बाद राम का कार्य करने के लिए हनुमान यहाँ आयेगा जिससे तुम को शाप से मुक्ति मिलेगी। उसके अनुसार मैंने तुम्हारे हाथों से मुक्ति पाई।" यह कहकर वह चली जाती है। इसके अनंतर हनुमान कालनेमि के पास लौट आता है और उसे घूँसा मारता है। तब वह पक्षी बनकर युद्ध करने लगता है तो हनुमान उसके पंख उखाड़ डालता है। तब वह सिंह बनकर हनुमान पर झपटता है और हनुमान फिर उसे भारी घूँसा मारता है। अब वह सुग्रीव बनकर आता है और कहने लगता है कि हनुमान ! अब लौट चलो। लक्ष्मण जी उठे ! द्रोण पर्वत पर जाने की आवश्यकता नहीं। हनुमान उसकी माया ताड़ जाता है और छाती पर घूँसा मारता है तो वह शतशृंगी बनकर पैने तीरों से हनुमान पर वार करने लगता है तो हनुमान उसे घूँसों और लातों से शक्ति हीन बनाकर अंत में उसका सिर मरोड़कर धड़ से अलग करके फेंक देता है और शीघ्र ही द्रोण पर्वत पर जा पहुँचता है। उसके समीप जाने पर वे औषधियाँ एक दम अदृश्य हो जाती हैं। उसके बाद हनुमान पर्वत से प्रार्थना करता है कि वह अपनी औषधियों को दिखा दे। तब भी औषधियां दिखाई नहीं पड़तीं। इस पर क्रोधित होकर हनुमान उस पर्वत को ही उठाकर उड़ने लगता है तो उसकी रखवाली करनेवाले गंधर्व उसे रोकते हैं। हनुमान उसका सामना करके उन्हें परास्त कर देता है और अंत में उनकी शुभकामना के साथ पर्वत को लेकर उड़ जाता है।

उस दिन रात भरत को एक बुरा स्वप्न दिखाई पड़ता है कि राम और अक्ष्मण सिर पर तेल लगाये, बहुत कमजोर और थके माँदे होकर दलदल में फँसे रो रहे हैं। भरत इससे उद्विग्न होते हैं और उसी समय जागकर ब्राह्मणों को बुलाकर शांति होम कराते हैं। इतने में हनुमान आकाश में उड़ते हुए नंदिग्राम के ऊपर से निकलता है और भरत को देखकर भ्रम में पड़ता है कि कहीं राम लक्ष्मण को मृत जानकर, लंका में सीता को छोड़कर तो नहीं आये हैं ! फिर थोड़ा और सोचकर निश्चय कर लेता है कि राम से ऐसा काम कभी नहीं हो सकेगा तथा अपनी गल्ती पर पश्चात्ताप करके आगे बढ़ने लगता है। इतने

में विविध औषधियों से भासमान द्रोणपर्वत से युक्त हनुमान को देखकर भरत उसे कोई दुष्ट ग्रह समझते हैं और उसे बाण से मार गिराने को उद्यत होते हैं। इतने में आकाशवाणी उन्हें सुनाई पड़ती है कि यह तुम्हारा हितू है, शत्रु नहीं यह सुनकर भरत उस प्रयत्न से विरत हो जाते हैं।

हनुमान सीधे आकर सागर के पास पहुँचता है जहाँ माल्यवंत रावण की प्रेरणा से विशाल सेना लेकर हनुमान का सामना करता है। हनुमान बड़ी वीरता से लड़ता है और अंत में उसे पकड़कर समुद्र में फेंक देता है। वहाँ से माल्यवंत पाताल पहुँच जाता है तो सारी राक्षस-सेना तितर-वितर हो जाती है और हनुमान द्रोण पर्वत को लेकर सागर पार कर जाता है। तब तक राम लक्ष्मण के लिए बहुत विलाप करते रहते हैं।

इतने में औषधियों के तेज से दीप्तमान हनुमान को आकाश में आते देखकर राम को भ्रम होता है कि सूर्य का उदय हो रहा है। यह देखकर राम को बड़ा क्रोध होता है कि अपने भाई के जीवित होने के पहले ही सूर्य उगने लगता है क्योंकि सूर्योदय के बाद लक्ष्मण जीवित नहीं हो सकते थे। तब वे धनुष लेकर सूर्य पर रौद्रास्त्र का प्रयोग करने को उद्यत होते हैं तो जांबवान कहता है कि आप शांत होइये। आपके क्रोधित होने से विश्व काँप उठता है। आप दुःखावेश के कारण यों भ्रम में पड़ गये हैं। यह हनुमान आ रहा है और साथ में द्रोण पर्वत ला रहा है जिसकी औषधियों का प्रयोग करके सुषेण लक्ष्मण की मूर्च्छा दूर कर देता है। (रं. रा. यु. पं. ६६०७-६९९७)।

इस संपूर्ण प्रसंग का वाल्मीकि रामायण के दाक्षिणात्य पाठ में अभाव है। उसके पश्चिमोत्तरीय और गौड़ीय पाठों में (इटली में प्रकाशित गौड़ीय पाठ) यह वृत्तांत मिलता हैं। (वा. रा. प. यु. ८१, ५०–१६२; गौ. ८२ वाँ सर्ग) आनंद रामायण में भी यह मिलता है। (आ.रा.सा.११-४५-७०) इटली की प्रति में (गौड़ीय पाठ) अप्सरा का नाम गंधकाली दिया गया है, पश्चिमोत्तरीय पाठ में विद्युन्माली दिया गया है और आनंद रामायण में धान्यमालिनी नाम दिया गया है। रंगनाथ रामायण में यही धान्यमालिनी नाम मिलता है। उसके शाप का कारण भी आनंद रामायण के अनुसार ही रंगनाथ में दिया गया है। किन्तु उसमें रावण की बात नहीं है। हनुमान और भरत के मिलाप की बात गौड़ीय पाठ और और आनंद रामायण में हैं। कालनेमि के वध के पहले ही दोनों का मिलन हो जाता है। रंगनाथ रामायण में आनंद रामायण के अनुसार

हनुमान के द्रोणपर्वत लाते समय दोनों का पारस्परिक दर्शन वर्णित है । अंत में हनुमान के राक्षणों के साथ युद्ध की बात वाल्मीकि रामायण के पश्चिमोत्तरीय पाठ में ही मिलती है, किंतु उसमें माल्यवंत का नाम नहीं है जो रंगनाथ रामायण में मिलता है । पश्चिमोत्तरीय पाठ की कुछ प्रतियों में इसका उल्लेख है कि हनुमान द्वारा समानीत द्रोण पर्वत के प्रकाशपुंज को देखकर दुखी राम उसे किसी राक्षस की माया समझते हैं और उसे मारने के लिए सन्नद्ध होते हैं ।

इति सेषां बृदाणां हनुमान समदृश्यत
+ × ×
अधावंतं प्रधावंति ह्यूर्ध्वपुच्छा स्ततस्ततः
मायावी राक्षसः कोयमस्मान् हंतुमुपागतः ॥
इति तं संभ्रमं दृष्ट्वा रामः सुग्रीव मब्रवीत् ।
वानराधिप मा मैषीरियं रक्षो विभीषिका
निर्भीर्भव महाबाहो निहंस्येनं पतित्रिभिः

(वा. रा. पु. यु. ८१ वें सर्ग के बाद)

रंगनाथ ने समयोचित ढंग से परिवर्तित कर उसे सूर्योदय कहा । इस प्रकार इन तीनों में पश्चिमोत्तरीय वाल्मीकि रामायण और आनंद रामायण का रंगनाथ रामायण पर विशेष प्रभाव दिखाई पड़ता है । रंगनाथ ने इन तीनों का समन्वय कर इस प्रसंग का अच्छा विकास किया है ।

२२. लक्ष्मण को जीवित देखकर रावण बड़ा निराश होता है और शुक्राचार्य के पास जाकर उनकी सलाह माँगता है । शुक्राचार्य रावण को एक होम की विधि बताकर निर्विघ्न रूप से उसको संपन्न करने की सलाह देता है । उसके अनुसार रावण विद्युज्जिह्व नामक राक्षस को लंका की सुरक्षा का भार सौंपकर स्वयं एक पाताल गुफा में जाता है और वहाँ बड़ी निष्ठा के साथ गुप्त रूप से यज्ञ करने लगता है । होम का धुआँ जब आकाश में फैलता है तब विभीषण उसे देखकर राम से कहता है कि शुक्र की अनुमति से रावण पाताल होम कर रहा है जिसके निर्विघ्न रूप से समाप्त होने पर रावण अजेय हो जायगा और इसलिए उसमें विघ्न डालना चाहिए । तब राम की अनुमति से वानर अंगद के नेतृत्व में गुफा के पास पहुँचकर वहाँ के राक्षसों की सेना को, घोड़ों, हाथियों और रथों को नष्ट करने लगते हैं । इतने में विभीषण की पत्नी सरमा इशारे से अंगद को रावण के होम करने का स्थान बताती है । अंगद वानरों को लेकर गुफा के द्वार पर रखी चट्टान को चूर-चूर करके

वहाँ पहुँचता है जहाँ रावण यज्ञ कर रहा था। रावण को यज्ञ करते देखकर वानर उसमें विघ्न डालने के लिए रक्त, माँस, आदि की वर्षा करने लगते हैं और भयंकर शोर मचाते हैं। तब भी रावण विचलित नहीं होता तो अंगद रावण को उत्तेजित करने के लिए उसके अंत:पुर में जाकर मंदोदरी को बाल पकड़कर रावण के पास खींच ले जाता है। अपने पति के सामने ही दूसरे के द्वारा अपमानित होने पर मंदोदरी को बहुत दुख और क्रोध होता है और अपने पति की भर्त्सना करते हुए वह कहती है कि "तुम्हारे सामने तुम्हारे दुश्मन मेरा ऐसा अपमान कर रहे हैं तो क्या तुम्हारा खून खौल नहीं उठता ? तुम्हारा पराक्रम कहाँ गया ? क्या तुम्हारे चंद्रहास की धार कुंठित हो गई है ? क्या आज मेरा पुत्र इंद्रजित जीवित रहता तो क्या मेरी ऐसी दशा होती ? जब मैं इस प्रकार तुम्हारी ही आँखों से सामने बाल पकड़कर खींच लाई गई तो तुम्हारा यज्ञ किसलिए है, तुम्हारी निष्ठा किसलिए है ? अब इन टेढ़ी चालों को छोड़कर राम की बाणाग्नि में भस्म हो जाओ।" ये बातें सुनकर रावण से रहा नहीं जाता और वह यज्ञ छोड़कर अंगद पर खड्ग का प्रहार करके मंदोदरी को छुड़ा लेता है तो वह लज्जा के साथ अंत: पुर में जाती है। उसके बाद थोड़ी देर तक रावण वानरों के साथ युद्ध करता है और चला जाता है। इस प्रकार उसका यज्ञ नष्ट किया जाता है। अंत:पुर में जाकर वह मंदोदरी से कहता है कि देवी ! इस दैवी प्रकोप के लिए इतना दु:ख क्यों ? आज मैं युद्ध में राम को मार डालूँगा। यदि उसके हाथ में मर जाऊँ तो तुम सीता को मारकर सती हो जाओ। तब मंदोदरी रावण को राम के ईश्वरत्व का बोध कराती है। उसके पूर्व के मत्स्य, कूर्म आदि भिन्न-भिन्न अवतारों का वर्णन करके उनके दुष्ट दलन के स्वभाव का परिचय देती है। अंत में कहती है कि ऐसे राम से आप जीत नहीं सकेंगे। इसलिए मैं उपदेश देती हूँ कि कम से कम अब भी सीता को राम को सौंप दीजिए और हम वानप्रस्थाश्रम ग्रहण करेंगे। मैं आपके साथ सती नहीं हो सकती क्योंकि मेरे पिताजी ने मुझे वर दिया था कि मुझ पर कभी बुढ़ापा या मृत्यु आक्रमण नहीं कर सकेगी। आप यदि युद्ध में मारे गये तो मुझे या तो सरमा (विभीषण की पत्नी) या सीता की दासी बनना पड़ेगा जो मेरे लिए बड़ा कठिन होगा।" तब रावण कहता है कि देवी ! इतनी चिंता क्यों ? जब भाई-बंधु, पुत्र, भृत्य आदि सब युद्ध में मारे गये तब अकेले बचकर मैं क्या करूँगा ? मैंने अपने जीवन में बहुत पाप किए थे। कितने ही तपस्वियों को मार डाला ! कितनी

ही पतिव्रता स्त्रियों का मान भंग किया। अब मैं तपस्वी बनूं तो ऋषि मुनि लोग क्या मेरा उपहास नहीं करेंगे ? अब तो युद्ध ही मेरे लिए एकमात्र मार्ग है। या तो राम को मारूँगा या स्वयं उनके बाण से मरकर बैकुंठ प्राप्त कर लूँगा। मेरी मृत्यु के बाद तुम सूर्यरहित कमल, शशि विहीन कुमुदिनी, चंद्रमा विहीन रात, सारिका रहित पिंजड़े, कोयल से शून्य आम्रवृक्ष और सूर्य विहीन दिन के समान रहो।" यह कहकर रावण युद्ध में चला जाता है। (रं० रा० यु० पं० ७०७४-७२८५)।

इस प्रसंग का वर्णन वाल्मीकि रामायण के पश्चिमोत्तरीय पाठ में और अध्यात्म तथा आनंद रामायणों में मिलता है (वा. रा. प. यु. ८२; रा. यु. १०; आ. रा. सा. ११.२३०-२४५)। इसमें कुछ पंक्तियाँ ऐसी हैं जो अ. रा. का अनुवाद सी लगती है:—

दैवाधीनमिदं भद्रे जीवता किं न दृश्यते। (अ. रा. यु. १०-३६)

... ...

तदा त्वया मे कर्तव्या क्रिया मच्छासनात्प्रिये।
सीतां हत्वा मया सार्धं त्वं प्रवेक्ष्यसि पावकम्॥ १०-४३

इस प्रसंग की प्रायः सब प्रधान बातें अध्यात्म रामायण में मिलती हैं। यह संपूर्ण प्रसंग रंगनाथ ने अध्यात्म रामायण से ही लिया है।

२३. रंगनाथ रामायण में राम रावण का वध करने के पहले भी अपनी उदारता दिखाते हुए उससे कहते हैं कि अब एक और बात सुनो। शंका मत करो। सीता को सौंपकर मेरी शरण में आ जाओ तो तुम्हारी रक्षा करूँगा। युद्ध में तुम जीत नहीं सकोगे।" वाल्मीकि रामायण में यह बात नहीं है। यह रंगनाथ की मौलिक उद्भावना है जो राम के चरित्र को इतोऽधिक उज्ज्वल बनाती है। (रं. रा. यु. पं. ७५७५-७५९०)

२४. राम कितनी ही बार रावण के सिरों को काट डालते हैं किंतु उनके स्थान में बराबर नये सिर उदित होते ही जाते हैं। तब रंगनाथ रामायण में विभीषण राम से कहता है कि रावण की नाभि में कुंडलाकार में अमृत है। जब तक वह वहाँ रहता है तब तक इसके सिर इसी प्रकार उगते रहेंगे। अतः आप पहले नाभि पर आग्नेयास्त्र का प्रयोग करके उस अमृत को सोख डालिये। तब भी एक सौ नौ वार उसके हाथ और सिर आपको काटने पड़ेंगे जिसके बाद ही वह मरेगा।" यह सुनकर जब राम ऐसा ही करते हैं तब

अंत में रावण के एक ही सिर और दो ही हाथ रह जाते हैं। तब रावण सोचता है कि मेरी मृत्यु के रहस्य को, जो और कोई नहीं जानता, विभीषण ने ही राम को बता दिया।" यह सोचकर वह विभीषण पर भयंकर शक्ति को भेजता है जिसे राम बीच में ही काट डालते हैं। इसके बाद मातली की सलाह से राम ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करके रावण का वध कर डालते हैं। (रं. रा. यु. पं. ७७४०-७८१२) इसमें अमृत की बात वाल्मीकि रामायण में नहीं है और रंगनाथ ने आनंद रामायण से लिया होगा जिसके प्रथम कांड के ग्यारहवें सर्ग में इसका उल्लेख किया गया है। अध्यात्म रामायण में भी इसका उल्लेख है (अ. रा. यु. ११-५३)

२५. रावण वध के अनंतर राम पुष्पक विमान पर चढ़कर सीता और लक्ष्मण के साथ अयोध्या लौट रहे थे तब विभीषण राम से कहता है कि इस विमान पर कितने भी लोग चढ़ें, फिर भी थोड़ी सी जगह बची ही रहती है। यह सुनकर राम बानरों और असुरों को भी विमान पर चढ़ने की अनुमति देते हैं और सबको साथ लेकर अयोध्या के लिए निकल पड़ते हैं। हिरण्य नाम पर्वत तक आते-आते राम को रावण का भयंकर रूप दिखाई दिया तो राम संभ्रम में पड़कर विभीषण से पूछते हैं कि मैंने अपनी अनुपम वीरता से रावण का वध किया तो भी रावण अब मेरे सामने जैसे दिखाई पड़ रहा है ? यह कैसी विचित्र बात है ? तब विभीषण कहता है कि "हे देव ! ब्रह्म वंश के रावण को मार डालने के कारण आपको उसकी हत्या का दोष लगा है। उसका प्रायश्चित्त यहीं कर लेना चाहिए। अन्यथा आगे के कार्य ठीक नहीं होंगे। आप ब्रह्मा का स्मरण कीजिए तो वे आकर आपको सब बता देंगे। यह सुनकर राम पुष्पक विमान को नीचे उतरवाकर ब्रह्मा का स्मरण करते हैं और जब वे आकर कारण पूछते हैं तो राम सब वृत्तांत कहते हैं। तब ब्रह्मा उनसे कहते हैं कि "ब्राह्मण कितना भी दुराचारी व पापी क्यों न हो, अवध्य है। राजा को चाहिए कि उसे देश निकाला दे। आपने उसको मार डाला जिसका जन्म मेरे तेज से हुआ। जीवन भर पापी रहकर भी वह पाप रहित होकर मरा। इसलिए मोक्षार्थी होकर आपके सम्मुख आया अब आप अपने नाम पर शिव की यहाँ स्थापना कीजिए। अभी थोड़ी देर में अच्छा मुहूर्त है।" तब राम हनुमान को काशी भेजते हैं कि एक शिवलिंग दो घड़ियों के अंदर ले आये। हनुमान शिवलिंग लाने चला जाता है। किंतु उसके लौटने में विलंब होता है। तब राम विचार करके बालू का एक शिवलिंग बनाकर स्थापित

करते हैं कि मुहूर्त न निकल जाये। सीता बालू से नंदी की मूर्ति बनाती हैं। इतने में हनुमान शिव लिंग ले आता है और राम को शिव लिंग स्थापित करके पूजा करते देख बड़ा दुखी होता है और विनीत शब्दों में राम के सामने अपना दुख प्रकट करता है। तब राम मुस्कुराते हुए कहते हैं कि "मैंने लिंग की स्थापना इसलिए की कि मुहूर्त कहीं निकल न जाय। अब भी कोई बात नहीं, उस बालू के लिंग को हटा दो तो हम तुम्हारे लाए हुए लिंग की स्थापना करें। यह सुनकर हनुमान लिंग को अपनी पूंछ में लपेटकर अपनी पूरी शक्ति लगाकर उखाड़ने का प्रयत्न करता है, तो भी असफल हो जाता है। तब राम की महिमा समझकर अपनी गलती स्वीकार करके उनसे क्षमा याचना करता है। राम उसे क्षमा करते हुए कहते हैं कि "तुम दुख मत करो। तुम भी अपने लाए लिंग की स्थापना करो। लोग तुम्हारे स्थापित शिवलिंग की पूजा करके बाद में मेरे स्थापित लिंग की पूजा करेंगे। काशी की गंगा के जल से तुम्हारे स्थापित शिवलिंग का अभिषेक करें तो ब्रह्म हत्या आदि पापों से मुक्त हो जायेंगे और सब प्रकार की उन्नति प्राप्त करेंगे।" तब हनुमान ऐसा ही करके हर्षित होता है। इसके बाद विभीषण राम से प्रार्थना करता है कि "आप ऐसा उपाय कीजिये कि इस पुल के रास्ते से कोई भी लंका में न जा सके।" तब राम पुल के बीच में खड़े होकर लक्ष्मण से धनुष लेकर उसकी नोक से पुल को काट देते हैं और कहते हैं कि "पर-स्त्री गमन, ब्रह्म हत्या, गुरुजनों का द्रोह, गोवध, सहोदरी रति, मद्यपान, स्त्री हत्या, वेदों का दूषण, पराधनापहरण, गृह-दाह, चोरों का संग, माँस भक्षण, आदि भयंकर पाप करके भी जो कोई यहाँ आकर समुद्र में स्नान करे तो उसके वे सब पाप नष्ट हो जायँ और वह पवित्र होकर सब प्रकार के सुखों को प्राप्त करे। इसके बाद पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर अयोध्या की ओर चले जाते हैं। (रं. रा. यु. पं. ८२८५-८४२८)

शिवलिंग की प्रतिष्ठा का यह प्रसंग प्रचलित वाल्मीकि रामायण में नहीं है। नृसिंह पुराण के ५१ वें अध्याय, कर्मपुराण के २१ वें अध्याय, सौर पुराण के ३० वें अध्याय और पद्मपुराण के पाताल खंड के ११२, २२२ वें अध्यायों में रावण वध के पश्चात् राम के द्वारा शिवलिंग की प्रतिष्ठा का उल्लेख है। स्कन्द पुराणांतर्गत सेतुमहात्म्य में भी यह कथा पाई जाती है। (ब्राह्म खंड ४५ अध्याय) इसी की कथा रंगनाथ रामायण की कथा से बहुत मिलती है। अंतर इतना ही है कि स्कंद पुराण में राम स्वयं मुनियों से रावण वध के प्रायश्चित के बारे में पूछते हैं और शिव लिंग के लिए हनुमान कैलास जाकर वहाँ तपस्या

करता है । रंगनाथ रामायण में, जैसाकि ऊपर दिखाया गया है, विभीषण और ब्रह्मा के द्वारा रावण वध के प्रायश्चित्त की बात कही जाती है और हनुमान कैलास न जाकर काशी जाता है ।

२६. राम राज्याभिषेक के बाद सब मित्रों को प्रीतिभोज देते हैं । उसमें जब सबके सामने सोने के थालों में अनेक प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन परोसे गये तब राम हनुमान से भोजन शुरू करने को कहकर उसके थाल से एक कौर निकाल कर स्वयं खा लेते हैं । यह देखकर हनुमान बड़ा आनंदित होता है और उस थाल को अपने सिर पर रखकर नाचते कूदते अन्य वानरों को बुलाकर कहता हैं कि "आओ, हमें राम का प्रसाद मिल गया, खूब खा लें ।" इसके बाद सब वानर एक अगस्त्य वृक्ष पर चढ़कर बड़े संतोष के साथ उसके पत्तों में प्रसाद रखकर खाते हैं । तभी से लेकर एकादशी के दिन प्रसाद भक्षण के लिए अगस्त्य वृक्ष का पत्ता बड़ा मुख्य माना जाने लगा । (रं. रा. यु. पं० ८८०५-८८२०) यह प्रसंग भी वाल्मीकि रामायण में नहीं है । यह प्रसंग संक्षिप्त रूप में आनंद रामायण में मिलता है जिसके आधार पर रंगनाथ ने अपनी रामायण में इसको विकसित किया है (आ. रा. सा. १२-५२-६५) ।

(२७) राज्याभिषेक के बाद राम जब राजसभा में बैठे रहते हैं तब अचानक लक्ष्मण हँस पड़ते हैं यह देखकर सभा में उपस्थित सब लोग अपने-अपने मन में सोचते हैं कि हमारे किसी अपराध या कलंक पर लक्ष्मण हँसे होंगे । तब राम किंचित् क्रोध के साथ लक्ष्मण से उसका कारण पूछते हैं तो वे कहते हैं कि "बनबास को जाते समय मैंने निद्रा देवी को चौदह साल तक अपने पास आने से मना कर दिया था । अब जब चौदह वर्ष पूरे हो गये हैं तो तुरंत वह मेरे पास आ गई जिससे मेरी आँखें झपकने लगीं । यही देखकर मुझे हँसी आ गई है । (रं० रा० यु० पं० ८८२५—८८३८) । यह प्रसंग भी वाल्मीकि रामायण में नही है और रंगनाथ की उद्भावना है । आगेचलकर इसके आधार पर "लक्ष्मण देव की हँसी" नामक लोकगीत की रचना हुई जो स्त्रियों के द्वारा मनोहर ढंग से गाया जाता है ।

इस कांड की शेष कथा प्रायः वाल्मीकि के अनुसार ही है यद्यपि कुछ छोटे-मोटे परिवर्तन और परिवर्द्धन भी मिलते हैं ।

रंगनाथ रामायण (उत्तरकांड)—

इसके कर्तृत्व के सम्बन्ध में भी वही विवाद है जो रंगनाथ रामायण

के कर्तृत्व के विषय में हैं जिसका उल्लेख पांचवें अध्याय में किया गया है। इस सम्बन्ध में "आँध्र वाङ्मय चरित्र सर्वस्व" के अनुसार रंगनाथ को ही उसका भी रचयिता मानकर[1] इसके कथानक पर विचार किया जाता है। यह अलग पुस्तक के रूप में है।

पूर्व रामायण के समान इसमें भी कई वाल्मीकीय प्रसंग मिलते हैं जिनमें कुछ प्रमुख प्रसंग ये हैं—

(१) अपने पिता की भेजी हुई कैकेसी पुत्र प्राप्ति की इच्छा से जब विश्रवसु के पास रहने लगती है तब उसकी प्रार्थना स्वीकार करके भी विश्रवसु अचल रहता है। उसके आश्रम के समीप एक छोंकर (शमी) के पेड़ पर एक पक्षि-मिथुन रहता था। मादा पक्षी अंडे सेती थी और पक्षी उसे तरह तरह के फल प्रतिदिन लाकर देता था एक दिन नर पक्षी जब बाहर जाता है तब एक सुन्दर सरोवर और उसमें विकसित कमलों को देखता है। वह उनके सौरभ से आकृष्ट होकर उसका सेवन कर मस्त हो जाता है। जब कमल मुंद जाता है तो उस दिन रात भर वह उसी में रहता है और सुबह जब पुन: कमल विकसित होता है तो उससे बाहर निकलकर फल आदि लेकर अपनी प्रेयसी के पास जाता है। तब उसकी पत्नी उसे देखकर मान करती है और कहती है कि "तुम उसी प्रियतमा के पास जाओ जिसके यहाँ सारी रात बिता आये।" तब पक्षी अनेक प्रमाण देकर अपनी निर्दोषिता सिद्ध करते हुए कहता है कि पृथ्वी, वेद, तारे आदि को साक्षी देकर मैं कहता हूँ कि मैंने किसी अन्य स्त्री का स्पर्श तक नहीं किया। वह रात को घर न लौटने का कारण सच-सच बता देता है। अंत में कहता है कि यदि तुम नहीं मानोगी तो मैं इस पापी विश्रवसु के पाप का भाजन बन जाऊँगा। तब वह पूछती है कि "विश्रवसु ने क्या पाप किया है?" इसके उत्तर में वह कहता है कि "ऋतुव्रती स्त्री की इच्छा की पूर्ति न करना महापाप है और विश्रवसु ने वही पाप किया। क्योंकि उसने अपने आश्रम में रहनेवाली ऋतुमती कन्या की इच्छा की पूर्ति नहीं की और उसकी दस ऋतुएँ बीत गई। विश्रवसु ये सब बातें सुन लेता है और अपना पाप समझकर कैकशी के साथ रमण करता है। रमण करते समय उसने अपने मन में उसकी दस ऋतुओं का ध्यान किया तो कुछ समय के बाद कैकशी के गर्भ से क्रमशः रावण (दश सिर) कुंभकर्ण, शूर्पणखा और विभीषण का जन्म

१. श्री शि. रामकृष्ण शास्त्री—आँध्र वाङ्मय चरित्र सर्वस्व—पृ. ५६८

होता है। उसकी बहन पुष्पोत्कटा से विश्रवसु खर और दूषण को पैदा करता है। इसमें पक्षियों की कथा वा. रा. में नहीं है। इसके द्वारा रावण के दस सिर होने का एक कारण भी मिलता है। (रं. रा. उ. पृ. १८-२०)[1]

(२) रावण के तप से प्रसन्न होकर ब्रह्मा जब उसे वर देने के लिए आते हैं तब रावण प्रार्थना करता है कि हे देव ! आप मुझे ऐसे वर दीजिए कि मेरे सिर यदि कट जाएँ तो फिर पैदा हों और तीनों लोकों की विजय प्राप्त कर सकूं।" तब ब्रह्मा कहते हैं कि तुम्हारी नाभि में कुंडलाकार में अदृश्य रूप से अमृत होगा जिसके प्रभाव से कटे हुए तुम्हारे सिर फिर पैदा होंगे। तुम यत्नपूर्वक इसकी रक्षा करना। रावण को यह वर देते ही उसके सिर जो पहले होम कर दिए गए थे पैदा हो जाते हैं और ब्रह्मा विभीषण को वर देने जाते हैं। विभीषण से रावण के वरों की बात कह देते हैं और उसको भी अभीष्ट वर देते हैं। (रं. रा. उ. पृ. २३)। इसमें ब्रह्मा से रावण के उपरोक्त वर माँगने की बात रंगनाथ की उद्भावना मालूम होती है जो अध्यात्म और आनंद रामायणों के राम-रावण-युद्ध के प्रसंग में उल्लिखित नाभिदेशस्थित अमृत की बात के आधार पर की गई होगी।

(३) इसमें मंदोदरी का जन्म वृत्तांत जो मिलता है वह वा. रा. में नहीं है। मंदोदरी के पिता मय से वन में एक बार रावण की भेंट होती है। मय अपनी सब बातें रावण से कहता है और मंदोदरी के जन्म के बारे में भी कहता है। वह कहता है कि "जब अपनी अप्सरा पत्नी हेमा से मेरा वियोग चौदह वर्ष तक हो गया तब मैंने भगवान शिव की संतान प्राप्ति की इच्छा से तपस्या की तो शिव ने मुझे मंदोदरी नामक कन्या दी।" यह सुनकर रावण पूछता है कि "शिव ने तुम को यह कन्या, जो इस समय तुम्हारे साथ है, क्योंकर दी ?" तब मय ने उसके जन्म की बात कही कि "पार्वती ने एक दिन अभ्यंग स्नान करते समय शरीर से निकली मिट्टी मे एक सुन्दर पुतली बनायी थी और शंकर से प्रार्थना की थी कि इसे जीवन दें। शिव ने उसकी प्रार्थना के अनुसार उसे जीवन देकर मंदोदरी नाम दिया और उसकी सुन्दरता देखकर स्वयं मोहित होकर उससे क्रीड़ा करने लगे। तो वह गर्भवती हो जाती है। यह देखकर पार्वती ने शिव को उसके अनौचित्य का बोध कराकर कहा था कि यदि यह कन्या इस रूप को लेकर आपके सामने रहे तो आप इसे नहीं छोड़ सकेंगे, अतः आप इसे मंडूक बना दीजिए। शिव ने ऐसा ही किया था।

---

१. श्री चे. लच्चाराव द्वारा संपादित सन् १९२०

जब पार्वती ने पूछा था कि यह अपने सुन्दर रूप को कब प्राप्त करेगी तब उन्होंने कहा था कि पृथ्वी में सत्यर्षि मय संतान की इच्छा से मेरी तपस्या करेगा तब मैं इसे उसको कन्या के रूप में मैं दे दूँगा। तब वह पुनः सुन्दरी बन जायगी और जब रावण के साथ उसका विवाह होगा तब उसके गर्भ से ऐसे वीर बालक का जन्म होगा जो रघुकुल भूषण राम के छोटे भाई के हाथों वीर गति को प्राप्त होगा। मंदोदरी का यह वृत्तांत बताकर मय उसका विवाह रावण के साथ कर देता है। वा. रा. में मंदोदरी हेमा की पुत्री कही गयी है। (वा. रा. उ. १२-६-१०)।

(४) इसमें रावण की पाताल में रहनेवाले बलि पर चढ़ाई, सूर्य के साथ युद्ध, चंद्रमंडल पर आक्रमण, मांधाता के साथ युद्ध आदि का वर्णन किया गया है। वाल्मीकि रामायण के पश्चिमोत्तरीय पाठ में पाताल विजय (उ. २६) मांधाता से युद्ध (उ. २८) के प्रसंग मिलते हैं। चंद्र मंडल पर आक्रमण और सूर्य के साथ युद्धवाले प्रसंग वाल्मीकि रामायण के प्रक्षिप्तांशों के रूप में हैं।

(५) इसमें वाली और सुग्रीव के जन्म की कथा है जो वाल्मीकि रामायण में नहीं है। इंद्र को रावण के हाथों से छुडा कर ब्रह्मा इंद्र से कहते हैं कि "तुमने जो पाप किया उसका फल रावण के हाथों बंधित होकर पाया है।" इंद्र के पाप की कथा इस प्रकार है:—

ब्रह्मा एक बार अनुपम सुन्दरी अहल्या की सृष्टि करते हैं और सोचते हैं कि यह किसको दी जाय। उसकी सुन्दरता से मोहित होकर इंद्र ब्रह्मा से अहल्या को माँगता है। किंतु ब्रह्मा उसे न देकर अहल्या को ऋषि गौतम के पास भेजते हैं। अनेक वर्षों तक रहने पर भी गौतम का मन अडिग देखकर ब्रह्मा अहल्या का विवाह उसके साथ कर देते हैं। तब इंद्र एक बार गौतम की अनुपस्थिति में अहल्या से रमण करता है। गौतम इंद्र के लौट जाने के समय आ जाता है और उसकी करतूत जानकर शाप देता है कि तुम्हारे शरीर में हजार योनियाँ हो जायँ। देवताओं के प्रार्थना करने पर फिर कहता है कि अन्य लोगों को वे योनिशाँ आँखों के रूप में दिखाई पड़ेंगी। वाल्मीकि रामायण में उत्तर कांड में भी यह प्रसंग आता है। किंतु वहाँ गौतम यह शाप देता है कि इन्द्र अपने पाप के फलस्वरूप शत्रु के हाथों में बंदी हो जायगा। (वा. उ. ३०–१८–३२) किंतु यह कथा बाल कांड वाली कथा से थोड़ी भिन्न है। आगे रंगनाथ रामायण के उत्तर कांड में गौतम क्रोधित होकर जब अहल्या को शाप देना चाहता है

तब ब्रह्मा आकर गौतम को शांत करता है और अहल्या को क्षमा करवाता है। तब अहल्या के गर्भ से कुछ दिन के बाद इन्द्र के समान विक्रमी पुत्र का जन्म होता है। फिर गौतम के द्वारा उसके गर्भ से एक कन्या "अंजना" पैदा होती है। उसके बाद एक दिन अहल्या का सौन्दर्य देखकर सूर्य मोहित होता है और पृथ्वी पर आकर उससे रमण करता है। यह जानकर गौतम उसे शाप देता है कि अमृत के कारण राहु के साथ तुम्हारी शत्रुता होगी और वह तुमको निगल जायगा। फिर सूर्य के प्रार्थना करने पर कहता है कि कभी कभी वह तुमको निगलकर छोड़ देगा और यही क्रम सदा चलेगा। इसके बाद सूर्य चला जाता है और कुछ समयोपरांत अहल्या के एक पुत्र होता है। गौतम इन्द्र से उत्पन्न पुत्र को वाली, और सूर्य से उत्पन्न पुत्र को सुग्रीव नाम देता है। इसके कुछ दिन बाद इन्द्र फिर से अहल्या से रमण करने की इच्छा से मुर्गा बनकर गौतम के आश्रम में आता और आधी रात के समय बाँग देता है। उसकी बाँग सुनकर गौतम समझता है कि ब्राह्म मुहुर्त का समय आ गया है और शय्या से उठ कर स्नान संध्या आदि के लिए नदी पर जाता है। उसके जाने के बाद इंद्र उसी मुनि का वेष धारण कर अपनी वासना को पूरा कर लेता है। अंजना यह देखती है और इन्द्र के लौट जाने के समय गौतम जब आ जाता है उससे सब कह देती है। इस पर क्रुद्ध होकर गौतम उसे शाप देता है कि तुम्हारे अंडकोष कट जायँगे और तुम मेषांड बन जाओगे तथा युद्ध में शत्रु के हाथ बंदी हो जाओगे। इसी समय अहल्या को भी शाप देता है कि तुम शिला का वेष धारण कर पड़ी रहो। इस पर अहल्या प्रार्थनापूर्वक कहती है कि "इसमें मेरा कोई दोष नहीं; क्योंकि वह आपका वेष धारण करके आया था और मैं वास्तविकता नहीं जानती थी, इसलिए इस अज्ञानजन्य अपराध को क्षमा कीजिए।" तब गौतम सोचकर कहता है "ठीक है। तुम शिला के रूप में तब तक पड़ी रहो जब तक विष्णु राम का अवतार लेकर तुमको अपने चरणों से स्पर्श न करें।" उसी समय अहल्या के इंद्र से रमण के कारण एक और पुत्र होता है जिसका नाम शतानंद रखा जाता है। अहल्या के प्रार्थना करने पर गौतम उसे पालना स्वीकार करता है और वाली और सुग्रीव को शाप देता है कि "अगले जन्म में ये बंदर बन जायेंगे, किंतु बड़े विक्रमी होंगे।" यह शाप देकर गौतम के बाहर जाने के बाद वाली अंजना पर क्रोधित होता है कि तुम्हारे ही कारण हमें यह शाप मिला है और इसलिए तुम भी किसी वानर की पत्नी बनोगी और वानर ही तुम्हारा पुत्र होगा। सुग्रीव इससे दुखी होकर बहन से कहता है कि "तुम चिंता न करना,

तुम्हारा पुत्र मेरे पास रहेगा।" इससे अंजना आश्वस्त होती है। इसके बाद गौतम अंजना को लेकर मेरु पर्वत के पास जाता है जहाँ केशरी नामक बलवान वानर के साथ अंजना का व्याह कर देता है। ये सब बातें कहकर ब्रह्मा इंद्र को उस पाप से बचने के लिए वैष्णव याग करने का परामर्श देता है। (रं. रा. उ. पृ. ८०–८५) इस प्रसंग में लोककथाओं का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

६. आगे चलकर वाली और सुग्रीव के जन्म की एक और कथा मिलती है जो पहले की कथा का पूरक मानी जा सकती है। एक समय जब ब्रह्मा मेरु पर्वत पर योगाभ्यास कर रहे थे तो उनकी आँखों से पानी बहने लगा। ब्रह्मा उसे हाथ से पृथ्वी पर छोड़ देते हैं तो उसके तेज से ऋक्षविरज नामक वानर का जन्म होता है जो ब्रह्मा की आज्ञा से वहाँ कंद-मूल का भोजन करते हुए रहने लगता है। एक दिन घूमते-घूमते वह एक सुन्दर तालाब देखकर उसके पास पानी पीने के लिए जाता है और पानी में अपनी छाया देखता है और उसे दूसरा वानर समझकर उससे लड़ने के लिए पानी में डूबता है, किंतु असफल होकर जब वह बाहर आता है तब अपने को सुन्दर वानरी के रूप में परिवर्तित देखता है। वहाँ आये हुए इंद्र और सूर्य उसका सौंदर्य देखकर मोहित हो जाते हैं और उसके साथ रमण की इच्छा करते हैं। किंतु रमण करने के पहले ही उनका वीर्य स्खलित होता है। इंद्र का वीर्य उस बानरी के सिर पर गिर कर उसकी पूँछ तक (वाल) बहता है तो वहाँ एक वानर पुत्र उत्पन्न होता है जो वाली कहलाता है और सूर्य का वीर्य उसकी ग्रीवा पर गिरता है जहाँ से एक और वानर पुत्र का जन्म होता है जो सुग्रीव कहलाता है। उसके बाद इंद्र अपने पुत्र को एक सोने का हार देता है और सूर्य अपने पुत्र से कहता है कि तुम हनुमान को अपने साथ रखकर सुख प्राप्त करोगे। यह कहकर वे चले जाते हैं। उसके अनंतर वह वानरी अपने असली रूप पुरुष का (ऋक्षविरज) प्राप्त कर लेती है। तब अपने दोनों पुत्रों को लेकर वह ब्रह्मा के पास जाता है। ब्रह्मा उसके लिए विश्व कर्मा से एक सुन्दर नगर का निर्माण करवाता है जो किष्किधा कहलाया। ऋक्षविरज कुछ दिन तक उसका शासन करने के बाद वाली का राज्याभिषेक करता है। यह कथा अध्यात्म रामायण में इसी रूप में मिलती है। अंत में अध्यात्म रामायण के समान यह बताया जाता है कि इसको पढ़ने वाला पापों से छूट जायगा। (अ. रा. उ. ३) (१–२४)। वाल्मीकि रामायण के पश्चिमोत्तरीय पाठ की कुछ प्रतियों में भी यह कथा पायी जाती है। (वा. रा. प. अधिक पाठ ३८ सर्ग)।

७. एक दिन रावण ब्रह्मा के पुत्र सनत्कुमार के पास जाता है और पूछता है कि "देवताओं से बढ़कर कौन है ? देवता लोग किसकी शक्ति से शत्रुओं को जीतते हैं ? सब ब्राह्मण किसका यजन करते हैं ? योगी किसका ध्यान करते हैं ? इसके उत्तर में सनत्कुमार कहते हैं कि जिसकी उत्पत्ति ब्रह्मादि देवता भी नहीं जान सकते, जो सब लोकों का पालन करता है, सुर और असुर सदा जिसके सम्मुख विनत होते हैं, जिसकी नाभि से ब्रह्मा का जन्म हुआ, जिसकी शक्ति से ब्रह्मा विश्व की सृष्टि करता है, उस नारायण विष्णु को बुद्धि गम्य बनाना किसी के वश की बात नहीं। उसका वर्णन पंचरात्र आदि आगमों, पुराणों, वेदों और शास्त्रों किया गया है। वह अपने हाथों में खड्ग, गदा आदि धारण कर शत्रुओं का संहार करता है। यह सुनकर रावण इच्छा करता है कि मैं उस विष्णु के हाथों मारा जाऊँ। उसकी यह इच्छा जानकर सनत्कुमार कहते हैं कि तुम युद्ध में उनसे अवश्य मारे जाओगे। बाद में उस परब्रह्म का वर्णन किया जाता है जो निर्विकार और साकार है तथा सर्वत्र व्याप्त है और विश्व के रूप में ही प्रत्यक्ष होता है। भगवान का ऐसा वर्णन करके ऋषि कहते हैं कि तुम उस जगन्नाथ को तमोगुण के द्वारा प्राप्त करना चाहते हो तो वे भगवान त्रेतायुग में राम के रूप में अवतार लेकर पृथ्वी पर विचरेंगे। तब तुम शत्रुता से उनको प्राप्त कर सकते हो। यह कहकर अगस्त्य राम से कहते हैं कि आपसे शत्रुता मोल लेने के लिए ही रावण ने सीता का हरण किया।

यह प्रसंग अध्यात्म रामायण में पाया जाता है (अ. रा. उ. ३-१५-६०) यह उसका अनुवाद-सा ही प्रतीत होता है। यह कथा वा. रा. पश्चिमोत्तरीय पाठ में भी मिलती है। (वा. रा. प. अधिक पाठ सर्ग ४० ।)

(८) नारद से प्रेरित होकर रावण श्वेत द्वीप पर आक्रमण करता है जहाँ की स्त्रियाँ उसे किसी कीड़े के समान उठाकर फेंक देती हैं। यह प्रसंग वाल्मीकि रामायण के पश्चिमोत्तरीय पाठ की कुछ प्रतियों में मिलता है। (वा. रा. प. अधिक पाठ ४२) ।

(९) सीता और राम का जीवन जब सुख से बीत रहा था तब एक दिन कोई राक्षसी ईर्ष्यावश सीता से कहती है कि अगस्त्य ऋषि ने राम को रति से भी बढ़कर सुंदरी दो स्त्रियाँ दीं जो राम के पास बाण के आकार रहती हैं, पता नहीं तुम जानती हो या नहीं। ये बातें सुनकर सीता के मन में संदेह होता है। वे एक दिन राम से एकांत में कहती हैं कि "आप

एकपत्नीव्रत के रूप में प्रसिद्ध हैं किंतु मैंने सुना है कि आपके पास दो सुंदरी स्त्रियाँ प्रच्छन्न रूप से रहती हैं।" यह सुनकर राम कहते हैं कि "सच्ची बात तो यह है कि अगस्त्य ने एक धनुष और दो बाण देकर कहा कि ये बाण आपके सब काम संपन्न करके आपके और सीता के पुत्रों के रूप में जन्म लेंगे। तबसे ये बाण मेरे पास हैं। और कोई बात नहीं।" तब सीता के पूछने पर राम उन बाणों को स्त्री रूप में परिणत करके दिखाते हैं जो राम को नमस्कार करके तुरंत अपने असली रूप में बदलकर राम की तरकस में जा बैठते हैं। उन सुंदरियों को देखकर सीता को क्रोध आता है और एक दिन राम की अनुपस्थिति में उन बाणों से फाल निकालकर दंडों को यथा - स्थान रख देती है। बाद में उन फालों का चूर्ण बनाकर पानी में घोलकर पी जाती है तो गर्भवती हो जाती है।

(१०) गीध और उल्लू की कथा:—जब राम अगस्त्य का यज्ञ देखने के लिए जा रहे थे तो मार्ग में एक वन में एक गीध और उल्लू अपने निवास स्थान वृक्ष के संबंध में अपना विवाद सुनाकर न्याय माँगते हैं। पूछे जाने पर गीध कहता है कि "मैंने उस समय अपना यह गृह बनाया था, जब पृथ्वी में प्रजापति का जन्म हुआ था।" उल्लू कहता है कि "मैं तब से लेकर इस वृक्ष को अपना घर बनाकर रहता हूँ जबसे वृक्षों की सृष्टि होने लगी थी।" अपने मंत्रियों की सलाह से राम निर्णय करते हैं कि "यह घर उल्लू का होना चाहिए क्योंकि वह गीध के पहले से ही उस पर रहने लगा।" उल्लू को कष्ट देने के कारण गीध को दंड मिलना चाहिए।" तब अशरीर वाणी होती है कि हे "राजन ! आप क्रोध मत कीजिए। यह गीध वास्तव में ब्रह्मदत्त नामक राजा था जो गौतम के शाप से गीध बन गया था। शाप का कारण यह था कि ब्रह्मदत्त ने गौतम को जो भोजन दिया था उसमें अनजान में एक माँस खंड आ गया था जिसे देखकर गौतम ने राजा को गीध बनने का शाप दिया। जब ब्रह्मदत्त ने अपने अज्ञान जनित अपराध के लिए क्षमा माँगी तो गौतम ने कहा कि भविष्य में राम के कर स्पर्श से तुम शाप मुक्त हो जाओगे। इसलिए आप इसको स्पर्श कीजिए।" यह सुनकर राम उस पर अपने हाथ फेरते हैं और वह राजा बन जाता है। पद्मपुराण के सृष्टि खंड के ३४वें अध्याय में यह कथा वर्णित है। वाल्मीकि रामायण के पश्चिमोत्तरीय पाठ में भी यह वृत्तांत मिलता है। (वा. रा. प. उ. ६३)

शेष उत्तर कांड की कथा प्रायः वाल्मीकि रामायण के अनुसार ही है।

ऊपर के कथा-परिचय से यह स्पष्ट होता है कि उत्तर कांड की रचना में कवि ने यद्यपि अधिकांशतः वाल्मीकि रामायण का अनुसरण किया किंतु अध्यात्म रामायण आदि अन्य ग्रंथों और लोक कथाओं का भी प्रभाव स्वीकार किया।

रंगनाथ रामायण की कथावस्तु के ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट हो गया होगा कि उसे पंडितों और साधारण जनता के लिए एक साथ ग्राह्य बनाने के उद्देश्य से वाल्मीकि रामायण का अनुसरण करते हुए भी उसमें ऐसी घटनाओं और तत्वों का भी समावेश किया गया है जो वाल्मीकि की कृति में नहीं हैं। ये अवाल्मीकीय-प्रसंग विभिन्न रामायणों अथवा पुराणों के स्रोतों से निकलकर कथाओं के रूप में जनता में भी फैल गये होंगे। अपने उद्देश्य के अनुकूल देखकर रंगनाथ ने इनको ग्रहण किया था। विषय की दृष्टि से यही इस रामायण की विशिष्टता है जिससे यह "मार्ग" शैली की भाषा से युक्त होकर भी "देशी" शैली की उत्तम रचना बन सकी है। श्री पं० लक्ष्मीकांतमजी ने भी इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया है।[1]

रंगनाथ के समय तक राम विषयक उस भक्ति भावना का सम्यक् विकास भी हो गया था जो सूत्र रूप में वाल्मीकीय रामायण में पाई जाती है। आधुनिक काल में राम के ईश्वरत्व पर प्रकाश डालने वाले प्रसंगों या श्लोकों को वाल्मीकि रामायण में क्षेपक माना जाता है। किंतु रंगनाथ के समय ऐसी बात न रही होगी। इसीलिए भक्ति भावना से भी प्रेरित हो उन्होंने ऐसी घटनाओं का भी अन्यान्य भक्ति परक रामायणों या राम काव्यों का आधार लेकर विकास किया था जो सूत्र रूप में वाल्मीकि रामायण में पाई जाती हैं। इसमें उस समय तक प्रचलित वैष्णव संप्रदाय का भी प्रभाव रंगनाथ पर दिखाई पड़ता है, जिससे उनको प्रेरणा मिली थी। उसी के कारण कैकेशी, मंदोदरी आदि के हितोपदेशों और सुलोचना की अनुपम भक्ति आदि को समाहित किया गया है जैसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है। रंगनाथ की दृष्टि में राम केवल मनुष्य ही नहीं थे बल्कि विष्णु के अवतार, परब्रह्म आदि देव थे। इस बात से रामायण के सबके सब पात्र, यहाँ तक कि रावण भी अवगत था कि सद्गति पाने ने लिए उनकी भक्ति करनी चाहिए। हाँ, ऐसा मानते हुए भी रंगनाथ ने भक्ति के आवेश में पड़कर मानवीय स्वाभाविकता को नहीं भुला दिया।

---

१. श्री पि० लक्ष्मीकांतम—"रंगनाथ रामायण की पीठिका"—पृ० १६।

इसीलिए राम की जीवन धारा को पलटने वाली दोनों प्रधान घटनाओं को मंथरा की कूट मंत्रणा तथा शूर्पणखा का प्रवेश, और अन्यान्य प्रसंगों को भी सकारण और स्वाभाविकता के साथ विकसित किया और उसको प्रधानता भी दी। राम में मानव सुलभ मानसिक दुर्बलताओं को भी दिखाया जिससे वे मानव हृदय के अधिक निकट रहकर उसे स्पंदित कर सकें। अतः यह कहा जाना चाहिए कि रंगनाथ ने अपने राम को यद्यपि परब्रह्म ईश्वर के रूप में भी चित्रित किया है तो भी वे यह नहीं भूले थे कि वे मानव भी थे और तदनुसार दोनों आदर्शों को अपने काव्य में स्थान दिया।

अब इस विवेचन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि रंगनाथ ने यद्यपि वाल्मीकि रामायण के अनुसार अपनी रामायण की रचना की थी तथापि विशेषकर उसके अन्य पाठों, अध्यात्म रामायण और आनंद रामायण का पर्याप्त प्रभाव भी ग्रहण किया था और कई अवाल्मीकीय प्रसंगों को जोड़कर अपनी रामायण कुल मिलाकर १७२९० द्विपद छंदों में लिखी।
(बालकांड २४९३, अयोध्याकांड १८३४, अरण्य कांड १५६०, किष्किधा कांड १३४५, सुंदरकांड ११७७, और युद्धकांड ८८८१)

भास्कर रामायण—

रंगनाथ रामायण के बाद कालक्रम की दृष्टि से तेलुगू साहित्य में "भास्कर रामायण" का स्थान है। इसके कर्तृत्व आदि के सम्बन्ध में पाँचवें अध्याय में विचार किया जा चुका है जिससे सिद्ध होता है कि रंगनाथ रामायण के पंद्रह वर्षों के बाद इसकी रचना हुलक्कि भास्कर, मल्लिकार्जुन भट्ट, कुमार रुद्रदेव और अय्यलार्य के द्वारा हुई थी। इसके संबंध में यह कहा जा सकता है कि द्विपद छंद में लिखी गई रंगनाथ रामायण की प्रतिस्पर्धा में चंपू पद्धति में जो संस्कृत भाषा मिश्रित गद्य पद्यात्मक होने के कारण पंडितों में विशेष आदर पाती थी, इसकी रचना हुई थी।[1] साहित्य के क्षेत्र में इन रामायणों के संबंध में एक जनश्रुति फैली हुई है कि जब रंगनाथ और भास्कर अपनी-अपनी रचना लेकर अपने आश्रयदाता को समर्पित करने गये थे तब उस राजा ने रंगनाथ की रचना को दाहिने हाथ से स्वीकार किया और भास्कर की कृति को स्वीकार करने के लिए बायाँ हाथ फैलाया जिसे देखकर भास्कर को बहुत क्रोध हुआ तो वे यह कहकर कि तुम जैसे अयोग्य राजा को देने की

---

१. श्रीशि. रामकृष्ण शास्त्री—आँध्र वाङ्मय चरित्र सर्वस्वमु—पृ. ५६८

अपेक्षा किसी अश्वरक्षक को देना अच्छा है, सभा से उठकर जाने लगे तभी उस राजा के अश्वपाल साहिणिमार ने सामने से आते हुए यह बात सुनकर भास्कर से कहा कि यदि आप अपनी बात के धनी हैं तो उसे सत्य बनाइये और इस पर भास्कर ने कांडादि के पद्यों को साहिणिमार के स्तुत्यात्मक बनाकर अपनी कृति उसे समर्पित कर दी। किंतु यह बात सत्य से दूर है।

कथावस्तु के विकास की दृष्टि से यदि देखा जाय तो रंगनाथ रामायण का योग विशेष अधिक नहीं है क्योंकि यह रंगनाथ रामायण की परवर्ती और प्रतिस्पर्धी रचना होने के कारण इसमें प्राय: उन सभी अवाल्मीकीय प्रसंगों को लेकर उनको मार्ग काव्य की चंपू पद्धति में इतोऽधिक साहित्यिक सौंदर्य के साथ प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है जो रंगनाथ रामायण में गृहीत हैं। हाँ कहीं-कहीं प्रसंगों के प्रतिपादन में थोड़ा बहुत अंतर अवश्य आ गया है। यद्यपि वस्तु-विकास की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय नहीं है फिर भी कुछ ऐसे भी प्रसंग भास्कर रामायण में हैं जो रंगनाथ रामायण और वाल्मीकि रामायण से भिन्न है। रंगनाथ रामायण और भास्कर रामायण के अवाल्मीकीय प्रसंगों की समानता को देखकर यह कहा जा सकता है कि दोनों का मूल आधार एक ही होगा जिसमें वे सब प्रसंग पाये जाते हों यद्यपि उनके प्रतिपादन और विस्तार में थोड़ा बहुत अंतर पाया जाता है।[1]

बालकांड—

इस कांड की रचना ७५७ गद्य-पद्यों में हुई है।

भास्कर रामायण के प्रारंभ में अवतरण, रचना का कारण, ग्रंथ समर्पण, कृतिपति का परिचय आदि का अंश नहीं है जो सब प्राचीन काव्यों में अवश्य ही पाया जाता है। इसका कारण यही हो सकता है कि बालकांड जो रामायण का प्रारंभिक भाग है प्रधान कवि भास्कर का लिखा नहीं है। उसकी रचना भास्कर के पुत्र मल्लिकार्जुन के द्वारा हुई थी जैसा कि कांडांत की पुष्पिका से विदित होता है। सारे ग्रन्थ की रचना विभिन्न कवियों के द्वारा पूरी होने के बाद अवतरण लिखने का निश्चय भास्कर ने किया होगा किंतु युद्धकांड की रचना को बीच में ही छोड़कर वे स्वर्गवासी हुए होंगे।[2]

ग्रंथ का प्रारंभ वाल्मीकि-नारद संवाद से होता है जैसाकि वाल्मीकि

---

१. श्री स्व० म० सोमशेखर शर्मा—"रंगनाथ रामायण" की भूमिका पृ. १६
२. श्री शि. रामकृष्ण शास्त्री—आँध्र वाङ्मय चरित्र सर्वस्व—पृ. ५९४

रामायण में है और आगे की कथा प्राय: रंगनाथ रामायण के समान ही चली। हाँ, कहीं-कहीं कुछ अंतर अवश्य है ।

(१) पुत्रकामेष्टि यज्ञ के प्रसंग में भास्कर ने वाल्मीकि का ही अनुसरण किया है । दशरथ वाल्मीकि रामायण के समान अपने मंत्रियों से पहले पुत्र प्राप्ति के लिए अश्वमेध यज्ञ करने की बात कहते हैं और बाद में सूत के कहने से पुत्रकामेष्टि यज्ञ ऋष्यशृंग को बुलाकर करने का विचार करते हैं । (भा. बा. ४०-५५) ।

(२) इसमें दाशरथियों की बाल्यावस्था का वर्णन वाल्मीकि के समान बहुत संक्षेप में किया गया है (भा. बा. प. १६१) रंगनाथ रामायण की कंदुक क्रीड़ा का प्रसंग इसमें नहीं है और इसलिए मंथरा का प्रवेश भी नहीं है ।

(३) अहल्या को जो शाप दिया गया है उसमें भास्कर रामायण में रंगनाथ रामायण के समान शिला होने की बात कही गई है और वाल्मीकि रामायण के समान शाप देने के बाद तुरंत ही बिना अहल्या की प्रार्थना के मोक्ष की बात भी कही गई है । (भा. बा. ५१०) इंद्र अपने शाप के संबंध में देवताओं से, इसमें भी वाल्मीकि के समान, झूठ कहता है कि गौतम की तपस्या में देवहित के लिए विघ्न डालने के कारण मुझे ऐसा शाप मिला । इसमें अहल्या का शापांत राम के उस वन में आगमन मात्र से ही बताया गया है जैसा वाल्मीकि रामायण में है; रंगनाथ रामायण के समान स्पर्श की बात नही है ।

(४) इसमें जनक के द्वारा शिवधनुष का परिचय वाल्मीकि रामायण के अनुसार संक्षेप में दिया गया है (भा. बा. ६३६-६६७)

(५) वाल्मीकि रामायण के समान इसमें भी सीता के द्वारा राम के गुण श्रवण और प्रथम दर्शन का वर्णन नहीं हैं जो रंगनाथ रामायण में है ।

(६) भास्कर रामायण में जनक का परिचय दशरथ को रंगनाथ रामायण के समान शतानंद के द्वारा दिया जाता है और वशिष्ठ दशरथ की अनुमति पर जनक से लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के लिए ऊर्मिला, मांडवी और श्रुतकीर्ति को माँगते हैं ।

(७) इसमें भरत के ननिहाल जाने का वर्णन नहीं है जो रंगनाथ और वाल्मीकि रामायणों ने हैं ।

शेष कथा वाल्मीकि के अनुसार है ।

अयोध्या कांड—

इस कांड की रचना ३२८ गद्य पद्यों में की गई है ।

इस कांड की रचना कुमार रुद्रदेव के द्वारा हुई थी। घटनाओं के सन्निवेश और निर्वहण में कुछ शिथिलता पाई जाती है। कथा की गति कहीं-कहीं बड़ी तेज है।

(१) दशरथ की राम को युवराज बनाने की इच्छा, मंत्रियों और अन्य लोगों के विचार, राम को उसकी सूचना देना आदि बहुत संक्षेप में उल्लिखित मात्र हैं। (भा. अयो. ४-९) इसके बाद नगर को अलंकृत करने का वर्णन आता है।

(२) भास्कर रामायण में मंथरा का प्रसंग भी बहुत संक्षिप्त है यद्यपि उसका प्रवेश रंगनाथ रामायण के समान सकारण होता है। (भा. अयो. पृ. ७९-२०-१५) इसमें बताया गया है कि राम ने कभी मंथरा पर पाद का प्रहार किया था और उसी को बैर का कारण मानकर मंथरा ने राज्याभिषेक में विघ्न डालना चाहा। इस प्रसंग में न तो कैकेयी का चरित्र अच्छी तरह प्रस्फुटित हुआ और न मंथरा का। कैकेयी मंथरा के हाथ की पुतली बन गई।

(३) रंगनाथ रामायण का लक्ष्मण-निद्रादेवी मिलन इसमें नहीं है। वहाँ का वर्णन वाल्मीकि रामायण के अनुसार है। इसमें कहा गया है कि लक्ष्मण ने चौदह साल तक रात-दिन निद्रा छोड़कर धनुष-बाण लेकर बैठने की प्रतिज्ञा की। (भा. अयो. १३९)

(४) सुमंत्र को अयोध्या लौटाते समय राम और लक्ष्मण कोई संदेश नहीं भेजते हैं। राम वाल्मीकि रामायण के अनुसार इतना ही कहते है कि कैकेयी को हमारे वनवास जाने का विश्वास दिलाने के लिए मैं तुमको अयोध्या भेजता हूँ। (भा. रा. अयो. यु. ९३, प. १४४)

(५) इसमें भी रंगनाथ रामायण के समान राम की वाल्मीकि से भेंट का वर्णन नहीं है।

(६) दशरथ की मृत्यु पर इसमें भी कौसल्या सती होने की बात नहीं कहती। वाल्मीकि रामायण में कौसल्या सती होने को उद्यत होती है—

साहमद्यैव दिष्टांतं गमिष्यामि पतिव्रता
इदं शरीर मालिंग्य प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ॥

(वा. रा. अयो. ६६-१२)

(७) इसमें कौए का प्रसंग इस तरह वर्णित है—

एक दिन सीता भगवान के निवेदन के लिए फल तैयार कर रही थीं

तब एक कौआ आकर उनको खराब करने लगा। सीता उसे भगा-भगाकर थक जाती हैं। तब राम उसे देखकर एक मंत्रपूत तिनका उसकी ओर फेंक देते हैं तो वह बाण बनकर कौए का पीछा करने लगा। कौआ रक्षा के लिए तीनों लोकों में घूमकर अंत में राम की शरण आता है। राम उसकी एक आँख अपने तीर का निशाना बनाकर कौए को जीवित छोड़ देते हैं। (भा. रा. अयो. १६४-१६५) किंतु इसमें जयंत का नाम नहीं आता है।

(८) राम की अत्रि मुनि से भेंट का प्रसंग वाल्मीकि रामायण के समान अयोध्याकांड के अंत में ही आता है।

अरण्यकांड—

भास्कर रामायण के इस कांड में जो हुलक्कि भास्कर का लिखा हैं, और दो आश्वासों में बँटा है, बहुत से पाठांतर मिलते हैं। प्रथम आश्वास में २९४ और द्वितीयाश्वास में ४३९ और इस प्रकार कुल मिलाकर इस कांड में ७३२ गद्य और पद्य हैं। श्री चा. शेषय्याजी ने "आँध्र कवि तरंगिणी" में बताया कि वे पाठांतर अधिकांश क्षेपक हैं जो मूल के साथ मुद्रित प्रतियों में प्रकाशित हुए हैं क्योंकि उनकी देखी किसी ताडपत्र-ग्रंथ में वे नहीं हैं। किंतु प्राय: अन्य सब प्रतियों में वे पाये जाते हैं और पाठांतर के रूप में दिये गये हैं। श्री शेषय्याजी का कथन है कि मंत्री भास्कर ने संक्षिप्त रूप में जिसकी रचना की थी उसका विस्तार कुछ काल के बाद किसी अन्य कवि के द्वारा किया गया था और इसलिए पाठांतर और अधिक पाठ आ गये हैं।[1] किंतु श्री रामकृष्ण शास्त्री जी ने यह सिद्ध कर दिया है कि भास्कर रामायण में एर्रन्न और कोरवि सत्यनारायण की अनुपलब्ध रामायणों के कुछ अंश कालांतर में भास्कर रामायण में मिल गये होंगे, अत: कुछ पाठांतर व अधिक पाठ मिलते हैं।[2] पाँचवें अध्याय में बतलाया गया है कि भास्कर रामायण मंत्री भास्कर की नहीं बल्कि हुलक्कि भास्कर की रचना है।

अब इसकी विशेषतायें यों हैं—

(१) भास्कर रामायण में राम के चित्रकूट छोड़कर दंडकारण्य में जाने का कोई कारण नहीं बताया गया है। प्रारंभ में ही यह बताया गया है कि राम अत्रि मुनि से विदा लेकर दंडकारण्य में चले जाते हैं। (भा०रा०आ० १-२)

१. श्री चा. शेषय्या—आँध्र कवि तरंगिणी—२, पृ. ९८-१०७

२. ,, शि. रामकृष्ण शास्त्री—"आँध्र वाङ्मय चरित्र सर्वस्व—पृ. ६००-६०७

(२) इसमें भी रंगनाथ रामायण के समान जंबुकुमार के वध के बाद शूर्पणखा का प्रवेश सकारण दिखाया गया है। किंतु जंबुकुमार के वध का प्रसंग कुछ हस्तलिखित प्रतियों में नहीं मिलता।[1] जैसा यह प्रस्तुत रामायण में पाया जाता है, उससे यह शंका होती है कि कहीं यह अंक क्षेपक तो नहीं है। जंबुकुमार के वध का समाचार शूर्पणखा को, जो अपने पुत्र जंबुकमार के लिए भोजन लाती है, किसी महात्मा के द्वारा मिलता है जिसके बाद कहा जाता है कि वह दुख के साथ वन में घूमती हुई राम के पर्णकुटीर के पास आ जाती है और वहाँ उसका नये सिरे से फिर परिचय दिया जाता है।

उत्तरि बंक्तिकंठु चेलियल् कठिनात्मक चुप्पनाक दा
नेत्तिन वेड्क नेच्चटिकि नेनयु नाडटु पोई रा
जोत्तमु रामु जूचे नसिलोत्पलवर्णु विनील कुंतलुं
जित्तज सन्निभुन नृपति सिंहु मनोहर दीर्घलोचनुन् ॥

(भा. अर. १३२)

अर्थात्—उस समय रावण की छोटी बहन कठिन चित्तवाली शूर्पणखा ने बड़ी खुशी के साथ मनमाने ढंग से घूमती हुई सुंदर नीलोत्पल वर्ण वाले, नील शिरोरुह वाले, कामदेव के समान शोभित होनेवाले राम को देखा।

इसके पहले जब उसने अपने मृत पुत्र को देखा तब कहा गया है कि "शूर्पणखा जो अपने पुत्र के लिए भोजन लाती है उसे कटा पड़ा देखकर हाय पुत्र ! कह कर बड़े दुख के साथ जमीन पर गिर जाती है। इन दोनों में स्पष्टतः असंगति दिखाई पड़ती है। फिर भी सब मुद्रित प्रतियो में यह कथा पाई जाती है।

एक दिन राम लक्ष्मण को फल लाने के लिए जंगल में भेजते हैं। लक्ष्मण एक स्थान में कोई खड्ग देखते हैं जो तपस्वी राक्षस जंबुकुमार के लिए सुत्राम आदि देवताओं के द्वारा भेजा जाता है। किंतु वह उसे नहीं उठाता। लक्ष्मण उसे उठकर वहाँ के पेड़ों को काटने लगते हैं तो वहाँ के मुनि लोग उन्हें प्रसन्नता से मना करते हुए कहते हैं कि हे "राजकुमार ! इन फूलने-फलनेवाले पेड़ों को मत काटो। उस बाँस की झाड़ी को चाहो तो काटो।" मुनियों के यों कहने पर लक्ष्मण पास वाली बाँस की झाड़ी को एक ही वार से काट देते हैं तो

---

१. श्री चा. शेषय्या—"आँध्र कवि तरंगिणी—पृ. ९०
भास्कर रामायण—पृ. १२८—पाद टिप्पणी

उसके साथ उस तपस्वी राक्षस का सिर भी कट जाता है जिसे देखकर ऋषि आनंदित होते हैं। किंतु लक्ष्मण दुखी हो राम के पास जाकर सब समाचार कहते हैं। राम भी दुखी होकर मुनियों से प्रायश्चित कराने और लक्ष्मण के प्राण बचाने की प्रार्थना करते हैं। तब वे लोग कहते हैं कि वह तपस्वी नहीं था, बल्कि जंबुकुमार नामक भयंकर राक्षस था जो अपने पिता का प्रतिकार लेने के लिए तपस्या कर रहा था। इसलिए उसकी मृत्यु पर दुख करने की आवश्यकता नहीं" (भा० रा० अ० १–११७–१३२) रंगनाथ रामायण की कथा से यह थोड़ा भिन्न है।[1]

(३) भास्कर रामायण में जटायु राम के प्रथम मिलन में संक्षेप में अपना परिचय देता है और कहता है कि आपके पिता का मित्र हूँ। इसमें रंग-नाथ रामायण के समान यह नहीं कहता कि "मैं आप लोगों की अनुपस्थिति में सीता की रक्षा करूँगा।" किंतु संक्षिप्त परिचय देने के बाद फिर विस्तृत रूप से वाल्मीकि रामायण के समान जटायु के वंश का वर्णन मिलता है जो क्षेपक हो सकता है क्योंकि वह हस्तलिखित प्रतियों में नहीं मिलता।

(भा० रा० अ० १-१०१-११२)

(४) भास्कर रामायण में शूर्पणखा वाल्मीकि रामायण के समान रावण को अपने विरूप किए जाने की बात कहते हुए अपनी काम-वासना का उल्लेख नहीं करती। इसमें वह कहती है कि "उनके रहने की जगह मैं जब रहने के लिए गई तब उन्होंने मेरी यह हालत कर दी। (भा० रा० अ० १-२६७)

(५) माया युग के प्रसंग में लक्ष्मण राम की सहायता के लिए, सीता को कुटी में छोड़कर, जब जाते हैं तब इसमें पर्णकुटी के आगे रेखाएँ नहीं खींचते हैं और उसका वर्णन वाल्मीकि के अनुसार है।

(भा० रा० अ० २-७१-८१)

(६) जटायु की उत्तर क्रियाएँ करते समय भास्कर रामायण में इस बात का उल्लेख मिलता है कि राम ने किसी हरिण को मारकर हरित शाद्वल स्थल में उनके माँस का पिंड प्रदान किया जो वाल्मीकि रामायण के अनुसार है। (भा० रा० अ० २–३७३)

(७) इसमें शबरी वाल्मीकि रामायण के समान अपने गुरु मतंग मुनि की महिमा का वर्णन करती है (भा० रा० अ० ४१७–४२०) जो रंगनाथ रामा-यण में छोड़ दिया गया है।

---

१. यही प्रबंध—यही अध्याय—अनु० ३।

(८) वाल्मीकि और रंगनाथ रामायण में पंपा सरोवर और राम के विरह का जो वर्णन किष्किधा कांड के प्रारंभ में आता है वह भास्कर रामायण में अरण्य कांड के अंत में आता है।

शेष कथा वाल्मीकि के अनुसार ही है।

किष्किधा कांड—

इस कांड में ८२८ गद्य और पद्य हैं।

(१) सुग्रीव के दिखाये गये सीता के आभूषणों को देखकर वाल्मीकि रामायण में राम पहले मूछित होते हैं। तुरंत बाद में क्रोध के साथ बिल में रहनेवाले साँप के समान फुफकारते हैं। उसके अनंतर निरंतर आँसू बहानेवाले दीन लक्ष्मण को वे आभूषण-उत्तरीय दिखाते हैं (वा० रा० किं० ६-१६-२०) इसमें भाव वर्णन क्रमपूर्वक नहीं है। इसको बदलकर भास्कर रामायण में पहले राम के आभूषणों को देखकर मूच्छित होने और होश में आने के बाद उनको देखते हुए रोने और लक्ष्मण को दिखाने के बाद क्रोधयुक्त होकर साँप के समान फुफकारने का वर्णन किया गया है जो क्रमपूर्वक है। उसके बाद तुरंत ही क्रोध में सुग्रीव से पूछते हैं कि तुमने सीता को कहाँ देखा ? उसको हर ले जाने वाला कहाँ का है ? मैं उसका अभी संहार कर डालूँगा। राम के क्रोध का वर्णन जैसा इसमें क्रमपूर्वक रहा वैसा मूल में नहीं। (भा० रा० कि० ५३-६७) भास्कर का यह वर्णन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से स्वाभाविक और अतएव सरस है।

२. भास्कर रामायण में सीता के आभूषणों को देखकर लक्ष्मण वाल्मीकि के लक्ष्मण के समान यह नहीं कहता कि "मैं केयूर और कुंडलों को नहीं पहचानता, हाँ रोज चरणों में नमस्कार करते रहने के कारण नूपुरों को तो पहचानता हूँ।" यहाँ लक्ष्मण दुःखातिरेक के कारण अवाक् रह जाते हैं।

३. तारा के शाप का प्रसंग।

भास्कर रामायण में पति की मृत्यु पर विलाप करते हुए वाली की पत्नी तारा राम को शाप देती है कि "तुम्हारे पराक्रम से पुनः प्राप्त हुई सीता तुम्हारे साथ अधिक समय तक नहीं रहेगी और विरही तथा दुखी वह तुम्हारे देखते-देखते पृथ्वी में समा जायगी। यह शाप न तो रंगनाथ रामायण में है और न वाल्मीकि रामायण में। (भा. रा. कि. पद्य ३०३) वाल्मीकि रामायण की गोविंदराज की टीका में एक श्लोक उद्धृत किया गया है जो इसका मूल माना जा सकता है:—

अचिरेणैव कालेन त्वया वीर्य बलाहृता ।
सा सीता ममशापेन न चिरात्वयि वत्स्यति ॥
(वा. रा. गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, कि. २४ पृ. १५१५)

शेष प्रसंगों का वर्णन वाल्मीकि रामायण के अनुसार है। हाँ इस कांड में वाल्मीकि रामायण में पुनरुक्तियों और क्षेपकों के कारण जो असंगति वस्तुविकास की दृष्टि से आई है उसे भास्कर रामायण में दूर कर दिया गया है ।

सुन्दरकांड:—

इस कांड की रचना ५७२ गद्य पद्यों में हुई है ।

भास्कर रामायण का सुंदर कांड जो मल्लिकार्जुन भट्ट से लिखा गया है वाल्मीकि रामायण के समान हनुमान के सागरोल्लंघन से प्रारंभ होता है और सारा वर्णन उसी के अनुसार हुआ है। इस कांड की प्रायः सब प्रधान घटनाएँ, हनुमान का लंका प्रवेश, सीतान्वेषण, सीता से हनुमान का मिलाप, अशोक बन विध्वंस, लंका दहन आदि वाल्मीकि रामायण के अनुसार ही वर्णित हैं। उल्लेखनीय परिवर्तन या परिवर्द्धन नहीं है ।

युद्ध कांड:—

यह सबसे बड़ा कांड है और २६८७ गद्य पद्यों में लिखा गया है ।

इसकी रचना हुलक्कि भास्कर और अय्यलार्य के द्वारा हुई है । रंगनाथ रामायण के समान इसके और वाल्मीकि रामायण के प्रसंगों में पर्याप्त भिन्नता है । इसमें प्रायः वे सब अवाल्मीकीय प्रसंग आये हैं जो रंगनाथ रामायण में भी मिलते हैं किंतु थोड़े परिवर्तन के साथ । वाल्मीकि रामायण में पाये जानेवाले प्रसंगों में भी थोड़ा-सा अंतर आ गया है ।

१. इसमें रावण रंगनाथ रामायण के समान विभीषण को लात मार-कर निकलवा देता है और जब विभीषण रावण की सभा छोड़कर जाता है तब इसमें यह कहता है कि "तुम मेरी बातों को तब समझोगे जब युद्ध में राम के बाणों से गिर जाओगे।" (भा. रा. यु. १५४) वाल्मीकि रामायण के समान वह व्यंग्यपूर्वक नहीं कहता कि "मैं अब जाता हूँ। मेरे बिना सुख से रहो। तुम्हारा भला हो !" (वा. रा. यु. १६-२५)

२. इसमें भी रंगनाथ रामायण के समान विभीषण लंका छोड़ते समय अपनी माता कैकेशी से मिलता है और उससे आशीर्वाद प्राप्त कर राम क

शरण में जाता है । इन दोनों का संवाद रंगनाथ रामायण के समान विस्तृत नहीं है । (भा. रा. यु. १५५-१६२)

३. विभीषण को राम की शरण में आया देखकर भास्कर रामायण में हनुमान राम से कहता है कि "इसमें कोई दोष की छाया नहीं दिखाई पड़ती। क्योंकि जब मैं पहले पकड़ लिया गया था तब इसी ने रावण से यह कहकर कि दूत को मारना नहीं चाहिए, मुझे छुड़ा दिया।" (भा. रा. यु.१७४) वाल्मीकि रामायण में हनुमान इस बात का उल्लेख नहीं करता। (वा. रा. यु. १७. ५२-६८)। विभीषण के प्रति हनुमान की सद्भावना की यह अच्छी उपपत्ति है।

४. जब राम विभीषण को लंका का राजा बनाने का आश्वासन देकर उसका अभिषेक करने के लिए समुद्र का जल लाने को कहते हैं तब भास्कर रामायण में सुग्रीव राम से पूछता है कि "आप शरणागत रक्षक हैं। रावण यदि आपकी शरण में आ जाय तब आप क्या करेंगे?" उसके उत्तर में राम कहते हैं कि "ऐसी परिस्थिति में मैं अयोध्या का राज्य विभीषण को दे दूँगा।" (भा. रा. यु. प. १९१) राम के इस कथन से उनका उदार चरित्र और भी उज्ज्वल होता है।

५. भास्कर रामायण में अंगद को दूत बनाकर राम रावण को कहला भेजते हैं कि हे रावण ! तुम शूरता के साथ युद्ध में आ जाओ या सीता को मुझे सौंपकर क्षमा याचना कर लो। लंका का राज्य भी देकर तुम कहीं जाकर रहो। अब इस राज्य का स्वामी विभीषण है। (भा. रा. यु. ५००) राम की यह बात वाल्मीकि रामायण में नहीं है। रंगनाथ रामायण में भी नहीं है।

६. पहली बार युद्ध करके इंद्रजित लंका को लौट जाता है और जय प्राप्त करने के लिए एक मारण होम करता है जो वाल्मीकि रामायण में नहीं है। किंतु रंगनाथ रामायण में है। (भा. रा. यु, ५४२)

७. जब राम और लक्ष्मण इंद्रजित के द्वारा नागपाश से बंधित हो जाते हैं तब रंगनाथ रामायण के समान भास्कर रामायण में भी नारद राम के पास आते हैं और उनके विश्व रूप की स्तुति करते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें नारद राम के पूर्व अवतारों का भी वर्णन करते हैं और कहते हैं कि आप अपने वाहन गरुड़ का ध्यान कीजिए तो वह आकर आपको मुक्त क

देगा। राम को परामर्श देकर नारद के चले जाने के बाद गरुड़ आकर राम लक्ष्मण को नाग पाश से मुक्त कर देता है। तब भास्कर रामायण में राम गरुड़ से कहते हैं कि तुमने इस विपत्ति में हमारी सहायता कर अपना सुहृदभाव दिखाया। इसलिए मैं तुमको महाराज दशरथ और रघु के समान मानता हूँ। (भा. रा. यु. ६२८) वाल्मीकि रामायण में दशरथ और अज के समान मानते हैं। (वा. रा. यु. ५०-४३) इस प्रसंग में जहाँ तक नागपाश से मुक्ति का संबंध है वहाँ तक भास्कर ने रंगनाथ रामायण का अनुकरण किया है और राम के कृतज्ञता-प्रकाशनमें वाल्मीकि का। आगे का प्रसंग भी वाल्मीकि रामायण के समान ही है। इसमें स्थूल दृष्टि से देखने पर एक असंगति दिखाई पड़ती है और वह यह है कि जब नारद ने राम के परब्रह्मत्व और पूर्व अवतारों का वर्णन करके कहा कि गरुड़ आपका वाहन है तब राम का उक्त प्रकार से कृतज्ञता प्रकाशन आवश्यक नहीं। किंतु इन दोनों बातों का समन्वय करके भास्कर ने यह सिद्ध करना चाहा होगा कि राम स्वयं विष्णु का अवतार होकर भी यह नहीं जानते थे कि विष्णु हूँ और इस प्रकार उनमें मनुष्यत्व अधिक दिखाने का प्रयत्न किया है।

(८) वाल्मीकि रामायण में धूम्राक्ष के वध के बास वज्रदंष्ट के युद्ध का वर्णन है जिसे भास्कर रामायण में रंगनाथ रामायण के समान छोड़ दिया गया है और अकंपन-युद्ध का वर्णन किया गया है। वाल्मीकि रामायण के पश्चिमोत्तरीय पाठ में भी ऐसा ही है।

९. प्रहस्त के वध के पश्चात मंदोदरी के राम से संधि करने के उपदेश का जो प्रसंग रंगनाथ रामायण में है वह भास्कर रामायण में भी उसी ढंग पर है यद्यपि वाल्मीकि रामायण में नहीं हैं। किंतु रावण उसे नहीं मानता। दोनों में अंतर यह है कि रंगनाथ रामायण में रावण कहता है कि या तो राम को युद्ध में मारूँगा या मैं स्वयं मर जाऊँगा। (रं. रा. यु. पंक्तियाँ ३१६०-३१७०) और भास्कर रामायण में रावण मंदोदरी को विश्वास दिलाता है कि मैं अवश्य राम और उसकी वानर सेना को मार डालूँगा, तुम निश्चित रहो। (भा. रा. यु. ७८४) यह वर्णन वाल्मीकि रामायण के पश्मिोत्तरीय पाठ में है। (वा. रा. प. यु. २५)

१०. रंगनाथ रामायण में कुंभकर्ण रावण को हितोपदेश देते समय यह जो कहता है कि मैंने नारद से विष्णु के राम के रूप में अवतार लेने की बात सुनी है, वह भास्कर रामायण में भी है। (भा० रा० यु० पृ० ८८८)

११. युद्ध क्षेत्र में कुंभकर्ण और विभीषण का जो संवाद रंगनाथ रामायण में है वह भास्कर रामायण में भी है। (भा०रा०यु० ९३९-९४१)

११. रंगनाथ रामायण में इन्द्रजीत तीसरी बार युद्ध में जाने के पहले जिस 'कृत्ति' शक्ति को प्राप्त करता है उसकी प्राप्ति का वर्णन भास्कर रामायण में भी है। आग्नेयास्त्र के द्वारा राम के उस कृत्ति का नाश करने का वर्णन भी भास्कर रामायण में है। (भा०रा०यु० १२५३-१२७३) यह पूरा प्रसंग वाल्मीकि रामायण में नहीं है।

१३. भास्कर रामायण में यह बताया गया है कि इन्द्रजित लक्ष्मण के द्वारा मारा जाकर विष्णु सायुज्य को प्राप्त हुआ है (भा० रा० मु० १३७८) । यह बात न तो वाल्मीकि रामायण में है और न रंगनाथ रामायण में। वाल्मीकि रामायण में राक्षसों के द्वारा इतना कहा गया है कि इन्द्रजित युद्ध में मर कर परमलोक को प्राप्त हुआ है (वा० रा० यु० ४. ९२)।

१४. भास्कर रामायण में राम यह प्रतिज्ञा करके रावण पर शर-वर्षा करते हैं कि यदि मैंने सूर्यवंश में जन्म लिया हो, यदि मैं धर्मप्रिय दशरथ का पुत्र हूँ, यदि रावण मेरे सामने खड़ा रहे तो इस पृथ्वी में या राम रहे या रावण रहे। (भा० रा० यु०पृ०५५८) राम का अंतिम निश्चय तो वाल्मीकि रामायण में है किंतु प्रतिज्ञा नहीं है। (वा० रा०यु० १००-४८)

१५. उपर्युक्त प्रतिज्ञा करके जब राम अपनी अनुपम वीरता से रावण को त्रस्त और जर्जर करते हैं तब वह रणभूमि से भाग जाता है। यहाँ भास्कर रामायण में वह लंका के अंतःपुर में जाता है और मंदोदरी को अपने पास बुलाकर उसके सामने अपनी विवेकहीनता पर पश्चात्ताप और दुख प्रकट करता है। वह मंदोदरी से कहता है कि "जब तुम सब लोगों ने मुझे संधि की सलाह दी थी, तब मैंने नहीं मानी। अब कुंभकर्ण, अकंपन, अतिकाय, इन्द्रजित, प्रहस्त, निकुंभ, नरांतक आदि सब योद्धा मारे गये। तीनों लोकों के विजेता मुझे राम के तीव्र बाण व्याकुल कर देते हैं। मेरा बल क्षीण हो जाता है। ऐसा युद्ध मैंने कभी नहीं देखा। मुझे सर्वत्र राम ही राम दिखाई देते हैं। इसलिए अब मैं शिव की आराधना करूँगा। मेरे संगीत से प्रसन्न होकर भगवान शंकर ने मुझे वर दिया था कि जब तुम मनुष्यों से हार जाओगे तब विधिपूर्वक मुझे लक्ष्य कर निर्विघ्न रूप से यज्ञ करोगे तो होमकुंड में से बलवान घोड़ों से युक्त एक दिव्य रथ, महाकवच और दिव्य माहेश्वर धनुष निकलेगा। उनको प्राप्त कर तुम अवश्य अजेय हो जाओगे (भा० यु० १५६४-१५७२) यों कहकर व

:नान आदि से निवृत होकर विधिपूर्वक शिव के मंदिर में जाकर यज्ञ जब प्रारंभ करने लगता है तब मंदोदरी उसके पास जाती है और उसे उत्तेजित करते हुए कहती है कि अखंड पराक्रम और अनुपम युद्ध साधनों से युक्त होकर तुमको इस प्रकार मुनि का धर्म धारण नहीं करना चाहिए। ऐसे लोकोत्तर पुरुष राम की स्त्री को लाना ही नहीं चाहिए था। अब जब लाये हो तो यह दीनता शोभा नहीं देती। तुम्हारा यह ढंग देखकर वे सब देवता तुम्हारा उपहास करेंगे जो तुमसे हार चुके हैं। तुमको इस प्रकार की कायरता से यश नहीं मिलेगा। मंदोदरी की ये बातें सुनकर रावण लज्जित होता है और होम छोड़कर जय की आकांक्षा करते हुए अंतःपुर में जाता है (भा०रा० यु० १५६३-९५८२) यह प्रसंग वाल्मीकि रामायण में नहीं है। रंगनाथ रामायण में थोड़े अंतर के साथ पाया जाता है। उसमें रावण स्वयं मंदोदरी के सामने पश्चात्ताप नहीं करता। (यही अध्याय—रं०रा० यु० अनु०) यह प्रसंग यद्यपि रंगनाथ रामायण के अनुकरण पर लिखा गया है किंतु तो भी इसमें असंगति आ गई है। रावण जब अजेय होने के लिए दिव्य रथ प्राप्त करने के उद्देश्य से होम करने लगता है तब उसकी पत्नी मंदोदरी यह जानते हुए भी कि निर्विघ्न रूप से होम पूरा करने पर ही रावण को इच्छित दिव्य रथ प्राप्त हो सकता है, अनजान में विघ्न बनकर आ जाती है क्योंकि उसकी उत्तेजनापूर्ण बातों ने ही रावण को यज्ञ की वेदी से उठा दिया। यह असंगति रंगनाथ रामायण में नहीं है। रावण के संगीत के द्वारा शंकर को प्रसन्न करने की बात आनंद रामायण में है। रावण उसमें अपनी माता के लिए शंकर का आत्म लिंग प्राप्त करने के उद्देश्य से कैलास जाता है और अपना सिर काटकर अपने पैरों में लगाता है और आँतों को तार और उँगलियों को सोपान बनाकर अपने शरीर की ही वीणा तैयार करता है और संगीत गाकर शंकर को प्रसन्न करता है। शंकर दस दिन तक नंदी के द्वारा रावण को उस प्रयत्न से विरत करने की चेष्टा करते हैं, किन्तु जब रावण विरत नहीं होता तब दसवें दिन आकर रावण की इच्छा पूरी करते हैं। दस दिन बराबर सिर काटते रहने के कारण उसके दस सिर और बीस भुजाएँ भी प्रदान करते हैं। (आ०रा०सा० १६-१५-४०)

१६. दुबारा संजीवनी लाने के लिए जानेवाले हनुमान को राम भास्कर रामायण में आशीर्वाद देते हैं कि इंद्र तुम्हारे सिर की, सूर्य मुख की, चंद्रमा मनोवृत्ति की, पार्वती कटि की, वायु पीठ की, शिव पूँछ की, अग्नि चरणों की, ब्रह्मा मति की, वरुण शक्ति की, विष्णु हाथों को और गणेश पेट की रक्षा करें।

(भा०रा०यु० १६०४) इसी प्रकार का आशीर्वाद रंगनाथ रामायण में भी मिलता है। (रं०रा० यु० पं० ६५९२-६५९६)

१७. कालनेमि और भरत के दुःस्वप्न के संपूर्ण प्रसंग, जो वाल्मीकि रामायण में नहीं है इसमें इसी प्रकार मिलते हैं जिस प्रकार रंगनाथ रामायण में पाये जाते हैं। (भा० रा०यु० १६२३-१७५९)

१८. रावण के पाताल होम का ध्वंस, मंदोदरी का उपदेश आदि प्रसंग रंगनाथ रामायण के समान भास्कर रामायण में भी पाये जाते हैं। यद्यपि वाल्मीकि रामायण में नहीं है। (भा०रा०यु० १८२९-१९२०)। किंतु रंगनाथ रामायण से इसकी एक विशेषता यह है कि इसमें अंगद यज्ञ करनेवाले रावण को चुनौती देते हुए कहता है कि "तुमने मायावी मारीच की सहायता पाकर छल-कपट से राम को धोखा देकर उनकी अनुपस्थिति में उनकी पत्नी को हर लिया था। किंतु मैं अपनी भुज-शक्ति के बल पर तुम्हारे ही सामने तुम्हारी पत्नी को खींच लाऊँगा। यदि तुमसे हो सके तो अपनी शक्ति दिखाओ।" (भा. रा. यु. १८६४–१८६५) यह कवि अय्यलार्य की समयानुकूल और पात्रोचित उद्भावना है जिसका सुन्दर साहित्यिक महत्व है।

१९. भास्कर रामायण में "आदित्य-हृदय" का उपदेश देने के लिए जब ऋषि अगस्त्य उसके पास आते हैं तब राम के विश्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि "हे राम ! आपके दिव्य तत्व ज्ञान निगमागम भी नहीं पा सकते। तुम्हारी भव्य मूर्ति संयमियों के मनोकमल में अंकित रहती है। अग्नि, सूर्य और चंद्र तुम्हारा तेज है। तुम्हारी माया का विलास संसार की सृष्टि, स्थिति और लय का कारण है। तुम विश्वमय, विश्वात्मा, विश्व विभु और विष्णु हो। तुम सब भुवनों का हित करने के लिए मनुष्य बने हो। इसलिए सर्वज्ञ होकर भी अज्ञानी बने हुए हो। तुमको कुछ उपदेश देना नादानी है। तो भी तुम ध्यान देकर सुनो।" इसके बाद "आदित्य-हृदय" का उपदेश देने का उल्लेख मात्र है। रंगनाथ रामायण में अगस्त्य की उपर्युक्त स्तुति नहीं है यद्यपि आदित्य हृदय के उपदेश का उल्लेख है। वाल्मीकि रामायण में तो पूरा "आदित्य-हृदय" मिलता है। (वा. यु. १०५ सर्ग) भास्कर रामायण की स्तुति में राम के मायामानुष विग्रह का स्पष्ट उल्लेख है। (भा. रा. यु. २०६७-२०६८)।

२०. भास्कर रामायण में भी रंगनाथ रामायण के समान विभीषण राम से रावण के नाभि प्रदेश में स्थित अमृत की बात कहता है और रावण

विभीषण की इस भेदिया-वृत्ति को जानकर क्रोध से उस पर बाणों की वर्षा करता है। (भा. रा. यु. २१५८-२१६६)।

२१. भास्कर रामायण में रावण की मृत्यु पर जब मंदोदरी विलाप करती है तब दुखी विभीषण को देखकर उसे उपालंभ देते हुए कहती है कि अब दुख करने की आवश्यकता नहीं। तुम्हारी इच्छाएँ पूर्ण हुई। लंका की राज्य-लक्ष्मी मिल गई। समस्त बंधु रहित राज्य से बढ़कर और क्या चाहिए तुमको? मौका देखकर सब बिगाड़ देने वाले ईर्ष्यालु की अपेक्षा यम ही अच्छा है। मेरे पति ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा जो तुमने उनको मरवा डाला?" मंदोदरी का यह उपालंभ बहुत स्वाभाविक और नारी सुलभ है जो न तो रंगनाथ रामायण में है और न वाल्मीकि रामायण में। (भा. रा. यु. २२४८-२२५०)

२२. सीता को राम के हाथों में सौंपते हुए भास्कर रामायण में अग्नि कहता है कि संसार को पवित्र बनानेवाला मैं सीता के स्पर्श के कारण स्वयं और भी पवित्र हो गया। मुझे उनका, कृतज्ञ होने का सौभाग्य मिला। (भा. रा. यु. २४००) यह बात रंगनाथ रामायण और वाल्मीकि रामायण में नहीं है।

२३. हनुमान को भरत के पास भेजते समय वाल्मीकि रामायण में राम भरत के मन की थाह लेने की जो बात कहते हैं वह रंगनाथ रामायण के समान इसमें भी नहीं है।

शेष सब प्रसंग प्राय: वाल्मीकि रामायण के अनुसार हैं। ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि तेलुगु साहित्य में राम कथा के विकास में भास्कर रामायण का विशेष योग नहीं था। उसने बहुत कुछ रंगनाथ रामायण का ही अनुसरण किया यद्यपि एकाध स्थान में कुछ मौलिकता दिखाई जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है। यों भी कहा जा सकता है कि जिस रामकथा को रंगनाथ रामायण में देशी पद्धति में साधारण जनता में प्रचार के लिए प्रस्तुत किया गया था उसी को भास्कर रामायण में प्रतिस्पर्धा की भावना से विद्वन्मंडल में आदर प्राप्त करने के हेतु मार्ग पद्धति में प्रस्तुत किया गया था क्योंकि द्विपद कविता रस विहीन मानी जाती थी। वस्तु का जो सुसंगठित रूप रंगनाथ रामातण में मिलता है वह भास्कर रामायण में कुछ शिथिल सा दिखाई पड़ता है क्योंकि भास्कर रामायण की रचना रंगनाथ रामायण के समान एक ही कवि की न होकर चार कवियों की है जैसाकि ऊपर दिखाया गया है। रचना भी कुछ जल्दवाजी में की गई मालूम होती है। हाँ कला की दृष्टि से यह मार्ग-

शैली की उत्तम रचना मानी जा सकती है। इसके कला-पक्ष पर अन्यत्र विचार किया जायगा।

एर्रन्न कृत रामायण

पहले कहा गया है कि "कवित्रय" के एक कवि एर्रन्न ने भी रामायण काव्य लिखा था जो अब अप्राप्य है। इसका पता हमें उनके आश्रय दाता वेमा रेड्डी की इस बात से लगता है कि मेरे छोटे भाई ने आपको मुझे समर्पित किया। इसके पूर्व मैंने आपसे राम कथा लिखवाकर बड़ी ख्याति प्राप्त की। तो भी आपके काव्यामृतास्वादन से मैं तृप्त नहीं हुआ।" ई. सन् अठारहवीं सदी में कूचिमंचि तिम्मन्न नामक कवि ने अपने "सर्वलक्षण सार संग्रह" नामक लक्षण ग्रंथ में एर्रन्न कृत रामायण के कुछ पद्यों को उद्धृत किया। इधर कुछ समय पहले स्व० श्री वे० प्रभाकर शास्त्रीजी ने "भारती" (१६-६) में इस रामायण के संबंध में एक लेख लिखते हुए उसके कुछ पद्यों को उद्धृत किया है। उन पद्यों से कथा के विकास पर कोई विशेष प्रकाश तो नहीं पड़ता, किंतु यह कहा जा सकता है कि सरल शैली में, संक्षिप्त रूप से वाल्मीकि रामायण के आधार पर उसकी रचना हुई थी।

निम्नलिखित पद्यों से ऐसा ध्वनित होता है कि एर्रन्न ने जहाँ राम को सर्वव्यापी ईश्वर के रूप में चित्रित किया वहाँ उनमें मानव सुलभ कमजोरी को वाल्मीकि से भी बढ़कर देखा होगा। एक स्थान में राम के विषय में कहा गया है :

अनयमु सर्वभूतमुलयंदुनु गोद्विजलंदु शैल का
नन गगनाखिलाशल घनत्वमु मिच सहस्रपाद लो
चन शतशीर्ष मूर्तिवयि सारगतिन् वसियिंचि साद्रिका
वनियु समस्तभूतमुलवादि वहिंतुवु नीवे राघवा !

अर्थात्—हे राघव ! सर्वदा सब भूतों, गायों, ब्राह्मणों, पर्वतों, जंगलों और आकाश की सब दिशाओं में सहस्र चरणों तथा लोचनों और सैकड़ों शीर्षों से युक्ति मूर्ति बनकर तुम रहते हो और इस विशाल पृथ्वी और भूतों को तुम्हीं वहन करते हो।

यह पद्य किस प्रसंग का है सो ज्ञात नहीं। किंतु इससे राम के विश्व रूपत्व पर प्रकाश पड़ता है।

निम्नलिखित पद्य संभवतः उस प्रसंग का होगा जब राम हनुमान को

अयोध्या में अपने पुनरागमन का समाचार देने के लिए भरत के पास भेजते हैं :

वैरिजयंबु गांचि बलवंतुल मित्रुल गूडि तेजमुन्
सारयशंबुनन् गनिन नादु समागमनंबु नीवु नि
पारग जेप्पुचो नतनि याननवर्ण विलोकनेंगिला
कार वचो विशेषमुल कैवडि नेर्पुन जूडुमेर्पडन् ॥

अर्थात्—शत्रुओं को जीतकर बलवान मित्रों के साथ यशस्वी होकर मेरे आने का समाचार देते हुए तुम उसके मुख के वर्ण, दृष्टि, इंगित, आकार और बातों के ढंग का कुशलता के साथ निरीक्षण करो।

इससे यह ध्वनित होता है कि राम यह परखना चाहते हैं कि भरत को मेरे पुनरागमन से सुख होगा अथवा दुख ? इस अनुमान की पुष्टि निम्नलिखित पद्य से हो सकती है—

अतुलंबै वश वर्तियै रथ तुरंगानेक पाकीर्णमै
पितृ पैतामहमैन राज्यमु मदिन् भेदिंपगा जेयु सं
ततमेव्यानिकि नैन राज्यफलमात्मन् गोरिनन् कैकेयी
सुतुडे येलुचुनुंडुगाक विपुल क्षोणीतलंबंतयुन् ॥

अर्थात्—अनेक रथों, घोड़ों आदि से युक्त, अतुलित परंपरागत राज्य किसी भी मनुष्य के मन में भेदभाव पैदा कर सकता है यदि भरत ने इतने सालों के शासन के बाद मन से राज्य की आकांक्षा की हो तो वही इस विशाल पृथ्वी का शासन करता रहे।

इन पद्यों से यह ध्वनित होता है कि वा. रा. के समान (यु. १२५-१३-१५) इसमें भी राम के मन में यह बात आ गई है कि भरत में भेद बुद्धि पैदा हुई होगी और इसीलिए अपने आगमन की सूचना भेजकर उसके मनोगत भावों का पता लगाना चाहते हैं जिससे अपने भावी कार्यक्रम को निर्धारित कर सकें। इसमें राम की गंभीर राजनीतिज्ञता या अतिशय उदारता व्यक्त होती है। यह बात न तो रंगनाथ रामायण में मिलती है और न भास्कर रामायण में। उनके प्राप्त पद्यों से उनकी रामायण पर इससे अधिक प्रकाश नहीं पड़ता।

महाभारत का रामोपाख्यान

एर्रन्न ने महाभारत के अरण्यपर्व का वह अंश अनूदित किया जिसे नन्नय पूरा नहीं कर सके। इस अंश में रामोपाख्यान आता है जो ऋषि मार्कण्डेय के

द्वारा युधिष्ठिर को सुनाया जाता है। यह एक उपाख्यान का अनुवाद होने के कारण कथा के विकास में कवि का कोई विशेष मौलिक योगदान नहीं है यद्यपि अनुवाद में कला की दृष्टि से उनकी मौलिकता दिखाई पड़ती है।

रामोपाख्यान के वर्णन में एर्रन्न ने कथा विकास की दृष्टि से मूल महाभारत का ही अनुसरण किया है। उसमें केवल एक उल्लेखनीय परिवर्तन यह है कि एर्रन्न ने वस्तु-विकास की दृष्टि से सीता की अग्नि परीक्षा की बात का समावेश किया है जो मूल महाभारत में नहीं है। इसमें सीता राम का तिरस्कार पाकर थोड़ी देर के लिए मूच्छित रह जाती है और फिर उठकर आँसू बहाते हुए कहती है कि "नाथ! मैं अपने सतीत्व की परीक्षा आग में प्रवेश कर दूँगी जिससे सब लोगों को मेरी पवित्रता मालूम हो जाय और आपकी निंदा भी न हो। यदि मैंने किसी अन्य पुरुष का चिंतन किया हो तो पृथ्वी, वायु, अग्नि, चंद्रमा और सूर्य मुझे जला डालें। (आँध्र महाभारत अरण्य ७-१६१-१६२) इस पर पंचभूत उसके सतीत्व का साक्ष्य देते हैं। तब ब्रह्मा सब देवताओं से युक्त होकर आते हैं और नलकूबर के रावण को मिले शाप की बात कहते हैं। इसमें मूल महाभारत के समान दशरथ नहीं आते। ब्रह्मा के आदेश के अनुसार राम सीता को ग्रहण करके अयोध्या जाते हैं, यद्यपि सीता को ग्रहण करने का उल्लेख नहीं किया गया। इसमें वाल्मीकि रामायण के अनुसार अग्नि परीक्षा की बात तो आ गई किंतु उसकी आवश्यकता नहीं पड़ी। इसमें विशेषता यह है कि एक ही कवि एर्रन्न ने एक ही इतिवृत्त को लेकर लिखी गई अपनी दोनों रचनाओं में उनके मूल ग्रंथों के अनुसार दो विभिन्न रूपों को प्रदर्शित किया। उदाहरण के लिए उपर्युक्त सीता की अग्नि-परीक्षा के प्रसंग की तुलना से उनकी अप्राप्त "रामायण" के प्राप्त कुछ पद्यों से व्यक्त होनेवाले "अग्नि परीक्षा" के प्रसंग से की जा सकती है। प्राप्त पद्यों में तीन उस प्रसंग के जान पड़ते हैं। अग्नि में प्रवेश करके बाहर आयी हुई सीता का वर्णन एक पद्य में यों किया गया है—

> **तरुणादित्यनिभद्युतिन् मेरसि रक्त श्रीच्छटाशाटिका**
> **धरयुं तप्त सुवर्णभूषणयु नुद्यन्नीलधूमाभ्र, बं**
> **धुर धम्मिल्लयुं नौ विदेहतनयन् दोल्तोल्त पेन्मंटलो**
> **जोर नेतेंचिन रूपुतोन जगमुल् सोद्यंबुनन् जूचिनन् ।।**

अर्थात्: तरुण सूर्य की कांति से भासमान रक्तिम छटा को धारण किए हुए, तप्त सुवर्ण भूषण युक्ता और उठते हुए नील धुएँ के समान रंगवाले अलकोंवाली

तथा अग्नि की ज्वालाओं में प्रवेश करते समय के रूप से शोभित सीता को जग ने आश्चर्य के साथ देखा।

दूसरे पद्य में भी यह बताया गया है कि सीता को कलंकित करना रावण के लिए असंभव था।

प्रकटतरात्मतेजमुन रक्षितयौ मिथिलाधिराज क
न्यकनु बयोधि वेल बले नाशरुडेंदु नतिर्क्रमिपड़े
न्निककनु निप्पवटि महनीय चरित्रमु गल्गु निट्टिजा
नकिनि दरंबे वानिकि मनंबुनने नियु जुलक जूडगान् ॥

अर्थात् : अपनी आत्मा के तेज से रक्षित सीता की सागर बेला की सी मर्यादा का अतिक्रमण रावण नहीं कर सकता क्योंकि अग्नि के समान पवित्र चरित्रवाली सीता को बुरी दृष्टि से वह मन में भी नहीं देख सकता था।"

यह अग्नि का कथन मालूम होता है। तीसरे पक्ष में राम की सीता के प्रति लंका का कारण उन्हीं के मुँह से बताया गया है।

अवनि जनंबुलेल्लनु दशाननु नंतिपुरंबुनंदु बे
ककबु दिवसंबुलुन्न जनकात्मज शोधित जेयके यना
र्य विहितवृत्ति देच्चे रघुरामुडु बालिशुडंचु नेंचरा
भुवनमुलेल्ल नम्मुटकु बो इटु सेसिति हव्यवाहना !

अर्थात् : हे हव्यवाहन ! संसार यही तो कहेगा कि बहुत दिनों तक रावण के अंतःपुर में रही सीता को उसकी परीक्षा लिए बिना असभ्य पद्धति से राम ने ग्रहण किया है क्योंकि वह मूर्ख है। इसलिए संसार को विश्वास दिलाने के लिए मैंने ऐसा किया।

इन पद्यों से यह व्यक्त होता है कि सीता की अग्नि परीक्षा हुई थी और राम ने सीता को उसके बाद ही ग्रहण किया था। किंतु महाभारत के रामोपाख्यान में एर्रन्न ने इस प्रसंग का समावेश नहीं किया था क्योंकि वे मूल ग्रंथ की परिधि में रहकर रचना करना चाहते थे।

भागवत का श्रीराम चरित्र

संस्कृत महा भागवत का स्वतंत्र रूप से पोतन्न ने तेलुगु में अनुवाद किया था। पोतन्ना का समय ई० १४वीं शताब्दी था। वे बड़े निर्लिप्त स्मार्त ब्राह्मण थे और महेश्वर के आदेश से भागवत का अनुवाद किया और भगवान

राम को समर्पित किया। इससे यह स्पष्ट होता है कि उनके हृदय में शिव और विष्णु में कोई भेदभाव नहीं था।

महाभागवत के नवम स्कंध में श्रीराम की जो कथा आती है उसका अनुवाद पोतन्ना ने किया था। कथा विकास की दृष्टि से यद्यपि इसमें कोई विशेषता नहीं है, तो भी अपने अनुवाद में उन्होंने वाल्मीकि के आधार पर कुछ ऐसी कड़ियाँ प्रस्तुत कीं जिससे मूल भागवत की कथा में शृंखलाबद्धता आ गई है। वैसे उन्होंने अनुवाद में प्रायः मूल भागवत का ही अनुसरण किया। एक बृहत् पुराण का अंश होने के कारण इसकी राम कथा बहुत संक्षिप्त है। तेलुगु भागवत के श्रीराम चरित्र की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:—

१. मूल भागवत में राम के चित्रकूट गमन और भरत मिलाप का उल्लेख भी नहीं है। केवल यह कहा गया है—

यः सत्यपाशपरिवीत पितुर्निदेशं
स्त्रैणस्य चापि शिरसा जगृहेसभार्यः।
राजश्रियं प्रणयिनः सुहृदोनिवासं
त्यक्त्वाययौ वनमसूनिव मुक्तसंग॥ भा. ९-१०-८

इसके बाद सीधे दंडकारण्य प्रवेश और शूर्पणखा प्रसंग की बात कही गई है। (भा. ९-१०-९।) किंतु पोतन्ना ने राम के चित्रकूट गमन का और भरत को राज्यभार सौंपने का भी उल्लेख किया है।

भरतुन् निजपदसेवा, निरतुन् राज्यमुन नुनिचि नृपमणि येक्केन्।
सुरुचिर रुचि परिभावित, गुरुगोत्राचलमु चित्रकूटाचलमुन्॥
(आं. भा. ९-२६७)

२. सीता हरण के बाद उनके वियोग के कारण राम को जो दीनता प्राप्त होती है वह आँध्र भागवत के राम में नहीं दिखाई पड़ती है। उसमें राम को दीन नहीं कहा गया जिस प्रकार मूल भागवत में कहा गया है।

भ्रातावने कृपणवत् प्रियया वियुक्तः।
स्त्री संगिनां गतिमिति प्रथयंश्चचार॥ भा. ९-१०-११

आंध्र भागवत में इतना ही कहा गया है कि राम ने लक्ष्मण के साथ सीता की खोज करते हुए जटायु को देखा और उसकी अंत्येष्टि क्रिया की। (आं. भाग. ९-२७१) अन्य किसी स्थान में भी राम की दीनता हमें नहृ

दिखाई पड़ती जिसका कारण यह है कि पोतन्ना ने राम को जिस परब्रह्म के रूप में देखा उसमें ऐसी मानव सुलभ दीनता दिखाना अपनी ज्ञानमूलक भक्ति-भावना के प्रतिकूल समझा था।

३. मूल भागवत में हनुमान के सागरोल्लंधन, सीता के दर्शन, लंका दहन आदि प्रमुख घटनाओं का उल्लेख नहीं है। इसमें कहा गया है :

सख्यं विधाय कपिभिर्दयिता गतिं तैः
बुद्ध्वाथ वालिनिहते प्लवगेंद्र सैन्यैः
बेलामगात् स मनुजोऽजभवार्चितांघ्रि ॥ भा. ९-१०-१२

पोतन्न ने हनुमान के सागरोल्लंघन, सीता दर्शन, अक्षवध, लंका दहन आदि का भी उल्लेख कर कथा को शृंखलाबद्ध किया। (आं. भाग. ९-२७३-२७८)

४. मूल भागवत में विभीषण के राम की शरण में आने का उल्लेख नहीं मिलता। समुद्र को पार करते ही बानर सेना लंका नगरी में प्रवेश करती है और युद्ध छेड़ देती है। किंतु पोतन्न ने विभीषण के शरण लेने का उल्लेख करके कथा की शृंखला जोड़ी। (आं. भाग. ९-२८९)

५. मूल भागवत में राम युद्ध के सिलसिले में रावण को कुत्ता कहते हैं जो अनुचित लगता है।

रामस्तमाह पुरुषादपुरीषयन्नः।
कांतासमक्षसतापहृता श्ववत् ते ॥ (भा. ९-१०-२२)

किंतु पोतन्न के राम ऐसा अनुचित वाक्य नहीं कहते यद्यपि उसे चुनौती देते हैं। (आँध्र भागवत ९-३००)

३. मूल भागवत में वाल्मीकि रामायण के विपरीत यह कहा गया है कि राम ने स्वयं जाकर सीता को अशोक वाटिका में देखा और उनकी दीन दशा पर व्यथित होकर पुष्पक विमान पर उन्हें चढ़ा लिया। सीता की अग्नि-परीक्षा का इसमें उल्लेख नहीं है। (भा. ९-१०-३०-३२) पोतन्न भी यद्यपि भागवत का अनुसरण करके राम को सीता के पास शिंशिपा वृक्ष के नीचे ले गये हैं तो भी अग्नि-परीक्षा का उल्लेख करके कथा को पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया है (आँ. भाग. ९-३१३)

७. संस्कृत और आँध्र भागवतों में सीता परित्याग का प्रसंग एकसा नहीं है। मूल भागवत में लोकापवाद से डरकर राम सीता को छोड़ देते हैं तो वे वाल्मीकि के आश्रम में रहने लगती हैं:—

पत्या भीतेन सा त्यक्ता प्राप्ताप्राचेलसाश्रमम् (भा. ९-११-१०)
आँध्र भागवत में कहा गया है कि सीता जब सो रही थीं तब राम ने उनसे बिना कहे उन्हें वाल्मीकि के आश्रम में भिजवा दिया। (आँ. भाग. ९. ३४६) कारण तो दोनों में एक ही है।

८. मूल भागवत में राम के हयमेध का वर्णन नहीं है। सीता के पुत्रों के जन्म के बाद यह कहा गया है कि सीता ने उनको वाल्मीकि के हाथों में सौंपकर स्वयं राम का ध्यान करते हुए भूमि के विवर में प्रवेश किया—

मुनौनिक्षिप्य तनयौ सीताभर्त्राविवासिता
ध्यायंती रामचरणौ विवरं प्रविवेश ह ॥ भा. ९-११-१५.

आन्ध्र भागवत में कुश और लव के रामायण सीखने, राम की यज्ञ शाला में जाकर गाने, राम के उन्हें प्रेम करने और वाल्मीकि के सीता को लाकर राम को सौंपने का वर्णन किया गया है। यज्ञ शाला में रामायण का गान करनेवाले कुश और लव को देखकर राम पूछते हैं कि "तुम्हारे माता-पिता कौन हैं?" इस पर वे उत्तर देते हैं कि "हम वाल्मीकि के पौत्र हैं और राम का यज्ञ देखने के लिए आये हैं। यह सुनकर राम मुस्कुराकर कहते हैं कि कल प्रातःकाल तुम अपने पिता को जानोगे और उनको किसी स्थान में आदरपूर्वक ठहराते हैं। दूसरे दिन वाल्मीकि सीता और दोनों पुत्रों के साथ राम के पास आते हैं और सीता की निर्दोषिता निरूपित कर कहते हैं कि "इसे ग्रहण कीजिए।" तब राम पुत्रार्थी होकर ग्रहण करने का विचार करते हैं। और जब वाल्मीकि से पुत्रों के संबंध में पूछते हैं तब सीता उनको (पुत्रों को) वाल्मीकि के हाथों में सौंपकर भूमि में प्रवेश करती हैं। (आं. भा. ९-३५४-३५६)

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि आँध्र भागवत का रामचरित मूल भागवत की अपेक्षा संपूर्ण है यद्यपि संक्षिप्त है।

सोलहवीं शताब्दी

मोल्ल रामायणः—

तेलुगु साहित्य में रंगनाथ और भास्कर रामायणों के अनंतर मोल्ल रामायण विशेष प्रसिद्ध है। इसकी प्रसिद्धि का कारण सरस और सरल शैली तथा संक्षिप्त रूप में स्त्री के द्वारा राम कथा का प्रणयन ही है जो चंपू शैली में है। मोल्ला जैसाकि पाँचवें अध्याय में बताया जा चुका है अनपढ़ कुम्हारिन थी जिसे भगवान गौरीश्वर के वरदान से कविता लिखने की शक्ति प्राप्त

हुई थी। अत: यह कहा जा सकता है कि उन्होंने अपनी रचना अधिकतर तब तक लिखी गई प्रसिद्ध राम कथाओं पर आधारित की थी । पूर्व कवियों को नमस्कार करते हुए उन्होंने वाल्मीकि, वेदव्यास, भारवि, माघ, भवभूति, भाणभट्ट, शिवभद्र, कालिदास, नाचनसोमन्न, भीम, नन्नय, श्रीनाथ, रंगनाथ और तिक्कन्न के नामों का उल्लेख किया है। (मो. रा. पीठिका ७) काव्य रचना का कारण बताते हुए मोल्ला ने कहा है कि "रामचंद्र के आदेश देने पर मैंने यह राम-कथा लिखी जो इह-पर लोकों को बनानेवाली पुण्य कथा है। अत: भक्ति-भावना ही इसकी रचना का कारण है। वस्तु-विकास की दृष्टि से इसकी कोई उल्लेखनीय बात नहीं है। बालकांड से लेकर युद्ध कांड तक की कहानी बहुत ही संक्षिप्त रूप में कही गई है और यथाक्रम कांडों का विभाजन भी किया गया है। कथा संक्षिप्त रूप में होने के कारण बहुत से मुख्य प्रसंगों को भी छोड़ दिया गया है। बालकांड में मारीच और सुबाहु राक्षसों का प्रसंग, भरत के ननिहाल जाने का प्रसंग, अयोध्याकांड में मंथरा का प्रसंग, दशरथ के शाप की बात, उनके मरण का प्रसंग, भरत के अयोध्या में आगमन का प्रसंग, सुन्दरकांड में हनुमान के लंका-प्रवेश के समय लंकिणी नामक राक्षसी का प्रसंग, युद्धकांड में अंगद का दौत्य आदि प्रसंग मोल्ल रामायण में नहीं हैं। इसमें जनश्रुति के अनुसार ऊर्मिला को कुशध्वज की पुत्री माना गया है जबकि वाल्मीकि रामायण में जनक की पुत्री कहा गया है। कैकेयी के वर माँगने का प्रसंग तो अचानक आ जाता है। अयोध्याकांड के प्रारंभ में दशरथ का राम को युवराज बनाने के निश्चय और मंत्रियों को नगर को अलंकृत कराने की आज्ञा देने का उल्लेख करके काव्य परिपाटी के अनुसार रात्रि का वर्णन किया जाता है। तब कहा जाता है कि "उस रात को कैकेयी ने अपनी चेष्टाओं से दशरथ को प्रसन्न कर लिया और कहा कि "नाथ । मुझे इच्छित वर देने का वचन दिया आपने । अब उसे पूरा न करना अच्छा नहीं। आप शायद भूल गये होंगे। अब तो दे दीजिए । भरत को राजा बनाइये और राम को चौदह साल के लिए वन में भेज दीजिये।" इस प्रसंग पर आँध्र महाभारत के रामोपाख्यान का प्रभाव दिखाई पड़ता है जहाँ कैकेयी एकांत में प्रणय पूर्वक दशरथ से वर माँग लेती है। (आं. महा भा. ३-६-२९९) अरण्यकांड में शूर्पणखा का प्रवेश वाल्मीकि रामायण के अनुसार है, किंतु बहुत संक्षेप में है। किष्किंधा और सुन्दर कांडों की कथा भी वाल्मीकि रामायण के अनुसार है। रंगनाथ और भास्कर रामायणों में युद्धकांड में जो अवाल्मीकीय प्रसंग हैं उनमें कालनेमि

का वृत्तांत, रावण के पाताल होम का वृत्तांत, अंगद के मंदोदरी के केश पकड़कर कर खींचने का वर्णन, विभीषण का कैकेयी के साथ मिलन आदि इसमें भी हैं, किंतु संक्षिप्त रूप में। शेष सारी कथा वाल्मीकि रामायण के अनुसार चली है।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि राम कथा के विकास में मोल्ल रामायण का विशेष मौलिक योगदान नहीं है।

पद्य, गद्य संख्या:—पीठिका—२५, बालकांड १००, अयोध्याकांड ४३, अरण्यकांड—७५, किष्किधा कांड २७, सुन्दरकांड २४९, युद्धकांड १-१२१, २-९३ और ३-१३८।

रामाभ्युदय—

अय्यलराजु रामभद्र कवि का यह महाकाव्य या प्रबंध काव्य है जो प्रचलित राम कथा के आधार पर चंपू शैली में लिखा गया है। इसमें कवि ने प्रबंध शैली में राम कथा का वर्णन किया है। इसकी कथा रामायण के समान कांडों में विभक्त न होकर आश्वासों में विभक्त है। महा प्रबंध के लक्षण के अनुसार इसमें आठ आश्वास हैं और अन्य प्रबंधों की भाँति चंपू पद्धति को अपनाया गया है। अत: आश्वासों के क्रम से इसकी कथावस्तु के विकास पर विचार किया जाता है।

प्रथमाश्वास—

गद्य पद्य संख्या २१४। प्रारंभ में प्रचलित काव्य परिपाटी के अनुसार कृतिपति का वंश वर्णन, कवि का परिचय और षष्ठ्यंत (कृतिपति के वर्णन से भरे षष्ठी विभक्ति में अंत होनेवाले पद्य) दिए गये हैं। ये षष्ठ्यंत पद्य बहुत कुछ उसी ढंग के होते है जिस ढ़ंग के कालिदास के "रघुवंश' के प्रारंभिक पद्य हैं जिनमें रघुवंश के महाराजों की विशिष्टताओं का वर्णन किया गया है। उसके बाद अयोध्या नगर और उसमें चारों वर्णों के लोगों का वर्णन किया गया है। अयोध्या के राजा दशरथ का परिचय देकर वसंत ऋतु में उसके अपनी रानियों कौसल्या, कैकेयी और सुमित्रा के साथ उद्यान विहार का वर्णन किया गया है जो किसी रामायण में नहीं मिलता है। यह प्रबंधात्मक शैली का—जो उस समय प्रचलित थी—प्रभाव है। उद्यान विहार में पुष्पापचय, जल-क्रीड़ा आदि प्रसंग हैं। इसकी समाप्ति के साथ प्रथमाश्वास भी समाप्त हो जाता है।

द्वितीयाश्वास—

गद्य, पद्य संख्या १४२। दूसरे दिन दशरथ अपनी सभा में अनेक

राजाओं, कवियों और पंडितों, गायकों आदि से युक्त शोभित हैं तब कुछ बोय जाति (आँध्र की एक पर्वतीय जाति) के लोग सभा में आकर बघनखें, शहद, कस्तूरी, हरिण, कुछ फल आदि की भेंट महाराज को देते हैं और कहते हैं कि हे महाराज ! आप की कृपा से हम लोग बड़े सुखी हैं। हम आपके पुराने सेवक हैं। कभी हमारी सेवा भी ग्रहण कीजिए। हमारी प्रार्थना मानकर आखेट के लिए जंगल में चलिए और हमारी धनुर्विद्या का कौशल देखिये। आपकी प्रशंसा पाकर हमारी विद्या सफल होगी। इसके अलावा आप कई बाघों और जंगली सूकरों का भी शिकार कर सकते हैं जो बागों को नुकसान पहुँचाते हैं और गायों को मार डालते हैं। इसके साथ-साथ हम लोगों के क्रीड़ा विनोद भी आप देख सकते हैं। (रामाभ्युदय २-४-१७)। बोय लोगों की ये बातें सुनकर महारज के मन में शिकार खेलने की इच्छा पैदा होती है और वे दूसरे ही दिन पर्याप्त सेना और आवश्यक सामग्री लेकर आखेट के लिए चल पड़ते हैं। उस आखेट के सिलसिले में दशरथ एक मुनिपुत्र को, जो अंधकार में नदी में घड़ा डुबोकर पानी भर रहा था, हाथी के धोखे में मार डालते हैं जिसके परिणामस्वरूप उनको उसके माता-पिता से शाप मिलता है कि तुम भी हमारी तरह पुत्र-शोक में मर जाओगे। यह शाप सुनकर दशरथ को शोक की अपेक्षा आनंद अधिक हुआ, इसलिए कि मुनि का शाप अमोघ है और उसको सत्य सिद्ध करने के लिए मेरे पुत्र होगा। इसके अनन्तर वे राजधानी को लौटकर सुखपूर्वक राज्य करते हैं।

एक दिन दशरथ के मन में पुत्र-प्राप्ति के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ करने की इच्छा पैदा होती है और वे वशिष्ठ और वामदेव आदि मुनियों का परामर्श लेते हैं तो वे वन में तपस्या करनेवाले ऋष्यश्रृंग की बात कहते हैं और उसे बुलाकर यज्ञ संपन्न करगे की सलाह देते हैं। तब दशरथ मंत्रियों से सलाह करके अनेक सुन्दर वारांगनाओं को भेजते हैं कि ऋष्यश्रृंग को मोहित करके ले आयें। वारांगनायें वन में जाकर अपनी सुन्दरता और विलास विभ्रमों से ऋष्यश्रृंग को मोहित करके ले आती हैं। मार्ग में जहाँ रोमपाद का राज्य पड़ता है वहाँ ऋष्यश्रृंग के प्रवेश के कारण वर्षा होती है और अनावृष्टि दूर हो जाती है। इससे प्रसन्न होकर रोमपाद ऋष्यश्रृंग के साथ अपनी कन्या शांता का विवाह करता है। इन घटनाओं के सन्निवेश पर 'रघुवंश" का प्रभाव है। उसमें भी पहले आखेट आदि का वर्णन है। (रघुवंश ९)। यह कथा प्रचलित वाल्मीकि रामायण की कथा से थोड़ी भिन्न है। वाल्मीकि रामायण में ऋष्यश्रृंग को वन

से लानेवाला रोमपाद हैं और उसके यहाँ से दशरथ बुला ले जाते हैं। उपरोक्त कथा में रामभद्र का मौलिक परिवर्तन दिखाई पड़ता है।

तृतीयाश्वास—

इसकी गद्य पद्य संख्या १६० है। इस आश्वास में दशरथ के पुत्रकामेष्टि यज्ञ से लेकर उनके पुत्रों की बाल-लीलाओं और विद्याभ्यास तक की कथा वर्णित है। इसमें उल्लेखनीय परिवर्तन यह है कि इसका पायस विभाजन वाल्मीकि के अनुसार न होकर पद्मपुराण के अनुसार है। कौसल्या और कैकेयी को आधा-आधा पायस मिल जाता है और वे दोनों सुमित्रा को बुलाकर प्रेम से अपने अपने भाग का आधा-आधा देती हैं। (प. ७९)

चतुर्थाश्वास—

गद्य पद्य संख्या १८०। इसमें राम और लक्ष्मण के विश्वामित्र के साथ-साथ यज्ञ रक्षा के लिए जाने से लेकर उनके विवाह और अयोध्या में लौटने तक की कथा वर्णित है। इसमें कोई परिवर्तन नहीं है। हाँ, राम विवाह का प्रसंग आँध्र रीति के अनुसार वर्णित है।

पंचमाश्वास—

गद्य पद्य संख्या ३३१। इसमें राम के राज्य निर्वासन से लेकर सुग्रीव के राज्याभिषेक तक की कथा है अर्थात् अयोध्या, अरण्य और किष्किधा कांडों की कथा इसमें वर्णित है। इसमें भी कोई परिवर्तत नहीं।

षष्ठाश्वास—

गद्य पद्य संख्या १५९। इसमें राम के माल्यवंत पर्वत पर निवास से लेकर हनुमान के द्वारा लंका दहन तक की कथा है। इसमें स्वयंप्रभा का प्रसंग नहीं मिलता। इसमें सीता की चरित्रगत विशेषता यह है कि सीता पहले रावण को "भाई" कहकर संबोधित करती है और बाद में उनकी निंदा करती है। रावण क्रोध में आकर सीता को मारना चाहता है किंतु स्वयं लज्जित होकर उस प्रयत्न से विरत हो जाता है। वाल्मीकि रामायण के समान धान्यमालिनी उसे नहीं रोकती।

सप्तमाश्वास—

गद्य पद्य संख्या २९१। इसमें हनुमान के राम के पास लौट जाने से लेकर अंगद के दौत्य और युद्ध के प्रारंभ तक की कथा वर्णित है। इसमें विभी-षण के राम की शरण में जाने के पहले अपनी माता से अनुमति लेने का उल्लेख

है। हाँ, रंगनाथ रामायण के समान विस्तृत वर्णन नहीं। सेतु के द्वारा सागर पार करने के बाद इसमें राम के हनुमान से कहने पर देवों और गंधर्वों की स्त्रियों को रावण के कारागार से छुड़ाने का उल्लेख मिलता है। रावण वध के पहले यह बात कुछ असंगत सी जँचती है।

अष्टमाश्वास—

इसकी गद्य पद्य संख्या २४९ है। इसमें राम और रावण के युद्ध से लेकर रावण वध और राम के राज्याभिषेक तक की कथा मिलती है। इसमें रंगनाथ रामायण के समान त्रिकूट पर्वत की उत्पत्ति की कथा, और रावण के देवताओं को जीतने का वर्णन है। रावण के देवताओं को जीतने की बात वाल्मीकि रामायण में उत्तर कांड में आती है।

इस प्रकार इसमें अधिकांशतः वाल्मीकि का ही अनुसरण किया गया है यद्यपि तब तक रंगनाथ रामायण के द्वारा प्रचलित कुछ बातों का भी समावेश किया गया है।

राघव पांडवीय

यह पिंगलि सूरनार्य का श्लेष काव्य है। इसमें श्लेष द्वारा रामायण और भारत की कथा कही गई है। तेलुगु में ऐसे काव्यों को द्वयर्थी काव्य कहते हैं। तेलुगु साहित्य में ऐसे काव्यों का प्रवर्तन इन्होंने ही किया था। अपने आश्रय-दाता "आकुवीडु" के प्रभु पेद वेंकटाद्रि ने इनको एक दिन सभा में बुलाकर राघव पांडवीय नामक श्लेष काव्य लिखकर भगवान विरूपाक्ष को समर्पित करने को कहा। इस पर सूरनार्य ने इस ग्रंथ की रचना की और विरूपाक्ष को समर्पित किया। यह ग्रंथ प्रबंध पद्धति पर लिखा गया है जिसके प्रवर्तक कृष्णदेव राय के राज्य-कवि अल्लसानि पेद्दन थे। ये प्रबंध संस्कृत के महाकाव्य की कोटि में आते हैं और चंपू पद्धति में लिखे जाते हैं और कवि की कवित्व शक्ति का परिचय देते हैं। उस समय प्रबंध-निर्माता ही सच्चे कवि समझे जाते थे। "राघव पांडवीय" चार आश्वासों में विभाजित प्रबंध है। प्रथम आश्वास की कथा अयोध्या और दशरथ के वर्णन से प्रारंभ होती है। भारत के अर्थ में हस्तिनापुर और धृतराष्ट्र का वर्णन आता है जिस पर प्रकाश डालना अभी अनावश्यक है। राम कथा के वस्तु विकास की दृष्टि से इसमें प्रथम उल्लेखनीय बात यह है कि इसका प्रारंभ दशरथ के उस आखेट से होता है जिसमें उन्हें शाप मिला था जिसका जिक्र साधारणतः अयोध्या कांड में राम के बन चले जाने के बाद किया

जाता है। उस आखेट में मुनि के पुत्र को दशरथ अज्ञान से मार डालते हैं जिस पर उनको उसके माता-पिता के द्वारा शाप मिलता है कि जब तुम्हारे पुत्र को भी संकट प्राप्त होगा तभी तुम्हारी मृत्यु होगी। तब तक दशरथ निस्संतान थे। इस शाप से उनको इतना तो आश्वासन मिलता है कि मेरे संतान तो होगी ही। इस पर भी रामभ्युदय के समान "रघुवंश" का प्रभाव है। "रघुवंश" महाकाव्य होने के कारण रामभद्र कवि और सूरनार्य ने अपने काव्य के अनुकूल जानकर इस घटना योजना में उसका प्रभाव ग्रहण किया है। इसके अनंतर दशरथ अपने गुरु वशिष्ठ की अनुमति से ऋष्यशृंग को बुलवाकर पुत्रेष्ठि यज्ञ करते हैं जिसमें मिले पायस का विभाजन कौसल्या और कैकेयी में आधा आधा कर देते है। फिर उनसे कहते हैं कि सुमित्रा को अपने-अपने भाग में से थोड़ा-थोड़ा देना। वे ऐसा ही करती हैं (राघवपांडवीय १-६३)। इसमें हरि भूलोक की रक्षा करने के लिए उन तीनों के गर्भ में प्रविष्ट होते हैं और यथा समय राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न का जन्म होता है। इसके साथ प्रथम आश्वास पूरा हो जाता है। महाभारत की कथा भी कौरवों और पांडवों के जन्म के साथ समाप्त होती है। इसकी गद्य पद्य संख्या ७८ है।

द्वितीयाश्वास में विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा, मिथिला में शिव धनुषभंग, परशुराम का गर्व भंग आदि प्रसंग हैं जो काव्य प्रधान दृष्टि से वर्णित हैं। वस्तु विकास की दृष्टि से इसमें कोई नवीनता नहीं है। इसकी गद्य पद्य संख्या ११७ है।

तृतीय आश्वास में राम का राज्याभिषेक करने के दशरथ के निश्चय से लेकर लंका में हनुमान के सीता-दर्शन तक की कथा बहुत संक्षेप में कही गई है। कहीं अवाल्मीकीय प्रसंग नहीं आये हैं। इसमें अयोध्या, अरण्य और किष्किंधा कांडों और सुन्दर कांड की थोड़ी सी कथा का समावेश किया गया है। इसमें भी वस्तु विकास की दृष्टि से कोई नवीनता नहीं है। इसकी गद्य पद्य संख्या १४५ है।

चतुर्थ आश्वास में हनुमान के द्वारा सीता दर्शन से लेकर रावण वध और राम के राज्याभिषेक की कथा वर्णित है। इसमें भी कोई नवीनता नहीं है। इसकी गद्य पद्य संख्या २६५ है।

इस प्रकार समूचे काव्य पर जब दृष्टिपात करते हैं तो विदित होता है कि बालकांड के पायस विभाजन के प्रसंग को छोड़कर अन्य सब प्रसंग वाल्मीकि रामायण के अनुसार ही हैं जिनमें कवि का कोई मौलिक योग नहीं है। हाँ

कवि का पांडित्य इसमें अधिक प्रस्फुटित हुआ है और वही इसकी रचना का उद्देश्य है। यही कारण है कि इसमें भाव पक्ष की अपेक्षा कला पक्ष अधिक प्रधान हो गया है।

सुग्रीव विजय

कंदुकूरि रुद्रकवि की यह रचना, जैसाकि पहले दिखाया जा चुका है ई. १६वीं शताब्दी में हुई थी। नाम से ही प्रकट होता है कि यह रामायण की आंशिक कथा को लेकर लिखी गई थी। यह यक्ष गान शैली में है जिसके बारे में तीसरे अध्याय में बताया गया है। इसमें सीता का अन्वेषण करनेवाले राम और लक्ष्मण को सुग्रीव के देखने से लेकर वाली के वध के अनंतर सुग्रीव के राज्याभिषेक तक की कथा गृहीत है। कथा-विकास की दृष्टि से इसमें कोई नवीनता नहीं है। कवि ने इसमें वाल्मीकि का ही अनुसरण किया है। किंतु देशी ढंग में लिखे गये यक्ष गानों में सर्व प्रथम होने से इसका महत्व है। गीत पद्धति में लिखे जाने के कारण इसका साधारण जनता में बहुत प्रचार हुआ। इसका साहित्यिक सौंदर्य साधारण कोटि का है।

सत्रहवीं शदाब्दी—

रघुनाथ रामायण

यह तंजाऊर के महाराज रघुनाथ नायक की लिखी रामायण है। यह पूरी रामायण अब उपलब्ध नहीं है। केवल बालकांड का थोड़ा अंश प्राप्त है जिसे आँध्र साहित्य परिषद् से चार आश्वासों में प्रकाशित किया गया है। इसकी रचना वाल्मीकि रामायण के अनुसार ही हुई है। इसका क्रम यों है—

प्रथमाश्वास में १३२ गद्य और पद्य हैं। मंगलाचरण में राम, सीता, हनुमान, शंकर, पार्वती, ब्रह्मा, सरस्वती आदि की वंदना करने के बाद प्राचीन काल के संस्कृत और तेलुगु के कवियों का पुण्यस्मरण किया गया है। कवि, कुकवियों का तिरस्कार भी करते हैं। तदनंतर ग्रंथ रचना का कारण बताते हुए कवि कहते हैं कि "एक दिन रात के चौथे पहर में भगवान राम ने मुझे दर्शन देकर आदेश दिया कि नवरस युक्त रामायण की रचना नाना प्रकार के कथा प्रसंगों से युक्त और मार्ग-पद्धति में करके मुझे समर्पित करो। इससे तुम्हारा इह और पर लोक में कल्याण होगा। कवि इस आदेश के अनुसार सभा में रामायण की रचना करने का निश्चय कर लेते हैं। उसके बाद षष्ठ्यंत लिखे जाते हैं जिसकी प्रथा प्रबंध युग से चल पड़ी यद्यपि इनका प्रारंभ

सोमनाथ और नन्नेचोड ने बहुत पहले ही किया था।[1] तदुपरांत वाल्मीकि रामायण के अनुसार वाल्मीकि-नारद संवाद, नारद का संक्षेप में पूरी रामायण का गान, ब्रह्मा और वाल्मीकि समागम आदि प्रसंगों का वर्णन किया गया है। इसमें नारद राम राज्य तक की कथा का वर्णन करके बाद में कहते हैं कि अब श्रीराम आगे ११००० वर्ष तक राज्य करके ब्रह्म लोक को प्राप्त करेंगे। (रघु. रा. १-९६) जिससे विदित होता है कि वाल्मीकि और नारद का मिलन तब हुआ था जब रावण वध के बाद राम राज्य कर रहे थे। इतना कहकर रामायण की महिमा का वर्णन किया गया है। इसके बाद क्रौंच वध का प्रसंग बड़े विस्तार के साथ वर्णित है जो वाल्मीकि में संक्षेप में पाया जाता है। तब ब्रह्मा के आदेश देने का वर्णन है। इसके साथ प्रथमाश्वास समाप्त हो जाता है। द्वितीयाश्वास में १९२ गद्य पद्य हैं। इसका प्रारंभ कोसल देश के वर्णन से होता है। परंपरागत काव्य-पद्धति से अयोध्या, उसके राजा दशरथ, वहाँ के चारों वर्णों के लोगों, वेश्याओं और अयोध्या के वैभव आदि का वर्णन, दशरथ की अपनी पुत्रहीनता पर चिंता और सुमंत के ऋष्यश्रृंग का चरित्र सुनाने तक की कथा वर्णित है। इसमें कथा-विकास की दृष्टि से कोई विशेषता नहीं है। तृतीय आश्वास में १११ गद्य पद्य हैं जिनमें दशरथ के ऋष्यश्रृंग को अयोध्या लाने, अश्वमेध और पुत्रेष्टि यज्ञ करने तक की कथा आई है। इसमें एक नई बात यह है कि दशरथ के अश्वमेध यज्ञ में जनक भी आये थे (रघु. रा. ३-४९)। चौथे आश्वास में ९६ गद्य पद्य हैं जिनमें ब्रह्मा को लेकर देवताओं का श्वेत द्वीप में विष्णु के पास जाने की बात कही गई है और उसके बाद २० पद्यों में श्वेत द्वीप का वर्णन है जिसके बाद का अंश अप्राप्त है। यहीं तक रघुनाथ रामायण का पाठ मिलता है। इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि रघुनाथ नायक ने वाल्मीकि रामायण के आधार पर ही अपनी रामायण की रचना की होगी यद्यपि नये प्रसंगों को भी जोड़ा होगा। प्राप्त कथा में जो वर्णन मिलते हैं उनके आधार पर अनुमानतः यह कहा जा सकता है कि पूरे ग्रंथ की रचना विस्तृत वर्णनों से भरी होगी। इसके वर्णनात्मक सौंदर्य पर आगे विचार किया जायगा।

वरदराजु रामायण

यह रामायण भगवान वेंकटेश्वर के स्वप्नादेश से कट्टा वरदराजु के

---

१. श्री के० नारायण राव—आंध्र वाङ्मय चरित्र संग्रह—पृ० ७३।

द्वारा द्विपद छंद में लिखी गयी है। इन्होंने भगवान के स्वप्नादेश की बात अपनी सभा में कही तो सदस्यों ने कहा कि पूर्व काल में भगवान वेंकटेश्वर पृथ्वी में जन्म लेकर "बोय" कुल (एक पर्वतीय जाति) में पैदा हुए। वाल्मीकि के द्वारा रचित अपनी कथा सुनकर प्रमुदित हुए। अब सूर्यवंश में आपके रूप में पैदा होकर आप ही को उन्होंने वह कथा लिखने का आदेश दिया है। अपने वंशज की लिखी अपनी कथा सुनना श्रीराम के लिए प्रीतिकारक होता है। पहले पुत्रों के द्वारा ही तो उन्होंने अपनी कथा सुनी। (अवतरण—पं० १५०-१६०) इन पंक्तियों से यह विदित होता है कि वरदराजु भगवान वेंकटेश्वर, भगवान श्रीराम और अपने को अभेद मानते थे।

भगवान वेंकटेश्वर का आदेश था कि सरल शैली में वाल्मीकि के अनुसार राम की कथा द्विपद छंद में सरस ढंग से लिखो। तुम्हारे अतिरिक्त और कौन यह काव्य लिख सकता है? (अवतरण—पं० १२२-१३०) इसके अनुसार सारी रचना वाल्मीकि के अनुसार ही हुई है यद्यपि कहीं-कहीं कुछ विशेषताएँ पाई जाती हैं।

बालकांड:—

(१) इसमें राजा जनक भी पुत्रेष्टि यज्ञ में निमंत्रित किये जाते हैं। (व. रा. बा. पं. १३६५)।

(२) प्राजापत्य पुरुष दशरथ को पायस की थाली यह कहकर देता है कि ब्रह्मा ने आपको यह देने के लिए कहा। (बा. पंक्तियाँ १६०६-१६०७)।

(६) सुमित्रा दुबारा हाथ फैलाती है तो दुबारा उसे पायस दिया जाता है (बा. पं. १६३०) पायस विभाजन वाल्मीकि रामायण के अनुसार ही हुआ है।

(४) वाल्मीकि रामायण में राम के जन्म दिन का नाम उल्लिखित नहीं है। इसमें इतना ही कहा गया है:—

ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ
नक्षत्रे दिति दैवत्ये स्वोच्च संस्थेषु पंचसु
ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्यताविंदुना सह
प्रोद्यमाने जगन्नाथं सर्वलोक नमस्कृतम्
कौसल्याजनयद्रामं सर्वलक्षण संयुतम् ॥

(बाल० १८-७-९)

वरदराजु ने दिन का नामोल्लेख भी किया और राम का जन्म बुधवार के दिन बताया जैसा कि भास्कर रामायण में कहा गया है (व. रा. बा. पं. १६९२) ।

(५) वाल्मीकि रामायण में यद्यपि अहल्या के पाषाण बनने का उल्लेख नहीं है किंतु फिर भी वरदराजु ने रंगनाथ और भास्कर रामायण के अनुकरण पर उसके शिला बनने का उल्लेख किया है ।

(६) इसमें इंद्र देवताओं से कहता है कि गौतम जब उग्र तपस्या कर रहे थे तो उनकी तपस्या में विघ्न डालने के लिए मैंने अहल्या का सतीत्व भंग किया और फलस्वरूप गौतम का शाप पाया । इसमें वरदराजु ने रंगनाथ रामायण और भास्कर रामायण के कथनों का समन्वय कर दिया । (व. रा. बा. पं. ३६७७-३६८१) ।

(७) किंतु इसमें राम के शिला का स्पर्श करने का वर्णन नहीं है । क्योंकि वह अदृश्य रही । राम के उसके पास आते ही अहल्या अपने पूर्व शरीर को पाकर सामने आ जाती है ।

इनकुलोत्तमुलु रा नेट्टि चित्रंबो
मरगु गानुन्न धुममु वाय द्रोचि
करमोप्पु पवन सख ज्वाल यनग
व्याकीर्णमैन नीहारंबु द्रोचि
रेकमिंचिन चंद्र रेखयो यनग
जलमुललो प्रसिच्छाय गन्पट्टु
जलजबांधवु दीप्ति सरणियो यनग
नलघु तपस्विनि यैन यहल्य
यलनाडु वोंदु गौतममुनि शापंबु
पोबेट्टि तनदैन पूर्ववेषमुन
पूबोणियै वच्चि पोड कट्टुटयुनु"

(ब. रा. पं. ३७००-३७१२)

अर्थात्—जाने कैसी विचित्रता है ! राम और लक्ष्मण के आते ही शापमुक्त होकर अहल्या इस प्रकार उनके सामने आ गई मानो प्रच्छन्न अग्नि धुएँ को हटाकर प्रकट हुई हो, मानो व्याप्त नीहार को दूर करते हुए उदित होनेवाली चंद्र रेखा हो और मानो जल में प्रतिबिंबित होनेवाले सूर्य की कांति हो । इसमें उत्प्रेक्षा के द्वारा वर्णन की शैली भी दर्शनीय है ।

(८) इसमें राम के विवाह का बहुत ही विस्तृत वर्णन है जिसमें आँध्र देश के आचार के अनुसार राम के सीता के कंठ में मंगलसूत्र बाँधने का उल्लेख किया गया है जो और किसी तेलुगु रामायण में नहीं पाया जाता है। (बा. पृ. २१८.२२६)

कांडांत की पुष्पिका में कवि ने स्वयं इसे वाल्मीकि रामायण कहा है जिसका अभिप्राय है कि यह वाल्मीकि के अनुसार तेलुगु में अनूदित रामायण है।

अयोध्याकांड में कोई उल्लेखनीय वस्तुगत विशेषता नहीं है।

अरण्यकांड—

इसकी कथा में भी वस्तु विकास से संबंध रखनेवाली किसी विशेष नई बात का समावेश नहीं है। हाँ, राम के पंचवटी प्रवेश के समय जटायु भी साथ था, ऐसी बात कही गई है जो अन्य रामायणों में नहीं है। (अरण्यकांड पृ. ५२ पंक्तियाँ १२१७-१२१८) शेष सब प्रसंग वाल्मीकि के अनुसार हैं।

किष्किधाकांड की कथा भी वाल्मीकि रामायण के अनुसार विस्तृत वर्णनों के साथ चली है।

सुन्दरकांड—

इसमें सीता से तिरस्कृत होकर रावण रंगनाथ रामायण के समान अपना चंद्रहास खड्ग उसे मारने के लिए निकालता है (व. रा. सुं. पं. १८७५-१८७६) यह वाल्मीकि रामायण में नहीं है।

युद्धकांड—

इसकी कथा प्रायः वाल्मीकि के अनुसार है। रंगनाथ और भास्कर रामायण के अवाल्मीकीय प्रसंग इसमें नहीं हैं।

इस प्रकार इस रामायण में वाल्मीकि का अधिकाधिक अनुसरण किया गया है।

उत्तर रामायण (कंकंटि पापुराजु)

इसकी रचना भी वाल्मीकि रामायण के उत्तरकांड के आधार पर की गई है। हाँ, रंगनाथ रामायण के उत्तर कांड के प्रायः सब वाल्मीकीय प्रसंग इसमें भी हैं। उनके अलावा अंत में एक प्रसंग है जो अवाल्मीकीय है। वह है विष्णु और लक्ष्मी के प्रणय-कलह का प्रसंग। राम के अवतार की समाप्ति के बाद जब वे बैकुंठ चले जाते है तो वहाँ लक्ष्मी पहले ही पहुँच गई

थीं। विष्णु उससे झूठा क्रोध दिखाते हुए कहने लगने हैं कि तुम बड़ी अच्छी हो कि भरी सभा में मेरा अपमान करके पृथ्वी में समा गईं। तुम्हारा चेहरा भी नहीं देखना चाहिए। तब लक्ष्मी हाथ जोड़कर कहने लगती है कि आपके साथ मैं तर्क नहीं कर सकती। किंतु कुल लोगों के मेरी निंदा करने के कारण आपने मुझे वन में भिजवा दिया और भरी सभा में मेरे पातिव्रत्य का प्रमाण दिखाने को भी आपने इसीलिए कहा कि मैं आपसे पहले ही यहाँ पहुँच जाऊँ। अब उन बातों की क्या आवश्यकना है। अब तक इतने कष्ट मैंने सहे। अब फिर मेरा दोष निकालने के लिए ही क्या आप यहाँ आये हैं? यह कहकर वे अपना मुँह फेर लेती हैं। तब विष्णु मुस्कुराते हुए उससे क्षमा माँगते हैं और उसे गले लगाते हैं। यह प्रसंग काव्योत्कर्ष को दृष्टि में रखकर कल्पित किया गया है। रंगनाथ रामायण के समान इस पर भक्ति तत्व की दृष्टि से अध्यात्म रामायण का प्रभाव है विशेषकर राम के वैकुंठधाम पहुँचने और शिव के द्वारा विष्णु की स्तुति में। तिक्कन्न के निर्वचनोत्तर रामायण और इन दोनों उत्तर रामायणों में यह सबसे महत्वपूर्ण अंतर है कि पहली रामायण में जहाँ राम का धीरोदात्त आदर्श राजा का उज्ज्वल है वहाँ इन दोनों में उसमें भगवत्तत्व का भी पर्याप्त समावेश हो गया है। तिक्कन्न के निर्वचनोत्तर रामायण में उन सब प्रसंगों को प्रायः छोड़ दिया गया है जिनमें राम के विष्णुत्व पर अधिक प्रभाव पड़ता है।

वस्तु विकास की दृष्टि से इसमें उल्लेखनीय बात यह है कि इसमें राम और सीता के उद्यान विहार, जल क्रीड़ाएँ आदि का वर्णन निर्वचनोत्तर रामायण से भी अधिक हुआ है जिस पर आनंद रामायण के वर्णनों का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इस पहलू पर अन्यत्र विचार किया जायगा।

रामायण वचन

इसके लेखक श्यामराय कवि थे जो १८ वीं शती के प्रथम चरण में वर्तमान थे [१] इन्होंने अपने कृतिपति प्रसिद्ध वैश्य सुब्बराय की इच्छा पर इस ग्रंथ की रचना गद्य में की थी। किंतु यह ग्रंथ अब अप्राप्त है। इसके तीन कांडों की बाल, अयोध्या और अरण्य कांड, हस्तलिखित प्रतियाँ आंध्र साहित्य परिषद् में मिलती हैं। (३३९१, १६२ और ३४१ संख्यावाली) इसकी कथा तो प्रायः वाल्मीकि के अनुसार है।

---

१. श्री नि० वेंकटराव—सदर्न स्कूल इन तेलुगु लिटरेचर—द्वितीय संस्करण पृ० ३९३।

अठारहीं शताब्दी

एकोजी रामायण

तंजाऊर के महाराष्ट्र राजा भोसल एकोजी (सन् १७३५-१७३६) ने इस रामायण की रचना की है। तेलुगु भाषा में जो चार द्विपद रामायणें हैं उनमें एक यह भी है। इसकी रचना द्विपद छंद में हुई है जो गाने के लिए अधिक उपयुक्त है। तंजाऊर के नायक राजाओं के समय से परंपरा से चली आनेवाली संगीत और नृत्य-प्रियता के कारण महाराष्ट्र शासकों ने भी प्रायः इसी संगीत और नृत्योपयुक्त द्विपद छंद को अपने साहित्य के निर्माण के लिए चुना है। यह ताड़पत्र ग्रंथ अब तक अप्रकाशित है। इसमें कुल २०१ पत्र हैं।

इस रामायण की रचना वाल्मीकि के अनुसार संक्षेप में छः काण्डों में की गई है। कवि ने प्रारंभ में स्वयं कहा है कि वाल्मीकि ने जैसी राम-कथा लिखी वैसी ही कथा सार रूप में द्विपद छन्द में लिखी जा रही है। अतः कथा विकास की दृष्टि से प्रायः इसमें कोई विशेषता नहीं पाई जाती। हाँ, कुछ ऐसी थोड़ी सी बातें भी इसमें पाई जाती हैं जो वाल्मीकि में नहीं मिलतीं, किंतु इसके पूर्व की रंगनाथ रामायण में मिलती हैं। उनको भी संभवतः परम्परागत मान्यता के कारण इसमें स्थान दिया गया हो। अब यहाँ इसमें पाये जानेवाले अवाल्मीकीय प्रसंगों का उल्लेख किया जाता है।

बालकांड—

(१) रंगनाथ रामायण के समान इसमें भी राम के चरण रज के स्पर्श से अहल्या के उद्धार की बात कही गई है। (पत्र १८. ए. बी.)

अयोध्याकांड—

(१) राम वनवास के लिए निकलते समय माता-पिता से कहते हैं कि चौदह वर्ष का समय चौदह घड़ियों के समान बिताकर मैं लौट आऊँगा। (पत्र ५५ बी.)

(२) शृंगवेर पुर में गंगा के किनारे लक्ष्मण चौदह वर्षों तक निद्रा छोड़कर राम की रक्षा करने की प्रतिज्ञा करते हैं। (पत्र ६२ बी.)।

(३) रंगनाथ रामायण के समान इसमें भी लक्ष्मण सुमंत्र के द्वारा कठोर बातों का संदेशा दशरथ को भेजते हैं। किंतु राम उन्हें मना करके सुमंत्र से कहते हैं कि लक्ष्मण की ये बातें महाराज को नहीं सुनाना। (पत्र ६४ ए.)।

अरण्यकांड—

अनसूया के सीता को अंगराग देने का उल्लेख नहीं मिलता। केवल आभूषण और कुछ फूल देने का उल्लेख है। (पत्र ६८ बी.)

किष्किधाकांड—

हनुमान रंगनाथ रामायण के समान इसमें भी राम और लक्ष्मण से मिलने के लिए आते समय अपने हाथ में एक फल ले जाता है और राम को इस प्रकार देता है कि मानों कह रहा हो कि इसी प्रकार सीता का शिरोरत्न लाकर दूँगा। (पत्र ८० ए.)

सुन्दरकांड—

(१) लंका प्रवेश के समय हनुमान लंकिणी को मार डालता है। (पत्र ९३ ए.)

(२) रंगनाथ रामायण के समान इसमें भी रावण सीता को चंद्रहास लेकर मारना चाहता है किंतु मंदोदरी उसे रोकती है। (९६ ए.)।

युद्धकांड—

(१) इसमें रंगनाथ रामायण के समान रावण के विभीषण पर चरण-प्रहार करने का उल्लेख है। (पत्र १२९ ए.)।

(२) अतिकाय रंगनाथ रामायण के समान इसमें भी राम के निर्गुण रूप का वर्णन गूढ़ शब्दों में करता है। (पत्र १७६-१६८ बी.)।

(२) रंगनाथ रामायण के समान इसमें भी कहा गया है कि पुष्पक विमान में चाहे कितने भी लोग बैठें, किंतु थोड़ी-सी जगह बची रहती है। (पत्र १९५ ए.)।

शेष कथा वाल्मीकि रामायण के ही अनुसार है यद्यपि संक्षेप में है। इसकी महत्ता इसलिए है कि यह एक महाराष्ट्र राजा से लिखी गई है जिसकी मातृभाषा तेलुगु नहीं है। इसकी भाषा बहुत ही मँजी हुई और शैली प्रायः सुन्दर है।

अच्च तेलुगु रामायण

कूचिमंचि तिम्मकवि की यह रचना हमारे आलोच्य काल के अन्त में आती है। यह बहुत हो संक्षिप्त रूप में लिखी गई है। इसकी विशेषता भाषा की दृष्टि से है। यह संपूर्ण रचना ठेठ तेलुगु में लिखी गई है। इसके पहले ऐसा प्रयत्न किसी से नहीं किया था। कवि ने पीठिका में बताया है कि एक

दिन भगवान शंकर ने उनको स्वप्न में दर्शन दिये और कहा कि इसके पहले तुमने रुक्मिणी परिणय, नीला सुंदरी परिणय आदि काव्य लिखकर मुझे समर्पित किये। अब राम की कथा लिखकर मुझे समर्पित करो। पूर्वजों ने कहा कि नामों और उपाधियों का अनुवाद नहीं किया सकता और तदनुरूप काव्य का मार्ग निकाला। इसलिए तुम इसके विरुद्ध ठेठ तेलुगु में राम की कथा की रचना करो (पीठिका १६-१८) इससे यह स्पष्ट होता है कि ठेठ तेलुगु में नामों और उपाधियों का भी अनुवाद करके रामायण की रचना करना कवि का प्रधान लक्ष्य है। जैसे शंकर के लिए "पाप जन्निदपुरेडु" का प्रयोग जिसका अर्थ है वे देव जो साँपों को यज्ञोपवीत के समान धारण करते हैं। इस समास के तीनों शब्द ठेठ तेलुगु के हैं। जो तद्भव और देशी हैं। इसलिए यह काव्य अंत तक ऐसी ठेठ तेलुगु में लिखा गया है कि प्रचलित काव्य भाषा से वह बहुत भिन्न और कहीं-कहीं दुर्बोध हो गई है।

वस्तु विकास की दृष्टि से इसका कोई योगदान नहीं है क्योंकि इसकी संपूर्ण रचना संक्षिप्त रूप में वाल्मीकि रामायण के अनुसार हुई है। हाँ युद्ध कांड में रंगनाथ रामायण के जितने अवाल्मीकीव प्रसंग हैं उनमें सुलोचना और लक्ष्मण की हँसी के प्रसंगों को छोड़कर प्रायः शेष सब प्रसंग पाये जाते हैं।

रामावतार की कथा

रामायण की कथा स्वतंत्र काव्यों के रूप में ही नहीं बल्कि किसी काव्य का एक भाग बनकर भी विकसित हुई। इसके उदाहरण एर्रन्न कृत महाभारत अरण्यपर्व के उत्तरार्द्ध के अनुवाद में आये हुए रामोपाख्यान और आँध्र भागवत के श्रीराम चरित में दिखाई पड़ते हैं जिनके संबंध में विचार किया जा चुका है। उसी प्रकार "दशावतार चरित्रमु" में भी यह कथा मिलती है। "दशावतार चरित्र" की रचना धरणिदेवुल रामय्या मंत्री ने सन् अठारहवीं शताब्दी के अंतिम भाग में की थी। इसमें भगवान विष्णु के दस अवतारों का भी वर्णन है जिसमें श्रीरामावतार का भी वर्णन आता है। यह कृति नेल्लूर जिले के मगदल कृष्ण मंत्री को समर्पित की गई है। कवि भी इसी प्रांत के थे।

रामावतार की कथा दो आश्वासों में बँटी है और ५३३ गद्य पद्यों में समाप्त हुई। इसमें वाल्मीकि रामायण की ही कथा यद्यपि बहुत संक्षेप में कही गई है किंतु कहीं-कहीं कुछ बातें और वर्णन भी ऐसे आये हैं जो कवि की मौलिक कल्पना व काव्य प्रतिभा का परिचय देते हैं। पायस विभाजन इसमें

बाल्मीकि के अनुसार नहीं हुआ । दशरथ ने अपनी पटरानी कौसल्या को पायस का आधा भाग दे दिया और शेष आधा भाग परम प्रिया होने के कारण कैकेयो को देना चाहा। किंतु कैकेयी से आयु में बड़ी होने के कारण सुमित्रा की उपेक्षा करना अनुचित समझकर शेष का चौथा भाग उसे दिया और आधा भाग कैकेयी को दिया। अब संपूर्ण पायस का जो आठवाँ भाग शेष रह गया उसे यह समझकर कि बेचारी को पहले बहुत कम दिया गया है, सुमित्रा को दे दिया। (दशावतार चरित्र ७.१३) । यह विभाजन गार्हस्थ्य जीवन की दृष्टि से अधिक नीति संगत दिखाई पड़ता है।

(२) जब विश्वामित्र दशरथ के पास आते हैं तब राम लक्ष्मण के साथ व्यायामशाला में कसरत करते रहते हैं। दशरथ के भेजे नौकर राम और लक्ष्मण को सभा में ले आ है। पिता के कहने पर राम विश्वामित्र को नमस्कार करते हैं तो विश्वामित्र "शीघ्रमेव विवाह सिद्धिरस्तु" का आशीर्वाद देकर उन्हें गले लगाकर अपने ही आसन पर बिठा लेते हैं। तब हँसी में दशरथ कहते हैं कि राम ! तुम विश्वामित्र के बन गये। यह सुनकर विश्वामित्र कहते हैं कि राजन ! आपने सच कहा। राम सदा मुनियों के ही हैं। इसके बाद राम और लक्ष्मण को अपने साथ ले जाते हैं। (दशावतार चरित्र ७-२८-३३) ।

(३) यज्ञ की रक्षा के बाद विश्वामित्र राम से कहते हैं कि हे राम ! अब तुम को सीता के मधुराधरामृत की प्राप्ति करा दूंगा। मिथिला नगरी चलें, चलो। [च.च. ७-४०] । इससे मालूम होता है कि विश्वामित्र ने पहले ही राम और सीता के विवाह की बात सोच रखी थी, तभी उनके मुँह से "शीघ्रमेव विवाह सिद्धिरस्तु" का आशीर्वाद निकला।

(४) इसकी सबसे बड़ी विशेषता है अहल्या की शाप-मुक्ति का प्रसंग। गौतम के आश्रम में पहुँचकर जब राम विश्वामित्र से उसकी निर्जनता का कारण पूछते हैं तब विश्वामित्र बड़े विस्तार से—लगभग सवा सौ गद्य-पद्यों में —अहल्या के जन्म, गौतम से विवाह, इंद्र के साथ रति, गौतम का शाप आदि घटनाओं का वर्णन करते हैं जो प्रायः अन्य किसी भी रामायण में अप्राप्य है। संक्षेप में उसका सार यों है—

एक बार ब्रह्मा ने सोचा कि जब भगवान विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण किया तो त्रिलोचन और अन्य देवताओं ने उसके सौन्दर्य को फीका और

अनाकर्षक कहा। इसलिए अब मैं उससे भी बढ़कर सुंदरी की सृष्टि करूँगा। यों सोचकर उसने बड़े यत्न के साथ विश्व के सुन्दरतम पदार्थों का सार निकाल कर अहल्या नामक अत्युत्तम सुन्दरी का निर्माण किया। यह जानकर हरि, हर, गंधर्व, सिद्ध, साध्य आदि देव जाति के लोग प्रतिदिन अनेक बार किसी न किसी बहाने अहल्या को देखने आते थे। किंतु किसी का साहस न हुआ कि अहल्या को माँगता क्योंकि अपने को उसके लिए योग्य नहीं समझता था। एक दिन इन्द्र ब्रह्मा की सभा में आया तो वहाँ अनुपम सुन्दरी अहल्या को देखा और उस पर ऐसा मोहित हुआ कि अंत में ब्रह्मा से उसे माँग ही लिया। किंतु ब्रह्मा ने इनकार किया और नैष्ठिक ब्रह्मचारी तपस्वी गौतम की शुश्रूषा में उसे नियुक्त किया और अंत में उसी के साथ उसका विवाह किया। यह जानकर इन्द्र ब्रह्मा की बुद्धि-हीनता पर तरस खाकर विरहानल में जलने लगा। किंतु उसने आशा नहीं छोड़ी। समय-समय पर गौतम के आश्रम में उसकी कुशल पूछने के बहाने आकर अहल्या को नन्दन वृक्ष के फूलों की भेंट करता तो वह अपने बालों में लगा लेती। और भी अनेकों शृंगारिक चेष्टाओं के द्वारा अहल्या के मन को जीतने का प्रयत्न करता। अहल्या भी कभी-कभी मुस्कराहट, प्रेम कटाक्ष अदि से उसे सत्कृत करती। धीरे-धीरे इन्द्र पागल सा बन गया और एक दिन विश्वकर्मा की पुत्री मनोरंजनी को अपनी दूती बनाकर अहल्या के पास भेज दिया। दूती ने अहल्या के पास आकर इंद्र के संगम से प्राप्त होनेवाले अनुपम सुख का वर्णन करके उसका मन बदलने का बहुत प्रयत्न किया। परन्तु अहल्या ने उसके सब तर्कों का खंडन करके अपने पातिव्रत्य का परिचय दिया और पर-स्त्री-गमन के पाप से बचने का संदेश भी दूती के द्वारा इन्द्र को भेजा। अपने प्रयत्न को विफल देखकर इंद्र का विरह दुख और भी बढ़ने लगा। एक दिन शाम को विरहातुर इन्द्र एक उपाय सोचकर गौतम के कुटीर के पास आकर कहीं छिपा रहा। उस रात को अहल्या गौतम गौतम की चरण सेवा करके उसी शय्या पर लेट गई तो गौतम ने उसका भाव समझकर कहा कि आज पर्व का दिन है। इस पर अहल्या ने कहा कि ठीक है, मैंने आपसे उसकी प्रार्थना नहीं की। आज आँख नहीं लगती, इसलिए थोड़ी देर आपके पास सोने के लिए आई हूँ। यों कहकर वह इच्छा-पूर्ति न होने की चिंता के मारे व्यथित होकर थोड़ी देर के बाद सो गयी। इतने में काम से प्रेरित होकर इन्द्र ने मुर्गा बनकर बाँग दी जिसे सुनकर गौतम ब्राह्म मुहूर्त हुआ समझकर नदी में स्नान करने चला गया। गौतम के

जाने के बाद इन्द्र कपटी गौतम बनकर कुटी में आया। उसे देखकर अहल्या चकित हुई और इतनी जल्दी लौटने का कारण पूछा तो कपटी गौतम ने अपनी कामेच्छा प्रकट की। अहल्या ने उसे मना करते हुए कहा कि यह प्रातःसंध्या का पवित्र समय कर्मानुष्ठान का है। किंतु वह उसके पीछे पड़ने लगा। तब क्रोध में आकर अहल्या ने कहा कि विदित होता है कि तुम मेरे पति गौतम नहीं हो; कोई निशाचर मालूम होते हो जिसने उनका वेष धारण कर लिया है। मैं तुमको शाप दूँगी। तब काँपते हुए इंद्र अपना नाम बताकर उसके पैरों पर गिर पड़ा और कहा कि काम की पीड़ा से तुम्हारा शाप ही अच्छा है। इंद्र को अपने पैरों पर गिरा हुआ देखकर अहल्या पसीज गई। उसके बाद उनकी कामकेलि का विवरणात्मक रूप से विस्तृत वर्णन होता है जिसमें औचित्य का पूरा-पूरा लोप हो गया है। रति और पुनःरति का भी वर्णन किया जाता है। अंत में इंद्र अहल्या से कहता है कि तुम मेरे साथ चली आओ। किंतु अहल्या उसे अस्वीकार करके कहती है कि ऐसा नहीं हो सकता, हाँ कभी-कभी हम तुम छिपे-छिपे मिल सकते हैं। इससे संतुष्ट होकर इंद्र कुटीर के बाहर चला जाता है। तभी नदी से लौटनेवाले गौतम से उसका साक्षात्कार होता है। बाद में इंद्र और अहल्या को शाप देने के प्रसंग में कोई विशेषता नहीं। अहल्या को पत्थर बनने का शाप दिया जाता है। तब राम के चरणों की धूल हवा में उड़कर उस शिला पर पड़ती है तो वह स्त्री में परिणत हो जाती है। अहल्या अपना स्वरूप प्राप्त कर राम के नमस्कार करने पर उन्हें दूल्हा बनने का आशीर्वाद देती है। इतने में गौतम भी वहाँ आता है और राम की स्तुति करके अहल्या को स्वीकार करता है। अहल्या के इस प्रसंग में पर्याप्त अश्लीलता का समावेश हो गया है। बालक राम और लक्ष्मण के सामने ऋषि विश्वामित्र के द्वारा ऐसा वर्णन कराना परंपरा के विरुद्ध और बिलकुल अनुचित है। दूसरे, उसमें कवि का यह विचार हो सकता है कि इंद्र के साथ व्यभिचार करने में अहल्या का उतना दोष नहीं था क्योंकि वह मानव सहज परिस्थितियों से विवश थी। लेकिन यह अनुमान न तो कवि को अश्लीलता के दोष से बचा सकता है और न अहल्या के चरित्र पर कोई आवरण ही डाल सकता है। इसके अनंतर शिवधनुष का भंग, सीता विवाह आदि का विस्तृत वर्णन है जिसमें आँध्र देश के वैवाहिक आचारों का अच्छा परिचय मिलता है। वरदराजु के समान इस कवि ने भी सीता के कंठ में मंगलसूत्र बाँधने का उल्लेख किया है। विवाह के बाद

दशरथ का सपरिवार अयोध्या लौटना और मार्ग में परशुराम का गर्व भंग आदि का संक्षिप्त वर्णन है । अयोध्या में राम और सीता के गर्भाधान और प्रेम विहार का विस्तृत वर्णन है ।

दूसरे आश्वास में शेष सब कथा संक्षेप में कही गई है । सीताहरण के प्रसंग में जटायु का नाम न लेकर इतना ही कहा गया है कि किसी गीध ने रावण के सिर पर आघात किया तो उसने उसका वध कर डाला । शेष कथा वाल्मीकि के अनुसार है ।

इस रामावतार की कथा की विशेषता उसके वर्णनों में—विशेषतः शृंगार के-है । उस समय तक लिखे गये अहल्या संक्रंदनमु, तारा शशांक, राधिका सांत्वनमु आदि शृंगारी प्रबंधों के अनुकरण पर इसमें जो वर्णन किए गये हैं वे राम के मर्यादापुरुषोत्तमत्व के अनुरूप नहीं पड़ते । यद्यपि कवि की मान्यता है कि राम विष्णु के अवतार हैं तो भी शृंगार के वर्णन में राम को मानवीय धरातल पर लाकर एक शृंगारी नायक के रूप में चित्रित किया गया है जिसमें उनका भगवत्तत्व तिरोहित हो गया है ।

इनके अतिरिक्त हमारे आलोच्य काल में "इल्लिदकूंट रामायण", "राम पट्टाभिषेक" आदि यक्षगान और "प्राकृत नाटक" लिखे गये हैं जो प्रायः वाल्मीकि रामायण की राम कथा को ही लेकर चले हैं । जैमिनीय भारत की रामाश्वमेध और कुशलव युद्ध की कथा के आधार पर भी काव्य मिलते हैं ।

अध्यात्म रामायण का भी तेलुगु में अनुवाद किया गया है काणाद पेछन सोमयाजी के द्वारा । किंतु कथा विकास की दृष्टि से उसका कोई योगदान नहीं है । अध्यात्म रामायण तत्व और ज्ञान प्रधान होने के कारण उसमें तेलुगु कवियों ने कोई परिवर्तन नहीं किया । उसका यथा तथ्य अनुवाद किया ।

साधना प्रणाली की छाया

तेलुगु में राम साहित्य का प्रारंभ जबसे हुआ तब तक संस्कृत साहित्य में यह भावना रूढ़ हो गई कि राम विष्णु के अवतार थे और वे भक्ति के आधार बन गये थे । इस भक्ति भावना के आधार पर संस्कृत में काव्य, नाटक आदि विस्तृत साहित्य भी निर्मित हो गया था । इसके अलावा पुराणों में भी राम भक्ति का आधार बन गये । वाल्मीकि रामायण में भी विष्णु के अवतार लेने की बात कही गई है ।

रावण के अत्याचारों से पीड़ित देवताओं को अभयदान देते हुए भगव विष्णु कहते हैं—

> हत्वाक्रूरं दुराधर्षं देवर्षीणाम् भयावहम् ।
> दशवर्ष सहस्राणि दशवर्षशतानि च ।।
> वत्स्यामि मानुषे लोके पालयन् पृथिवीमिमाम ।
> एवं दत्वा वरं देवो देवानां विष्णु रात्मवान ।।
> मानुष्ये चिंतयामास जन्म भूमिमिथात्मनः
> ततः पद्मपलाशाक्षः कृत्वाऽत्मानं चतुर्विधम् ।
> पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृपम् ।।
> (वा. बा. १५-१९-३२)

वाल्मीकि की उपरोक्त शक्ति के आधार पर तेलुगु में राम साहित्य यही मानकर निर्मित किया गया है कि राम विष्णु के अवतार थे ।

तेलुगु के राम काव्यों का ऊपर जो वस्तुगत विकास दिखाया गया है उससे यह स्पष्ट होता है कि उन काव्यों के कवियों की दृष्टि जितनी काव्य-सौंदर्य पर रमी उतनी भक्ति - साधना पर नहीं यद्यपि उन सबने राम को विष्णु का और सीता को लक्ष्मी का अवतार माना था । यह अवश्य था कि उन्होंने रामायण या राम - काव्य की रचना को इह-पर साधक माना था किंतु भक्ति के प्रचार के लिए उन्होंने उसे साधन नहीं माना । इसका कारण यह है कि उनमें प्रायः सब कवि भक्त कवि न होकर प्राकृत कवि थे । केवल पोतन्न इसका अपवाद थे । किंतु उन्होंने स्वतंत्र रूप से कोई राम काव्य नहीं लिखा था । केवल भागवतांतर्गत राम कथा ही उनकी मिलती है जिसकी भक्ति भावना काव्य भर में बिखरी हुई है । तो भी राम की प्रेरणा से ही भव बाधाओं से मुक्ति पाने के लिए उन्होंने भागवत की रचना की । अन्य काव्यों में जहाँ राम की भक्ति का वर्णन पाया जाता है वह परंपरागत है न कि स्वानुभूत । हाँ, इतना तो कहा जा सकता है कि तेलुगु के राम साहित्य पर रामानुज के विशिष्टाद्वैत का भी प्रभाव है । भास्कर रामायण में इंद्रजीत के लक्ष्मण के बाण से मरकर वैष्णव सायुज्य पद प्राप्त करने का उल्लेख है (भा. र. यु. पृ. ५०० प. १३७८) । इन कवियों का उद्देश्य राम भक्ति की साधना का प्रचार करना नहीं था बल्कि रामायण की रचना के द्वारा अपनी वाणी तथा लेखनी को पवित्र करना और अपनी काव्य - प्रतिभा दिखाना था ।

हाँ, कट्टावरदराजु के समय तक आते-आते दक्षिण में वैष्णव धर्म का अच्छा प्रचार हुआ जिसका प्रभाव उसकी रामायण पर भी पड़ा था जिसका प्रमाण उस समय मिलता है जब राम विभीषण को श्रीरंगशायी की प्रतिमा देकर उसे अयोध्या से विदा करते हैं। जब विभीषण अयोध्या छोड़कर जाने की अपनी अनिच्छा प्रकट करता है तब राम उससे कहते हैं—

तनमारु तन कुल धनमु पूर्वमुन
मनु पुत्रुडिक्ष्वाकु मनुजेश्वरुंडु
निलिपिन मापालि निक्षेपमीवु
गोलुवुमु लंककु-गोनि पोम्मटंचु
सज्जतो श्रीरंगशायि नोसंग

(व. रा. यु. १२३०८-१२३१३)

मेरे बदले, हमारे कुल का धन, मनुपुत्र इक्ष्वाकु के द्वारा प्रतिष्ठित हमारी निधि श्रीरंगशायी को ले जाकर उसकी आराधना कर लेना—यों कहकर विभीषण को वह प्रतिमा देते हैं।

विशुद्ध साधना की दृष्टि से रामभक्ति से प्रेरित होकर साहित्य निर्माण करनेवाले अनेक शतक कवियों में भक्त रामदास और गीत-कवियों में त्यागराजु के नाम अविस्मरणीय है। जैसाकि पहले बताया गया है कि रामदास का असली नाम गोपन्न था और वे सन् १७ वीं शताब्दी में विद्यमान थे। उनके भक्ति परक कीर्तनों और "दाशरथी शतक" में उनकी साधना प्रणाली का रूप लक्षित होता है। इनकी भक्ति आर्त और दास्य कोटि के अंतर्गत आती है। वैसे बचपन से ही राम के प्रति इनके हृदय में असीम भक्ति थी जो आगे चलकर अच्छी तरह विकसित हुई और इनको रामदास के नाम से प्रसिद्ध कर दिया। जब ये गोलकोंड के सुलतान अब्दुल हसन शाह के राज्य में भद्राचल के तहसील-दार थे तब जंगल में प्राप्त, राम-लक्ष्मण और सीता की मूर्तियों के लिए गोदावरी के किनारे इन्होंने एक मंदिर और आभूषण बनवाये जिसमें सरकारी धन छः लाख वरहा (एक वरहा लगभग चार रुपयों के समान होता था) खर्च कर दिया। इस कारण उनको कारागृह में बारह वर्ष तक रहना पड़ा और अनेक भयंकर कष्टों को सहना पड़ा। उस समय आर्त होकर उन्होंने राम के प्रति जो कीर्तन गाये थे वे आज तक अमर हैं। वे अपने गीतों में राम से प्रार्थना करते कि सरकारी धन चुकाकर मुझे मुक्ति दिला दो। कभी अपने सब कष्टों का वर्णन करते हुए छुटकारे के लिए राम से गिड़गिड़ाते, कभी रूठ

जाते, कभी उलाहना देते कि तुम्हारे लिए, तुम्हारी पत्नी और भाई के लिए मैंने ऐसे-ऐसे आभूषण बनवाये जिनके लिए हजारों वरहा खर्च हुए। यह सब किसके बाप का पैसा समझ रखा है तुमने, जो खूब बन-ठनकर भद्रगिरि पर मौज उड़ा रहे हो ? कभी राम को मनाते हुए कहते कि हे राम ! मार पीट न सह सकने के कारण मैंने तुम को गाली दी, बुरा न मानना और कभी धमकी देते कि मैं तुम को ऐसे नहीं छोड़ूंगा। पूरा धन वसूल करके ही रहूँगा। इस पर भी जब राम की कृपा न हुई तो माता सीता से शिकायत की—"हे माता ! राम मुझ से रूठ गये तुम्हीं उनको समझाकर मेरी रक्षा कराओ।" इसका भी जब कोई प्रभाव नहीं पड़ा तो अंत में विष पीकर आत्म-हत्या करने के लिए तैयार हो गये और कहा कि "हे राम, अब इस संसार को छोड़कर मैं तुम्हारे पास आ जाऊँगा।" तब भगवान को दया आती है। सुल्तान को पूरा धन देकर उनको छुड़ाते हैं।[1] इस विवरण में रामदास की आर्तभक्ति का रूप दिखाई पड़ता है।

इन्होंने राम की भक्ति केवल भक्ति के लिए की, मुक्ति के हेतु नहीं। उन्होंने कहा, "मैं मुक्ति नहीं चाहता, तुम्हारी भक्ति ही पर्याप्त है।" (जानकी रमणा, कल्याणा वाला कीर्तन)। इनके राम सर्वव्यापी परब्रह्म हैं। अपने एक प्रसिद्ध कीर्तन में वे कहते हैं कि सारा जगत राम मय है। आत्मा-राम अंतर में अनेक प्रकार की लीलाएँ करते हैं। सूर्य, चंद्र, तारे, देवता, महासागर और इसके परे के जगत, अंड, पिंड, ब्रह्मांड, ब्रह्मा आदि, नद नदी, बन, जंतु, सब कर्म और शास्त्र, आठों दिशाएँ, आदि शेष अष्टवसु, अरिषड्वर्ग आदि सब राम मय हैं। ("अंता राम मयं बीजगमंता राममयं" वाला कीर्तन)।

इनके "दाशरथी शतक" में इनकी तात्विक दृष्टि का निरूपण किया गया है। अपनी भक्ति के संबंध में वे कहते हैं कि, गाढ़े दूध पर जमी हुई मलाई शक्कर के साथ मिलाकर जिस स्वाद के साथ खाई जाती है उसी प्रकार आपके नीलमेघ श्यामल शरीर के सौंदर्य दर्शन से प्राप्त आनंदामृत प्रेम रूपी थाली में रखकर दास्य रूपी चुल्लू में उसे भरकर पी लूंगा। (दाशरथी शतक—वेंकट राम ऐंड कंपनी का प्रकाशन-३०)। इसमें द्वैतमूलक भागवतोक्त दास्य भक्ति लक्षित होती है। किंतु

---

१. स्वलिखित—"आँध्र की भक्त परंपरा"—लेख, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा (आन्ध्र)—रजत जयंती स्मारक ग्रंथ।

जीव ब्रह्मैक्य भावना भी इनमें पाई जाती है। वे कहते हैं कि भ्रमर कीट न्याय से भव-दुखों से मुक्ति पाकर तुम्हारी भक्ति करके जीव के विश्वरूप तत्व को धारण करने में कोई आश्चर्य नहीं। (दा. श. १००) इन दोनों उद्धरणों से यह स्पष्ट होता है कि रामदास यद्यपि साधना रूप में द्वैतसिद्धांत को मानते हैं किंतु अंतत: विशिष्ट अद्वैतवाद के अनुसार जीव ब्रह्मैक्य को जीव की अंतिम परिणति मानते हैं। इनकी रामभक्ति अनन्य थी। इनकी मान्यता है कि राम के चरण-कमलों ध्यान करते ही अन्य देवरूपी किरणें उसी प्रकार फीकी पड़ जाती हैं जिस प्रकार सूर्य के उदित होते ही अग्नि और चंद्र का तेज फीका पड़ जाता है। (दा. श. ८६)।

अंतत: इनकी भक्ति-साधना के बारे में यही कहा जा सकता है कि उसमें तात्विक सिद्धांत निरपेक्ष रागात्मिका भक्ति की प्रधानता है जो इनके सरस कीर्तनों में फूट पड़ी है।

इसके अलावा और भी कई राम भक्ति संबंधी शतक हमारे आलोच्यकाल के अंतिम भाग में निकले हैं जैसे "भद्राद्रि राम शतक", "रामतारक शतक", "रामप्रभु शतक" आदि जिनमें भक्ति-भावना ही प्रधान है। ये सब शतक राम की स्तुति के रूप में लिखे गये हैं।

हमारे आलोच्य काल के बिलकुल अंतिम छोर में आकर अगली शताब्दी को भी अपने संगीत और भक्ति माधुरी से आप्लावित करनेवाले भक्त त्यागराज का भी स्मरण किया जाना चाहिए क्योंकि रामदास की भक्ति परंपरा में इनका भी विशिष्ट स्थान है। इन्होंने रामभक्ति को साधना के रूप में ग्रहण किया और उसी के द्वारा, अंतिम समय में सन्यासी बनकर, मोक्ष को प्राप्त हुए। यद्यपि रामभक्ति से आप्लावित सैकड़ों कीर्तनों की इन्होंने रचना की तथापि शिव और पार्वती संबंधी कीर्तन भी बनाये। इनकी भक्ति में संगीत का सुन्दर समावेश हो गया है। यह कहा जा समता है कि संगीत की मधुर धारा में ही इनकी रामभक्ति प्रवाहित हुई थी। इनके कीर्तनों में इन दोनों तत्वों का क्षीरोदक न्याय से संमिश्रण हुआ। कर्नाटक संगीत का ज्ञान इनके कीर्तनों के बिना अधूरा माना जाता है। निस्पृह भक्त होने के कारण इन्होंने कई बार घर आई लक्ष्मी को ठुकरा दिया।

इनकी भक्ति पूर्णत: दास्य भक्ति थी जिसके रागात्मिका और वैधी दोनों पक्ष पाये जाते हैं। वैधी भक्ति से, जो शास्त्र मर्यादित होती है, युक्त होने के कारण इनकी रागात्मिका भक्ति मर्यादा उल्लंघन न कर सकी। इनकी

रांगात्मिका भक्ति में वह मधुर भावना भी पाई जाती है जिसे रागानुगाभक्ति कहते हैं। सीता की राम के प्रति जो प्रेम भक्ति थी वह रागात्मिका थी और स्वयं अपने को सीता के रूप में प्रतिष्ठित कर उसका अनुकरण करने के कारण त्यागराजु की भक्ति रागानुगा कही जा सकती है। रागात्मिका भक्ति का अनुकरण होने के कारण प्रेमी भक्ति की भक्ति रागानुका भक्ति कही जाती हैं।[1] त्यागराजु अपने एक कीर्तन में कहते हैं कि "हे सीतारमणी-मनोहर! नीरज नयन! मेरे सामने आकर एक चुंबन दो। मैं तुम्हें सुनहले वस्त्र पहनाकर भलीभाँति अलंकृत करके, सेवा करके, आलिंगन लूँगा। तुम्हारे भाल पर कस्तूरी का तिलक लगाकर मुक्ताहार पहनाऊँगा। प्रेम से तुम्हारे मिलन के गीत गाऊँगा।" ("राम सीतारमणी मनोहर" वाला कीर्तन) अन्य भक्तों के समान इन्होंने भी द्वैत-अद्वैत आदि की उलझन में न पड़कर केवल भक्ति का आश्रय लिया और उसे संगीत से युक्त बनाकर उसे मोक्षार्थियों के लिए साधन बताया। वे अपने एक कीर्तन में गाते हैं कि हे राम! तुम्हारी भक्ति और संगीत ज्ञान विहीन लोगों को मोक्ष नहीं मिल सकता। (मोक्षमु गलदा भुविलो" वाला कीर्तन) संगीत को उन्होंने इतनी महत्ता इसलिए दी थी कि उनके अनुसार वह हरि को रिझाने का उत्तम साधन है। उसमें निगम, षट्च्छास्त्र पुराण और आगमों का अर्थ भरा है। योगियों के आनंदानुभव का मार्ग है। ("रागरत्नमालिके" वाला कीर्तन) प्राण और अनल के संयोग से प्रणवनाद सप्त स्वर में बँटकर संगीत बन जाता है। ("मोक्षमु गलदाभुविलो" वाला कीर्तन)। संगीत की दृष्टि से ये नारद का अवतार माने जाते हैं। अंततः यही कहा जा सकता है इनके जीवन का भक्ति और संगीत की अमृत धारा में तादात्म्य हो गया है।

आलोच्य काल के : के कुछ अन्य राम काव्यों की सूची[2]

[१] वासिष्ठ रामायण	...	मडिकि सिंगन्न
[२] यादव राघव पांडवीयमु	...	एलकूचि बाल सरस्वती
[३] रामायण	...	चत्रकवि पेद्दन्न
[४] राम विलास प्रबन्ध	...	एनुगु लक्ष्मण कवि
[५] जानकी राधवमु	...	बेतपूडि कृष्णय्य
]६] सीतारामांजनेयमु	...	परशुराम पंतुल लिंगमूर्ति

---

१. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी–सूरसाहित्य, पृ. ३१

२. श्री के० वेंकटनारायणराव—""आँध्र वाङ्मय चरित्र संग्रह" के आधार पर

[७[रघुवंश [अनुवाद[··· नवुडूरि पिच्चय्य
[८] निरोष्ठ्य रामायण ··· मरिंगंटि सिंगराचार्युलु
[९] अध्यात्म रामायण ··· काणादि पेद्दन सोमयाजि
[१०] राम कथाभिराममु ··· अनंतराजु जन्नय
[११] रघुवीर जानकी पतिशतक ··· अय्यलराजु त्रिपुरांतक
]१२] रामायण [वचन] ... तुपाकुल अनंत भूपाल
[१३] रंगनाथ रामायण [वचन] ··· पैडिपाटि पापय्य
]१४] मैरावण चरित्र ··· मारन्न
[१५] रामस्तव राजसु ··· मुम्मदिराजु मल्लनार्य कवि

इसके अतिरक्त और भी अनेक ग्रंथ मिलते हैं जिनका रचना काल ज्ञात नहीं है।

आठवाँ अध्याय

हिन्दी राम साहित्य का सांस्कृतिक, सामाजिक और नैतिक अध्ययन

संस्कृत और उसके पक्ष—

सहस्रों वर्षों तक मानव जाति जीवनयापन करने के बाद जो अनुभव प्राप्त कर लेती है उसके आधार पर मानव जीवन के प्रति अपना एक विशिष्ट दृष्टिकोण बना लेती है और तदनुरूप सामाजिक और व्यक्तिगत आचार विचार का निर्माण कर लेती है। उसका यह दृष्टिकोण भावात्मक होता है; विचार बौद्धिक होते हैं और आचार कार्य प्रधान होते हैं। इन तीनों के सामूहिक रूप को संस्कृति कहा जाता है जिसका बाह्य रूप आचारों की सभ्यता कहलाता है। मानव समाज की यह उपार्जित संस्कृति उसके निर्मित साहित्य में झलकती है क्योंकि साहित्य मानव जीवन का प्रतिबिंब ही तो है। इस संस्कृति पर देश, काल और प्राचीन परंपराओं का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है और उसके अनुसार संस्कृति के रूप में भिन्नता दिखाई पड़ती है।

भारतवर्ष की संस्कृति उसके अब तक प्राप्त और सुरक्षित साहित्य में प्रतिबिंबित है जिसमें मानव जीवन के वाह्य और आंतरिक पक्षों का सुन्दर समन्वय दिखायी पड़ता है यद्यपि आंतरिक पक्ष की अधिक प्रधानता रही है। उसके आधार पर यह कहा जा अकता है कि भारत की संस्कृति भौतिकता की अपेक्षा आध्यात्मिकता प्रधान है। बेदकाल से लेकर हमारे आलोच्य काल तक

के संस्कृत साहित्य में प्रतिबिंबित यह आध्यात्मिक संस्कृति ही आधुनिक देश भाषाओं के साहित्यों में भी विरासत के रूप में झलकती है। आध्यात्मिक संस्कृति होने के कारण उसमें लौकिकता की अपेक्षा पारलौकिकता का दृष्टिकोण विशेष महत्व का है यद्यपि लौकिकता की सर्वथा उपेक्षा नहीं की गयी है। इसी प्रधान सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में हमारे आलोच्य काल का हिन्दी राम साहित्य निर्मित हुआ था।

छठे अध्याय में यह दिखाया गया है कि मध्यकाल के हिन्दी राम साहित्य में तीन प्रकार की साधना प्रणालियाँ दिखाई पड़ती हैं जिनके मूल में भारतीय संस्कृति का आध्यात्मिक दृष्टिकोण ही प्रधानतः लक्षित होता है। अतः आलोच्य काल के राम साहित्य की सर्वप्रथम विशिष्टता है—उसकी आध्यात्मिकता जिसमें आत्मा की अमरता अनिवार्य रूप से मानी जाती है। हमारे आलोच्यकाल तक आते आते वाल्मीकि के राम में भगवत्तत्व और भक्ति के आलंबन की पूर्ण प्रतिष्ठा हो चुकी थी। राम को पूर्ण निर्गुण ब्रह्म मानकर रहस्यानुभूति के द्वारा उनकी भक्ति की साधना जो संत परम्परा में चल पड़ी उसमें राम के सगुण, लोक रक्षक और आदर्श मर्यादा पुरुषोत्तमत्व का अभाव है। कहा भी गया है—

दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना
राम नाम का मरम है आना ।।—कबीर

यह साधना संत परम्परा की भौतिकता निरपेक्ष केवल आध्यात्मिक संस्कृति का व्यक्त रूप है और भगवतत्व संबंधी उनकी विचारधारा के सर्वथा अनुरूप है। तुलसीदास और अन्य कवियों के साहित्य में इस निर्गुण परब्रह्म राम के साथ सगुण दशरथ सुत और शील-शक्ति और सौंदर्य सम्पन्न लोक रक्षक राम का सुन्दर समन्वय हो गया है जिसकी साधना रागात्मिका और वैधी भक्ति पद्धतियों के द्वारा की जाती है। इसके अनुसार निर्गुण और सगुण में कोई अन्तर नहीं है। दोनों समान हैं। यह संस्कृति के भौतिक और आध्यात्मिक पक्षों का समन्वित रूप है। स्वामी अग्रदास के द्वारा प्रवर्तित रसिक साधना से राम का केवल सगुण रूप और वह भी मधुर रूप गृहीत है और शृंगार परक मधुर भावना की दृष्टि से उनकी उपासना को प्रश्रय दिया गया है। इस साधना में संस्कृति का केवल साम्प्रदायिक और भौतिक रूप दिखाई पड़ता है। इसमें राम के मधुर रूप के अतिरिक्त और किसी रूप का स्थान नहीं है। इस प्रकार आलोच्य काल के हिन्दी राम साहित्य में धार्मिक पृष्ठभूमि में साधना प्रधान संस्कृति के तीन भिन्न रूप मिलते हैं।

यथार्थ और आदर्श समाज—

हिन्दी राम साहित्य का मूलाधार वाल्मीकि रामायण ही है। हिन्दी कवियों ने यद्यपि कथा का ढाँचा उसी से ग्रहण किया है किन्तु फिर भी अपनी आवश्यकता के अनुसार उसे बहुत घटाया, बढ़ाया और अन्य स्रोतों से मिली सामग्री का उसमें समावेश किया। अत: अपने साहित्य में उन्होंने जिस समाज का चित्रण किया है उसमें उनके अभीष्ट और वांछित आदर्श समाज तथा तत्कालीन ऐतिहासिक समाज की झलक मिलती है। तुलसीदास के ग्रन्थों में तत्कालीन समाज का धार्मिक दृष्टिकोण से चित्रण कलिधर्म निरूपण के प्रसंग में किया गया है। (रा. मा उ. ९७ ख–१०० ख) । जो संक्षेप में इस प्रकार है–

भये बरन संकर कलि भिन्न सेतु सब लोग
करहिं पाप दुख पावहिं भय रुज सोक बियोग ॥१०० क
श्रुतिसम्मत हरिभक्ति पथ संजुत बिरति विवेक
तेहि न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक ॥१०० ख

समाज में शिक्षा का प्रयोजन केवल पेट भरना ही रह गया था—

मातु पिता बालकन्ह बोलावहिं । उदर भरइ सोइ पाठ पढ़ावहिं ।
(रा. मा. उ. ९८-८)

ब्राह्मण अपने धर्म को भूलकर वेद बेचते थे—

द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन । कोउ नहिं मान निगम अनुसासन ।।
(रा०मा० उ० ९७-२)

समाज में प्राय: माता पिता की भक्ति नहीं रह गई—

सुत मानहिं मातु पिता तब लौं । अबला नव दीख नहीं जब लौं ।
ससुरारि पियारि लगी जब तें । रिपु रूप कुटुंब भये तब तें ।
(रा०मा०उ० १००ख–१-२)

इसी प्रकार चित्रण कवितावली के उत्तरकांड और विनय पत्रिका आदि में भी पाया जाता है। उनके समय में विविध वर्णवाले लोगों की जीविका ही नहीं रह गयी थी।

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी
जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोच बस
कहैं एक एकन सों कहाँ जाई का करी ।।
(कवितावली—उ० ९७)

इस प्रकार की दरिद्रता से ग्रस्त होकर लोग भगवान के पवित्र स्थलों में बहुत से अनाचार करते थे।

सुर सदननि तीरथ पुरिन निपट कुचालि कुसाज
मनहु मवासे मारि कलि, राजत सहित समाज ।।

(दोहावली—५५८)

ऐसे समाज में पाखंड की बढ़ती होती है—

प्रजा पतित पाखंड पापरत अपने अपने रंग रई है।
सांति सत्य सुरीति गई घटि, बढ़ी कुरीति कपट कलई है।
सीदत साधु, साधुता सोचति, खल बिलसत हुलसति खलई है।

(विनय पत्रिका १३९-४-५)

ऐसे पतित समाज को रामनाम का उपदेश देकर धर्ममय मार्ग पर लाना तुलसीदास का परमोद्देश्य था।

राम की भक्ति से सुखी समाज का जो चित्र उन्होंने खींचा वह उनके आदर्श सांस्कृतिक दृष्टिकोण का परिचायक है। (रा०भ०उ० २०-२३) संक्षेप में उसका सार यों है—

बरनाश्रम निजनिज धरम निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग ।।

तुलसीदास के अनुसार भारतीय संस्कृति का यही सर्वोच्च आदर्श है जिसकी स्थापना के लिए उन्होंने रामचरित मानस की रचना की है और उसमें समाज के विभिन्न लोगों के पारस्परिक संबंधों और कर्तव्यों का आदर्श स्थापित किया है। मध्यकालीन भारतीय समाज का ऐसा यथार्थ और आदर्श चित्र और किसी रामकाव्य में हमें देखने को नहीं मिलता क्योंकि परवर्ती राम काव्यों में तुलसीदास की सी प्रचारात्मक दृष्टि और सामाजिक सुधार की भावना नहीं मिलती।

सामाजिक और नैतिक आचार विचार—

शिशु के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त की जीवन भर की घटनाओं में जो सामाजिक आचार सम्पन्न होते हैं उनमें देश की सांस्कृतिक दृष्टि निहित रहती है। तुलसीदास वेदों और स्मृतियों में प्रतिपादित सांस्कृतिक आचार विचारों के उन्नायक थे। उन्होंने अपने राम काव्यों में ऐसे कुछ आचारों का वर्णन किया है जिनसे परम्परागत भारतीय संस्कृति पर प्रकाश पड़ता है।

दाशरथियों के जन्म पर स्त्रियों के द्वारा 'सोहिला' नामक बधाई का

गीत गाया जाता है और महाराज के द्वारा अनेक प्रकार के दान किए जाते हैं।[1] पुत्र प्राप्ति मानव जीवन की सबसे बड़े आनन्द की बात है क्योंकि उसके द्वारा आत्मविस्तार होता है और उसके बिना मनुष्य को सद्गति नहीं मिलती। शिशुओं के जन्म पर नांदी मुख श्राद्ध करके जात-कर्म किया जाता है क्योंकि उनके द्वारा पाप नष्ट हो जाते हैं—

गार्भेर्होमैर्जात कर्म चौल मौंजीनिबंधतेः
बैजिकं गार्भिकं चौनो द्विजानामपमृज्यते ॥

(मनुस्मृति २-२७)

रामादि भाइयों के जन्म पर दशरथ नांदी मुख श्राद्ध करके जातकर्म करते हैं।[2]

सामाजिक प्रथा के अनुसार छठी का दिन जागरण के साथ मनाया जाता है।[3] बारहवें दिन नामकरण किया जाता है।[4]

दसवें या बारहवें दिन नामकरण करने का स्मृति-विधान है—

नामधेयं दशम्यांतु द्वादश्यां वास्य कारयेत्

(मनुमृति २-३)

नामकरण में निम्नलिखित 'रक्षा ऋचा' पढ़ी जाती है जिसमें विश्वास यह होता है कि बालक चिरजीवी होगा।[5]

ॐ अंगागादभिजातोऽसि हृदयादभिजायसे
आत्मा वै पुत्रनामासि त्वं जीव शरदां शतम्

चौथे महीने में बच्चों को द्वारदर्शन कराया जाता है—

चातुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात् ।
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यद्वेष्टं मंगलं कुले ।

(मनुस्मृति २-३४)

इसी के अनुसार तुलसीदास ने रामादि भाइयों का द्वार दर्शन कराया है।[6]

जब बच्चे बहुत रोने लगते हैं, दूध नहीं पीते, और अच्छी तरह नहीं सोते तब भारतीय समाज में स्त्रियां यह विश्वास करती हैं कि बच्चे को किसी

---

१. **गीतावली—बालकांड २**
२. **रामचरित मानस—बालकांड, १९३**
३. **गीतावली—बालकांड, ५-३**
४. **गीतावली—बालकांड ४**
५. **गीतावली—६-४ : बालकांड**
६. **कवितावली—बालकांड १-२**

की नजर लग गयी है और उसके बुरे फल को दूर करने के लिए मंत्र आदि पढ़े जाते हैं। बालक राम को भी एक बार ऐसी ही नजर लगी है जिसको दूर करने के लिए कौसल्या कुलगुरु को बुलवाकर राम का माथा छुवाती हैं।[१]

प्रामाणिक ज्योतिषी ब्राह्मणों के द्वारा अपने या अपने बच्चों का भविष्य जानने की उत्सुकता स्त्रियों में विशेष रूप से रहती है। ऐसे ज्योतिषी जब मिलते हैं तब उनको बुनाकर माताएँ बच्चों के भविष्य के बारे में पूछती हैं और उनके मंगलमय भविष्य सुनकर बहुत आनंदित होती हैं और ब्राह्मण का सम्मान करती हैं। गीतावली में शंकर नामक ऐसे ही ज्योतिषी के आगमन का वर्णन किया गया है जिसके द्वारा दशरथ के रनवास की स्त्रियां दाशरथियों के भविष्य के बारे में सुनकर उसका सम्मान करती हैं।[२]

गर्भ के ग्यारहवें वर्ष क्षत्रियों के उपनयन संस्कार का विधान है।

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशेविशः। (मनुस्मृति ३६)

इसी के अनुसार तुलसीदास ने कौमारावस्था के प्राप्त होने पर रामादि भाइयों के जनेऊ संस्कार का उल्लेख किया है।[३] तत्कालीन क्रीड़ा विशेषों का भी तुलसी ने वर्णन किया है और दाशरथियों से वे खेल खेलाए। उनमें चौगान का खेल मुख्य था।[४] केशवदास की रामचंद्रिका में भी चौगान का वर्णन है।[५] जिसे विदित होता है कि मुगलों के शासनकाल में यह खेल आभिजात्य वर्ग में बहुत प्रचलित था।

भारतीय संस्कृति में विवाह का बड़ा महत्व है। वह केवल स्त्री और पुरुष के जीवन का भौतिक बंधन नहीं हैं, बल्कि आध्यात्मिक बंधन है। इस सम्बन्ध में भारतीयों का विश्वास है कि जीवन में जिस पुरष और स्त्री के पति पत्नी बनकर सांसारिक यात्रा करने का भाग्य होता है उनके हृदय में एक दूसरे के गुण कीर्तन या परस्पर दर्शन से विवाह के पहले ही पूर्वराग पैदा होता है जो आध्यात्मिक दृष्टि से बड़ा पवित्र माना जाता है। रामचरित मानस में

---

१. **गीतावली—बालकांड १२**
२. **गीतावली—बालकांड १७**
३. **रामचरित मानस—बालकांड २०३-२**
४. **गीतावली—बालकांड ४५**
५. **केशवदास—रामचंद्रिका, प्रकाश २९**

राम और सीता के ऐसे पारस्परिक प्रेम का बड़ा सुंदर वर्णन मिलता है।[1] इसकी जहाँ अवतारवाद की दृष्टि से प्रधानता है वहाँ सांस्कृतिक दृष्टि से भी इसका बड़ा महत्व है। सीता और राम लक्ष्मी और विष्णु के अवतार थे। इसलिए "प्रीति पुरातन लखइ न कोई" कहकर तुलसीदास ने उनके पूर्वराग का औचित्य सिद्ध किया।

राम और सीता का विवाह बहुत ही सुन्दर ढंग से रामचरित मानस में वर्णित है जिससे वैवाहिक रीति रिवाजों का पता लगता है। जनक के दूतों के द्वारा विवाह की लग्न पत्रिका पाकर और राम के शिब धनुष भंग का वृत्तांत सुनकर दशरथ बारात सजाकर मिथिला पहुँचते हैं। बारात के आगमन की बात सुनकर जनक अनेक बहँगियों में दही, चिवड़ा आदि चीजें कहारों के द्वारा अगवानी में भेंट के लिए भेजते हैं। अगवानी के बाद सुन्दर जनवासे में उनको ठहराया जाता है। कुछ दिन बाद ग्रह, तिथि, नक्षत्र, योग और वार की श्रेष्ठता देखकर ब्रह्मा वैवाहिक मुहूर्त का निर्णय करते हैं और नारद के द्वारा जनक को भेजते हैं। इस अलौकिक घटना का समावेश अवतारवाद और भगवान के लोकरक्षकरूप की दृष्टि से किया गया है तथा भारतीय संस्कृति के धार्मिक व आध्यात्मिक दृष्टिकोण का परिचायक है। जनक स्वयं पुरोहित शतानंद को लेकर जनवासे में आते हैं और बारात को विवाह के लिए निमंत्रित करते हैं। उस समय दही, दूर्वा आदि शुभ वस्तुओं को सोने की थालियों में सजाकर सुन्दर सुहागिन स्त्रियाँ गीत गाती हैं। राजकुमार सुन्दर घोड़ों पर सवार होकर विवाह मंडप के लिए निकल पड़ते हैं। सब लोग आनंद में मग्न होकर श्रीराम की जय मनाते हैं। बारात को आता देखकर जनक की रानी "परछन" के लिए आवश्यक द्रव्य सजाती हैं और सुन्दर स्त्रियाँ अगवानी के लिए आगे बढ़ती हैं। कुलाचार के अनुरूप अगवानी की जाती है और सब लोग विवाह मंडप में पहुँचते हैं वहाँ अनेक मणि, वस्त्र, गहने आदि न्योछावर किये जाते हैं जिनको पाकर नाई, भाट आदि प्रसन्न होते हैं। इसके बाद दोनों समधियों के मिलन और बारातियों के पूजा-सम्मान का वर्णन किया जाता है। स्त्रियाँ सीता को अनेक आभूषणों से सजाती हैं जैसे पायजेब, पैंजनी, कंकण आदि। इस प्रकार समलंकृता सीता के द्वारा पुरोहित जी गौरी, गणेश और ब्राह्मणों की पूजा कराते हैं। तदुपरांत दोनों पक्षों के गुरु वर और वधु का पाणिग्रहण

---

१. रामचरित मानस—बालकांड २२७-२३६

कराकर शाखोच्चार करते हैं। वेद विहित रीति से जनक कन्यादान करते हैं। उसके बाद हवन करके गठजोड़ी की जाती है और भाँवदें होती हैं। भावरों की समाप्ति के बाद राम सीता की माँग में सिंदूर देते हैं। इसी प्रकार अन्य राजकुमारों का विवाह संपन्न होता है। जनक दहेज में अगणित वस्त्र, हाथी, रथ, घोड़े दास दासियाँ, गायें आदि देते हैं। विवाह के बाद सब लोग जनवासे में चले जाते हैं और स्त्रियाँ वर-बधू को कोहबर में ले जाती हैं और वहाँ लहकौर खिलाने के बाद जुआ खिलाया जाता है। इसके पश्चात् भोजन का वर्णन है जिसमें स्त्रियों के मधुर ध्वनि से गालियाँ गाने का वर्णन भी किया गया है। विवाहोपरांत कुछ दिन के बाद दशरथ अपने पुत्रों और पुत्रवधुओं को लेकर अयोध्या चले जाते हैं। वहाँ रामादि भाइयों की माताएँ उनकी अगवानी करती हैं और अमूल्य वस्तुएँ न्वोछावर करती हैं। (रा. मा. बालकांड)

इसी प्रकार का वर्णन रामचंद्रिका में भी किया गया है। उसमें जनवा में अनेक कौतुकों का उल्लेख भी किया गया है जिनमें बैलों, भैंसों बकरों आदि की लड़ाई और मल्ल युद्ध भी उल्लिखित हैं। वेश्याओं का गान हो रहा था और कुछ भाँड़ भँड़ौवा कर रहे थे। (राम.चं. ६-१२-१४) उसमें गालियों का भी विस्तृत वर्णन है जिससे पता चलता है कि विवाहों में अमर्यादित ढंग से भी गालियाँ गायी जाती हैं जिनका बुरा नहीं माना जाता। (राम. चं ६-३०-३५) इसके बाद पलकाचार का भी अच्छा वर्णन है जिसमें सब स्त्रियों को वर वधू से परिहास का अच्छा अवसर मिलता है : (रा चं. ६-३७-४०) विवाह के सिलसिले में कंकण मोचन के समय सूर सागर के रामावतार वर्णन में स्त्रियाँ कहती हैं :

तब कर डोरि छुटै रघुपति जू जब कौसल्या माता आवै।

(सूर० सागर ९-२५)

इससे यह विदित होता है कि विवाह में वर की माता का बड़ा सम्मान और आदर होता है तथा उसको मनाने और प्रसन्न रखने का बहुत प्रयत्न किया जाता है। तुलसी के जानकी मंगल में भी इस प्रकार विस्तृत वैवाहिक वर्णन है।

गोविंद रामायण में कहा गया है कि अयोध्या जाने के बाद माताओं ने वर वधू के ऊपर से जल वार कर पिया था (अवध प्रवेश कथनम्)

समय के साथ-साथ सामाजिक आचारों और पूजा विधानों में भी परिवर्तन दिखाई पड़ता है। वाल्मीकि रामायण में सीता गंगा से प्रार्थना करती हुई

मांस-मदिरा आदि नैवेद्य चढ़ाने की बात कहती हैं। तुलसीदास के समय तक आते-आते भक्ति भावना के विकास के कारण इतना परिवर्तन हो गया है कि उन वस्तुओं को नैवेद्य के लिए अयोग्य समझा जाने लगा और इसीलिए सीता उनका उल्लेख न करके केवल पूजा करने की बात कहती हैं। (रा. मा. अयोध्याकांड, १०२-२)

अपनी बात की सच्चाई का विश्वास दिलाने के लिए प्रायः लोग अनेक प्रकार की शपथें खाते हैं। राम को वन भेजने में अपना मत नहीं है, इस बात का विश्वास दिलाने के लिए भरत कौसल्या के सामने जो शपथें खाते हैं उनसे जीवन के प्रति तुलसीदास के सांस्कृतिक दृष्टिकोण का पता चलता है। (रा. मा. अयो. १६७-६८) उसमें विरोधी पद्धति से यह ध्वनित होता है कि जीवन को सब प्रकार के पापों से क्रोध, कलह प्रियता, वेद दूषण, परदारागमन आदि से अस्पृष्ट रखने में उच्च मानव संस्कृति का अस्तित्व है।

पिता की मृत्यु पर भरत वेदोक्त रीति से सब प्रकार की उत्तर क्रियायें वशिष्ठ के आदेशानुसार करते हैं। दशरथ के महत्व के अनुरूप चंदन की चिता बनाई जाती है और उस पर लिटाकर शव का दाह किया जाता है तथा स्नान करके तिलांजलि दी जाती है। उसके बाद भरत दशगात्रविधान करते हैं और गायों, हाथियों, घोड़ों आदि ब्राह्मणों को दान देते हैं। (रा. मा. अयो. १६९-७०) सूरसागर के रामावतार वर्णन में भी इन क्रियाओं का विस्तृत वर्णन है। दस दिन तक भरत जलकुंभ और दीप का दान करते हैं। ग्यारहवें दिन ब्राह्मणों को भोजन कराते हैं इसमें भरत अपना सिर भी मुँडवा लेते हैं। (सू. सागर ९-५०-५१) इन सब क्रियाओं का विस्तृत वर्णन गरुण पुराण में मिलता है।

केशवदास ने रामचंद्रिका के पहले प्रकाश में अयोध्या का जो वर्णन किया है उससे उस समय के राजाओं के वैभव का ज्ञान होता है। तत्कालीन राज समाज की विलास प्रियता का अच्छा परिचय रामचंद्रिका के वर्णनों में हमें मिलता है। (रा. चं. २८-३२) इकतीसवें प्रकाश में उस समय राज समाज संगीत, नृत्य, चौगान का खेल आदि कलाओं में मग्न रहकर सुशासन की ओर से निश्चित रहा करता था। ऐसी ही विलास-प्रियता राम में दिखायी गयी। हाँ, रामराज्य में प्रजा को जो सुख मिला था उसका भी वर्णन किया गया है। (रा. चं. २८) जिससे पता चलता है कि प्रजा सब प्रकार से उन्नतावस्था में थी और अकाल मृत्यु आदि पीड़ाएँ नहीं होती थीं। इसी प्रकार के सुखी समाज का वर्णन हमें गोविंद रामायण में मिलता है।

देश देशन की क्रियासिखवंत है द्विज एक।
बाण और कमान की विधि देत आन अनेक।
भाँति भाँतिन सौं पढ़ावत नारिसिंगार।
कोक काव्य पढ़ै कहूँ व्याकरण वेद उचार। (अवध प्रवेश)

गुरु गोविंद के समय मुगल शासन में यद्यपि कलाओं का ऐसा सम्यक विकास नहीं मिलता था तथापि इससे कवि की निगूढ़ अभिलाषा व्यक्त होती है कि वे ऐसा समाज चाहते थे कि जिसमें सब कलाओं के विकास के लिए स्वतंत्र वातावरण मिले।

पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं में भी कवि के सांस्कृतिक आदर्शों का पता लगता है। तुलसीदास गुरु ब्राह्मण भक्ति के पक्षपाती थे। इसीलिए अपने सब पात्रों में उन्होंने वह आदर्श दिखाया है। जब विश्वामित्र राम और लक्ष्मण के साथ जनक की वाटिका में ठहरे थे तब राम किन भक्तिपूर्ण शब्दों में लक्ष्मण की अभिलाषा व्यक्त करते हैं ?

नाथ लखनपुर देखन चाहहीं. प्रभु सकोचा डर प्रगट न कहहीं।
जौं राउर आयसु मैं पावउं, नगर देखाइ तुरत लेइ आवउँ॥
(रा. मा. बाल. २१७-३)

जब पूज्य व्यक्तियों का अभिवादन करना होता है तब भारतीय संस्कृति के अनुसार अपना नाम आदि कहकर नमस्कार किया जाता है। जब परशुराम जनक की सभा में आते हैं तब सब राजा लोग—

पितु समेत कहि निज निज नामा। लगे करन सब दंड प्रनामा॥

भारतीय संस्कृति के अनुसार स्त्रियाँ अपने पति का नाम लेने में और उसके साथ अपना संबंध दूसरों को बताने में संकोच करती हैं। इसलिए उसे कुछ भंग्यंतर से सूचित करती हैं। राम सीता और लक्ष्मण के साथ जब वन में जा रहे थे तब कई ग्रामीण स्त्रियाँ उनको देखकर सीता से राम और लक्ष्मण के संबंध में प्रश्न करती हैं। सीता उनको सीधा उत्तर न देकर अपने लज्जासूचित अनुभावों के द्वारा उनको सूचित करती हैं। (कवितावली अयो. २१—२२) रामचरित मानस में भी इसका सुन्दर वर्णन है। (रा० मा० अयो० ११६—११७)

अपनी कृतज्ञता और उऋण न हो सकने का भाव जब प्रदर्शित करना होता है तब कहा जाता है कि मैं अपने शरीर की खाल की जूतियाँ बना-

कर दूँ तो भी आपके ऋण से मुक्त नहीं हो सकता । गीतावली में राम दशरथ के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए भरत से ऐसा ही कहते हैं।
(गीता० अयो० ७२)

भारत की स्त्रियाँ दूरस्थ स्वजनों की कुशल जानने के लिए कौए का शकुन मानती हैं । यह एक लोक प्रचलित विश्वास है । कौसल्या राम के सकुशल पुनरागमन के लिए इसी प्रकार सगुन मानती हैं । (गीता० लं० १९)

वधू पक्ष वाले वर पक्ष वालों से कोई पुरस्कार ग्रहण नहीं करते क्योंकि वह अनीतियुक्त माना जाता है । दशरथ "मानस" में राम-विवाह का शुभ समाचार लाए हुए दूतों को निछावर देते लगते हैं तो वे अस्वीकार करते हैं । उसे अनीतिपूर्ण कहकर कान मूँद लेते हैं । अनीति या पाप की भावना व्यक्त करते समय प्रायः लोग कान मूँद लेते हैं । (रा. मा. बा. २९२-४)

सांस्कृतिक दृष्टि से तुलसीदास में जहाँ परंपरागत और आदर्श भारतीय समाज के प्रति श्रद्धा लक्षित होती है वहाँ एक असंगति भी दिखायी पड़ती है यद्यपि दूसरी दृष्टि से उसका परिहार किया जा सकता है। तुलसीदास वर्णाश्रम धर्म के उन्नायक थे और समाज में ब्राह्मण का सर्वोच्च स्थान मानते थे । ऐसी परिस्थित में परशुराम के गर्व भंग के प्रसंग का जो निर्वाह लक्ष्मण के द्वारा उन्होंने कराया उसमें थोड़ा अनौचित्य दिखायी पड़ता है । ज्ञान और गुण विहीन ब्राह्मण की भी पूजा करने का आदेश देने वाले तुलसी ने लक्ष्मण के द्वारा परशुराम का इतना उपहास कैसे कराया कि लक्ष्मण उसके कारण जनक और अन्य सभासदों की सहानुभूति भी खो बैठे । लक्ष्मण की ढिठाई यहाँ तक बढ़ गयी कि वे अंत में कह उठे—

टूट चाप नहिं जुरहि रिसाने। बैठिय होइहहिं पाय पिराने ।
जौं अति प्रिय तौ करिय उपाई। जोरिय कोउ बड़ गुनी बोलाई ।।

जिसे सुनकर जनक को कहना पड़ा "मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं" । और लोगों ने कहा, "छोट कुमार खोट अति भारी" । (रा मा० बाल० २७७-२-४)

इन पंक्तियों से यह स्पष्ट होता है कि तुलसी ने प्रसंग-निर्वाह की रस दशा में आत्म विभोर होकर सांस्कृतिक अनौचित्य का ध्यान नहीं रखा ।

रामचरितमानस की एक और सांस्कृतिक बात है जिसको लेकर आजकल तुलसीदास की कड़ी आलोचना की जाती है। कहा जाता है कि स्त्रियों के प्रति वे बड़े अनुदार थे और उनको ढोल, गंवार और शूद्रों के साथ ताड़ना

के अधिकारी बताया है। ठीक है, उन्होंने अनेक स्थानों पर नारी की निंदा की है। इसके लिए उनकी आलोचना करने के पहले हमें यह देखना चाहिए कि किस प्रसंग में और किस दृष्टि से उन्होंने ऐसा किया है। सूक्ष्म दृष्टि से ऐसे स्थलों को देखने पर हमें विदित होगा कि नारी के जो अवगुण जब साधक या समाज को हानि पहुँचाने वाले होते हैं तब उन्होंने उनकी निंदा की है। तुलसीदास की दृष्टि आध्यात्मिक साधना की थी। जब तक हम उस दृष्टि से नहीं देख सकेंगे तब तक हमें उनके कथन से सहानुभूति नहीं होगी। जहाँ उन्होंने नारी की निंदा की है वहाँ कौसल्या, सीता, सुमित्रा जैसी अनुपम नारी रत्नों की भी तो सृष्टि की है। वे मनुस्मृति के इस कथन से पूर्णतः अवगत थे कि "यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवताः"। तो भी उन्होंने यदि नारी निंदा की थी तो किसी विशेष उद्देश्य से ही तो की थी जिसे समझने के लिए हमें उनकी उक्तियों का अर्थवाद लेना चाहिए।

आज के विद्याविधान से निर्मित हमारे संस्कार और जीवन के प्रति दृष्टिकोण वही नहीं रहे जो तुलसीदास और उनके समय के रहे थे। व्यतिरेक परिस्थितियों में रहकर विपरीत दृष्टिकोण से देखने पर कवि का भाव हृदयंगम नहीं होता। सर्वोपरि कवि का व्यक्तित्व और साधना प्रणाली है जिसकी दृष्टि से देखने पर ही हमें उनके कथन का औचित्य विदित होगा। नारी की निंदा में उन्होंने उसके अवगुणों की ही निंदा की है जैसे स्थान-स्थान पर पुरुषों के अवगुणों की भी निंदा की है।

इस प्रकार आलोच्य काल के हिन्दी राम साहित्य में तत्कालीन ऐतिहासिक और अभीष्ट आदर्श भारतीय समाज तथा संस्कृति का चित्र मिलता है।

नवाँ अध्याय

तेलुगु राम साहित्य का सांस्कृतिक, सामाजिक और नैतिक अध्ययन

किसी जाति की संस्कृति का स्वरूप जीवन के प्रति उसके दृष्टिकोण और उससे आविर्भूत विचार धारा, आचार-व्यवहार तथा सामाजिक रीति-रिवाज आदि में परिलक्षित होता है। आँध्र जाति का जीवन के प्रति दृष्टिकोण प्रारंभ से आध्यात्मिक, ज्ञान और कर्म-प्रधान रहता आया। उसमें जो भक्ति तत्व पाया जाता है वह ज्ञान और कर्म की प्रधानता लिए हुए है। अतः उसकी विचार धारा और आचार-व्यवहार आदि में अधिक गंभीरता दिखाई पड़ती है जो उसके अब तक के साहित्य में झलकती है। तेलुगु के राम साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन करने के पूर्व हमें इस बात को सदैव ध्यान में रखना चाहिए क्योंकि मानव जीवन का वही गंभीर पक्ष उसमें अधिक चित्रित है यद्यपि आगे चलकर उसमें पर्याप्त अंतर आ गया है।

ई. आठवीं सदी तक आँध्र देश में बौद्ध और जैन धर्मों का महत्वपूर्ण स्थान था। उसके बाद कुमारिल भट्ट तथा शंकराचार्य के कर्मकांड प्रधान पूर्वमीमांसा दर्शन और अद्वैतवाद के प्रभाव के फलस्वरूप उनका महत्व घट गया और वे धर्म केवल नामावशेष रह गये। किंतु जैन धर्म और आगे भी, काकतीयों के समय में भी चला। इसी समय ई. ग्यारहवीं शती में पंचमवेद माने जानेवाले महाभारत का तेलुगु में अवतरण होने लगा। किंतु विरोधी धार्मिक परिस्थितियों

के कारण वह लगभग चौदहवीं शताब्दी के मध्य तक पूर्ण नहीं हो सका। इन बीच की सदियों में आँध्र देश में उस वीरशैव धर्म का सर्वाधिक प्राबल्य रहा जिसका प्रवर्तन कर्नाटक प्रान्त में बसवेश्वर के द्वारा हुआ था। उसी के फलस्वरूप तेलुगु में उस समय वीरशैव साहित्य का निर्माण हुआ। किंतु साथ-साथ वैष्णव धर्म भी, जिसका प्रवर्तन सुदूर दक्षिण के तमिल प्रदेश में रामानुजाचार्य के द्वारा किया गया था, आंध्र देश में प्रचलित होने लगा था। इस प्रकार तेलुगु साहित्य के प्रारंभिक काल में जैन, वैदिक, वीरशैव और वैष्णव धर्म न्यूनाधिक रूप में व्याप्त रहे थे।[1] इनमें जैन धर्म पतनोन्मुख होने के कारण उसका कोई साहित्य तेलुगु में हमें उपलब्ध नहीं होता। वैदिक धर्म को पूर्वी चालुक्य राजाओं ने बहुत प्रोत्साहन दिया। उस धर्म के उन्नायक ब्राह्मणों को उन्होंने अनेक अग्रहार (गाँव) दान में दिए। शैवों और जैनों के प्रति भी वे अनुदार नहीं रहे। उनको भी दान दिये गये थे।[2] उस वंश के प्रसिद्ध राजा राजराज नरेंद्र ने महाभारत का प्रणयन नन्नय भट्ट के द्वारा कराया। उसके बाद तिक्कन्न और एर्रन्न ने भी महाभारत की रचना पूरी करके उस धर्म को सुरक्षित रखने में योगदान दिया।[3] काकतीय वंश के राजा जिन्होंने आँध्र देश का शासन लगभग ई० १०५० से १३५० तक किया, प्रारंभ में जैन थे; किन्तु बाद में शैव बन गये थे।[4] ई० १२०० तक देश में वीरशैव धर्म की जड़ें मजबूत हो चुकी थीं। काकतीयों के शासन में, उनके शैव बनने के बाद जैन धर्मावलंबियों को बहुत कष्ट दिये गये थे।[5] जैनों को कष्ट दिया जाना चालुक्य राजाओं के समय में ही प्रारंभ हुआ जिससे बहुत से जैन कर्नाटक प्रांत में जाकर रहने लगे और वहाँ काव्य-रचना भी करने लगे जिनमें पंप, पोन्न और रन्न प्रधान थे।[6] काकतीयों के बाद देश में रेड्डी राजाओं का शासन चला। इनके समय में शैव और वैष्णव की अनन्यपरता के होते हुए भी स्मार्त संप्रदाय की प्रधानता रही। आँध्र में स्मार्त संप्रदाय के अनुसार शिव

---

१. श्री सु. प्रतापरेड्डी—आंध्रल सांघिक चरित्र पृ० ४०
२. ,, ख. लक्ष्मीरंजनम्—आंध्रल चरित्र, संस्कृति पृ० २०६
३. ,, सु. प्रतापरेड्डी—आंध्रल सांघिक चरित्र पृ० ४०
४. ,, ,, ,, पृ० ४०-४२
५. ,, ,, ,, पृ० ४३
६. श्री शि. रामकृष्ण शास्त्री—आँध्र वाङमय चरित्र सर्वस्वमु पृ० ११५

और विष्णु में कोई भेदभाव नहीं माना जाता है। उस संप्रदाय के लोग श्रुतियों और स्मृतियों में प्रतिपादित कर्मकांड और पंचदेवाराधना करते हैं (शिव, विष्णु, सूर्य, गणेश और देवी)। ये वर्णाश्रम धर्म के पक्षपाती होते हैं। ये लक्षण उत्तर भारत के स्मार्त वैष्णवों के लक्षणों से मिलते हैं। आँध्र में वैष्णवों को स्मार्त नहीं कहा जाता। इन स्मार्तों के प्रति भी सहिष्णुता दिखायी गयी।

रेड्डी राजाओं के समय का वैष्णव धर्म आगे चलकर विजय नगर के राजाओं के समय में सांप्रदायिक रंग पकड़ने लगा जिसका प्रमाण उसके समय के प्रबंधों में मिलता है—विशेषकर श्रीकृष्णदेवराय के "आमुक्तमाल्यद" में। इस समय तक आते-आते वैष्णव धर्म का प्राबल्य अधिक बढ़ गया था क्योंकि वह राजधर्म था। तो भी उन राजाओं ने शैव धर्म का निरादर नहीं किया। शैव कवियों को भी उन्होंने आश्रय दिया। प्रसिद्ध शैव कवि धूर्जटि उन्हीं के समय का था।

काकतीयों के समय में जो धार्मिक संघर्ष था उसी के बीच में तेलुगु के राम साहित्य का प्रारंभ हुआ जो उदीयमान वैष्णव धर्म का प्रमाण माना जा सकता है। किंतु उसका दूसरा कारण भी है। तेलुगु का सर्वप्रथम उपलब्ध राम काव्य है तिक्कन्न कृत "निर्वचनोत्तर रामायण" जो उस समय के (ई० १३वीं शताब्दी के उत्तरार्ध) नेल्लूर मंडल के शासक मनुमसिद्धि को अर्पित था। निर्वचनोत्तर रामायण के कृतिपति के वंश वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि मनुमसिद्धि उस इक्ष्वाकु वंश के थे जिसमें राजा रघु और राम आदि प्रसिद्ध महाराज हुए थे। उसमें यह वंशावली इस प्रकार दी गई है—काश्यप प्रजापति के पुत्र सूर्य, सूर्य के पुत्र मनु, मनु के पुत्र इक्ष्वाकु, इक्ष्वाकु के वंश में राजा रघु, रघु के वंश में महाराज राम, राम के वंश में अनेक राजाओं के बाद करिकाल चोल, करिकाल चोल के वंश में बिज्जन, बिज्जन के वंश में मनुमसिद्धि, मनुमसिद्धि के पुत्र तिक्कनृपति और तिक्कनृपति के पुत्र मनुमसिद्धि हुए थे। अपने पुत्र को अपने पिता का नाम देने का आचार आन्ध्र में बहुत प्रचलित है। इसीलिए मनुमसिद्धि का पौत्र भी मनुमसिद्धि हुआ।[1] तिक्कन्न स्मार्त थे। अतः उनमें धार्मिक कट्टरता नहीं थी। इसीलिए उन्होंने अपने महाराज मनुमसिद्धि के सूर्यवंश के प्रसिद्ध महाराज राम की जीवनी लेकर काव्य लिखा और उसे मनुमसिद्धि को समर्पित किया। निर्वचनोत्तर

१. तिक्कन्न—निर्वचनोत्तर रामायण—भूमिका भाग।

रामायण की कथा जिस प्रकार चली है उसको देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि वैष्णव धर्म के दृष्टिकोण से उसकी रचना की गई थी। उसमें सूर्यवंश के, जिस वंश के मनुमसिद्धि थे, धीरोदात्त महाराज राम के आदर्श जीवन का वर्णन करना ही अभीष्ट था। रंगनाथ रामायण और भास्कर रामायण में निर्वचनोत्तर रामायण की अपेक्षा राम के विष्णुत्व को अधिक प्रधानता दी गई और अतः उनको वैष्णव काव्य कहा जा सकता है। किंतु उनका उद्देश्य वैष्णव धर्म का प्रचार करना नहीं था क्योंकि उनमें कवियों की वह प्रचारात्मक दृष्टि नहीं मिलती जो वीरशैव काव्यों में उनके कवियों की मिलती है। अतः उनको वीरशैव साहित्य की प्रतिक्रिया के रूप में लिखे गये वैष्णव काव्य नहीं कह सकते। रंगनाथ रामायण का उद्देश्य कवि को कीर्ति की प्राप्ति और इहलोक और परलोक की उन्नति करके पुण्य प्राप्ति कराना था जैसा कि उसकी भूमिका से स्पष्ट होता है। अपनी कृति का विशेष प्रचार करने के लिए रंगनाथ ने उसे द्विपद छंद में लिखा जो साधारण जनता में वीरशैव कवियों के द्वारा अधिक प्रचलित हो गया था। इसी प्रकार भास्कर रामायण का उद्देश्य भी साहित्यिक था। अन्यान्य राम काव्यों में भी ऐसा ही साहित्यिक उद्देश्य पाया जाता है। उनमें राम के विष्णु का अवतार होने की बात परंपरागत थी जैसा कि पहले दिखाया जा चुका है। अस्तु !

सामाजिक और सांस्कृतिक आचार-विचार:—

तेलुगु का राम साहित्य प्रधानतः वाल्मीकि रामायण के आधार पर लिखा गया है। अतः उसमें जो भारतीय संस्कृति का चित्र मिलता है वह वाल्मीकि रामायण के चित्र से भिन्न नहीं है। इस प्रकार सार्वदेशिक कथा वस्तु को लेने पर भी तेलुगु के कवियों ने अपने समय और देश की सभ्यता का रंग चढ़ाया जो स्वाभाविक था। निर्वचनोत्तर रामायण का प्रारंभिक अयोध्या नगर का वर्णन तिक्कन्न के समय के आँध्र नगरों का ही वर्णन है। नगर के चारों ओर विशाल और गहरे कंदक, ऊँचे-ऊँचे किलों के शिखर, रत्न जड़ित सालमंजिकाएँ, सुन्दर सौधों की पंक्तियाँ और मस्त हाथियों की चिंघाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट आदि सब तिक्कन्न ने मनुमसिद्धि और काकतीय राजाओं के नगरों में स्वयं देखे। इसी प्रकार भास्कर रामायण के अयोध्या वर्णन में भी उस समय के (१४वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध) आँध्र साम्राज्य की राजधानी ओरुगल का ही शब्द-चित्र है। वह अयोध्या नगर बड़े-बड़े राज मार्गों से शोभित था जिनमें कस्तूरी और चंदन मिश्रित सुगंधित जल छिड़क

हुआ था। मार्गों में वाहनों और मनुष्यों के चलने से धूल न उड़े इसलिए आज भी पानी छिड़क दिया जाता है। उस वीथियों में सोने और मोतियों की बहुत-सी दूकानें लगीं हुई थीं। उस नगर में हाथियों और घोड़ों आदि वाहनों के अतिरिक्त दूसरे राष्ट्रों से लाये गये ऊँट भी काफी थे। उस नगर में ऐसे स्वर्ण महल बहुत थे जहाँ निरंतर वेश्याओं के नृत्य और गान होते थे। "क्रीडाभिरामम्" नामक काव्य में ओरुगल नगर का वर्णन इसी प्रकार मिलता है। ये वर्णन उस समय के आँध्र नगरों की स्थिति का परिचय देते हैं यद्यपि यह भी कहा जा सकता है कि संस्कृत ग्रंथों का अनुकरण भी थोड़ा बहुत किया गया होगा। श्री वं० लक्ष्मीरंजन के लिखे "आँध्रुल चरित्र–संस्कृति" नामक ग्रंथ में काकतीय नगरों का ऐसा ही वर्णन मिलता है। (पृ० १७९-२७४)

निर्वचनोत्तर रामायण में भी अयोध्या में वेश्याओं का वर्णन है जो देवदासियाँ कहलाती हैं। ये देवदासियाँ भगवान के मंदिरों (शैव और वैष्णव) में उत्सवों के अवसर पर नाच-गान किया करती थीं। आजकल धीरे-धीरे यह प्रथा घट रही है। यह प्रथा विजयनगर के राजाओं और तंजाऊर के नायक राजाओं के समय में और भी अधिक प्रचलित थी। "रामाभ्युदय" और "रघुनाथ रामायण" में ऋष्यश्रृंग के प्रसंग में वेश्याओं का बहुत ही विस्तृत वर्णन है। रघुनाथ रामायण में वेश्यवाटिका का वर्णन यों है—

"वह वेश्यवाटिका मदनतंत्र सिद्धांत मणि पेटिका थी। वहाँ के स्वर्ण महलों में मृदंगों की मधुर ध्वनि कौर मंद्र, मध्यम और तार स्वरों का कर्णप्रिय संगीत सुनाई पड़ता था। कहीं कुछ वेश्याएँ कामसूत्रों का पठन करती थीं। कहीं अपनी सुन्दर बाहुबल्लरियों से पासे फेंकती हुई कुछ वेश्याएँ जुआ खेल रही थीं। कहीं पिंजड़ों में बंद तोते, मैनाएँ आदि कलरव करते थे। कुछ वेश्याएँ अपने विटों को अपने हावभाव से रिझा रही थीं। कुछ तो अपना श्रृंगार कर रही थीं।"

आँध्र देश की संस्कृति में प्रारंभ से वर्णाश्रम धर्मों की बड़ी प्रधानता थी। प्रायः सब प्रबंधों और काव्यों के प्रारंभ में सब वर्णों के लोगों का अलग अलग वर्णन पाया जाता है। प्रायः सब राम काव्यों में भी यह वर्णन मिलता है जिसका अर्थ यह होता है कि उस नगर में उन चारों वर्णों के लोगों का वास था जिसका वर्णन किया जाता था और वे अपने अपने धर्मों और कर्तव्यों का पालन करते थे। वरदराजु की द्विपद रामायण में कहा गया है कि अयोध्या में

वेद शास्त्रार्थ कोविद ब्राह्मण, राजनीतिज्ञ राजा, कुबेर के समान वणिक् और ब्राह्मणों की सेवा करनेवाले शूद्र थे। कंकंटि पापराजु की उत्तर रामायण में क्रमशः साकेत, वप्र, परिखा, सौध, चारों वर्णों, हाथियों, अश्वों, रथों, वीरों, वेश्याओं, पुष्पलाविकाओं, मंदमारुत और शस्यों का वर्णन सुंदर आलंकारिक शैली में मिलता है। यह वर्णन प्रबंध शैली की विशेषता है। मोल्ल रामायण में भी इस प्रकार का क्रमिक वर्णन मिलता है जिससे उस समय के चारों वर्णों के लोगों के धर्मों पर प्रकाश पड़ता है। साकेत नगर के ब्राह्मण अनुराग सम्पन्न, पवित्र यज्ञोपवीत धारी, दोनों संध्याओं में संध्यावंदन करनेवाले, सत् द्विज, तेजस्वी पंडित और बुद्धिमान थे। वहाँ के राजा चन्द्रमा के समान कांतियुक्त, कामदेव के समान सुन्दर, नदियों के समान दानशील, शेरों के समान पराक्रमी इन्द्र के समान भोगी, सूर्य के समान तेजस्वी, "राजराज के समान (दुर्योधन) आत्माभिमानी थे। वैश्य कुबेर के समान दानी, सत्यभाषी, सौभाग्यशाली, गंभीर और सरस व्यापारी थे। शूद्र भी खेती करते हुए धन धान्य सम्पन्न थे। इससे विजय नगर के राजाओं के समय विशेषकर श्री कृष्णदेव के समय—प्रजा की धन सम्पन्नता भी व्यक्त होती है।

नगर दर्शन के बाद उद्यान वाटिकाओं का वर्णन उल्लेखनीय है जिससे उस समय के राजोद्यानों और उनके विहारों पर प्रकाश पड़ता है। तिक्कन्न की निर्वचनोत्तर रामायण में राम और सीता के वन-विहार और जल-विहार का जो वर्णन आता है। (नि. रा. ८) उससे विदित होता है कि मनुमसिद्धि के राजप्रासाद में बड़े-बड़े उद्यान बन थे जिनमें राजा अपनी स्त्रियों के साथ विहार किया करते थे। वन-विहार करते हुए वे पुष्पापचयन भी करते थे जो उनके लिए एक क्रीड़ा के समान था। रानी अपनी सखियों को साथ लेकर राजा के साथ वन-विहार किया करती थी। जल-विहार में सखियाँ भाग लेती थीं। पहले वन-विहार करते हुए राजा और रानी हास-परिहास करते थे जिसमें सखियाँ भी योग देती थीं। सब में मादकता छायी रहतीं थी और गीत गाते हुए फूल तोड़ते थे और झूले झूलते थे। बीच बीच में राजा रानी को लक्ष्य करके जैसे नर्म वचन कहता था कि रानी उनको सुनकर लज्जित होती थी और राजा लज्जा में प्रस्फुटित उसका सौंदर्य देखकर अघाता न था। कुछ देर के बाद उद्यान बन के सरोवर में उतरकर सब जलकेलि करते थे जिसमें स्त्रियों का नैसर्गिक सौंदर्य दिखाई पड़ता था। इस प्रकार का वर्णन निर्वचनोत्तर रामायण, और कंकंटि पापराजु की उत्तर रामायण में बहुत ही

सुन्दर मिलता है। उदाहरण के लिए दो वर्णन देखे जायँ। निर्वचनोत्तर रामायण में राम और सीता की जल-केली—

"सीता जल केली के समय हाथों से उछाली गई जलधारा से दूर रहकर पति पर दृष्टि का प्रवाह बहाने लगी। अपने हाथ से कमल न उखाड़कर राम का हाथ पकड़ती थी। पानी पर तैरती हुई क्रीड़ा न करके वह रागरस में तैरने लगी। सखियाँ जहाँ क्रीड़ा करती हैं वहाँ न जाकर श्रृंगारी चेष्टाएँ करती थीं। जलकेली से थकी भी न थककर प्रियतम के शरीर पर चढ़कर उससे लिपट जाती थी" (नि. रा. ८-५७)

ऐसी जलक्रीड़ाएँ परस्पर प्रेमवर्धन के लिए साधन होती थीं।

पापुराजु की उत्तर रामायण में जल क्रीड़ा का वर्णन —

जब सीता की सब सखियाँ सरोवर में तैरती हुई क्रीड़ा करती थीं उस समय का दृश्य यों था। अपने मुख ऊपर उठाती हुई जब सब कामनियाँ तैरने लगीं तो पूरे सरोवर में चंद्रबिंब भर गये। उनके तैरते समय जब उनके स्तन दिखाई पड़ते थे तब सारे तालाव में कमल की कलियां भर गईं। उनके जूड़ा-बंधन खुलकर बाल एक साथ जब दिखाई पड़ते थे तब सारा सरोवर अंधकार-मय बन जाता था। तैरते समय जब उनके नितंब एक साथ दिखाई पड़ते थे तब सरोवर में द्वीप ही द्वीप बन जाते थे। भुजाएँ जब दीख पड़ती थीं तब सरोवर में कमल नाल भर जाते। पूरे शरीर जब दिखाई पड़ते थे तब समस्त सरोवर स्वर्णमय बन जाता था। (उ. रा. ६-८१)

ऐसे वर्णन उस समय के राजाओं की विलासप्रियता को सूचित करते हैं। इन दोनों रामायणों की रचना में लगभग तीन चार शताब्दियों का अन्तर है। तो भी जहाँ तक राजाओं की विलास प्रियता का संबंध है, वहाँ तक कोई अंतर नहीं पाया जाता। विजयनगर के राजाओं के समय यह प्रवृत्ति और अधिक हो गयी क्योंकि उनके सुशासन में देश बहुत ही सुख संपन्न था जिसके फलस्वरूप राजा और प्रजा में विलासों की ओर झुकाव अधिक हो गया था। इस प्रकार के वर्णनों में संस्कृत काव्य परिपाटी का भी समावेश दिखाई पड़ता है।

आँध्र राजाओं के सभा भवनों में एक प्रकार के झरोखें थे जिनको "गवाक्ष" कहा जाता था। इन गवाक्षों पर गारे से बनी जाली सी रहती थी। सभा भवन मंजिलों में विभक्त नहीं होता था। उसके चारों ओर मंजिलें बनी रहती थीं जिनमें बैठकर गवाक्षों के द्वारा अंतपुर की स्त्रियाँ सभा में होनेवाले कार्यों को देख सकती थीं; किंतु सभा में बैठे हुए लोग उनको नहीं देख सकते थे।

इससे यह विदित होता है कि राजांतःपुर की स्त्रियों को आत्मीयों को छोड़कर अन्य कोई पुरुष नहीं देख सकता था; यद्यपि वे घूँघट नहीं डालती थीं। रंगनाथ रामायण में शिवधनुर्भंग के समय सीता के अपनी माता और अन्य सखियों के साथ गवाक्ष में से राम को देखने का उल्लेख मिलता है। (रं. रा. बा. पृ. ६४—पंक्ति १९०५) ऐसे गवाक्ष तंजाऊर के महाराष्ट्र शासकों के सभाभवन में भी बने हुए हैं जिनका समय १७ वीं शताब्दी था।

हमारे आलोच्यकाल में आँध्र में स्त्री पुरुष, विशेषकर राजपरिवारों में, कई प्रकार के अलंकार धारण करते थे। विवाह के समय रंगनाथ रामायण में राम का अलंकार इस प्रकार हुआ है—

उनके सिर पर ऊँचा किरीट शोभित था। हाथों में कंगन पहने हुए थे। विवाह के अवसर पर धारण कराया जानेवाला कंकण भी वे धारण किए हुए थे। छाती पर चंद्रकांति की आभा वाले हार पड़े हुए थे। वे पीतांबर पहने थे। कानों में मोतियों के कर्णभूषण जिनको "चौक्टट्टु" कहा जाता, है पहने थे। भाल पर कस्तूरी का तिलक लगाये हुए थे। "रामाभ्युदय" भी अनेक सुन्दर स्त्रियाँ राम का इस प्रकार अलंकार करती हैं (रामा. ४ आ. १०७) इसी प्रकार अन्य भाइयों का भी अलकार किया गया। स्त्रियों के अलंकार स्वभावतः इससे अधिक होते थे। विवाह के पहले अभ्यंग स्नान कराने के बाद रंगनाथ रामायण में सखियों ने सीता का शृंगार इस प्रकार किया—अभ्यंग होने के बाद शरीर पोंछकर स्वच्छ धुले कुसुंभवर्ण के लहँगे पर सोने की जरी लगे आँचल वाला रेशमी वस्त्र पहनाया गया। आँध्र में क्षत्राणियाँ लहँगे पहनती हैं और उस पर एक चद्दर का एक छोर कमर में नाभि के नीचे लहँगे में खोंसकर दूसरा छोर पीछे की ओर ले जाकर नितंबों पर घुमाकर दाहिने हाथ के नीचे से छाती पर बाँयें कंधे पर ले जाती हैं और पीछे लटकने को छोड़ देती हैं। इस चद्दर को "ओणी" कहते हैं। सीता को लहँगे के अनुरूप "ओणी" पहनाई गई। अन्य वर्णों की बालिकाएँ भी इस प्रकार लहंगा और ओणी पहनती हैं। केश बंधन एक विशेष प्रकार का होता था जिसे "कोप्पु" कहते हैं। आजकल भी कुछ ग्रामीण वृद्धाएँ "कोप्पु" बाँध लेती हैं। सीता के भी सखियों ने "कोप्पु" बाँधा था और उसमें "जाई" के फूल गूंथ लिए। आँध्र की स्त्रियाँ जाई और चमेली के फूल बहुत पसंद करती हैं। गुलाब जल में कपूर ओर कस्तूरी घोलकर शरीर पर लगाया गया। सोने की जरी का काम किये गए कपड़े की बनी चोली पहनाई गई। कमल की कलियों को लजानेवाले, साने के ताड़पत्रों का तिरस्कार करने

वाले, और पुष्पगुच्छों का उपहास करने वाले स्तनों पर मरकत-मोतियों के हार पहनाये गये। सुन्दर भाल पर छिगुनी के नख से सँवार कर कस्तूरी का तिलक लगाया गया। कपोलों पर मकरिका पत्रों की रचना की गई। नाक में "मुक्केर" नामक आभूषण पहनाया गया। रत्न जड़े ताटंक, मोतियों और माणिक्यों के "बविर" नामक कर्णाभरण, पैरों में मरकत जड़े कड़े, और गोमेदक जड़े नूपुर जिन्हें "अंदिय" कहते हैं पहनाये गये। पद्मराग जड़ा कटिसूत्र भी पहनाया गया। इस प्रकार चारों कन्याओं को सजाया गया। यह शृंगार है। यह शृंगार काकतीय राजाओं के समय के आँध्र राज परिवार की स्त्रियों का ही शृंगार है। वरदराजु की रामायण में उपरोक्त आभूषणों के अतिरिक्त सीता को बिछिया के समान आभूषण पैरों की उँगलियों में पहनाये गये जिन्हें "मट्टे" कहते हैं। किंतु ये आभूषण विवाह के बाद ही पहनाये जाते हैं; पहले नहीं। कवि को वर्णन करते समय इस समय इस बात का ध्यान नहीं रहा होगा। अतः पहले ही उनका उल्लेख कर दिया।

आँध्र में शिशु के जन्म पर दस दिन तक जाताशौच माना जाता है जिसके बाद ग्यारहवें दिन शिशु का नामकरण किया जाता है। इसके अनुसार एकोजी रामायण में जाताशौच के बाद दशरथ के पुत्रों का नामकरण करने का उल्लेख किया गया है। (एकोजी. रा. बा. पत्र ९ दूसरी तरफ) किंतु भा. रा. में बारहवें दिन जातकर्म पुण्याहवचन के साथ करने का उल्लेख है। इससे विदित होता है कि आँध्र में कहीं-कहीं बारहवें दिन भी नामकरण किया जाता है। (भा. रा. बा. १५९)

आँध्र में वैवाहिक पद्धति आर्य संप्रदाय की ही है यद्यपि आर्येतरों के भी कुछ आचार पाये जाते हैं। विशेषकर ब्राह्मण और क्षत्रियों में आर्य पद्धति दिखाई पड़ती है। पाणिग्रहण, सप्त पदी आदि आर्य संस्कृति के चिन्ह और मंगलसूत्र धारण आदि दक्षिणी संस्कृति के।[1] रंगनाथ और वरदराजु की रामायणों में राम और सीता का विवाह जो वर्णित है वह आँध्र के विवाह संस्कार का परिचायक है। विवाह के पहले राम ने "स्नातक" कर लिया। स्नातक विवाह के पहले की वह प्रक्रिया है जिसमें औपचारिक ढंग से दूल्हा गुरुकुल से विद्या प्राप्त करके लौट आता है और उसका नया ससुर या साला उसका स्वागत करके अपनी लड़की या बहन देने की बात कहता है। उसके बाद विवाह के पहले वर

१. श्री खं. लक्ष्मी रंजन—'आँध्रुल चरित्र संस्कृति' पृ. ५२

और वधू का अभ्यंग स्नान होता है जिसे "मंगल स्नान" कहते हैं। सीता के अभ्यंगन का वर्णन बहुत ही स्वाभाविक है। सीता को सखियों ने रत्नपीठ पर बिठाया। एक सखी ने उसके बाल खोलकर उनमें चंपक पुष्पों का सुगंधित तेल दाहिने हाथ की छिगुनी से बहाते हुए डाला। बाद में हथेली से सिर पर थपथपाया। उसके केश नखाग्रों से सुलझाये। बाद में शरीर में तेल और सुगंधित उबटन का लेप करके कढुष्ण सुगंधित जल में स्नान कराया। (रं. रा. बा. पृ. ७४ पंक्तियाँ २२०५-२२१०; व. रा. बा. पृ २२० पंक्तियाँ ५३०५-५३१५) विवाह के दिन जैसे ही वशिष्ठ ने मुहूर्त या लग्न के समय की सूचना दी वैसे ही दशरथ बड़े ठाठ बाट के साथ जनवासे से जनक के महल में विवाह मंडप के लिए निकल पड़ते हैं। उस समय उनके साथ बहुत से राजा, स्त्रियाँ, ऋंत लिए हुए स्त्रियाँ, वेश्याएँ, हाथी, वेदपाठी ब्राह्मण आदि सब उस जलूस में थे। "ऋंत" वह प्रधान द्रव्य होता है जो वर पक्ष वाले वधू के लिए ले जाते हैं। यह प्रथा आर्य विवाहों में नहीं है और आँध्र पर दक्षिणी संस्कृति का प्रभाव है।[1] वेश्याएँ भी राजाओं और बड़े-बड़े धनवान लोगों के विवाहों में वर पक्षवालों के साथ रहती हैं। वधू पक्षवाले भी इनको नियुक्त करते हैं कि समय-समय पर अपने नृत्य और गान के द्वारा लोगों को रिझायें। विवाह मंडप को फलयुक्त केले के खंभों, नारियल और आम के पत्तों आदि से अलंकृत किया जाता है। मंडप के चारों ओर केले के खंभे खड़ा करते हैं और चारों ओर नारियल तथा आम के पत्तों के बंदनवार लगाये जाते हैं। एकोजीरामायण में राम के विवाह मंडप के इस प्रकार के अलंकृत किए जाने का वर्णन है। नारियल के पत्तों का उपयोग उत्तरी आँध्र में नहीं होता। तमिलनाडु में होता है। उत्तरी आँध्र में केवल आम्रपत्रों का ही बंदनवार बनता है। एकोजी रामायण की रचना तमिल प्रदेश में होने के कारण इसमें उस प्रदेश का प्रभाव हो सकता है। वह मंडप अनेक चित्रों और श्वेतवितान से अलंकृत था। (ए. रा. पत्ता २० द्रू. त) विवाह मंडप में सब के आसीन होने के बाद अंकुरार्पण किया गया। अंकुरार्पण में नवधान्य (धान या जौ, मूँग, उडद, अरहर, तिल, चने, लोबिया, कुलथी और गेहूँ) को मिट्टी के थालेनुमा बरतनों में लाल मिट्टी भरकर उसमें बीजारोपण किया जाता है और 'नाकबलि' के दिन उनकी पूजा करते हैं। रोज उनको नैवेद्य चढ़ाया जाता है। उसके बाद राम अक्षत, घृत, चंदन आदि का वेदोक्त विधि से होम करते हैं। फिर एक परदा रखकर सीता को उसकी दूसरी तरफ बिठाया जाता है। फिर परदे को थोड़ा

---

१. श्री खं. लक्ष्मीरंजनम—आंध्रुल चरित्र संस्कृति, पृ. ५२

झुकाने पर राम और सीता दोनों एक दूसरे को प्रेम की दृष्टि से देख लेते हैं जिसे "मुख संदर्शन" कहते हैं। फिर जनक दोनों को "मधुपर्क" देते हैं जो विवाह में वर और वधू के वस्त्र विशेष होते हैं। "मधुपर्क" में शहद और दही मिलाकर वर को खाने को दिया जाता है और उसके सिर पर जीरा और गुड़ रखा जाता है। उसके बाद वे वस्त्र देते हैं जो मधुपर्क खाने के बाद दिये जाने के कारण "मधुपर्क" कहलाते हैं। "मधुपर्क" वे वस्त्र विशेष हैं जो सफेद और लाल किनारे वाले होते हैं। उन पर सोने की ज़री का काम किया हुआ रहता है। वधू की साड़ी का आँचल पूरा जरी का होता है। वर और वधू इन वस्त्रों को विवाह के पाँचों दिन पहने रहते हैं। उन पर हल्दी लगाई जाती है। मधु-पर्क धारण होने के बाद राम का पाद-प्रक्षालन करने जनक वेदोक्त मंत्रों के अनुसार पवित्र जल राम के हाथ में छोड़ते हुए कन्यादान कर देते हैं। तदनंतर राम सीता के कंठ में मंगल सूत्र बाँध लेते हैं। यह रिवाज भी आँध्र जाति पर दक्षिणी संस्कृति का प्रभाव है। इसके बाद राम और सीता एक दूसरे के सिर पर अपने-अपने हाथों से मोतियों की वर्षा करते हैं जिसे "तलंब्रालु" कहते हैं, जिसके अनंतर दोनों अग्नि के चारों ओर सप्तपदी करते हैं। इसके साथ विवाह का कार्य पूरा हो जाता है। फिर राम और सीता गुरुजनों और मुनियों को नमस्कार करते हैं और उनके आशीर्वाद प्राप्त कर लेते हैं। इसी प्रकार अन्य भाइयों का भी विवाह संपन्न होता है। इसके अनंतर और चार दिन तक वैवाहिक कार्यक्रम चलता है। वेदोक्त पद्धति से "सदस" आदि सब कार्य संपन्न किये जाते हैं। "सदस" में तीनों वेदों का पठन करते हुए ब्राह्मण वर-वधू को आशीर्वाद देते हैं और वर पक्षवालों से भूरि भूरि दक्षिणा प्राप्त कर लेते हैं। अंतिम दिन "नाकबलि" और "वसंत" के कार्य पूरे होते हैं। "नाकबलि" में एक स्थान में चौक पूरन करके उस पर नये रंगीन छोटे छोटे घड़े जो विशेष रूप से कुम्हार के द्वारा बनाये जाते हैं, "अंकरार्पण" के बरतनों के साथ रखकर, देवताओं का आह्वान करके उनकी पूजा की जाती है और रक्ताक्षत वगैरह की बलि दी जाती है। वसंत में वर और वधू एक दूसरे पर होली खेल के समान अबीर गुलाल आदि फेंकते हैं। इसके साथ पाँच दिन का वैवाहिक कार्य पूरा हो जाता है। अंत में कन्या को वर और सास ससुर के हाथ में सौंपने का दृश्य बड़ा करुणापूर्ण होता है। इसका उल्लेख एकोजी रामायण में किया गया है जनक भीगे नयनों से अपनी कन्याओं को दशरथ के हाथों में सौंपते हुए कहते हैं कि महाराज! अब तक ये कन्यायें मेरे घर में बड़े लाड़-प्यार से पली हैं। ये कुछ

अपराध कर बैठें तो आप कृपापूर्वक क्षमा करना।" इस क्रिया को "अप्पगिंत" कहते हैं। (एकोजी रामायण—२८ पृ. दूसरी तरफ) (रं. रा. बा. पृ ७५-७६, व. रा. बा. पृ. २२३-२२६) इस वर्णन से यह विदित होता है कि आँध्र देश की वैवाहिक विधि प्राचीन आर्य-पद्धति से ही होती है, किंतु उस पर दक्षिणी संस्कृति का भी प्रभाव पड़ा है।

लोगों की मृत्यु पर बारह दिन का शौच माना जाता है और उन दिनों में वेदविहित पद्धति से उत्तर क्रियायें की जाती हैं और पिंड दान किया जाता है जिससे मृत-व्यक्ति का प्रेतत्व छूट जाय। भरत और राम के दशरथ की मृत्यु पर इसी प्रकार उत्तर क्रियायें करने का वर्णन है। जब राम को पिता की मृत्यु का समाचार भरत के द्वारा मिलता है तब ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण एक ही दिन में बारहों दिनों की क्रियायें करके तिलोदक छोड़ते हैं और बदरी फल मिश्रित इंगुदी और पिण्याक (खली) का पिंडदान करते हैं। (भा. रा. अयो. २६१) इसी प्रकार जटायु का अग्नि संस्कार करके उसकी उत्तर क्रियाएँ करते हैं। वहाँ एक हरिण को मारकर उसके माँस का पिंडदान एक कदंब वृक्ष के नीचे करते हैं (भा. रा. अ. ३७३)

किसी की मृत्यु होने पर, बारहवें दिन ब्राह्मणों और सजातीय या बिरादरी के लोगों को भोजन कराने का विधान आँध्र में प्रचलित है। तभी मृत आत्मा की तृप्ति मानी जाती है। जटायु पक्षी होने के कारण पक्षियों को मांस खंड फेंके गये। इनका वर्णन न्यूनाधिक रूप में सब रामायणों में किया गया है। मृत व्यक्तियों को दिये जानेवाला यह तिलोदक आँध्र भाषा में इतना प्रसिद्ध हो हो गया कि हमेशा के लिए खो गई वस्तु के लिए भी तिलोदक देने की कहावत चल पड़ी है।

काकतीय राजाओं के समय में राजपरिवार की स्त्रियाँ कहीं जातीं तो कई दास-दासियों को लेकर बड़े ठाठ-बाट के साथ पालकी में जाती थीं। कैकसी जब रावण को उपदेश देने के लिए अपने महल से सभा भवन में जाती है तब उसके वैभव का वर्णन रंगनाथ रामायण में बहुत ही सुन्दर किया गया है।

कैकसी सोने की पालकी में बैठी थी जिसे अप्सराएँ अपने कंधों पर उठाए थीं। कैकसी श्वेत वस्त्र पहने थी। श्वेत चामर, श्वेत मालाएँ, श्वेत चंदन, श्वेत अक्षत और श्वेत भूषण वह धारण किए हुए थी। उसकी पालकी के साथ उसके भाई बंधु, दास दासियाँ, मंत्री, किन्नर, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, नाग आदि जातियों की स्त्रियाँ आदि सब उसके साथ चल रहे थे।

गरुड़, गंधर्व आदि स्त्रियाँ चामर डुला रही थीं। मोटे कपड़े पहनी हुई राक्षस वृद्धांगनाएँ भी चल रही थीं। कुछ अप्सराएँ नाच रही थीं। फणिहार आगे-आगे "साहो" कहते हुए जा रहे थे। "साहो" एक प्रकार से सावधान करने का शब्द है। वेद पाठ करनेवाले ब्रह्मराक्षस भी उसके साथ थे। इस वैभव के साथ जब कैकसी चल पड़ी थी तो ऐसा मालूम होता था मानों चंद्रकांति के साथ शारदा इंद्र के भवन में जा रही हो और मंदार, चंद्रिका, चमेली, हिमशैल, कर्पूरहार, चंदन. गोक्षीर, शरच्चंद्रिका की आभा को लेकर देवताओं के साथ पृथ्वी पर आनेवाली मंदाकिनी हो। हाथों में रत्नों और मणियों के कंकण, कंठ में मोतियों हार पहने हुए कैकेसी चंचलायुक्त शुभ्र मेघ के समान शोभित थी। वह इस प्रकार दिखायी पड़ रही थी मानों दीप्त सूर्य तेज हो। हाथियों, रथों, घोड़ों और अनेक राक्षसों को साथ लेकर जानेवाली कैकेसी अनेक वाहिनियों को साथ लेकर ब्रह्मा की सभा में जानेवाली शारदा के समान शोभित थी। वह मानों अमल तरंगों से युक्त अमृत सिंधु थी; मानों सब नक्षत्रों का एकत्रित समूह थी; मानों सागर के सब मोती एकत्रित हो गए हों; मानों कपूर का पर्वत हो। इस वर्णन में जहाँ काकतीय राजाओं के समय का राजवैभव और उनके आचार व्यवहार अंकित है वहाँ कवि का सुन्दर साहित्यात्मक वर्णन भी देखने को मिलता है। इस वैभव के साथ सभा में आई हुई अपनी माता कैकेसी का रावण बड़ी भक्ति के साथ स्वागत करता है और सोने के सिंहासन पर बिठाता है। उसके साथ आये हुए अन्य लोगों को यथायोग्य आसनों पर बिठाकर माता से कहता है कि "माता जी ! आप तो कभी सभा में नहीं आती थीं। आज मुझे बड़ी प्रसन्नता है। अब बताइये कि आप कैसे पधारीं ?" इस वर्णन से यह भी स्पष्ट होता है कि राजांतःपुर की स्त्रियाँ वैसे राज सभा में नहीं जाती थीं, किंतु विशेष अवसर पर जब जाना ही पड़ता था तो अपने वैभव के अनुरूप राजोचित ढंग से जाती थीं। (रं. रा. यु. पृ. ३२२-३२४)

आँध्र की स्त्रियाँ समय पड़ने पर युद्ध के मैदान में शत्रुओं के बीच में भी जाने का साहस करती थीं। इंद्रजित की पत्नी सुलोचना का युद्ध क्षेत्र में अपने पति का शव लाने जाने का वर्णन है। पति या ससुर या सास की अनुमति लिए बिना स्त्रियाँ घर के बाहर नहीं जाती थीं। आज भी यह प्रथा है। सुलोचना पहले अपने श्वसुर से पति का शव मँगवाने को कहती है। किंतु जब रावण अपनी असमर्थता प्रकट करता है तब वह उसकी अनुमति लेकर रणभूमि में जाती है और राम की स्तुति करके इन्द्रजीत का शव प्राप्त कर लेती है।

विधवा स्त्रियाँ जब बाहर जातीं, तब अग्नि को सामने रखकर जाती थीं। यह तो आर्य संस्कृति का ही द्योतक है। वाल्मीकि रामायण में भी कौसल्या भरत से कहती है कि मैं भी अग्नि को आगे रखकर वहाँ जाऊँगी जहाँ राम होंगे।

अथवा स्वयमेवाहं सुमित्रानुचरा सुखम्।
अग्निहोत्र पुरस्कृत्य प्रस्थास्ये यत्र राघवः॥

(वा. रा. अयो. ७५-१४)

सुलोचना भी आकाश मार्ग से जाते समय अपने रथ पर अग्नि रखकर जाती है जिसे दूर से देखकर हनुमान समझ लेता है कि कोई विधवा आ रही है। आँध्र की स्त्रियाँ पति के शव के साथ सती होती थीं जिसे "सहगमन" कहा जाता है। सुलोचना अपने पति इन्द्रजीत के शव के साथ "सहगमन" करती है। तब भी वह श्वसुर की अनुमति लेकर ही सहगमन करती है। क्योंकि ऐसे धार्मिक कार्यों में पति या उसकी अनुपस्थिति में श्वसुर या सास की अनुमति लेना आवश्यक था। सहगमन करने का भी अलग विधान था। उसके अनुसार सुलोचना सुंदर, पटह भेरी, मंख, काहल (शहनाई का सा) आदि अनेक प्रकार के वाद्यों के नाद के बीच में स्नान करके रेशमी वस्त्र, रत्नाभूषण, पुष्पमालाएँ आदि पहन लेती हैं और भाल पर केवल चंदन का लेप कर लेती है। तिलक धारण नहीं करती क्योंकि विधवायें तिलक नहीं लगातीं। उसके बाद पति के शव को सुन्दर वस्त्र और आभूषण पहनाकर विमान में रख लेती है और श्मशान में पहुँच जाती हैं। कुछ राक्षस त्रेताग्नि लेकर उसके साथ जाते हैं। श्मशान में पहुँचकर वेदोक्त विधि से उत्तर दिशा की ओर चिता चुनवा लेती हैं और साथ लाई हुई सुहागिनों को सोने के सूप और वस्त्रों का दान करती है। उसके बाद पति का शव गले से लगाकर चिता में आग लगा लेती हैं और अपना शरीर पति को मनसा अर्पित करके उस पर चढ़कर जल जाती हैं। सूपों का दान आँध्र की स्त्रियों में आज भी बहुत प्रचलित है और सूप बड़ी पवित्र वस्तु मानी जाती है। उसका पैरों से स्पर्श करना अशुभ माना जाता है (रं. रा. यु. पृ. ४८१).

रंगनाथ रामायण में रावण का वध करके राम के अयोध्या पहुँचने पर सुग्रीव, विभीषण, गुह आदि सबको भोज दिया जाता है जिसमें आंध्र में प्रचलित भोजन ही परोसा जाता है। सोने के थालों में स्त्रियाँ, सूप (दाल) अपूप, पायस, वरुगु, वडियमु, नाना प्रकार की तरकारियां, चटनी, अचार, भात ताजा घी, फल आदि चीजें परोसती हैं। परोसने के बाद राम हनुमान से भोजन करने को कहते हुए एक थाल में से एक कौर निकालकर खाते हैं। झट

हनुमान उस थाल को सिर पर रखकर अन्य वानरों के साथ, राम के उस प्रसाद को मुनिवृक्ष के पत्तों में बाँटकर बड़ी भक्ति के साथ खाकर संतुष्ट होता है। भगवान का प्रसाद इसी प्रकार पत्तों में रखकर भक्ति के साथ खाया जाता है। इसी प्रकार के देशी व्यंजन "रामाभ्युदय" में वेश्याओं के द्वारा ऋष्यशृंग को खिलाये जाते हैं। किंतु उनमें पकवान अधिक हैं। जैसे (राम. २ आ. ११४) इडिरम्, बूरि, कज्जे कायलु, कुडुमुलु आदि। तावीज आदि रक्षक साधनों में स्त्रियों का विश्वास बहुत प्राचीन काल से चला आता है। सुलोचना का विवाह जब इन्द्रजित से हुआ था तब उसके पिता शेष ने उसे एक शिरोरत्न देकर कहा कि जब तुम्हारा पति युद्ध में जाये तो यह मणि उसके सिर पर रख आरती उतार कर भेजोगी तो यह अवश्य विजयी होगा। पति की मृत्यु पर सुलोचना इस बात का स्मरण करके पछताती है कि वह उपरोक्त विधान नहीं कर सकी क्योंकि इन्द्रजित उससे कहकर युद्ध में नहीं गया। (रं. रा. यु. पृ. ४७६)

राजसभा में किसी का अकारण हँसना बड़ा अपराध माना जाता था। अयोध्या लौटने के बाद राम जब सभा में विराजमान थे तब लक्ष्मण को अकारण हँसी आ गई थी जिसे राम ने बड़ा अपराध माना और उसका कारण पूछा। जब लक्ष्मण ने कारण बताया तो राम को संतोष हुआ। कारण यह था कि निद्रा देवी, ने जो लक्ष्मण की आज्ञा से चौदह साल तक उससे अलग रही, आज अचानक उसकी पलकों पर आक्रमण किया जिसे देखकर लक्ष्मण को हँसी आ गई। (रं. रा. यु. ५७४-५७५)

काकतीयों के राज्य में सेनापति को "दलवायि" कहा जाता था। विभीषण राम को प्रहस्त का परिचय देते हुए कहता है कि प्रहस्त रावण के समस्त सेना-समूह का "दलवायि" है। (रं. रा. यु. पृ. ३८४ पं. ३०४२)

कवि की आलंकारिक शैली में कहीं कहीं आँध्र जाति के आचार-व्यवहार आदि झलकते हैं। आँध्र में चावल प्रधान भोजन है। भात पकाने के लिए पहले चूल्हे पर पानी चढ़ाया जाता है जिसे "एसरु" कहते हैं। जब पानी खौलने लगता है तब उसे "एसरुक्रागिनदि" कहते हैं। राम, रावण के युद्ध में राक्षसों के पराक्रम की प्रचंडता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि उसकी प्रचंडता से "सागर "क्रागिन एसरुलु" (भात के लिए चूल्हे पर चढ़ाया हुआ खौलता पानी) की तरह खौलने लगे।" (रं. रा. यु. पृ. ३५८ पं. २२७७)

आंध्र में खेतों और बागों की रखवाली करनेवाले लोग चिड़ियों को उड़ाने के लिए गुलेलों का प्रयोग करते हैं जिनमें छोटे-छोटे ढेले रखकर गुलेल को जोर से घुमाते हैं और उसका एक छोर छोड़ देते हैं तो वह ढेला गोली के समान तेजी से जाता है और कभी-कभी पक्षी उससे मर भी जाते हैं। वानर सेना जब लंका का ध्वंस करने लगी तो अपनी पूँछ को "वडिसेल" (गुलेल) बनाकर उनसे पत्थर फेंकती थी। (रं. रा. यु. पृ. ३५८ पं, २२३७)

आँध्र स्त्रियों की सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण अभिलाषा है अपने मंगलसूत्रों के सुरक्षित रहने की क्योंकि वही सुहाग का चिह्न है। विधवाओं के गले से वह उतार दिया जाता है। राम जब समुद्र पर बाण छोड़ने को तैयार होते हैं तब समुद्र की पत्नियाँ आकर उनसे प्रार्थना करती हैं कि आप हमारे मंगलसूत्रों की रक्षा कीजिए। (रं. रा. यु. पृ. ३१४—पं. ९३४)

आँध्र में जब किसी को आशीर्वाद दिये जाते हैं तब सिर पर अक्षत डालकर (हल्दी से पीले बनाए चावल) दिए जाते हैं। विभीषण जब माता कैकेसी की अनुमति लेकर राम की शरण में जाता है तब कैकेसी उसके सिर पर अक्षत रखकर आशीर्वाद देती है कि तुम्हारी आयु और श्री की वृद्धि हो। (रं. रा. यु. पृ. ३०३—पं. ६०८)

"बोय जाति" आँध्र देश की एक जंगली जाति है। "रामाभ्युदय" में उस जाति के लोग दशरथ की सभा में आकर बाघ के नख, शहद, कस्तूरि आदि सुगंधित द्रव्य जंगली बिल्लियाँ, गोरोचन, हरिण, आम, खरगोश, पारावत् आदि लाकर भेंट करते हैं। इस जाति के लोग कभी शहरों में आकर इन दुर्लभ वस्तुओं को बेचते हैं।

किसी महिमामयी वस्तु को देखकर उसके प्रति भक्ति उमड़ती है और लोग उसकी भगवान की तरह पूजा करते हैं। "मोल्ल रामायण" में जब शिवधनुष सभा में लाया जाता है तब धूप, दीप, फूल, चंदन, अक्षत आदि से उसकी पूजा की जाती है (मो. रा. बा. ६९) इससे आँध्र जाति की आदिकालीन आर्य संस्कृति व्यक्त होती है।

रघुनाथ रामायण में रघुनाथनायक के समय के (१६१४-३३) तंजाऊर का चित्र अंचित है। तंजाऊर की भूमि बड़ी उपजाऊ है। उसे दक्षिण का धान का गोदाम कहा जाता है। वहाँ अनेक प्रकार के धान पैदा होते हैं। चावल के जितने प्रकार होते हैं उन सबकी रघुनाथ नायक अयोध्या में उत्पत्ति का

वर्णन करते हैं जैसे पुष्पमंजरी, पुब्बुराजन, कस्तूरि निगर, गंधसर, गंगाजल, बंगारुतीग, सन्नबंके, रामबाण, सीताभोग आदि। (रघु. रा. २-११) रघुनाथ नायक के समय में तंजाऊर राज्य ने बड़ी उन्नति की। धन-धान्य संपन्नता की कोई कमी नहीं थी। उसमें ईख की उत्पत्ति अधिक होती है और शक्कर बहुत निर्मित होता था। उसी का वर्णन वे अयोध्या में करते हैं। (रघु. रा. २-७) इसके अलावा गेहूँ, तिल, मूँग, आदि अनेक प्रकार के अनाजों की उत्पत्ति का वर्णन करते हैं। तंजाऊर में नारियल के पेड़ बहुत होते हैं। अयोध्या में भी नारियल के वृक्ष समूह वर्णित किए गये यद्यपि वे वहाँ होते नहीं। पनघट पर पानी भरनेवाली स्त्रियों का वर्णन जो अयोध्या में किया गया है वह रघुनाथ नायक का नित्य देखा हुआ काबेरी नदी के पनघट का ही दृश्य है। इसके अतिरिक्त हरेभरे मैदानों, उसमें चरनेवाली गायों, वंशीवादन में लीन चरवाहों का वर्णन सरयू तदी तट के ग्रामों में किया गया जो काबेरी नदी-तट के ग्रामों का ही दृश्य है। यह वर्णन पढ़कर पाठकों के सामने वृंदावन के यमुना के किनारे कृष्ण के गोचारण का दृश्य उपस्थित होता है। तंजाऊर में छोटे-बड़े सैकड़ों मंदिर हैं जहाँ निरंतर नृत्य गान होता था। वे सब मंदिर अयोध्या में वर्णित हैं। (रघु. रा. २-१४)

रघुनाथ नायक ने अपने महल के अहाते से एक नाटकशाला का भी बहुत सुन्दर ढंग से निर्माण कराया जो आज भी अच्छी हालत में है और वहाँ कई प्रकार के नाटकों, संगीत सभाओं आदि का आयोजन किया जाता था। उनके समय में इन दोनों कलाओं ने अच्छी उन्नति की। अयोध्या नगर में भी उन्होंने अनेक नाटकशालाओं का वर्णन किया जो स्वर्ण और मणि निर्मित थे और बहुत ऊँचे थे। वहाँ नृत्य करनेवाली वेश्याओं के नूपुरों की ध्वनि मेघों में गूँजती थी। (रघु. रा. २. २६) अयोध्या में रघुनाथ नायक ने अन्य जातियों के लोगों के साथ "रेड्डियों" का भी वर्णन किया जो आँध्र जाति है और कुछ काल तक आँध्र देश का शासन किया था। (रघु. रा. २-१३) अयोध्या के हाथियों के पैरों में नूपुर पहनाये जाने का वर्णन किया गया है जो रघुनाथ नायक के अपने समय का रिवाज था। (रघु. रामा. २-३३)। अयोध्या के सब लोग बड़े विलासी थे और निरंतर काम-केलि के आनन्द में मग्न रहा करते थे। यह विलासिता रघुनाथ नायक के सुशासन में तंजाऊर राज्य की ही थी।। (रघु. रा. ३६)

ऋष्यशृंग को लाने वाली वेश्याओं, और उनकी विलास चेष्टाओं का

वर्णन जो बड़े विस्तार से मिलता है उससे कवि के समय की समाज में वेश्याओं की प्रधानता सूचित होती है। दशरथ के अश्वमेध यज्ञ और पुत्र-कामेष्टि का वर्णन कोई पचपन पद्य गद्यों में किया गया है। यज्ञ शाला का निर्माण, ब्राह्मणों का यज्ञ में आगमन, भोजन शालाएँ, विविध प्रकार के व्यंजन, ब्राह्मणों का भोजन, यज्ञ, आदि का वर्णन बड़ा ही स्वाभाविक और तत्कालीन रिवाजों पर अच्छा प्रकाश डालनेवाला है। यज्ञ में प्रतिदिन ब्राह्मण चंद्रकांति के समान श्वेत भात खाते थे। गंगामृत, गरम भात, इड्डेन, कुडुमु अनेक प्रकार की तरकारियाँ, मज्जिगपड्दमु, मज्जिन, तिम्मनमु आदि दक्षिण के पकवान ही परोसे गये थे। यज्ञशाला में वेश्याओं का नृत्य भी हुआ था। (रघु. रा. ३. ४३-९८) इतना विस्तृत वर्णन और किसी रामायण में नहीं मिलता। यह बड़े खेद की बात है कि १७वीं शताब्दी की दक्षिण की तमिल और आँध्र की संस्कृति पर प्रकाश डालनेवाली यह रामायण पूर्णतः अब तक उपलब्ध नहीं हो सकी।

तेलुगु के राम साहित्य के सांस्कृतिक अध्ययन में उसके कवियों के व्यक्तित्व पर भी थोड़ा दृष्टिपात करना आवश्यक है जो काव्यों की प्रारंभिक पीठिका और कांडांत या आश्वासांत गद्यों में झलकता है। प्रारंभिक भूमिका के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रायः सब कवि दो कोटियों में विभाजित किए जा सकते हैं। पहली कोटि में वे कवि आते हैं जिन्होंने अपने आश्रयदाता राजाओं की आज्ञा पर रामकाव्यों की रचना की और उनमें अपनी काव्य रचना की प्रतिभा प्रधान रूप से दिखाई। रंगनाथ, भास्कर रामायण के कवि, तिक्कन्न, रामभद्र कवि आदि इसमें आते हैं। इन सब कवियों ने अपने समय की काव्य-रचना संबंधी मान्यताओं को दृष्टि में रखकर राजाज्ञा के अनुसार राम काव्य लिखे। रंगनाथ ने अपने आश्रयदाता गोन बुद्धभूपति के इच्छानुसार रामायण को आँध्र जनता में प्रसिद्ध बनाने के लिए उस समय वीरशैव कवियों के द्वारा प्रचारित और प्रसिद्ध गीतात्मक देशी द्विपद छंद में रामायण लिखी। साथ-साथ कवियों और पंडितों की आदर प्राप्ति के लिए संस्कृत निष्ठ भाषा का भी प्रचुर प्रयोग किया। इसका एक उदाहरण निम्नलिखित पंक्तियों में, रावण के रथ के वर्णन में, देखा जा सकता है—

"स्फुटबंधबंधुर षोड़शचक्र-घटित कोटिद्वय घंटिकाराव।
भयदोग्रसंफुल्ल भल्लूक चार्म-हयसहस्रोदग्र मगु रथंबेविक॥

हुलक्कि भास्कर ने रंगनाथ रामायण की प्रतिस्पर्धा में चंपू पद्धति में रामायण की रचना स्वतः कुछ लिखा और शेष भाग अन्य कवियों से लिखाया। द्विपद काव्य, प्रायः १६वीं शताब्दी तक पंडितों और मार्गपद्धति के कवियों में अनादृत ही रहा। उसके संबंध में वेणु गोपालशतक के कवि ने कहा—द्विपद काव्यंबु, मुदिकांत (लंज) दिड्डिगंत, यिय्यनेरनिरंडु नाल्गेकराशि (वेणु० ५५) अर्थात्—द्विपद छंद में लिखा हुआ काव्य, बूढ़ी (व्यभिचारिणी) स्त्री, पालकी का छोटा-सा द्वार जिसमें झुककर जाना पड़ता है, कंजूस, विधवा, ये चारों एक कोटि के है। यह पंक्ति इतनी प्रसिद्ध हो गई कि पंडितों में कहावत के तौर पर चल पड़ी। द्विपद छंद की इसी आदर हीनता से प्रभावित होकर भास्कर ने अपनी रामायण की रचना चंपू पद्धति में की। तिक्कन्न ने अपने आश्रयदाता मनुमसिद्धि को समर्पित करते हुए आदर्श धीरोदात्त नृप राम का चरित्र निर्वचनोत्तर रामायण में चित्रित किया और उसमें बिना गद्य के काव्य रचना की अपनी प्रतिभा दिखाई। रामभद्र कवि ने अपने आश्रयदाता गोन्बूरि नरसिंह रायुलु की आज्ञा पर रामाभ्युदयमु की रचना की। पिंगलि सूरन्ना ने अपने आश्रय दाता आकुवीटि पेद्द वेंकटाद्रि की आज्ञा पर अपने श्लेष काव्य "राघव पांडवीय" की रचना की यद्यपि उसे भगवान विरूपाक्ष को समर्पित किया। एकोजी तंजाउर के महाराष्ट्र शासक थे और उन्होंने अपने पिता तुलजेंद्र के नाम पर रामायण की रचना की थी। दूसरी कोटि में वे कवि आते हैं जिन्होंने किसी आश्रय दाता की आज्ञा पर नहीं, बल्कि या तो भगवान के आदेश पर या स्वांतःसुखाय राम काव्य लिखे और उनको अपने आराध्य भगवान को ही समर्पित किया। मोल्ला ने राम की आज्ञा पर रामायण लिखी। रघुनाथ नायक स्वयं तंजाऊर के महाराज थे और भगवान राम के स्वप्न में दिए गए आदेश के अनुसार रामायण की रचना की। वरदराजु राज-परिवार के थे और भगवान वेंकटेश्वर के स्वप्न में दिए गये आदेश के अनुसार रामायण लिखी और उन्हीं को समर्पित की। कंकंटि पापराजु ने भी भगबान मदनगोपाल के स्वप्न में दिए गये आदेश के अनुसार उत्तर रामायण की रचना की और उन्हीं को समर्पित किया। कूचिमिंचि तिम्मकवि ने भगवान कुक्कुटेश्वर के स्वप्नादेश पर "अच्च तेलुगु रामायण" लिखकर उन्हीं को समर्पित की। इन दोनों कोटियों के कवियों में अपनी काव्य रचना की प्रतिभा दिखाने की प्रवृत्ति सामान्य विशेषता है और इनकी भक्ति भावना परंपरागत है नकि अनुभूत। संभवतः यही कारण है कि रामभक्ति से पूर्ण आंध्र जनता में रामायण का पुराण के समान भक्ति के उद्दीपन के लिए

पठन और श्रवण अधिक नहीं होता। यह तो एक विचित्र विरोधाभास है। राम और सीता के नाम पर शहर और गाँव बसे हैं। राम सीता का नाम धारण करनेवाले स्त्री-पुरुष आँध्र में हजारों पाये जाते हैं। ऐसा कोई गाँव नहीं जिसमें राम का मंदिर न हो। रामनवमी के उत्सव आँध्र में बड़ी भक्ति के साथ पाँच दिनों तक मनाये जाते हैं। किंतु फिर भी रामायण का पठन-पाठन काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से होता है। रामभक्ति का जहाँ तक संबंध है, रामदास और त्यागराजु का सर्वाधिक प्रभाव है क्योंकि उनके गीत या कीर्तन अनुभूत्यात्मक भक्ति प्रधान हैं। वे कीर्तन साधारणतः भजन मंडलियों और अन्य भगवत्संबंधी उत्सवों में भक्ति-गद्‌गद् स्वर में गाये जाते हैं। हाँ, प्रायः सब कवि वेदोक्त कर्मकांड संपन्न और स्मार्त थे। इसीलिए दो तीन को छोड़कर सबने शृंगार वर्णन में राम के आदर्श-मर्यादा पुरुषोत्तम का बहुत ध्यान रखा और वाल्मीकि से चित्रित तथा परंपरागत आदर्श की जो आँध्र की संस्कृति में गृहीत है।

दसवाँ अध्याय

हिन्दी राम साहित्य का साहित्यिक अध्ययन

विविध शैलियाँ काव्यरूप, रस और साहित्यिक आकलन

किसी काव्य का साहित्यिक अध्ययन करने के पहले हमें काव्य की परिभाषा "वाक्यं रसात्मकं काव्ययम्" ध्यान में रखनी पड़ती है। रस का मूल स्रोत है हृदय स्थित स्थायी भाव। अतः काव्य का एक पक्ष भाव पक्ष होता है। जिसको सफलतापूर्वक व्यक्त करने के लिए कवि गण अपनी अनुभूति और प्रतिभा के अनुरूप अनेक प्रकार की शैलियों और काव्य रूपों का प्रयोग करते हैं। इन शैलियों और काव्य रूपों का विचार कला पक्ष के अंतर्गत किया जाता है। इसी दृष्टि से यहाँ पूर्व परिचित कतिपय प्रधान हिन्दी रामकाव्यों पर विचार किया जाता है।

हिन्दी राम साहित्य पर साहित्यिक दृष्टि से विचार करने के पहले हमें उस पार्श्व भूमि को ध्यान में रखना पड़ता है जिसमें उसका निर्माण हुआ है। प्रायः समूचे हिंदी राम साहित्य की पार्श्व भूमि धार्मिक है। उसके कवियों के व्यक्तित्व के अतिरिक्त तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियों का भी उस साहित्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। इससे प्रभावित होकर प्रायः सब कवियों ने अपने साहित्य में धार्मिक दृष्टिकोण को ही प्रधानता दी थी। यही कारण है कि हिन्दी का प्रायः सारा राम साहित्य धार्मिक आवरण लिए हुए है। जिसमें से उसका साहित्यिक सौंदर्य अपनी झलक दिखाता है। किन्तु हाँ, जैसा कि साधारणतः

होता है, इसके अपवाद भी दिखाई पड़ते हैं। इस अध्याय में काल क्रम का ध्यान न रखकर प्रभाव और प्रसिद्धि की दृष्टि से कतिपय कृतियों का साहित्यिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।

रामचरित मानस—

इस अनुपम ग्रंथ का साहित्यिक अध्ययन कवि की सामग्री संचय के विभिन्न स्रोतों की सूचना के दृष्टिकोण से करना चाहिए। मानस की कथावस्तु का संचय तुलसीदास ने अनेक पुराणों, वेदों, रामायणों इत्यादि ग्रन्थों और अन्य स्रोतों से किया है और उसकी रचना स्वांतः सुखाय की है। इसमें तुलसीदास भक्त कवि थे। उनको रामभक्ति का प्रचार कर जन जन के हृदय में उसको जाग्रत करना था जिससे मानव जीवन सुखमय और सार्थक हो जाय। उनके इस उद्देश्य का प्रमाण 'मानस' भर में व्याप्त मिलता है। इसी उद्देश्य की पूर्ति में उनका उनका स्वांतः सुख निहित था। अतः रामभक्ति के द्वारा लोक जीवन को सार्थक बनाना ही उनका परम लक्ष्य था और उसी में उनको सच्चा 'विश्राम' अथवा 'शांति' मिल सकती थी। वैयक्तिक दृष्टि से भी राम का गुणगान करने में ही उनका "स्वांतः सुख" निहित था।

व्यक्त जीवन में किसी न किसी प्रकार राम नाम का स्मरण करना और उसके द्वारा राम की भक्ति प्राप्त करना मानस के अनुसार मानव जीवन का परम लक्ष्य होना चाहिये। इस बात को दृष्टि में रखकर तुलसीदास ने अपने मानस का रूप इस प्रकार बनाया कि उस पर आदि से अंत तक भक्ति का रमणीय आवरण चढ़ गया है जो उसकी सर्वप्रथम विशेषता है। इस दृष्टि से देखने पर भगवान श्रीराम के प्रति प्रायः सब पात्रों की "अव्याजश्रद्धायुत रति" स्थायी भाव है जो उनके शील, सौंदर्य और शक्ति भरे रूप को देखकर या उसकी अनुभूति पाकर जागृत होता है। अतः श्रीराम का वह रूप आलंबन विभाव हैं और लोक रक्षा के विभिन्न रूपों में व्यक्त होनेवाली उनकी महिमा उद्दीपन विभाव हैं। उनकी महिमा की अनुभूति पाकर उनके नाम का स्मरण करने या उनके दिव्यरूप का दर्शन करने या उनके दिव्य गुणों का श्रवण करने से मानस के अन्य पात्रों के जो हर्ष पुलक होता है, जो अश्रुपात होता हैं, जो कंठ गद्‌गद हो जाता है वे सब अनुभाव हैं। भगवान के प्रति रति के जागृत होने से हर्ष, घृति, विबोध, मति आदि भाव विविन्न पात्रों के हृदय में संचरित होते हैं और स्थायी भाव को पुष्ट करते हैं वे संचारी भाव हैं। इस प्रकार अपने विभिन्न अंगों से पुष्ट होकर "श्रद्धायुत रति" स्थायी भाव साधारणीकरण के द्वारा पाठकों में रस

रूप में अभिव्यक्त होता है जो भावद्विषयिक होने के कारण 'भक्ति रस' की संज्ञा पाने के योग्य होता है। यह रस मानस में इतनी अधिकता से व्याप्त है कि वह भक्ति रस का ही "मानस" कहा जा सकता है। अतः समूचे मानस का यह अंगी और सार्वभौमिक रस है और अन्य सब रस इसके अंग हैं। भक्ति रस के अंग बनने में ही उनकी सार्थकता है।

इस भक्ति भावना के अनुकूल ही तुलसीदास ने अपने 'मानस' का काव्य रूप इस प्रकार बनाया कि उसमें प्रारम्भ से उसको विकसित करने वाले विभिन्न आख्यान, रामावतार के कारण, संत महिमा नाम महिमा, दुर्जन निंदा इत्यादि विषयों का समावेश आवश्यक हो गया है यद्यपि साहित्यिक काव्य की दृष्टि से अनपेक्षित है। इन सबके समावेश से और स्थान-स्थान पर भक्ति और ज्ञान के तत्वों के निरूपण से तथा पग-पग पर राम के ईश्वरत्व की ओर ही पात्रों की दृष्टि को आकर्षित करने के प्रयत्न से मानस शुद्ध साहित्यिक काव्य न होकर पुराण काव्य का रूप धारण कर गया है।[1] इस काव्य की दोहा-चौपाई की शैली पर तीसरे अध्याय में विचार किया जा चुका है।

साहित्यिक दृष्टि से रामकथा नवरसों का आकर है जो मानस में स्थान स्थान पर सुंदर रूप से व्यक्त हुए हैं। किंतु यह ध्यान में रखना चाहिए कि ये सब रस भक्ति रस के अंग हैं जो मानस का प्राण है। और उसी से यह शोभित है। इस संबंध में तुलसीदास कहते हैं—

एहि महं रघुपति नाम उदारा, अति पावन पुरान स्त्रुति सारा।
मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी।
भनिति विचित्र सुकपि कृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ।
विधु बदनी सब भाँति संवारी। सोह न बसन बिना बर नारी।

(रा. मा. बाल. ९,१,२)

अतः रामभक्ति रूपी वस्त्रावरण में शोभित होनेवाली इस काव्य कामिनी की शृंगारी चेष्टाएँ भी मर्यादित हैं जो यत्र तत्र अपनी झलक दिखाती हैं। मानस में संयोग शृंगार रस का प्रसंग एक ही स्थान में आता है जहाँ राम और सीता के प्रथम मिलन और उसके द्वारा उनके पूर्व राग का वर्णन किया जाता है। यह प्रसंग जैसा कि पहले दिखाया गया है प्रसन्न राघव नाटक से लिया गया है किन्तु इसके निर्वाह में तुलसी की प्रतिभा व्यक्त होती है। जहाँ प्रसन्न राघ-

---

१. डा० श्रीकृष्णलाल—मानस दर्शन।

में राम और सीता काव्य के सामान्य नायक और नायिका के रूप में चित्रित किए गये हैं वहाँ मानस में भक्ति भावना के अनुरूप विष्णु और लक्ष्मी के रूप में चित्रित हैं और उनकी चेष्टाएँ भी मर्यादित हैं। इसी में मानस की साहित्यिक सुन्दरता निहित है।

राम और लक्ष्मण विश्वामित्र की आज्ञा पाकर पुष्प लाने के लिए जनक की वाटिका में जाते हैं और उसकी शोभा देख प्रसन्न होते हैं। उसी समय सीता अपनी सखियों के साथ गौरी की पूजा करने के लिए आती है और वहीं राम और सीता का परस्पर संदर्शन होता है जिसके परिणामस्वरूप उसमें पूर्वराग का जन्म होता है। रस निष्पत्ति की दृष्टि से यह प्रसंग बहुत ही सुन्दर है। सीता की सखी जो राम और लक्ष्मण को देख आती है, सुन्दर ढंग से राम के सौंदर्य का वर्णन करती है जिसे सुनकर सीता के हृदय में उत्कंठा पैदा होती है और वे उस सखी को लेकर उन दोनों राजकुमारों को देखने जाती हैं। नारद की बातों का स्मरण कर उनके हृदय में 'रति' स्थायी भाव जागृत होता है। यहाँ राम के सौंदर्य का श्रवण ही सीता के लिए आलंबन विभाव बन गया है। सीता ने लता की ओट में अपनी निधि रूपी राम का जो साक्षात दर्शन किया वही उद्दीपन विभाव है। राम का सौंदर्य देखकर सीता की आँखों का अपलक होना, उसका हर्षित होना राम की मूर्ति को हृदय में अंकित कर नेत्रों को बंद कर लेना, लज्जा के मारे सीता का कुछ कह न पाना, वहाँ से जाते समय बार-बार पीछे घूमकर राम का सौंदर्य देखना, ये सब उनके सात्विक और शारीरिक अनुभाव हैं। राम को देखकर हर्ष, अधिक स्नेह के कारण मूर्छा की सी अवस्था, पिता का प्रण यादकर व्याकुलता, महल को लौटने में विलंब होने का भय, तुरंत धैर्य, संकोच आदि सीता के जो भाव वर्णित हैं वे सब उनके संचारी भाव हैं। इन सबके विधान से पाठक संयोग श्रृंगार रस का आस्वादन करते हैं, किंतु भक्ति भावना के कारण मर्यादित रूप में, क्योंकि उनका प्रेम पुरातन था अर्थात् भगवान विष्णु और लक्ष्मी का प्रेम था। वहीं आकर मानस की साहित्यिक सुन्दरता पर भक्ति का आवरण चढ़ जाता है। राम को आश्रय मानकर भी इसी प्रकार रस निष्पत्ति के विषय में समझ लेना चाहिए। कंकण किंकिणि नूपुर धुनि" सुनने मात्र से राम के हृदय में श्रृंगार का भाव जागृत होता है। इस इस प्रसंग में राम लक्ष्मण से अपने और रघुवंशियों के संबंध में जो बातें कहते हैं और अपने सहज पवित्र मन के विचलित होने में जो आश्चर्य प्रकट करते हैं उसके औचित्य के संबंध में यही समझना चाहिए कि तुलसीदास उन बातों के द्वारा

राम का शील निरूपण ही करते हैं और वह "समय अनुहारि" है। इन बातों के द्वारा राम के हृदय की निर्मलता और निष्कटता व्यक्त होती है। यहाँ यद्यपि लौकिक दृष्टि से कुछ अनौचित्य दिखाई पड़ता है तथापि भक्ति विशिष्ट दृष्टि-कोण से वह अनौचित्य लक्षित नहीं होता और वही दृष्टिकोण 'मानस' की आत्मा है।

राम का वनगमन प्रसंग, दशरथ की मृत्यु तथा राम और भरत के मिलाप का प्रसंग करुण रस के मानो सागर है जो प्रायः सारे अयोध्याकांड की प्रत्येक पंक्ति में व्याप्त है जो स्वयं राम भक्ति के महासागर का अंग बनकर ही सार्थक होता है।

अद्भुत रस का उदाहरण वहाँ देखा जा सकता है जहाँ कौशल्या शिशु राम की लीलाएँ तथा विश्व रूप देखती हैं। किंतु उनकी परिणति अन्त में भक्ति में हो जाती है। (रा. मा. बाल. २००-२०१)

हास्य रस का पुट परशुराम के गर्व भंग के प्रसंग में लक्ष्मण की बातों में देखा जा सकता है। किंतु वहाँ पर रौद्र रस का उद्दीपन बनकर आया है जो परशुराम के क्रोध को भड़काता है जो अन्त में राम की भक्ति में लीन हो जाता है।

इसी प्रकार अन्य रसों के प्रसंग में भी अंतिम परिणति भक्ति रस में हो जाती है। भक्ति प्रधान होने के कारण सारे ग्रन्थ में शांत रस की भी व्याप्ति है।

तुलसीदास के वर्णन की शैली बहुत ध्वनिपूर्ण है। जनक वाटिका में राम का सौंदर्य देखकर सीता की सखी उसका वर्णन सीता के सामने यों करती हैं :

देखन बागु कुंवर दुइ आये। बयकिमोर सब भाँति सुहाए।
स्याम गौरि किमि कहउं बखानी, गिरा अनयन नयन बिनु बानी।।

(रा. मा. बाल. २२८-१)

चौपाई के चौथे चरण में राम का अतुलनीय और अवर्णनीय सौंदर्य संपूर्णतः ध्वनित हो उठता है।

प्रथम दर्शन में देखी हुई राम की मूर्ति को अपने हृदय पटल पर अंकित करने वाली सीता का वर्णन कितना सुन्दर और समयोचित है !

लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हें पलक कपाट सयानी।।

(रा. मा. बा. २३१-४)

इसमें सीता का सयानापन आँखें बंद कर राम का ध्यान करने में है जिसे लक्ष्य कर एक सखी बड़ी विदग्धता से कहती है :

बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू । भूप किशोर देखि किन लेहू ।।
(रा. मा. बाल. २३३–१)

इतने में विलंब होने से सखियाँ डर जाती हैं तो एक सखी कैसी चुटकी लेती है और सीता को चलने का संकेत करती है !

परबस सखिन्ह लखी जब सीता । भई गहरु सब कहहि सभीता ।
पुनि आउब यहि बिरियाँ काली । अस कहि मन बिहँसी एक आली ।।
(रा. मा. बाल. २३३-३)

सखी के मन में हँसने में ही उक्ति का सारा व्यंग्य ध्वनित होता है ।

दशरथ से कैकेयी के वर माँगने का जो ढंग मानस में वर्णित है वह बहुत ही स्वाभाविक और कैकेयी के मन की खोट ध्वनित करने वाला है । व्यावहारिक जीवन में ऐसा देखा जाता है कि जिससे जो वस्तु माँगी जाती है उसे देने वाले को यदि दुखी होने या उसके तिरस्कार करने की संभावना हो तो वह वस्तु बहुत ही सतर्कता से धीरे-धीरे माँगी जाती है और उस चीज का नाम अन्त में लिया जाता है । देखिए कैकेयी दशरथ अपने से अपने वर कैसे माँग लेती है :

सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का । देहु एक बार भरतहिं टीका ।

पहल वर जल्दी माँग लेती है । दूसरा वर माँगने में कैकेयी की हशियारी देखिए :

माँगउँ दूसर वर कर जोरी । पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी ।
तापस बेष बिसेषि उदासी । चौदह बरिस रामु बन बासी ।
(रा. मा. अयो. २८-१-२)

राम के वनवास का शब्द कितने चतुरतापूर्ण ढंग से कहा गया है अंत में ! इससे यह ध्वनित होता है कि कैकेयी जो माँगती है उसका अनौचित्य वह स्वयं जानती है । ऊपर की पंक्तियों का एक-एक शब्द कैकेयी की कुटिलता को ध्वनित करता है ।

कैकेयी को समझाते हुए महाराज दशरथ के मुँह से कितने सुन्दर ढंग से उनकी भावी मृत्यु की व्यंजना की गई है !

प्रिया हास रिस परिहरहि मागु विचारि बिबेकु ।
जेहि देखौं अब नयन भरि भरत राज अभिषेकु ।।
(रा. मा. अयो. ३२)

रामचरित मानस में अमूर्त भावों का बहुत सुन्दर चित्रात्मक वर्णन मिलता है। खर और दूषण की सेना से लड़ने के लिए उद्यत होने वाले राम की वीरता का वर्णन देखिए :

कोदंड कठिन चढ़ाइ सिर जट जूट बाँधत सोह क्यों।
मरकत सैल पर लरत दामिनि कोटि सों जुग भुजग ज्यों
कटि निषंग बिसाल भुज गहि चाप बिसिख सुधारि कै।
चितवत मनहुँ मृगराज प्रभु गजराज घटा निहारि कै ।।

(रा. मा. अ. १८ वें दोहे के पहले का छंद)

कहीं-कहीं मूर्त वस्तुओं का अमूर्त भावों के रूप में भी वर्णन किया गया है जैसे नीचे के दोहे में। राम लक्ष्मण की मूर्छा पर विलाप करते हैं। तब हनुमान संजीवनी पर्वत लाते हैं :

प्रभु बिलाप सुनि कान बिकल भये बानर निकर।
आइ गयउ हनुमान जिमि करुणा महुँ बीर रस ।।

(रा० मा० लं० ६१)

स्थान-स्थान पर राम के ईश्वरत्व की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करने से प्रायः वर्णनों का विशुद्ध साहित्यिक सौंदर्य फीका पड़ जाता है। लक्ष्मण की मूर्च्छा पर राम के विलाप का जीता जागता वर्णन करके कवि अन्त में कहते हैं :

बहुबिधि सोचत सोच बिमोचन स्रवत सलिल राजिव दल लोचन ।।
उमा एक अखंड रघुराई। नर गति भगत कृपालु देखाई।

(रा. मा. लं. ६० 'ख' ९)

इस प्रकार के वर्णन और भी अनेक मिलते हैं।

अब मानस की अलंकार योजना को देखा जाय। सफल कवि के वर्णनों में अलंकार आप ही आप आ जाते हैं और अपनी सहज छटा दिखाते हैं जिससे वर्णन में अनुपम सौंदर्य आ जाता है। सीता का सौंदर्य देखकर राम की जो दशा हुई उसका वर्णन श्लेषालंकार के द्वारा कवि कितना सुन्दर करते हैं—

देखि सीय शोभा सुख पावा। हृदय सराहत बचनु न आवा।

"सराहत" शब्द का श्लेष बहुत सुन्दर है जिनके अर्थ हैं, "कुसुम शराहत" और "प्रशंसा करते हुए।"

वक्ष्यमाण भाव की तीव्रता दिखाने के लिए तुलसीदास कभी-कभी नीच उपमानों का भी प्रयोग करते हैं जो यद्यपि स्थूल दृष्टि से देखने में जुगुप्सा जनक

होते हैं तथापि सूक्ष्म दृष्टि से सार्थक सिद्ध होते हैं। नंदिग्राम में रहनेवाले भरत के विराग का वर्णन देखिए—

तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा।

रमा बिलास राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़ भागी।

भरत का वैराग्य 'बमन' उपमान से तीव्रतर हो उठा है।

रूपकानुप्राणित यह श्लेष देखने योग्य है—

रावन सिर सरोज वन चारी। चलि रघुवीर सिलीमुख धारी।

यह उदात्त उपमानों से युक्त उत्प्रेक्षा देखिए—

नृप समीप सोहहिं सुतचारी। जनु धन धरमादिक तनुधारी॥

इस प्रकार तुलसी के भक्ति भाव के अनुकूल अलंकार योजना आप ही आप हो गयी है। किष्किधा कांड का वर्षा ऋतु वर्णन और शरद ऋतु वर्णन भी इसके उदाहरण हैं। (रा. मा. कि. १३-१७)।

प्रबन्ध काव्य का सौंदर्य कवि के दृष्टिकोण के अनुरूप पात्रों के सफल चरित्र चित्रण में है। रामचरित मानस के पात्रों के संबंध में हमें इस बात का ध्यान रखना है कि प्रायः उसके सब पात्र राम के ईश्वरत्व से अच्छी तरह परिचित हैं और इसलिए उनके भक्त हैं। यहाँ तक कि रावण भी राम के वाणों से मृत्यु पाने के लिए ही उनका बैरी बनता है। यह भी भक्ति का एक प्रकार है। इस दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट होता है कि सभी पात्रों की चरित्रगत विशेषताएँ भक्ति के सागर में लीन हो जाती हैं और स्वतंत्र अस्तित्व रखते हुए भी सब पात्र एकाकार से हो जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि राम भक्ति के आदर्श के सामने सबका स्वतंत्र व्यक्तित्व लुप्त हो जाता है। दशरथ का पुत्र प्रेम, कौसल्या का वात्सल्य, राज्याभिषेक का समाचार सुन सुमित्रा और कैकेयी का आनंद, भरत और लक्ष्मण की भ्रातृ भक्ति, सीता की पति भक्ति और प्रेम, मंदोदरी का पातिव्रत्य, विभीषण और कुम्भकर्ण की भ्रातृभावना, जनक का जामातृ-प्रेम, रावण की शत्रुता आदि सब इसी भक्तिभावना के सूत्र से संचालित हैं। ये सब पात्र अतिमानव से लगते हैं। यदि मानस भर में कोई पात्र मानवीय धरातल पर चित्रित हुआ है तो केवल वह मंथरा का ही है। इस विषय पर अन्यत्र विचार किया जायगा।

गीतावली—

रामचरित मानस को छोड़कर तुलसीदास के अन्य राम काव्यों की विशेषता यह है कि उनमें प्रायः तुलसी कवि भक्त के रूप में दिखाई पड़ते हैं जो

मानस में भक्त कवि के रूप में हमें दर्शन देते हैं। मानसेतर ग्रंथों में जो साहित्यिक सौन्दर्य बिखरा पड़ा है वह प्राय: भक्ति निरपेक्ष है। उन ग्रंथों में गीतावली और कवितावली प्रमुख हैं। कवि के इस द्वैधी रूप का कारण यह है कि तुलसीदास जहाँ मानस में राम भक्तों को राम की पवित्र कथा सुनाना चाहते हैं वहाँ अन्य ग्रन्थों में साहित्य रसिकों को वही कथा साहित्यिक ढंग से सुनाना चाहते हैं जो समान रूप से दोनों कोटियों के लोगों को सुनाकर उन्हें जान में या अनजान में राम नाम की ओर आकृष्ट करना तुलसीदास की काव्य कला का परम लक्ष्य था जो पूर्णत: सफल हुआ है। इन मानसेतर काव्यों में तुलसी ने घटनाओं और चरित्रों पर मानवीय धरातल पर से स्वाभाविक प्रकाश डाला है।

गीतावली की सबसे पहली साहित्यिक विशेषता उसकी गीतात्मकता में है। साहित्य संगीत का संयोग पाकर जन-जन की जिह्वा पर सुगमता से चढ़ जाता है और अमर बन जाता है क्योंकि संगीत ऐसी कला है जो सब प्राणियों को मोहित करती है। कहा भी गया है "शिशुर्वेत्ति पशुर्वेत्ति वेत्तिगानरसं फणि:" इसके पहले सूरदास के कृष्ण संगीत ने लोगों को मोहित कर ही लिया और तुलसी के लिए मार्ग दर्शक बन गया।

गीतावली मुक्तक काव्य है और एक एक गीत में एक एक भाव या सौंदर्य की एक झलक दिखक दिखाई पड़ती है। बालक राम के बीथी-विहार का वर्णन देखिए—

बिहरत अवध-बीथिन राम।
संग अनुज अनेक सिसु नव नील नीरद स्याम ।।१।।
तरुन अरुन सरोज पर बनी कनक मय पदत्रान।
पीत पट कटि तून बर कर ललित लघु धनु बान ।।२।।
लोचननि को लहति फल छबि निरखि पुर नर नारि।
बसत तुलसीदास उर अवधेस के सुत चारि ।।३।।

(गी० बा० ४१)

इसमें पुरवासी राम के सौंदर्य से ही मोहित होते हैं न कि ब्रह्म भावना से और उसी सौंदर्य के कारण अवधेस के पुत्र तुलसीदास के हृदय में वास करते हैं।

गीतावली में रस की दृष्टि से वात्सल्य और शृंगार ही प्रमुख हैं। कौसल्या के वात्सल्य का वर्णन देखिए कितना सहज, स्वाभाविक और प्रभावो-

त्पादक है। विश्वामित्र के साथ यज्ञ रक्षा के लिए गए हुए राम और लक्ष्मण का स्मरण कर वे किस प्रकार व्यथित होती हैं—

ऋषि नृप सीस ठगौरी सो डारी।
कुलगुरु सचिव निपुन नेवनि अवरेब न समुझि सुधारी॥
सिरिस सुमन सुकुमार कुँवर दोउ सूर सरोष सुरारी।
पठए बिनहि सहाय पयादेहि केलि बान धनुधारी॥
अति सनेह कातरि माता कहै मुनि सखि बचन दुखारी।
बादि बीर जननी-जीवन जग छत्र जाति गति भारी
जो कहिहै फिरे राम लषन घर करि मुनि मख रखवारी।
सो तुलसी प्रिय मोहि लागहै ज्यों सुभाय सुत चारी॥

(गी०बा० १००)

अपनी विवशता में दूसरों का दोष निकालना, अपनी और अपनी जाति की निंदा कर लेना स्त्रियों का स्वाभाविक गुण है। यही कौसल्या में देखा जाता है।

पुत्र की प्रतीक्षा करनेवाली माता का हृदय ऐसा आतुर होता है कि कोई भी आहट पुत्र के पद चाप समान सुन पड़ता है और बाहर से आनेवाला प्रत्येक व्यक्ति पुत्र की खबर लाया हुआ सा जान पड़ता है। तभी वह पूछती है कि, कहो कोई खबर मिली ? यही स्वाभाविक प्रश्न हम कौसल्या के मुँह से सुनते हैं जब भरत एक दिन उनके पास सानंद आ जाते हैं—

सानुज भरत भवन उठि धाए।
पितु समीप सब समाचार सुनि, मुदित मातु पहँ आए।
सजल नयन तनु पुलक अधर फरकत लखि प्रीति सुहाई।
कौसल्या लिए लाई हृदय "बलि कहौ, कछु है सुधि पाई ?

(गी० बा० १०२)

यहाँ तुलसीदास मातृ हृदम की थाह लेते से दिखाई पड़ते हैं। मानस में तो यह प्रसंग है ही नहीं।

मातृ हृदय की स्वाभाविक उत्कण्ठा की एक और झलक देखिए। राम विवाह के बाद अयोध्या लौट आते हैं तब कौशल्या उनकी भुजाओं पर वार-फेर करके पूछती है—

भुजनि पर जननी वारि फेरि डारी।
क्यों तोर्यो कोमल कर कमलनि संभु सरासन भारी

क्यों मारीच सुबाहु महाबल प्रबल ताड़का मारी
मुनि प्रसाद मेरे राम लषन की बिधि बड़ि करवर टारी।
चरनरेनु लै नयननि लावति क्यों मुनिबधू उधारी।
कहौं धौं तात क्यों जीति सकल नृप बरी है विदेह कुमारी।।
दुसह रोष मूरति भृगुपति अति नृपति निकर खयकारी।
क्यों सौंप्यौ सारंग हारि हिय, करी है बहुत मनुहारी।।
उमगि उमगि आनंद बिलोकति बधुन सहित सुतचारी।
तुलसिदास आरती उतारति प्रेम मगन महतारी।।

विजयी पुत्र को देखकर अति वात्सल्य जनित संदेह और उत्कंठा से भरे हुए प्रश्नों की कैसी झड़ी है। ऐसा है गीतावली के वात्सल्य रस का वर्णन।

प्रियजनों के वियोग में दुखी होने वाले लोगों का वर्णन साहित्य में बहुत मिलता है। किंतु मानवेतर प्राणियों के दुख के प्रति बहुत कम कवियों की दृष्टि जाती है। तुलसीदास ऐसे ही कवि थे जिनकी सहानुभूति राम के घोड़ों को मिल जाती है। वे कौसल्या के मुँह से कहलाते हैं कि राम और लक्ष्मण के घोड़ों का वियोग दुख देखकर भी मैं आज जीवित हूँ। (गी० अयो० ८६) श्रेष्ठ कवि की सहानुभूति इसी प्रकार सर्वव्यापिनी होती है।

गीतावली की वर्णन-शैली में कहीं-कहीं वाग्वैदग्ध्य और अर्थ गांभीर्य से भरे उदाहरण भी मिलते हैं। हनुमान के द्वारा कौसल्या राम को संदेश भेजते हुए कहती है :

भेंट कहि कहिबो, कह्यो यों कठिन मानस माय।
लाल ! लोने लषन सहित सुललित लागत नांय।।

(गी० लं० १४)

कितने गूढ़ शब्दों में संदेश दिया गया है कि हे राम ! तुम्हारा नाम लक्ष्मण के साथ ही शोभित होता है। भाव यह है कि तुम लक्ष्मण के साथ ही लौटना।" इससे कौसल्या के चरित्र पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है।

गीतावली की अलंकार योजना भी देखी जाय।

गहि करतल, मुनि पुलक सहित, कौतुकहि उठाइ लियो।
नृपगन मुखनि समेत नमित करि सजि सुख सबहि जियो।।
आकरष्यो सिय मन समेत हरि हरष्यो जनक हियो।
भज्यौ भृगुपति गरब सहित तिहुँ लोक बिमोह कियो।।

(गी० बाल० ९०)

माला रूप में सहोक्ति का कैसा सफल प्रयोग है !

राम के वन गमन से दुखी दशरथ का वर्णन तुलसीदास ने सांग रूपक के द्वारा कितने सुंदर ढंग से किया है !

करम चोर नृप पथिक मारि मानो राम रतन लै भाग्यो ।

(गी० अयो० १२)

राम के सामने आकर हनुमान सीता के दुख का वर्णन करते हुए कहते हैं :

लोचन नीर कृपिन के धन ज्यों रहत निरंतर लोचनन कौन ।

"हा" धुनि खगी लाज पिंजरी महं राखि हिये बड़े बधिक हठि मौन ।।

इन उपमा और सांग रूपक अलंकारों के द्वारा सीता के मौन रोदन की कैसी सुंदर व्यंजना है !

ऐसा साहित्यिक सौंदर्य गीतावली भर में बिखरा पड़ा है जिसकी अंतर्धारा के रूप में भक्ति भावना है ।

चरित्रचित्रण की दृष्टि से इसकी विशेषता यह है कि प्रायः सब पात्रों को लौकिक दृष्टि से ही चित्रित किया गया है जिसमें मानवीय भाव और सहानुभूति विशेष रूप में दिखाई पड़ते हैं । इसमें राम के चरित्र के कोमल पक्ष पर विशेष प्रकाश डाला गया है ।

कवितावली:—

गीतावली के समान कवितावली भी मुक्तक रचना है जिसमें राम के जीवन से कुछ चुनी हुई सुन्दर घटनाओं का वर्णन साहित्यिक दृष्टि से किया गया है । इसमें भी तुलसीदास कवि भक्त के रूप में ही दिखाई पड़ते हैं । काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से ही कवितावली की सार्थकता है ।

कवितावली के अंतिम उत्तरकांड को छोड़कर अन्य कांडों में राम के ईश्वरत्व का संकेत एक दो स्थानों के सिवाय और कहीं नहीं मिलता । अतः इसमें भी भक्ति भावना गौण ही दिखाई पड़ती है । जिस प्रकार 'मानस' की भक्ति में उसकी साहित्यिकता समा गई उसी प्रकार गीतावली और कवितावली के साहित्यिक सौन्दर्य में तुलसी की भक्ति विलीन हो गयी और अंतर्वाहिनी बनकर बहती है जो रामचरित मानस के प्रेमी भक्तों को ही दर्शन देती है ।

गीतावली में वात्सल्य और शृंगार रस पराकाष्ठा को पहुँचे हैं तो कवितावली में वीर, रौद्र, बीभत्स और भयानक रस चरम सीमा को पहुँच गये

हैं। इन रसों का जितना विकास इसमें हुआ है उतना मानस में भी नहीं। सुन्दर और लंकाकांडों में इनका वर्णन मिलता है। लंका दहन के प्रसंग में भयानक रस मानो मूर्तिमान हो उठा है। इसमें अनुभावों के वर्णन के द्वारा रस को व्यंजित किया गया है। एक दो उदाहरण देखे जायँ :

पानी पानी पानी सब रानी अकुलानी कहैं,
जाति है परानी, गति जानि गजचालि है।
बसन बिसारैं मनि भूषण सँभारत न,
आनन सुखाने कहैं क्यों हू कोऊ पालि है ?
तुलसी मंदोवै मीजि हाथ, धुनि माथ कहै,
काहू कान कियो न मैं कह्यौ केतो कालि है।
बापुरो विभीषण पुकारि बार बार कह्यौ,
बानर बड़ी बलाइ घने घर घालि है॥

(क० सु० १०)

ओज गुण पूर्ण भाषा भी रस की निष्पत्ति में बड़ी सहायक होती है।

लागि लागि आगि आगि चले जहाँ तहाँ
धीय को न माय, बाप पूत न सँभारहीं।
छूटे बार, बसन उघारे, धूम धुंध अंध
कहें बारे बूढ़े बारि बारि बार बार हीं।
हय हिहिनात भागे जात घहरात गज,
भारी भीर ठेलि पेलि रौंदि खौंदि डारहीं।
नाम लै बिलात, बिललात अकुलात अति
तात तात! तौंसियत झौंसियत झारहीं॥

(क० सु० १५)

इसमें प्रयुक्त अनुप्रास और वीप्सालंकार भी भाषा का नाद सौन्दर्य बढ़ाकर रस निष्पत्ति में सफल योगदान दे रहे हैं। वीभत्स रस का यह शब्द चित्र देखिए :

ओझरी की झोरी काँधे आँतनि की सेल्ही बाँधे
मूंड के कमंडलु खप्पर किए कोरिकै।
जोगिनी झुटुंग झुंड झुंड बनी तापसी सी
तीर तीर बैठीं सो समर सरि खोरि कै।

सोनित सौं सानि सानि गूदा खात सतुआ से
प्रेत एक पियत बहोरि घोरि घोरि कै ।
तुलसी बैताल भूत साथ लिए भूतनाथ
हेरि - हेरि हँसत हैं हाथ-हाथ जोरि कै ।।
(क० लं० ५०)

राम की वीर मूर्ति का उत्प्रेक्षालंकार के द्वारा यह वर्णन भी देखने योग्य है—

राम सरासन तें चले तीर रहे न सरीर हडावरि फूटी ।
रावन धीर न पीर जनी, लखि लै कर खप्पर जोगिनि जूटी ।
सोनित छींट छटानि जटे 'तुलसी' प्रभु सोहैं महाछवि छूटी ।
मानो मरक्कत सैल बिसाल में फैलि चलीं बर बीर बहूटी ।।
(क० लं० ५१)

व्याजोक्ति अलंकार के द्वारा कवि वन मार्ग में जानेवाली सीता की थकावट की कैसी व्यंजना करते हैं—

जल को गये लक्खन हैं लरिका, परिखौ पिय छाँह घरीक ह्वै ठाढे
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पाँय पखारिहौं भूभुरि डाढे ।
तुलसी रघुवीर प्रिया स्रम जानि कै बैठे बिलंब लौं कंटक काढे ।
जानकी नाह को नेह लख्यौ पुलको तनु बारिबिलोचन बाढ़े ।।
(क० अयो० १२)

इन अलंकारों के द्वारा रस निष्पत्ति में भी सहायता मिलती है ।

इसमें कहीं भी कवि सुन्दर वर्णन करके अंत में यह नहीं कहते कि यह सब निर्गुण ब्रह्म राम की लीला मात्र है जिससे विशुद्ध रसास्वादन में बाधा पड़े जैसा रामचरित मानस में कहते हैं । इस काव्य में कवि की भक्ति निरपेक्ष काव्यात्मक दृष्टि की प्रधानता का एक और प्रमाण देखा जाय । राम के चरणों की धूल की महिमा को लेकर कवि को राम चरितमानस में कहीं भी चुहल नहीं सूझती । किंतु कवितावली में सूझती है । विंध्यपर्वत के वासी ऋषि लोग राम को देखकर कहते हैं—

विंध्य के बासी उदासी तपोव्रत धारी महा बिनु नारि दुखारे ।
गौतम तीय तरी 'तुलसी' सो कथा सुनि भे मुनि बृंद सुखारे ।
ह्वै हैं सिला सब चंद्रमुखी परसे पद मंजुल कंज तिहारे
कीन्हीं भली रघुनायक जू, करुना करि कानन को पगुधारे
(क० अयो० २८)

कैसा सुन्दर हास्य का पुट है जो 'मानस' के भक्त कवि में कभी उठ नहीं सकता था। इस भाव का मूल हनुमन्नाटक में मिलता है जैसे—

पदकमल रजोभिर्मुक्त पाषाण देहा
मलभत यहल्यां गौतमो धर्म पत्नीम्
त्वयि चरति विशीर्ण ग्रावविंध्याद्रिपादे
कति-कति भवितारः तापसा दारवंतः॥
(हनु० ३-१९)

इस प्रकार कवितावली का साहित्यिक सौंदर्य भक्ति निरपेक्ष है। गीतावली में भी यही बात है।

इसकी भाषा लोकोक्तियों से भरी और मुहावरेदार है और इसलिए लक्षणा और व्यंजना के द्वारा भाव की अभिव्यक्ति बड़े प्रभावोत्पादक ढंग से करती है। दो उदाहरण देखे जाय—

१—छोटे औ बड़ेरे मेरे पूतऊ अनेरे सब,
सांपिन सों खेलैं, मेलैं गरे छुराधार सों॥
(क० सु० ११)

२—गारी देत नीच हरिचंद हू दधीचि हू को
आपने चना चबाइ हाथ चाटियतु है।
(क० उ० ९९)

तुलसीदास जी का भाषा पर असाधारण अधिकार था। उनकी भाषा में सैकड़ों विदेशी अरबी और फारसी के शब्द भी प्रयुक्त हैं जैसे जमात, जहाना, जहाज आदि। भावानुरूप छंद योजना में भी इनकी अच्छी निपुणता दिखाई पड़ती है।

बरबै रामायणः—

इसका साहित्यिक सौंदर्य वस्तु विकास को लेकर कुछ नहीं है, यह पहले दिखाया जा चुका है। (अध्याय ६) इसमें कुछ बातों का आलंकारिक शैली में वर्णन किया गया है और उसी में इसका सौंदर्य है। कुछ उदाहरण देखे जायँ।

का घूंघट मुख मूदहु नबला नारि,
चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहारि॥
(ब० रा० १७)

द्वितीय प्रतीपालंकार के द्वारा लज्जा में डूबकर घूंघट काढ़े हुए सीता के मुख सौंदर्य का यह वर्णन है।

गरब करहु रघुनंदन जनि मन मांह
देखहु आपनि मूरति सिय कै छांह ।।
(ब० रा० १८)

राम के शरीर के सांवले रंग का हेत्वपह्नुति के द्वारा यह सुन्दर वर्णन है ।

अब जीवन कै है कपि आस न कोइ
कनगुरिया कै सुंदरी कंकन होइ ।।
(ब० रा० ३८)

इस बरबै के उत्तरार्ध में अल्पालंकार के द्वारा सीता के शरीर की कृशता का वर्णन है । ऐसा ही वर्णन केशवदास की रामचंद्रिका में भी पाया जाता है । सीता के सामने राम के विरह का वर्णन करते हुए हनुमान कहते हैं—

तुम पूछत कहि मुद्रिके मौन होत यहि न.म ।
कंकन की पदवी दई तुम बिन यह कहं राम ।।
(रा० चं० १३-८७)

भ्रांत्यलंकार का यह सुन्दर उदाहरण भी दृष्टव्य है—

सरद चांदनी संचरत चहुंदिसि आनि ।
बिधुहि जोरि कर बिनवति कुल गुरु जानि ।। (ब० रा० ४१)

सीता के चंद्रमा को सूर्य समझकर नमस्कार करने में उनका विरह दुख भी ध्वनित है ।

इन उदाहरणों के द्वारा इसमें तुलसीदास का विशुद्ध साहित्यिक दृष्टि-कोण लक्षित होता है जिसमें रीतिकालीन प्रवृत्ति की झलक मिलती है ।

सूर सागर का रामावतार वर्णन:—

पहले यह दिखाया गया है कि यह सूर सागर का अंश है जो प्रासंगिक रूप में भागवत में आता है । प्रधान ग्रंथ सूरसागर की जो साहित्यिक विशेषताएँ हैं वे ही प्रायः इसमें भी दिखाई पड़ती हैं । साहित्यिक दृष्टि से इसकी सर्व प्रथम विशेषता है मुक्तक गीतात्मक शैली । मूल भागवत की रामकथा यद्यपि संक्षिप्त है तथापि प्रबंधात्मक है । सूरदास ने अपने ग्रंथ में अपने भावावेश के अनुरूप मुक्तक शैली को अपनाया है । वे मुक्तक शैली के ही कवि थे । उनकी भाव तरंगें प्रबंध के घेरे में बँधी नहीं रह सकती थीं और छोटे बड़े गीतों में उमड़ पड़ती थीं । वे आत्मनिष्ठ कवि और भक्त थे । इसलिए कवि के व्यक्तित्व और स्वभाव के अनुरूप शैली में सफलतापूर्वक कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किए

जाने में ही इस रामचरित का सौंदर्य निहित है जो सर्व प्रथम मूल की टूटी कड़ियों को जोड़कर उनको संक्षिप्त और सुगठित कथा का रूप देने में दिखायी पड़ता है। इस पर पहले विचार किया जा चुका है। अब अन्य पक्षों पर विचार किया जाता है।

सूरदास का कवि हृदय मानव स्वभाव का सूक्ष्म निरीक्षण करके उसका मर्मस्पर्शी ढंग से प्रतिपादन करने की अद्भुत क्षमता रखता है। सीता हरण के प्रसंग में वे कहते हैं—

हरि सीता लै चल्यौ, डरत जिय मानौ रंक महानिधि पाई ।।

इसमें रावण के लिए प्रयुक्त उपमान और उसके सात्विक भाव 'भय' का उल्लेख रावण के चरित्र और उस समय की उसकी मानसिक स्थिति का मानों चित्र ही उपस्थित करता है। रावण की इस मानसिक परिस्थिति का ऐसा वर्णन शायद ही किसी कवि ने किया हो। मानव हृदय की निगूढ़तम परतों को खोलने की क्षमता रखने वाले सूरदास से ही यह संभव था। इससे रावण के भावी जीवन की चिंता भी मार्मिकता से ध्वनित होती है।

इसी प्रकार की एक और ध्वनि पूर्ण और अर्थ गांभीर्य से भरी अभिव्यक्ति देखी जाय। हनुमान सीता के सामने राम की वियोग दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं—

तुम घट प्रान देखियत सीता बिना प्रान रघुराइ। (सू० सा० ५२७)

हे सीता जी ! राम के प्राण आप में देखे जाते हैं और वे प्राणहीन हो रहे हैं। एक साथ सीता की पति-ध्यान तत्परता और राम के "मृत्यु" संचारी भाव की कैसी ध्वनि है। यह भी सूर की अपनी ही अभिव्यक्ति है।

प्राकृतिक व्यापारों का आलंकारिक वर्णन करने में भी ये अंध गायक कवि उतने ही पटु थे जितने मानव स्वभाव निरीक्षण में। राम के अयोध्या लौटने पर कौसल्या और सुमित्रा के उनसे मिलने का वर्णन देखिये—

जनु सुरभी बसति बसति बच्च बिनु परबस पशुपति की बहराई।
चली सांझ समुहाई स्रवत धन, उमंगि मिलन जननी दोउ आई ।।

इस उत्प्रेक्षा में माताओं का वात्सल्य और रामविहीन अयोध्या का कैसा ध्वनि-पूर्ण वर्णन है।

सूरदास कोमल भावों के कवि थे। इसलिए उनके काव्य में वीर, रौद्र आदि रसों के लिए उपयुक्त ओज गुण पूर्ण भाषा का प्रायः अभाव दिखाई पड़ता है। यह बात इस रामचरित में भी देखने को मिलती है।

रामचंद्रिका—

इस काव्य का साहित्यिक अध्ययन करने के पहले कवि के व्यक्तित्व व काव्य संबंधी मान्यताओं तथा उद्देश्य को ध्यान में रखना चाहिए। व्यक्तित्व के संक्षेप में कहा जा सकता है कि केशवदास राज दरवार के कवि थे और अपनी विद्वत्ता तथा प्रतिभा के प्रति बड़े जागरूक थे। उनका जन्म भी पंडित कुल में हुआ था जैसा कि उनकी कवि प्रिया[1] और रामचंद्रिका[2] से विदित होता है। वे अपना पांडित्य प्रकर्ष अपनी रचनाओं में प्रकट करके यश और धन प्राप्त करना चाहते थे। काव्य के संबंध में उनकी मान्यता है—

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत
भूषण बिन न बिराजयी कविता बनिता मित्त[3]

इससे स्पष्ट है कि केशवदास अलंकारवादी कवि थे। काव्य की आत्मा रस को भी उन्होंने अलंकार ही माना है।

रसमय होय सु जानिये रसवत केशवदास
नवरस को संक्षेप ही समझौ करत प्रकाश[4]

केशव का यह अलंकारवाद उनका अपना नहीं था। उनके पहले ही संस्कृत वाङ्मय में इनकी बड़ी प्रधानता व अनिवार्यता मानी गयी थी। जयदेव ने चंद्रालोक में कहा है—

अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णामनलंकृती ॥

(चंद्रालौक १-८)

जयदेव का यह कथन मम्मटाचार्य के खंडन के रूप में था जिन्होंने अपनी काव्य परिभाषा में अलंकारों की उपेक्षा की थी—

तददोषौ शब्दार्थों सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि

(काव्यप्रकाश १-१)

संस्कृत के अन्य आचार्यों ने भी अलंकारों की प्रधानता मानी है। विश्वनाथ ने रस को प्रधानता दी है। केशव की अलंकार प्रियता का रहस्य यह है कि वे राजदरबार के कवि थे जो अलंकारों की पच्चीकारी के बल पर

---

१. केशवदास, कविप्रिया, दूसरा प्रभाव १-२१
२. ,, रामचंद्रिका, पहला प्रकाश ४
३. ,, कविप्रिया, पाँचवां प्रभाव १
४. ,, कवि प्रिया, ग्यारहवां प्रभाव ५३

आसानी से कीर्ति प्राप्त कर सकते थे। वही कीर्ति लाभ केशव का एक मात्र अभीष्ट था।

जब उनके रामचंद्रिका के प्रणयन का उद्देश्य उन्हीं के शब्दों में सुखसार माना और पुरातन पापों को नष्ट कर लेना है।[1] किन्तु इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक भक्ति भावना पूर्ण रचना वह नहीं बन सकी। क्योंकि उनका उपरोक्त व्यक्तित्व इसमें बाधक बन गया है। भक्ति विकास के लिए आवश्यक राम रूप का वर्णन वे नहीं कर सके।

इस दृष्टि से जब हम रामचंद्रिका को देखते हैं तो विदित होता है कि उसमें प्रबंधात्मकता का तंतु बहुत ही सूक्ष्म है। उसकी ओर कवि की दृष्टि रही ही नहीं। अलंकारों और छंदों के फेर में पड़कर वे प्रबंध के लिए आवश्यक कथा विकास और सरसता से भटक गये। प्रबंध काव्य के वर्णनों में कवि के भाव तंतु की अनुस्यूतता जो अपेक्षित है उसके अभाव में रामचंद्रिका के वर्णन बिखरे हुए खंड चित्रों के समान दिखाई पड़ते हैं। कुछ वर्णन देखे जायँ। अयोध्या की फुलवारी का वर्णन देखिए—

देखो बनवारी चंचल भारी तदपि तपोधन मानी
अति तपमय लेखी गृहथित पेखी जगत दिगंबर जानी
जग यदपि दिगंबर पुष्पवती नर निरखि निरखि मन मोहै
पुनि पुष्पवती तन अति अति पावन गर्भ सहित सब सोहै ॥३४॥
पुनि गर्भ संयोगी रति रस भोगी जग जन लीन कहावै
गुण जग जन लीला नगर प्रवीना अति पति के मन भावै
अति पतिहि रमावै चित्त भ्रमावै सौतिन प्रेम बढ़ावै
अब यौ दिन रातिन अद्भुत भातिन कविकुल कीरति गावै ॥३५॥

(रा० चं० पहला प्रकाश)

इस वर्णन में यद्यपि शब्द शक्ति और अर्थ गंभीरता ऐसी है कि अनायास ही अप्रस्तुत की प्रतीति हो तथापि यह अप्रस्तुत प्रकरण के विरुद्ध है। तपस्वी विश्वामित्र ने जिस रूप में दशरथ की फुलवारी को देखा उसमें ऐसे अश्लीलता द्योतक अप्रस्तुत की प्रतीत कराना उचित नहीं है। अत: यहाँ अश्लीलता का दोष माना जाना चाहिए यद्यपि प्रबंध निरपेक्ष वर्णन की दृष्टि से कवि की कला कुशलता इसमें अच्छी दिखाई पड़ती है। समासोक्ति अलंकार का यह

---

१. **केशवदास, रामचंद्रिका, पहला प्रकाश, ६-२०**

अच्छा उदाहरण है। अप्रस्तुत में स्वाभाविक विरोध है जिसका परिहार प्रस्तुत के द्वारा ही होता है। अतः इसमें विरोधाभास की झलक भी मिलती है।

चौदहवें प्रकाश में समुद्र का वर्णन केशवदास की वस्तु वर्णन की शैली का सुन्दर उदाहरण है

भूति विभूति पियूषहु को विष ईश शरीरकि पाय बियो है।
है विधौ केशव कश्यप को घर देव अदेवन के मन मोहै।
संत हिया कि बसैं हरि संतत शोभ अनंत कहे कवि कौ है।
चंदन नीर तरंग तरंगित नागर कोउ कि सागर सोहै ॥४१॥

जाल काल कराल माल लिमिंगलादिक सौं बसै।
उर लोभ छोभ कोह सकाम ज्यों खल को लसै।
बहु संपदायुत जानिये अति पातकी सम लेखिये।
कोउ मांगतो अरु पाहुनो नहिं नीर पीवत देखिये ॥४२॥

(रा. च. १४)

इस वर्णन में कवि की प्रकृति के प्रति आलंबन की दृष्टि की झलक मिलती है। तो भी प्रथम छंद में आलंकारिक शैली का प्रयास भी लक्षित होता है जिसके द्वारा श्लेष और संदेहानुप्राणित उल्लेखालंकार की छटा कवि ने दिखायी। दूसरे छंद में उपमा अलंकार की योजना स्वाभाविक बन पड़ी है। गोदावरी और और पंचवटी का वर्णन भी इसी प्रकार का है। (रा० चं० ११) पाँचवें प्रकाश का सूर्योदय वर्णन भी कवि की इस आलंकारिक दृष्टि का सुन्दर परिचायक है। इन वर्णनों में कहीं-कहीं काल और स्थान विरुद्ध दोष भी पाये जाते हैं जिनकी परवाह नहीं की गई है। राम का यह दंडकवन वर्णन काल विरुद्ध (Anothro nism) दोष का उदाहरण है। इसमें श्लेषानुप्राणित उपमा है।

पांडव की प्रतिमा सम लेखो
अर्जुन भीम महामति देखो।
है सुभगा सन दीपतिपूरी
सिंदुर औ तिलकावलि रूरी ॥

(रा. चं. ११-२१)

दंडक वन में कवि ने सीता को वीणा बजाते हुए चित्रित किया है जिसमें अनुप्रास अलंकार तो आ गया है किन्तु कृत्रिमता के साथ।

जब जब धरि बीना प्रकट प्रवीना बहु गुन लीना सुख सीता।
पिय जियहि रिझावै दुखिन भजावैं विविध बजावैं गुनगीता।

तजि मति संसारी विपिन विहारी सुख दुख कारी घिरि आवै ।
तब तब जगभूषण रिपुकुल दूषण सबको भूषण पहिरावै ।

इसमें अकबर और जहाँगीर कालीन बादशाहों और बेगमों की संगीत प्रियता झलकती है । प्रसिद्ध गायकों तानसेन और बैजू बावरा के संबंध में यह प्रसिद्ध है कि वे अपने संगीत से मोहित कर मृगों को अपने यहाँ आकृष्ट करते थे और उनको मालायें पहनाते थे । इन वर्णनों में यह देखा जा सकता है कि यद्यपि कवि की दृष्टि प्रकृति के प्रति सीमित मात्रा में ही सही, आलंबन की रही तथापि अलंकारों के प्रति विशेष आग्रह दिखायी पड़ता है ।

कहीं-कहीं अलंकारों के विधान में कुछ दोष दिखायी पड़ते हैं । सूर्योदय का वर्णन करते हुए कवि ने रूपक और संदेहानुप्राणित उत्प्रेक्षा का जो विधान किया है उसमें सूर्य के लिए घृणास्पद उपमान दिया गया हैं । अत: अश्लीलता दोष आ गया है ।

कै श्रोणित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को

(रा० चं० ५-१०)

अन्य उपमान तो सुन्दर हैं ।

सहोक्ति अलंकार के द्वारा शिवधनुर्भंग का वर्णन बहुत सुन्दर हुआ है । (रा० चं० ५-४३)

केशवदास को वस्तु वर्णन में जितनी सफलता मिली है उतनी भाव वर्णन में नहीं । उदाहरण के लिए शिव धनुष भंग के समय राजा जनक की संश्लिष्ट मनोदशा का वर्णन देखिए—

ऋषिहि देखि हरषै हियो राम देखि कुम्हिलाय
धनुष देखि डरपै महा चिंता चित डोलाय ॥५-४०॥

इसमें यद्यपि पर्यायालंकार अच्छा निभाया गया है किंतु फिर भी हर्ष और भय को वाच्य कर देने से भाव का सौंदर्य घट गया है । इस संश्लिष्ट भाव के वर्णन के लिए किसी बड़े छन्द की आवश्यकता है ।

सीता का वियोग वर्णन भी इसी अलंकार प्रियता और अनुपयुक्त छंदों के कारण सरस नहीं बन सका है । (रा०चं० १३-५३-५५)

सीता निर्वासन के प्रसंग में राम के हृदय का जैसा करुणा पूर्ण वर्णन होना चाहिए था वैसा नहीं हो सका । यह प्रसंग काव्यत्व की दृष्टि से बहुत ही सुन्दर है जिसमें कवि अपनी सरस वर्णन कुशलता का परिचय दे सकते थे । किंतु केशव ने एक छंद में उसका चलता सा वर्णन कर दिया है, जिसका कोई

प्रभाव पाठक पर नहीं पड़ता। उसका वर्णन करने में कवि ने अपनी असमर्थता भी प्रकट की है।

दूत भूत भावना कही न जाय बैन
कोटिधा विचारियौ परैं कछू विचार मैं न
सूर के उद्योत होत बंधु आइयो सुजान
रामचंद्र देखियो प्रभात चंद्र के समान (३३-२६)

इसमें पूर्वार्द्ध में न्यूनपदत्व दोष भी आ गया है। इस सीता-निर्वासन प्रसंग में, हाँ, एक स्थान में सुन्दर अनुभावों का वर्णन करके पात्रों की मनोदशा को ध्वनित किया गया है। लक्ष्मण सीता को वन में ले जाते हैं। किंतु सीता के प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं दे पाते।

सुनि सुनि लक्ष्मण भीत अति सीता जू के बैन
उत्तर मुख आयो नहीं, जल भर आयो नैन ॥५१॥
बिलोकि लक्ष्मणै भई बिदेहजा विदेह सी
गिरी अचेत है मनो घने बनै तडीत सी।
करी जु छांह एक हाथ एक बात बास सों
सिंच्यो शरीर बीर नैन नीर ही प्रकाश सों

(रा० चं० ३३)

किंतु आगे इसको नहीं निभाया जा सका।

केशव ने अपनी 'रामचंद्रिका' अनेक छंदों में लिखी थी जैसा कि उनका उद्देश्य था जो पहले ही स्पष्ट कर दिया गया था।

रामचंद्र की चंद्रिका वर्णत हौं बहु छंद ॥१-२१॥

छंदों का इतना वैविध्य और किसी काव्य ग्रन्थ में हमको नहीं मिलता। प्रचलित व अप्रचलित छंदों के अलावा उन्होंने स्वयं भी कुछ नये छंद बनाए जैसे हाकलिका (११-१९) मनहरन (११-२३) मनोरमा (११-३४) कमल (३२-१७) आदि। हाँ, छंद वैविध्य की दृष्टि से गोविंद रामायण इसके समान है। किंतु कई स्थानों में केशव की छंद योजना भाव के अनुकूल नहीं बन सकी जिसका कारण यह है कि वे भावों को प्रधानता न देकर छंदों की विविधता ही दिखाना चाहते थे।

चरित्र चित्रण की दृष्टि से यह कहा जाना चाहिए कि इसमें रामादि पात्रों का चित्रण परंपरा के अनुसार भक्ति भावना को बढ़ाने वाला न होकर राज दरबारों के साधारण राजाओं और राज पुरुषों के अनुरूप हुआ है। उसमें

भी स्वाभाविकता की अपेक्षा चमत्कार प्रियता अधिक लक्षित होती है। केशव की दृष्टि में राम, वीर सिंह देव और बादशाह जहाँगीर एक ही थे।[1]

उनकी भाषा के संबंध में प्रचलित मतभेदों पर विचार करते हुए चन्द्रबली पांडे कहते हैं कि केशव की भाषा 'ग्वारियरी' है। अर्थात् ग्वालियर के आसपास की भाषा : जिसमें अरबी, फारसी के विदेशी शब्द जैसे दिवान, सका, कमान, जुबान आदि पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं जिसका कारण है कवि की दरबारी प्रवृत्ति। उन शब्दों को भी विकृत कर दिया गया है जैसे अरबी 'सक्का' पानी भरने वाला : को 'सका'[2] भाषा के इस बाह्य रूप को छोड़कर जब हम उसकी क्षमता पर विचार करते हैं तो कहना पड़ेगा कि उसकी व्यंजना शक्ति साधारण है। ऊँची कल्पना की उड़ान और भाषा की असमर्थता के कारण शैली में प्रसाद गुण की कमी हो गई है और वह क्लिष्ट बन गई है। इसी कारण से इनकी रचनाओं को काव्य का 'प्रेत' कहा गया है।

रामचन्द्रिका में सफलता के साथ संवादात्मक शैली का प्रयोग मिलता है जिसमें कहीं-कहीं सुन्दर अर्थ गांभीर्य व ध्वनि आ गई है। उदाहरण के लिए कैकेयी भरत संवाद : प्रकाश १०। और अंगद रावण संवाद। प्रकाश १६। देखे जा सकते हैं। इन पर हनुमन्नाटक की शैली का स्पष्ट प्रभाव है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि रामचंद्रिका एक ऐसा काव्य है कि जिससे कवि की अत्यधिक अलंकार प्रियता के कारण रस परिपाक और भाव व्यंजना अच्छी नहीं हो सकी और कई काव्य दोषों का समावेश हो गया है। हाँ, कवि की चमत्कार प्रियता को पर्याप्त सफलता मिली है।

हनुमन्नाटक—

यद्यपि यह ग्रंथ नाटक कहलाता है तथापि नाटकत्व की अपेक्षा इसका सौंदर्य काव्यत्व में अधिक है। नामकरण और बीच-बीच में पद्यात्मक कथोपकथन की शैली छोड़कर और कोई नाटक का लक्षण इसमें नहीं मिलता, काव्यात्मक वर्ण बहुत हैं। यह भक्ति भावना से लिखा गया है अतः इसमें मूल के ऐसे प्रसंगों को छोड़ दिया गया जो अतिशय शृंगारी हैं। और भक्ति भावना में बाधक हैं जैसे मूल का दूसरा "जानकी विलास" अंक। भक्ति भावना के विकास में सहायक होने वाले वर्णनों को विस्तृत किया गया है जैसे अंगद रावण संवाद। यह वस्तु विकास की दृष्टि से पहली साहित्यिक विशेषता है।

---

१. श्री चंद्रबली पांडे, केशवदास, अध्याय ६। २—वही, अध्याय ७।

कवि की वर्णन-प्रियता प्रायः सब स्थानों में लक्षित होती है। पंचवटी का वर्णन मूल हनुमन्नाटक में एक ही पद्य में किया जाता है। ह. ३-२२। हृदयराम ने अपनी पुस्तक में चार पद्यों में इसका सुन्दर वर्णन किया है। ह. भ. ३—५९—६२। इस प्रकार के अनेक विस्तृन वर्णन हैं जिनकी हनुमन्नाटक में या तो सूचना मात्र है या अभाव है।

सीता की थकावट की व्यंजना बहुत ही सुन्दर वर्णन के द्वारा कवि करते हैं :

ए बनवास चले दोउ सुन्दर कौतुक को सिय संग जुटी है।
पायछ साथ चली इतमैं रनवासहु की नहिं सीम छुटी है।
हाथ धरे कटि बूझत रामहि नाथ कहो कहाँ कुंज कुटी है।
रोवत राघव जोवत सी मुख मानहु मोतिन माल टूटी है।

इसमें यद्यपि तुलसीदास का प्रभाव दिखाई पड़ता है तथापि 'हाथ धरे कटि" वाली सीता की स्वाभाविक मुद्रा में कवि की मौलिकता है। राह चलती स्त्रियों की थकावट की यह सहज मुद्रा है। जिसके चित्रण में हृदयराम ने अपने सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय दिया है। सीता की इसी प्रकार की एक और स्वाभाविक मुद्रा तब दिखाई पड़ती है जब वह जंगल में नाना प्रकार के जानवरों को देख डर जाती है।

कहूँ वन कोल कहूँ रोझन के टोल कहूँ भीलन के बोल तहां बातन अनंद की।
मानस के नाते वन मानस हजूर कहूँ वानर लंगूरन उचाई गिरि मंद की।
कहूँ चक्रवाक कहूँ भूतन की हाक कहूँ कारे काम मनो सूर कहूँ पूत बंदकी।
जानकी डरात बीच बीच चली जात तऊ नैन मूँद लिए कटि गहे रामचंद्र की॥

(३—५४)

सीता की यह मुद्रा भय काअनुभाव भी है।

कहीं-कहीं ऐसे वर्णन भी मिलते हैं जिनमें भावों की सुन्दर ध्वनि है। लक्ष्मण और सीता राम के साथ वन जाने की अनुमति माँगते हुए कहते हैं :

लछिमन सिय बिनती करी, सुनो राम रणधीर।
दुख अँधेर किमि छै सके कर दीपक रघुवीर॥२-५३।

इस सांग रूपक के द्वारा निर्भयता की सुन्दर व्यंजना है। राम की वन जाने की आतुरता कौसल्या के सामने बहुत स्वाभाविक ढंग से इन शब्दों में व्यक्त होती है :

सुन साँच कहों तुमसो जननी तनु तो ढिग है मन है वन में ।२-६३।

वाग्वैदग्ध और अर्थ गांभीर्य का यह सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत है। हनुमान सीता से कहते हैं कि चलिए मैं स्वयं आपको यहाँ से ले जाकर राक्षसों को एक तमाशा दिखाऊँगा। तब सीता बहुत ही कोमल शब्दों में उसको मना करती है।

सुने वीर हनुमंत तेरो बल साँचो सबै।
रामचंद्र बलवंत कह्यो तुमै सो कीजिए ॥६-३१॥

लंका से लौटकर हनुमान कितनी विदग्धता के साथ विनीत ढंग से अपने कार्य का वर्णन करते हैं।

कोप भयो तहँ पावक को प्रभु कंचन गढ़ को ऐसो जरायो।
श्री रघुवीर वियोग भरे पुनि जानकी श्यासन पौन पुचायौ
तेल तो तूल भिजे घृत सो पट ताहि के ऊपर हो धरि आयो।
देखिय नाथ बड़ो यह कौतुक लोक कहे हनुमान जरायो ॥

अलंकार योजना में हृदयराम बड़े कुशल हैं। छन्द के अनुकूल शब्दालंकारों का प्रयोग उन्होंने खूब किया है। एक उदाहरण देखा जाय जिसमें यमक और अनुप्रास का सुन्दर मिश्रण है।

भयो चित भंग अंग अंग सब कांप्यो राम जैसे शिवसंग मानो दूसरो अनंग है।
माँगे बिन आन दीनो धनुष निषंग ताको रंग न पछाने जाने हटहीं में रंग है।
कही रघुवीर तू सुरंग देख भूले निज भाजे सुख आज ते तुरंग पीठ तंग है।
कीनो दुख पंग सुनु जानकी कुरंग नैनी होय न कुरंग यह बड़ोई कुरंग है।

इसमें अर्थ गांभीर्य की भी अपनी अलग छटा है। ऐसे शब्दालंकार इसमें अनेक हैं। भावों को व्यंजित करने में सहायक होने वाले अर्थालंकार भी इसमें पर्याप्त मिलते हैं। हनुमान ने सीता को राम की मुद्रिका दी तो :

बूझति है ताही सों संदेशो सिय बार बार मेरे प्रभु प्राणनाथ सुख सों रहत हैं।
लछमन नीके कहाँ छाँह कहा कह्यो तो सों मेरी सुधि लेबे को कबहूँ उमहत हैं।
किधौं मेरे औगुण बिचारे हैं बिसार दीन्हीं किधौं मेरे नाम लै उसासन भरत हैं।
बोले हनूमान ऐसे मुंदरी न करे मात तेरे पाछै यासों राम कंकन कहत हैं।

अल्पालंकार के द्वारा राम के शरीर की कृशता की कैसी मार्मिक व्यंजना है

राम के विरह वर्णन में यह अशियोक्ति भी दृष्टव्य है।

जिनसों बहुत सनेह रामचन्द्र मन ते करहिं।
तिनहूँ की गति एह, सुकवि राम संगत जरहिं। (६-५४)

चरित्र चित्रण की दृष्टि से इसकी विशेषता यह है कि इसमें राम को भगवान विष्णु का अवतार मानते हुए भी मानवीय धरातल पर चित्रित किया गया है। वे आदर्श राजा के रूप में चित्रित हैं। भरत की हठधर्मी इसमें कुछ अधिक दिखाई गई है। उनका क्रोध भी साधारण सीमा की पार कर जाता है जब वे राम से कहते हैं :

जो कहो तो जाय घर कैकेयी निकारों आज करों है परशुराम काम को।
(३—३५)

कौसल्या के चित्रण में स्वाभाविक वात्सल्य मानवोचित ढंग से चित्रित किया गया है। वे तो राम के लिए जोगिनी बन जाना चाहती हैं (२-६२) उनके आदर्श वीर नारी का रूप भी तब दिखाई पड़ता है जब वे हनुमान के द्वारा राम को संदेश भेजती हैं कि लक्ष्मण के बिना तुमको अयोध्या में आना नहीं चाहिए।

सिय सों लछमन जो मिले तो आवहु इह देस।
वीर तिया बिन वन भलो, कीजै गोरख भेस॥

सौत सुमित्रा के मातृहृदय का दुख पहचान कर उसके सामने अपना वात्सल्य तुच्छ मानने वाली कौसल्या की यह चरित्रगत विशेषता बहुत ही स्पृहणीय. है। इस पर गोस्वामी तुलसीदास की गीतावली का प्रभाव लक्षित होता है।

अन्य पात्रों में कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं है।

भाषा की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि कवि का उस पर अच्छा अधिकार है और वह प्रवाह युक्त है यद्यपि कहीं-कहीं शब्दों को कुछ विकृत भी किया गया है। जैसे 'समय' को समें। इसकी शब्द योजना भी सफल है।

गोविंद रामायण

यह प्रबन्ध काव्य है और अतएव शृंखलाबद्ध वस्तु विकास और वर्णनों से युक्त है। काव्य रूप की दृष्टि से इसकी विशेषता यह है कि इसका प्रारम्भ वस्तु निर्देश से हुआ है यथा :

अथ मैं कहों राम अवतारा। जैस जगत मो किया पसारा।
बहुत काल बीतत भयो जबै। असुरन वंश प्रगट भयो तबै॥
असुर लोक बहु करैं विपदा कितहुँ न तिन्हें तनिक में साधा,
सकल देव इकठे तब भये, छीर सिंधु जहँ बह तहँ गये।

इसमें कवि ने अपने सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा है ।

इसकी सर्व प्रथम विशेषता, काव्यत्व की दृष्टि से, जिस पर पाठकों का ध्यान जाता है, इसकी छन्द शैली है । इसमें अनेक प्रकार की प्रचलित व अप्रचलिय छन्दों का विशेष प्रयोग किया गया है जैसे अजवा, अनाद, अलका, कलस, बहड़, तिलकड़िया, होहा आदि जिनका निरूपण पुस्तक की पीठिका में किया गया है । एकाध के लक्षण और उदाहरण देखे जायँ:

अजवा : यह वर्ण वृत्त है और इसके प्रत्येक चरण में एक मगण और एक गुरु होता है :

उदा : जुट्टे बीरं । छुट्टै तीरं ॥
ढुक्की ढालं क्रोहे कालं ॥

अलका : यह वर्ण वृत्त है इसके प्रत्येक चरण में क्रम से न, य, न, य, गण होते हैं । इसको कुसुम विचित्रा भी कहा जाता है ।

उदा : तिन बनवासी रघुवर जानै ।
दुख सुख संगी सुख दुख मानै
बलकल लै कै अब बन जैहैं ।
रघुपति संगे बन फल खैहैं ॥

राम कथा में यद्यपि नव रसों के लिए पर्याप्त स्थान है तथापि गोविंदसिंह जी ने इसको वीर रस प्रधान बनाया है । पूरे काव्य को पढ़ने पर यही अनुभव होता है कि इसमें वीर रस का जितना जीता - जागता वर्णन मिलता है उतना अन्य रसों का नहीं । अन्य रसों के लिए उपयुक्त स्थलों में भी वीर रस की झाँकी मिलती है । कवि की वीर प्रकृति को देखते हुए यह अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता यद्यपि काव्यत्व की दृष्टि से अनुचित है ।

स्थान-स्थान पर समय असमय ऐसे युद्ध वर्णनों का समावेश किया गया है जो प्रायः एक ही प्रकार की भाषा में एक ही ढर्रे पर किये गये मिलते हैं । जैसे परशुराम के गर्व भंग का प्रसंग और विराध वध का प्रसंग आदि । इन वर्णनों में ओज गुण प्रधान भाषा बहुत ही उपयुक्त और वीर रसोद्दीपक प्रयुक्त हुई है जिस पर अपभ्रंश काव्यों की शब्द योजना का प्रभाव दिखाई पड़ता है जैसे—विराध वध के प्रसंग में :

अजुथ्थ लुथ्थ बिथ्थरी मिलंत हथ्थ बख्खयं
अघुम्य घाय घुम्मए बबक्क वीर दुध्धरं

किलं करंत खप्परी पिवंत शोण पानयं
हहक्क भैरवं सुतं उठंत जुद्ध ज्वालयं ।। (बनवास कथनम्)

वीर रस को साकार बनाने के लिए ऐसे अनुकरणात्मक और निरर्थक शब्दों का पर्याप्त प्रयोग मिलता है जो पग-पग पर प्रयुक्त किये गए हैं जैसे—

सागड़दी साँग संग्रहै **रागड़दी** रण तुरी नचावहिं
झागड़दी झूम गिरि भूमि **सागड़दी** सुरपुर सिधावहिं
अंगड़दी अग है भंग **आगड़दी** आह व महि डिग्गहिं
बागड़दी वीर बिकरार हो, **सागड़दी** सोणत तन भिग्गहिं ।

मोटे टाइप के शब्द निरर्थक हैं और केवल अनुकरणात्मक ध्वनि के लिए प्रयुक्त हैं। किंतु ऐसे शब्दों के प्रयोग से जो नाद सौंदर्य भाषा में आता है वह कृत्रिम होता है।

वीर रस पूर्ण प्रसंगों का वर्णन जितना स्वाभाविक बन पड़ा है उतना अन्य रसों के प्रसंगों का नहीं। 'सीता खोज कथनम्' में राम के वियोग का वर्णन इस प्रकार किया गया है।

चहुँ ओर पुकार बकारथ के। लघु भ्रात भये बहु भाँति जथे
उठकै पुनि प्रातसनान गये। जलजंत सबै जरि छार भये।
बिरही जिस ओर सुदृटि परै। फल फूल पलास अकास जरै।
कर सौं धर जैन छुअंत भई। कच बासन ज्यों पक फूट गई।।
जिह भूमि थली पर राम फिरे। दव ज्यों जलपात पलास गिरे।
टुट आसहि आरुण नैन झरी। मनु तात तवा पर बुंद परी।
तन राघव भेंट समीर जरी। तज धीर सरोवर माँझ दुरी।
नहिं तत्र थली सतपत्र रहे। जल जंत पतत्रिण पत्र दहे।।

इस वर्णन में जहाँ अत्युक्ति का सुन्दर रूप दिखाई पड़ता है वहाँ उस पर रीति कालीन विरह वर्णन शैली का भी प्रभाव लक्षित होता है। इसमें दूर की कौड़ी हाँक लाने के सिवाय कोई सरसता नहीं दिखाई पड़ती। यह पढ़ते ही बिहारी लाल का यह दोहा स्मृति पटल पर उभर आता है—

औंधाई सीसी सुलखि बिरह बरति बिललात
बीचहिं सूखि गुलाब गो छींटों छुयो न गात ।।

कहीं-कहीं वस्तु वर्णन सुन्दर किया गया है। निम्नलिखित पद्य में

बारात में जाने वाले दाशरथियों के घोड़ों का संदेहालंकार के द्वारा कवि-समय की प्रथा के अनुसार ऊँची कल्पना युक्त वर्णन है :

सुधा सों सिधारे रूप सोभत उजियारे किधौं
साँचे बीच ढारे महाशोभा के सुधार कै।
किधौं महामोहिनी के मोहिबे निमित्त वीर
विधना बनाये महा विधि सों विचार कै।
किधों देव दैतन विवाद छांड़ि बढ़ें चिर,
मथ कै समुद्र छीर लीने हैं निकार कै।
किधौं विस्वनाथ जू बनाये निज पेखिबे को,
और न शकति ऐसी सूरतें सुधार कै॥
(अवध प्रवेश कथनम)

दंडकारण्य का वर्णन भी सुन्दर है।

ऊँचे द्रुम साल जहाँ लांबे वट ताल तहाँ
ऐसी ठौर तप को पधारे ऐसो कौन हैं।
जाकी छबि देख दुति खांडव की फीकी लागै,
आभा ताकी नंदन बिलोकै भजे मौन है।
तारन की कहा नैक नभ न निहार्यो जाय,
सूरज की जोति तहाँ चंद्र की जौन है।
देवन निहार्यो कोऊ दैत न बिहार्यो तहाँ,
पंछी का न गमन जहाँ चींटी को न गौन है॥

हाँ, इसमें दूसरे चरण के उत्तरार्ध में प्रसिद्धि विरुद्ध दोष आ गया है। क्योंकि नन्दन सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध है और यहाँ प्रकरणगत वर्णन वन की भयंकरता का है और इसलिए दोनों धर्म परस्पर विरोधी हैं।

इसमें ऊपर निर्दिष्ट अलंकारों के अतिरिक्त कुछ अन्य अलंकारों का भी प्रयोग है। यह सहोक्ति देखिए :

प्राण पतन नृपवर सह्यो धरम न छोड़ा जाय।
देत कहे जो वर हुते तन सुतदिये चुकाय। (अवध प्रवेश)

निम्नलिखित सवैये में निरुक्ति अलंकार देखा जाय—

राजिवलोचन रामकुमार चले बन को संग भ्रात सुहायो
देव सदेव नछत्र शचीपति चौंक चके मन मोद बढ़ायो

आनन बिंब पर्यो बसुधा पर फैल रह्यो फिर हाथ न आयो।
बीच अकास निवास कियो तिन ताहि तें नाम मयंक कहायो॥

किंतु यह निर्दुष्ट नहीं है। 'मयंक' शब्द 'मृगांक' का तद्भव रूप है जिसका अर्थ होता है मृग है जिसके अंक में (चन्द्रमा) निरुक्ति के द्वारा इस शब्द के अन्यार्थत्व की जो कल्पना की गयी है वह निराधार है। निरुक्ति में अन्यार्थत्व का आधार भी आवश्यक है। जैसे—

निरुक्तिर्योगतो नामनामन्यार्थत्व प्रकल्पनम्
ईदृशैश्चरितैर्जनि सत्यं दोषाकरो भवात्॥(चन्द्रलोक)

चरित्र चित्रण की दृष्टि से भी इसमें कुछ विशेषताएँ पायी जाती हैं। राम को इसमें विष्णु का अवतार मानकर भी जिस मानवीय धरातल पर त्रित्रित किया गया है उसमें एकांगीपन अधिक दिखायी पड़ता है। वीरता के साथ उसके अंग माने जाने वाले औद्धत्य और जल्दबाजी आदि दुर्बलताएँ भी इसके राम में मिलती हैं। परशुराम की धमकी का मुँहतोड़ जवाब देते हुए राम कहते हैं:

बोल कहे सु कहे दुज जू जु फेरि कहै तु पै प्राण खवैहो।
बोलत ऐंठ कहा सठ जिऊँ सब दाँत तुराइ अबै घर जैहो।
धीर तबै लहिहै तुम कउ जब भीर परे इकतीर चलैहो।
बात संभार करो मुख तें इन बातन को अब ही फल पैहो।

(सीता स्वयंवर)

परशुराम की ब्राह्मणता की भक्ति करने वाले राम का ऐसा उत्तर कुछ परंपरा विरुद्ध सा लगता है। उनभी जल्दबाजी का प्रमाण तब मिलता है जब चित्रकूट ससैन्य आनेवाले भरत को देखते हैं।

लख जलथल तज कुल धायो मुनि गन सगे लइ तहँ आये॥
लखि बल रामं खल दल भीरं। गहि धनुबाणं सित धर तीरं॥

(वन वास कथनम्)

इतन अधीरता और जल्दबाजी राम के आदर्श चरित्र के उपयुक्त नहीं है। इनको राम के एकांगी वीर चरित्र के अंग बनाकर देखना चहिए।

इसमें राम की पराकाष्ठा को पहुँची कृतज्ञता का भाव दिखानी पड़ता है जब वनवास से लौटकर कैकेयी से मिलते हैं:

मिले भर्तु मातं। कही सर्व बातं
धनं मात तोको। कियो उऋण मोको

कहा दोष तोरो। लिखा लेख मेरो
हुनी हो सु होई। कहै कौन कोई। (माता मिलन)

यहाँ राम कर्मवादी या भाग्यवादी विदित होते हैं। इसमें राम के अन्य कोमल रूप इतना उभरे नहीं जितना वीर रूप।

सीता व कौसल्या के चरित्रों में भी कुछ ऐसी दुर्बलताएँ मिलती हैं जो उनके परंपरागत चरित्रों में कुछ विकार पैदा कर देती हैं।

परशुराम के गर्व भंग के प्रसंग में जब राम वैष्णव धनुष हाथ में लेते हैं तब सीता सोचती हैं :

सीय रही मुरछाय मनै रण राम कहा मन बात धरेंगे।
तोर शरासन संकर को जिमि मोहि बर्यो तिमि और बरेंगे।
दूसर व्याह बधू अबहीं मन तें मोहिं नाथ बिसार डरेंगे।
देखत हौं जिन भाग भले विधि आज कहा इह ठौर करेंगे।
(अवध प्रवेश)

हृदयराम के हनुमन्नाटक में भी सीता इसी प्रकार सोचती हैं।
(हनु. १-१०९)

कौसल्या इसमें गर्वीली के रूप में भी चित्रित की गई हैं। वे स्वयं कहती हैं :

केकइ आदिक सौतिन को लखि भौंह चढ़ाइ सदा गरबाती,
ताकहु तात अनाथ जुँ आज चले वन को तजि कै बिललाती॥
(अवध प्रवेश)

हृदयराम की कौसल्या के समान इसमें भी ये पुत्र वियोग से दुखी होकर जोगिनी बन जाना चाहती हैं।

कहीं कहीं रस भंग दोष भी मिलता है। रावण के साथ युद्ध में राम का वह वर्णन वीर रस में बाधक है।

तन सुभत सुरंग छबि अंग अंगं लजत अनंगं लख नैनं।
शोभित कच कारे अति घुंघरारे रसन रसारे मृदु बैनं॥
मुखि छकत सुवासं दिनस प्रकासं जनु ससि भासं सोभं।
रीझत चख चारं सुर पुर प्यारं देव दिवारे लखि लोभं॥
(रावण युद्ध कथनम्)

इनकी भाषा में व्रज पंजाबी, राजस्थानी और खड़ी बोली का मिश्रित रूप मिलता है और शैली पर अपभ्रंश काव्य शैली का प्रभाव है। उर्दू की शैली भी यत्र-तत्र दिखाई पड़ती है। जैसे रावण वध के बाद अयोध्या में नागरियाँ राम के संबंध में कहती हैं :

जालिम अदाय लीने जानहु शराब पीने
रुखसार जहाँ ताबाँ। वह गुल बदन कहाँ है।

अंत में इस कृति के संबंध में यह कहा जा सकता है कि यह वीरता परक रामायण है जिसमें वीर योद्धा कवि के व्यक्तित्व की छाप सर्वत्र दिखाई पड़ती है।

ग्यारहवाँ अध्याय

तेलुगु राम साहित्य का साहित्यिक अध्ययन

विविध शैलियाँ, काव्यरूप, रस, साहित्यिक आकलन

यह पहले बताया जा चुका है कि तेलुगु राम साहित्य भक्ति की अपेक्षा काव्य सौन्दर्य प्रधान अधिक है। इसमें कालक्रम के अनुसार अनेक काव्य रूपों का समावेश हो गया है और कवियों की वस्तु प्रतिपादन की शैली में अन्तर आ गया है जो स्वाभाविक है। नीचे कुछ प्रधान राम काव्यों का साहित्यिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।

निर्वचनोत्तर रामायण—

कालक्रम की दृष्टि से राम कथा विषयिक सर्वप्रथम ग्रंथ तिक्कन्न की "निर्वचनोत्तर रामायण" है। इसके नाम से ही यह विदित होता है कि इसमें वचन या गद्य को निषिद्ध कर दिया गया है जिससे वह निर्वचनोत्तर रामायण कहा गया है। तेलुगु के आदि काव्य आँध्र महाभारत से लेकर यदि देखा जाय तो विदित होता है कि तेलुगु में प्रारंभ से चंपू काव्य पद्धति की प्रथा प्रचलित थी जिसमें पद्य और गद्य का समावेश होता है। पद्यों के बीच में जहां कहीं कथा सूत्र को आगे बढ़ाने की आवश्यता पड़ती थी और अन्य स्थानों में भी गद्य या वचन का प्रयोग किया जाता था। इस प्रथा से हटकर तिक्कन्न ने प्रतिज्ञापूर्वक अपने काव्य को संस्कृत काव्य पद्धति के अनुसार निर्वचन बना दिया जो कवियों की प्रतिभा और पांडित्य प्रकर्ष का प्रमाण माना जाता था

क्योंकि पद्य की रचना छंदोबद्ध होने के कारण गद्य की अपेक्षा अधिक कठिन होती है। निर्वचनोत्तर रामायण की रचना के समय तक तिक्कन्न में वह अहंभावशून्यता नहीं आ पाई है जो उनके महाभारत की रचना में दिखाई पड़ती है जिसका प्रमाण प्रारंभिक पीठिका में दिखाई पड़ता है। अपना परिचय देते हुए कवि ने कहा है कि मैं विमल और उदात्त मनीषा से युक्त और दोनों भाषाओं (संस्कृत और तेलुगु) के प्रौढ़ काव्य शिल्प में पारंगत······महेश्वर के चरण कमलों का ध्यान करनेवाला··········तिक्कन्न हूँ। (नि० रा० १-१३) अपनी कृति को निर्वचन बनाने के संबंध में वे कहते हैं कि प्रौढ़ कवियों के लिए गद्य के बिना वर्णन करना कुछ सीमा तक संभव है। तब पूरी कथा पद्यों में ही यदि कही जाय तो आर्य अवश्य ही प्रसन्न होंगे। (नि०रा० १-१५) आगे वे कहते हैं कि पूर्वापर संबंध बिठाकर ललित पदावली से युक्त सरस पद्यों में ही कथा को इस प्रकार वर्णित करूँगा कि मानों छोटे-छोटे टुकड़ों को क्रमानुसार जोड़कर शहनाई बनाई जाती हो। (नि. रा. १-९६) इन बातों को दृष्टि में रखकर यदि निर्वचनोत्तर रामायण का अवलोकन करें तो उसका सौन्दर्य अवगत हो सकता है। इस रामायण का प्रारम्भ संस्कृत छंद के साथ आशीर्वादपूर्वक होता है और उसके बाद कवि की स्तुति, कुकवियों की निंदा और कृतिपति का वंश वर्णन हुआ है। इस प्रकार का वर्णन तिक्कन्न के पहले नन्निचोड़ के कुमार सम्भव में पाया जाता है। इस पद्धति का दूसरा काव्य यही रामायण है।[1] किंतु इसमें षष्ठ्यंत पद्य नहीं हैं जो तेलुगु काव्यों का आगे चलकर एक प्रमुख अंग बन गये हैं।

प्रबंध काव्य का सौंदर्य उसके कथा-शिल्प, रस निष्पत्ति, चरित्र-चित्रण, वर्णन शैली तथा उक्ति वैचित्र्य में देखा जाता है। इन्हीं में काव्य के भावपक्ष और कला पक्ष का समावेश हो जाता है। तिक्कन्न ने अपने काव्य में रस परिपाक को अत्यधिक महत्व दिया है। यद्यपि उन्होंने वाल्मीकि-रामायण के उत्तरकांड का अनुवाद किया तथापि रस परिपाक को दृष्टि में रखकर मूल कथा में परिवर्तन और परिवर्द्धन भी पर्याप्त किया। उन्होंने अपने काव्य को एक संपूर्ण रूप देना चाहा। इसीलिए प्रारंभ में पूर्व रामायण की कथा संक्षेप में लिखकर उत्तर रामायण की कथा प्रारंभ की जिससे उसमें कथा की दृष्टि से संपूर्णता आ गई है। रामायण के शेषांश के रूप में उत्तर कांड का अनुवाद न करके

---

१. श्री दि. वेंकटावधानी—तिक्कन्न निर्वचनोत्तर रामयणमु—आँ. सा. म., पत्रिका—वाल्यूम ५१ चैत्र-आषाढ़ भाग १ व २—पृ. ७।

काव्य की दृष्टि से उसके अनावश्यक अंगों को छोड़कर आवश्यक अंगों का विस्तार करने में ही तिक्कन्न का किया हुआ परिवर्तन लक्षित होता है। उन्होंने कोई अवाल्मीकीय प्रसंग नहीं जोड़ा। हाँ वर्णनों में स्वतंत्र कल्पना से काम लिया है और मूल में सूचित प्रसंगों का काव्यमय विस्तार किया है। वस्तु के प्रतिपादन में कवि का जो मौलिक दृष्टिकोण है वह भी परिवर्तन का परिचायक है। तिक्कन्न ने अपने राम को विशुद्ध और आदर्श मानवीय धरातल पर चित्रित किया है और उसके लिए आवश्यक वर्णन जोड़ दिए हैं जिनमें उनके समय की परिस्थितियों की भी झलक मिल जाती है। तिक्कन्न की दृष्टि काव्यात्मक होने के कारण उन्होंने रस परिपाक में बाधा डालने वाले निम्नलिखित प्रसंगों को छोड़ दिया।

वाल्मीकि रामायण के उत्तरकांड के ५८, ५९, ६० प्रक्षिप्त सर्ग १, २, जिनमें ययाति की कथा, श्वान की कथा वर्णित है; ६५ वाँ अध्याय जिसमें कल्माषपाद की कथा है, ७७ से ९२ तक के अध्याय जिनमें राजा दंड, वृत्रासुर इला और बुध की कथा आदि हैं और अंत में श्रीराम के निर्वाण का प्रसंग। श्रीराम के निर्वाण का प्रसंग काव्य को सुखांत बनाने के विचार से छोड़ दिया गया है। राम अपने पुत्रों कुश और लव को सुशिक्षित बनाकर प्रजा का सुशासन करते चित्रित किये गये हैं और वहीं काव्य की समाप्ति हो जाती है। रावण आदि भाइयों के विवाह का प्रसंग, मरुत्त और अनरण्य पर आक्रमण तथा वध आदि प्रसंगों को संक्षिप्त कर दिया है। नृग, निमि आदि राजाओं का उल्लेख-मात्र किया गया है। इस प्रकार के परिवर्तनों से करुण रस प्रधान राम की कथा में अच्छा रसपरिपाक हुआ है और कथा भी शृंखलाबद्ध है।

प्रारम्भ में अयोध्या का वर्णन, कैलास का वर्णन, अंधकार, चंद्रोदय, राम और सीता के लीला-विहारों का वर्णन, सीता के वियोग में राम के दुख का वर्णन आदि में कवि ने अपनी प्रतिभा दिखाई। इनके समावेश से परोक्ष रूप से करुण रस की निष्पत्ति में सहायता मिली है।

जैसाकि पहले कहा गया है तिक्कन्न ने राम को विशुद्ध मानवीय धरातल पर चित्रित किया है। उन्होंने राम को धीरोदात्त नृप के रूप में चित्रित किया है क्योंकि उनके उसी रूप ने कवि को आकृष्ट किया है। इसका प्रमाण प्रारंभ में मिल जाता है। जीवन में पग-पग पर आनेवाले कष्टों का सामना करते हुए भी अपने हृदय के उदात्त भावों की रक्षा और उनके अनुरूप आचरण करना धीरोदात्त पुरुष का लक्षण है। राम के जीवन

में प्रारंभ से लेकर सुख की अपेक्षा दुख और कष्टों की ही अधिकता रही। इन सब का राम ने बड़ी वीरता के साथ सामना किया और अपने उदात्त चरित्र का भी परिचय दिया। उनके जीवन का सबसे अधिक करुणापूर्ण प्रसंग तब आता है जब उनको लोक-निंदा के कारण अपनी प्राण प्रिया अर्द्धांगिनी सीता का परित्याग करना पड़ता है। सीता का त्याग करने के बाद राम के मानवीय दुर्बलता जन्य दुख का वर्णन तिक्कन्न ने सात पद्यों में बड़े ही करुणापूर्ण ढंग से किया है जो मूल में नहीं है। राम एकांत में सीता का स्मरण करके दुखी होते हैं। वे अपने मन में कहते हैं—"हे सीते ! तुम्हारे लिए ही तो मैंने शिव के धनुष को तोड़ा। पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए तुम्हारे साथ जंगलों में घूमते हुए जब तुमसे वियुक्त कर दिया गया तब पुनर्मिलन की आशा लेकर ही मैं जीवित रहा। तुमको पुनः प्राप्त करने के लिए समुद्र पर सेतु निर्माण किया। आनंददायक तुम्हारा संग पाकर भी आज तुम्हारे प्रेम को व्यर्थ बनाकर मैंने तुमको जंगलों में छोड़कर निंदित किया। क्या कहूँ। मेरा जीवन बड़ा ही अद्‌भुत है। लंका में सब लोगों को दुःख में डुबाती हुई जब तुमने अग्नि में प्रवेश किया तब मैंने उस दुख को स्वीकार कर सह लिया और तुमको यहाँ जंगलों में भेजकर अपनी जिस जघन्यता का मैंने परिचय दिया उससे वहीं (तुमको न ग्रहण करके) निंदा का भाजन बनाता तो मेरे लिए सह्य होता।" फिर थोड़ी देर शय्या पर लेटकर वे सोचते हैं कि "यह मैंने बड़ा अविवेकपूर्ण कार्य किया जो कुछ दुर्जनों की बातों के आधार पर व्यर्थ के अभिमान में पड़कर तुमको खो दिया। उसी दुर्जन को मैंने क्यों नहीं मार डाला जिसने तुम्हारी निंदा की ? लोक की प्रशंसा के लिए जो मैंने तुमको छोड़ दिया उसे देखकर यदि कोई कहे कि मैंने निर्दयतापूर्ण कार्य किया है और उसमें मेरी दुर्नीति देखे तो उसके लिए क्या करूँ ? (नि. रा. ९. ८६. ९०)। इन पंक्तियों में राम का वियोग दुःख और मानवीय दुर्बलता भली भाँति चित्रित हुई है। इसमें कवि पर उत्तर रामचरित नाटक का प्रभाव लक्षित होता है। जहाँ वासंती कहती है—

अयि कठोर यशः किलतेप्रियं
किमयशोतनु घोरमतः परम ?
किमभवद्विपिने हरिणी दृशः
कथय नाथ ! कथं बतमन्यसे ॥

(उ. रामचरित ३ अंक—२७)

अर्थात् "हे कठोर हृदयवाले राम ! क्या आपको यश इतना प्रिय है ! क्या अपयश इससे अधिक भयंकर व दुखदायक है ? बताइये, जंगल में उस मृगनयनी सीता का क्या हुआ ? आप क्या समझते हैं ?"

राम के इस प्रकार के चरित्र चित्रण का कारण यह बताया जा सकता है कि तिक्कन्न जिस राजा मनुमसिद्धि के मंत्री थे वे सूर्यवंश के क्षत्रिय थे और उनको समर्पित की जानेवाली रचना में उसी सूर्यवंश के भूषण रामचंद्र का आदर्श मानवीय-चरित्र उपस्थित करना तिक्कन्न ने अपने कर्तव्य की दृष्टि से उचित और संगत समझ लिया होगा। महाराज राम का उदात्त चरित्र उत्तर रामायण में ही दिखाई पड़ता है। पूर्व रामायण में उतना नहीं जहाँ वे राजा बने ही नहीं। इसीलिए तिक्कन्न के मन को धीरोदात्त महाराज राम के चरित्र ने आकृष्ट किया। इस दृष्टि से यदि देखा जाय तो इस प्रश्न के लिए कोई स्थान ही नहीं कि तिक्कन्न ने पूर्व रामायण न लिखकर उत्तर रामायण क्यों लिखी जब तब तक तेलुगु में रामायण लिखी ही न गई थी। जिस बात से प्रेरणा पाकर तिक्कन्न ने इसकी रचना की वह भी इसकी पुष्टि करती है। मनुमसिद्धि अपने मंत्री तिक्कन्न को "मामा" कहकर पुकारते थे जिसका अर्थ तेलुगु में ससुर होता है। इसलिए तिक्कन्न ने उस संबोधन को सार्थक बनाने के लिए अपने राजा को अपनी कृति-कन्या समर्पित की और अपने दामाद के सामने मानों राजत्व का उत्तम आदर्श राम में उपस्थित किया हो।

इसी प्रकार सीता के चरित्र-चित्रण में भी अंतर पाते हैं। तिक्कन्न की सीता बहुत ही गंभीर तथा प्रौढ़ प्रकृति की है। लक्ष्मण जब सीता को उसके त्याग का समाचार सुनाकर कहते हैं कि आप इस समीप के ऋष्याश्रम में रहिए तब वे थोड़ी देर के लिए मूर्च्छित रहकर फिर सारा दुख हृदय में दबाकर कहती हैं—"ठीक है, ऐसा ही करूँगी। राजा की आज्ञा का पालन कर तुम भी जाओ। शायद यह साहस राम और तुमको न्याय संगत है। अब भाई ! मैं क्या कहूँ ?" अपने त्याग की बात सुनकर भी जो विद्युत्पात के समान कानों में पड़ी कितनी गंभीरता दिखाती है ! यह गंभीरता भी दुख की पराकाष्ठा है। बाद में वे कहती हैं कि "राम ने मेरे लिए क्या नहीं किया, आश्रितों के लिए क्या नहीं किया, कितने ही अपराधियों के प्रति उन्होंने दया नहीं दिखाई। ऐसे होकर भी उन्होंने मेरे लिए यह जो व्यवस्था की उसे अपने दुर्भाग्य के सिवाय और क्या कहूँ ? मेरा शरीर तो कष्टों के लिए पैदा

हुआ है । पूर्व-जन्म में जाने किसको मैंने पति से अलग किया, उसका फल आज मैं भोग रही हूँ । हृदय विदारक इस दुख को सहने की अपेक्षा इस जाह्नवी की गोद में चली जाऊँ तो ऊर्द्धव गति भी मिलेगी और यश-प्राप्ति भी होगी। किंतु सोचती हूँ कि राजा के वंश की रक्षा के लिए इस दारुण दुःख को सहना ही अच्छा है ।" आगे सासों को संदेश भेजती हुई कहती हैं—"सबको मेरा प्रणाम पहुँचाना और मेरी ओर से निवेदन करना कि में सूर्यकुलकेतु कहलाकर शोभित होनेवाले राम की संतान को गर्भ में धारण किए हूँ । कम-से-कम उसके मंगल के लिए, कछुए की भाँति से ही सही, मेरा स्मरण करना । अब महाराज से मैं जो भी कहूँ उसका कोई लाभ नहीं होगा । किंतु फिर भी मन तो नहीं मानता है, इसलिए तुमसे कहती हूँ । जब उनको किसी बात का दुःख हो तो क्या उसको दूर करने में मेरा कोई हाथ नहीं है ? क्या मुझे वस्तुस्थिति बतकर छोड़ नहीं सकते थे ? ऐसे बेमुरौवत राजाओं का मन प्रेम दूर होने पर परिवर्तित नहीं किया जा सकता ।" कैसी चुभती हुई गूढ़ार्थ भरी बातें हैं । ऐसी गंभीरता वाल्मीकि की सीता में नहीं ।

अब वर्णन की शैली देखी जाय । तिक्कन्न प्रायः अपने वक्ष्यमाण भावों को ध्वनित करते हैं जिसमें उनको पर्याप्त सफलता मिली है । पुत्रार्थिनी होकर कैकेसी विश्रवसु के पास जाकर पैर के अँगूठे से पृथ्वी कुरेदती हुई खड़ी हो जाती है । विश्रवसु उसे देखकर पूछता है कि तुम किसकी पुत्री हो और क्यों आई हो ? उत्तर में वह कहती है "मैं सुमाली की पुत्री हूँ । पिता की भेजी हुई मैं आपको देखने आई हूँ ।" यह कहकर कोमल कांति से शोभित अपना मुख झुकाकर, उसके आगे कहने में अपनी असमर्थता जब बिना कहे ही कह देती है तब विश्रवसु के चित्त रूपी लता में भावांकुर की शोभा दया के रूप में प्रस्फुटित होती है । (नि. रा. ३-५०)यहाँ कैकेसी के मुख के वर्णन और उसके झुकाने के अनुभाव के वर्णन द्वारा उसका "लज्जा" संचारी भाव और पुत्र प्राप्ति की इच्छा कितने सुन्दर ढंग से ध्वनित की गयी है । मूल में इसका वर्णन यों है—

> एवमुक्ता तु सा कन्या कृतांजलिरथाब्रवीत्
> आत्मप्रभावेण मुने ज्ञातुमर्हसि मे मतम् ।।
> किंतु मां विद्धि ब्रह्मर्षे शासनात् पितुरागतम् ।
> कैकसी नाम नाम्नाहं शेषं त्वं ज्ञातुमर्हसि ।।

"शेषं त्वं ज्ञातुमर्हसि" में भाव आधावाच्य हो गया है ।

सीता की निंदा की बात सुनकर राम की जो दशा हुई उसका वर्णन कवि इस प्रकार करते हैं—राजा राम ताराविहीन चंद्रमा के समान अकेले हैं। चित्र के समान निश्चेष्ट हो गये हैं। राम प्रेमी भाइयों की दृष्टि से अपनी दृष्टि फिरा लेते हैं जैसे अपराधी लोगों की और कोई अपनी दृष्टि फिरा लेता है और उनका मुख उस कमल के समान दीन बन गया है जिस पर चाँदनी पड़ रही हो। राम की मनोदशा का यह ध्वनिपूर्ण वर्णन मूल में नहीं है। शूद्र तपस्वी शंबूक का वध करते समय राम की दशा का यह भावस्फोरक वर्णन भी देखने योग्य है। "अनिच्छुक होकर भी जबरदस्ती से औषधि का पान करने को तैयार होनेवाले दुःखी रोगी की भाँति राम चिंता से पीड़ित होने लगे।"

एक और वर्णन देखिए। सीता को उनके त्याग की बात जब लक्ष्मण बताते हैं तब सीता की जो दशा होती है कवि इन शब्दों में उसका वर्णन करते हैं, "इस चरमसीमा को पहुँचते हुए दुखद समाचार ने सीता के हृदय को विदीर्ण किया। तब वह उस यंत्र के समान पृथ्वी पर गिर पड़ी हैं जिसकी कील निकाल दी गई हो।" यह आलंकारिक वर्णन मूल में नहीं है। आगे कवि उसके अनुभवों के वर्णन के द्वारा भावव्यंजना करते हैं—"थोड़ी देर के बाद चैतन्य हुई। उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। वे अपने होठों को भिगोने लगीं। चेहरा फीका पड़ गया। वे चंचल होने लगीं। अवाक् होकर बड़ी देर तक देवर को देखती हुई, कभी फीकी हँसी हँसती हुई सिर हिलाती हुई, नाक पर तर्जनी रखती हुई, हृदय में आश्चर्यमुक्त दुख को दबाए हुए, वे कहने लगीं।" इन विभिन्न अनुभवों के द्वारा शोक का संश्लिष्ट भाव मार्मिक ढंग से व्यक्त हुआ है। यह मुद्रा स्त्री सहज और समयोचित है जो मूल में नहीं मिलती।

राम और सीता के विहारों का वर्णन मूल में उत्तर कांड के ४२ वें सर्ग में कुल २०, २२ श्लोकों में किया गया है जिसमें वाटिका का वर्णन भी सम्मिलित है। किंतु तिक्कन्न ने वह वर्णन कोई ६० पद्यों में किया है और भाव विभोर होकर किया है (नि०रा० ८-१८-८१) जिसमें विशेष रूप से उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकारों का प्रयोग स्वाभविकता के साथ हुआ है। यह वर्णन उस समय के राजाओं के विहार का ही वर्णन है जिससे उस समय के सभ्यता पर प्रकाश पड़ता है। एक चित्र तो देखा जाय। राम और सीता सखियों के साथ वाटिका में विहार कर रहे हैं। ऊँचाई पर लटकनेवाले किसी पुष्प-गुच्छ को

दिखाकर राम-सीता से कहते हैं कि उसे तोड़ो, मैं तुम्हें उठाऊँगा। यों कहकर रामने सीता को प्रेम से भुजाओं में भरकर उठाया तो उनकी देहलता में कामदेव ने पुलकांकुर पैदा कर दिये।

एक दूसरे स्थान पर उनके केलि-विहारों का उत्प्रेक्षा की माला-सी बाँधकर कवि वर्णन करते है—

च. प्रमदमु मूर्तमैनट्लु रागमु रूप वहिंचिनट्लु वि
भ्रममोडलेत्तिनट्लु रति राज विहारकुतूलंबु दे
हमु दग दाल्चिनट्लु हृदयंगमयै विलसिल्लु चुन्न या
रमणि प्रमोदरूढ़ मदरंजित मेगु विभुंडु धीरुडै।

(नि. रा. ८. ७१)

"सीता ऐसी थी कि मानों मद मूर्तिमान हो गया हो, मानों अनुराग ने रूप धारण कर लिया हो, मानों विभ्रम ने शरीर धारण कर लिया हो, और मानों काम विहार के कौतूहल ने देह धर ली हो। ऐसा रूप लेकर हृदय में प्रवेश करनेवाली सीता को राम ने धीर होकर प्रमोदयुक्त मदरंजिता बना लिया।" राम और सीता की कामकेलि का ऐसा वर्णन केवल काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से किया गया है न कि किसी सांप्रदायिक प्रभाव के कारण। ऐसे वर्णन काव्य भर में यत्रतत्र भरे पड़े हैं।

तिक्कन्न की शैली की एक और विशेषता है उसकी नाटकीयता जो रंभा और रावण के संवाद में दिखाई पड़ती है। कहीं-कहीं कहावतों और लोकोक्तियों का भी सफल प्रयोग करके तिक्कन्न ने अपनी भाषा और शैली को सजीव बनाया। भाषा में मधुरनाद पैदा करने के लिए कवि ने शब्दालंकारों का का भी सुन्दर प्रयोग किया है। इनकी भाषा की विशेषता यह है कि इसमें संस्कृत शब्दों की अपेक्षा ठेठ तेलुगु शब्दों और समासों की अधिकता रहती है। उसमें शब्द-सौष्ठव और अर्थ गांभीर्य है। निरर्थक शब्दों का प्रयोग वे नहीं कर । इन सबसे भी बढकर वे औचित्य का ध्यान रखते हैं।

इस प्रकार निर्वचनोत्तर रामायण एक स्वतंत्र महाकाव्य है जिसमें महाकाव्य के सब लक्षण घटित होते हैं।

रंगनाथ रामायण—

निर्वचनोत्तर रामायण के समान रंगनाथ रामायण का महत्व उसके साहित्यिक सौन्दर्य को ही लेकर है न कि भक्ति प्रधानता को। इसका संकेत काव्य

के प्रारंभिक अंश में मिलता है जहाँ कहा गया है कि पदों, अर्थों, भावों, गतियों, पदशय्या, यति, प्रास, रस, व्यंग्य आदि से युक्त बनाकर श्रीराम का चरित्र कहूँगा जिसकी राजा, बुध, रसिक और कवि लोग प्रशंसा करें। इसके द्वारा यह विदित होता है कि इसके कवि की दृष्टि साहित्य-शास्त्र के उपरोक्त अंगों पर अधिक रही। कथा शिल्प में रंगनाथ ने जो कलात्मकता दिखाई उसका विचार सातवें अध्याय में किया जा चुका है।

इसके साहित्यिक सौंदर्य पर विचार करने के पहले उसकी छंद पद्धति के संबंध में जान लेना चाहिए क्योंकि उसका संबंध कवि के उद्देश्य से है। रंगनाथ ने अपनी कृति को एक साथ पंडितों और साधारण जनों का आदर पाने के लिए लिखा। इसलिए दोनों वर्गों के लोगों के लिए आवश्यक तत्वों का समन्वय किया गया है। पंडितों को रिझाने के लिए संस्कृत समासों से युक्त मार्गी काव्योपयुक्त भाषा और साधारण जनता में प्रचलित करने के लिए देशी द्विपद छंद में इसकी रचना की गयी थी। द्विपद छंद गीतात्मक है। उसके दो ही चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में तीन इंद्र गण और एक सूर्य गण होता है। न गण और एक लघु, न गण और एक गुरु, स गण और एक लघु, म गण, र गण, और त गण इन्द्र गण कहलाते हैं और एक गुरु और लघु तथा न गण, ये दोनों सूर्य गण कहलाते हैं। तीसरे गण के प्रथमाक्षर पर यति पड़ती है। तेलुगु कविता में यति का अर्थ केवल विराम नहीं, यति मैत्री भी है अर्थात् प्रथमाक्षर का सजातीय अक्षर उपयुक्त स्वर के साथ यति स्थान में आना चाहिए। इस अक्षर मैत्री के बिना यति ठीक नहीं होती। पाद का दूसरा अक्षर प्रास कहलाता है और प्रत्येक पाद में दूसरा अक्षर वही आना चाहिए चाहे उसका स्वर कोई भी क्यों न हो। निम्नलिखित पंक्तियों में इसका उदाहरण देखा जा सकता है।

घनतपस्सवाध्याय कमनीयशीलु
गुनिनाथु नारदु मुनिलोक वंद्यु

रेखांकित अक्षर यति के उदाहरण हैं और दोनों पादों में दूसरे अक्षर प्रास के। यह छंद गीतात्मक होने के कारण साधारण जनता की जिह्वा पर शीघ्र चढ़ जाता है और उसमें लिखी कथा विशेष प्रचार तथा स्थायित्व प्राप्त कर लेती है। वाल्मीकि रामायण भी छोटे अनुष्ठुप छंद में लिखी जाकर पाठ्य और गेय बन गई। यह प्रसिद्ध है कि कुश और लव ने सर्वप्रथम उसका गान किया और बाद में उसका सर्वाधिक प्रचार हुआ। द्विपद छंद में लिखी रंगनाथ रामायण के

विशेष प्रचार का यही प्रमाण है कि चर्म पुतली का खेल दिखानेवाले लोग अपने प्रदर्शनों में यही रामायण गाते हैं जिससे सती सुलोचना और कैकेसी के प्रसंग आदि जनता में अधिक प्रचार पा सके हैं यद्यपि वे अवाल्मीकीय हैं। यह छंद सब रसों के लिए विशेषतः श्रृंगार, हास्य, करुणा आदि रसों के लिए बहुत ही उपयुक्त होता है। किन्तु यथास्थान अपनी सुंदर भाषा और शैली के द्वारा अन्य रसों का भी सफलता के साथ कवि ने इसमें वर्णन किया है।

विवाह के समय राम और सीता के प्रथम दर्शन का बहुत ही सरस वर्णन किया गया है। सुमुहूर्त के आते ही वर और वधू के बीच का परदा जब हटा दिया जाता है तब राम और सीता के परस्पर दर्शन का प्रसंग है। जैसे ही परदा हट गया वैसे ही सीता को देखकर राम का नेत्र युगल चंद्रमा के दर्शन से शोभित कुमुद बन गये। सीता के नेत्र पति चरणों पर इस प्रकार स्थिर हुए मानों कमल पर भौंरे हों। राम की दृष्टि मीन बनकर सीता के सौन्दर्य-सागर में आगे बढ़ने लगी। पति के शरीर की कांति के प्रवाह में सीता के नेत्र पद्मदल बनकर चंचल होने लगे। सीता और राम की दृष्टियाँ रति और कामदेव की दृष्टि बनकर आपस में एक दूसरे का सौन्दर्य देखने लगीं मानो अज्ञात रूप से कला-स्थानों (मर्म स्थान) को स्पर्श कर रही हों और थोड़ी देर के लिए अपनी सुधबुध भूल गईं। (रं. रा. पृ. ७५ पंक्तियाँ २२५०-२२५८) राम और सीता के वीक्षणों के इन अनुभावों के द्वारा संयोग श्रृंगार की बहुत ही मार्मिक व्यंजना हुई है। रूपक और उत्प्रेक्षायुक्त उसकी आलंकारिक शैली की भी अपनी अलग छटा है।

करुण रस की योजना देखिये। राम के वन चले जाने के छः दिन बाद दशरथ अपने शाप की कथा कौसल्या को सुनाते हैं और कहते हैं कि मेरा कर्मफल अब प्राप्त होनेवाला है। इसके अनंतर उनका धैर्य छूट गया, बुद्धि चकराने लगी, मुख सूखने लगा। आँखें देखने में असमर्थ हो गईं, श्रवण-शक्ति नष्ट हुई। तब कहते हैं कि अब मेरे प्राण इस शरीर में रोके नहीं रुकेंगे। मैं अपने कल्पद्रुम, क्षीरसमुद्र, पराक्रमी, सर्वगुण-सम्पन्न और भाग्यप्रद राम को नहीं देख सका। आज तक सात दिन पूरे हो गये हैं। अब मेरा जीवन नहीं रह सकता।" यों कहकर हाय राम, हाय राम! कहते हुए राजा दशरथ स्वर्ग सिधार गये। किंतु कौसल्या ने सोचा कि राजा दुखातिरेक के कारण थककर सो गये हैं और स्वयं भी सो गईं। दूसरे दिन प्रातःकाल होने के बाद जब दशरथ नित्य के समान नहीं जागे तो लोगों को आश्चर्य हुआ। सब अन्तःपुर में

जाकर देखने लगते हैं तो पता लगता है कि राजा ने प्राण छोड़ दिये—यह देखकर सब लोग रोने लगते हैं और कौसल्या और सुमित्रा भी जाग पड़ती हैं और घबराती हुई, सब को देखकर, विलाप करने लगती हैं। यह आवाज सुनकर कैकेयी भी आकर रोने लगती है। दशरथ के सात्विक और कायिक अनुभवों के द्वारा उसके शोकातिरेक की सरस व्यंजना की गई है। इस करुणापूर्ण प्रसंग की चरमसीमा वहाँ दिखाई पड़ती हैं जहाँ कौसल्या भी राजा को थकावट के कारण निद्रित समझकर स्वयं सो जाती है और दूसरे दिन लोगों के विलाप के द्वारा उसे उनकी मृत्यु का ज्ञान होता है। इससे स्वयं कौसल्या का दुखातिरेक भी ध्वनित होता है। यहाँ करुणरस की निष्पत्ति बड़े प्रभावोत्पादक ढंग से हो सकी है।

इसी प्रकार अन्य रसमय प्रसंगों का भी वर्णन सुन्दर हुआ है। अलंकार योजना का सुन्दर उदाहरण वहाँ देखा जा सकता है जहाँ साँग रूपक के द्वारा रणभूमि का वर्णन किया गया है। रक्त से भरे रणक्षेत्र में आँतें मूँगे के ढेर, रथ जहाज, टूटे हुए रथ चक्र कूर्मसमूह, शव मगर, कटी भुजाएँ लंबे साँप, हथियारों की रज रेत, हाथी शैल, दंष्ट्र तिमिंगल, घोड़ों के समूह तरंगावली, उनके मुँह की झाग तरंगों की फेन, श्वेत छतरियाँ हँस, मुकुटों की प्रभा बड़वानल की ज्वाला पृथ्वी पर बिखरे मांस खंड मणि समूह, भूतप्रेतों का अट्टहास समुद्रघोष, राम चंद्रमा और उनकी हासद्युति चंद्रिका, बनकर उस रक्त सागर में शोभित हैं जो सागर की समानता करते हुए नक्षत्र मंडल से टकरा रहा था। इसमें कवि की ऊंची कल्पना के साथ सफल अलंकार निर्वाह और बीभत्स रस के आलंबनों का भी सुन्दर समावेश है। (वं. रा. यु. पृ. ५२६—पं. ७३५८-७३६८)।

वर्ण्य भाव और परिस्थिति की अनुरूपता में चित्रात्मक शैली का प्रयोग करके कविगण पाठकों के सामने सुंदर शब्द चित्र उपस्थित करते हैं। शिवधनुष तोड़नेवाले राम का वर्णन दर्शनीय है—

शिवधनुष की प्रशंसा और जनक की प्रतिज्ञा सुनकर राम के हृदय में एक साथ प्रेम और उत्साह आपस में लिपटकर जगे। राम अपने उत्तरीय को कमर में बाँधकर वीरमूर्ति के रूप में शोभित हुए। कमर की किंकिणियाँ बजने लगीं। रत्नहार छाती पर हिल रहे थे। बाजूबन्दों, अंगूठियों और कंकणों की कांति से वे अवयव जो उनको धारण किये थे नई शोभा पाने लगे। कर्ण भूषणों की प्रभा से कपोल चमकने लगे। अलकें सिर पर नाचने लगीं। इस प्रकार राम और लक्ष्मण करोड़ों कामदेवों के समान शोभित होने लगे। रंगनाथ रामायण में ऐसे वर्णन भरे पड़े हैं। (रं. रा. बा. ६५ पं. १९२२-१९३०)

कवि की विराट कल्पना इस उत्प्रेक्षा में देखी जा सकती है। विशाल पेटी में पड़ा हुआ धनुष इस प्रकार दिखाई पड़ता है कि मानों वह सारी पृथ्वी का भार अपने ऊपर रखकर निद्रित शेष नाग हो। मानों वह प्रलयकाल मेघ के बीच में अचल प्रभा से शोभित विद्युद्दंड हो। (रं. रा. बा. पृ. ६५, पं. १९३३)

भावों का ध्वनि पूर्ण वर्णन काव्य की उत्तमता का प्रधान लक्षण है। राम के सौंदर्य, शौर्य, कुल तथा शील का वर्णन सखियों के द्वारा सुनकर सीता की जो प्रतिक्रिया हुई उसके द्वारा लज्जा का ध्वनि पूर्ण वर्णन बहुत सुन्दर है। राम का वर्णन सीता के कानों में अमृत के समान पड़ा। प्रेम की अधिकता के कारण उसके रोमांच हो आया। प्रेम और भय आपस में लिपट गये। किंतु मर्यादा का ख्याल कर सीता सिर झुकाये बैठी रही। अनुभावों के द्वारा यह लज्जा की सुंदर ध्वनि है। (रं. रा. बा. पृ. ६३, पं. १८९२-१८९४)।

ध्वनि-पूर्ण उक्तिवैचित्र्य का यह उदाहरण भी द्रष्टव्य है। रावण की मृत्यु पर रोती हुई मंदोदरी कहती है कि "हे लंकेश ! आज आपकी लंका में निःशंक होकर रविरश्मिजाल का प्रवेश हुआ है।" (रं. रा. यु. पृ. ५४४. पं. ७९०३) राम के लंका प्रवेश की सुन्दर अभिधामूला व्यंजना है।

निम्नलिखित रूपक और उपजा में सुंदर रस ध्वनि पूर्ण शब्दचित्र है। अगस्त्य के उपदेश के बाद राम और रावण के युद्ध में रावण के रक्तसिक्त शरीर का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि रक्तसिक्त शरीर को लेकर रावण रामचंद्र-शर-वसंतागम के समय पुष्पित तरुण अरुण अशोक वृक्ष के समान शोभित था। (रं. रा. यु. पृ, ७५४५—७५४६)

साहित्यिक अध्ययन का अन्य प्रधान पहलू है—पात्रों का चरित्र-चित्रण। यह पहलू रंगनाथ रामायण में विशेष महत्वपूर्ण है। इसमें वाल्मीकि के प्रसिद्ध पात्रों के चित्रण में कुछ परिवर्तन किया गया है अवश्य किंतु मूल से अधिक व्यक्तिक्रम नहीं हुआ है। प्रधान पात्र राम को इसमें जहाँ आदर्श पुरुष के रूप में जिसमें मानव सुलभ दुर्बलताएँ, भावोद्वेग आदि पाये जाते हैं, चित्रित किया गया है वहाँ अन्य पात्रों के द्वारा उनके भगवत्तत्व का भी वर्णन किया गया है। हाँ राम को इस बात का ज्ञान नहीं था कि वे स्वयं विष्णु के अवतार थे। उनके सब कार्य मानवोचित ही चित्रित हैं। राम आदर्श धीरोदात्त राजकुमार हैं जिनमें मानव सुलभ, बाल्यकोप, आदर्श प्रेम, वीरता और दीनता आदि गुण मिलते हैं। ये सब गुण वाल्मीकि के राम में भी मिलते हैं। रंगनाथ के राम में पायी

जानेवाली कुछ विशेषताओं का यहाँ वर्णन किया जायगा। उनके बाल्यकोप का वर्णन सातवें अध्याय में किया जा चुका है जब वे मंथरा के पैर पर डंडा दे मारते हैं। शिव-धनुष के प्रसंग में राम का वीरोचित दर्प का, जो आत्मविश्वास का परिणाम है, अच्छा परिचय मिलता है जब धनुष को देखकर वे जनक से कहते हैं कि यह धनुष बहुत ही हलका, पुराना और निस्सार है। बाण यदि इस पर चढ़ाया जाय तो यह टिक नहीं सकेगा। व्यर्थ ही आपने इसकी प्रशंसा की।" यह दर्पोक्ति उनके घमंड का नहीं बल्कि आत्म-विश्वास का परिचय देती है। (रं. रा. बा. पृ. ६५, पं. १९४४-१९४५) ऐसी ही दर्पोक्ति परशुराम के गर्व भंग के समय राम के मुँह से निकलती है। (रं. रा. बा. पृ. ७९ पं. २३७२-२३७५)।

जब दशरथ राम से उनके राज्याभिषेक की बात कहते हैं तब वे कहते हैं कि महाराज ! मेरे लिए इस संसार में आपकी चरण सेवा से बढ़कर और कोई कार्य नहीं है। आप इन बातों को छोड़ दीजिए।" (रं. रा. अ. पृ. ८७ पं. ९०-९१) इन शब्दों में राम की विनय, पितृ-सेवा तत्परता तथा निस्पृहता लक्षित होती है।

राम की आश्रितवत्सलता और उदारता का इसमें अच्छा चित्र मिलता है। विभीषण राम की शरण में आकर जब उनकी स्तुति करता है तो राम उसे अपनाते हुए कहते हैं कि "विभीषण ! मेरी बात मानो। तुम रावण के भाई नहीं हो, मेरे ही भाई हो। मैंने तुमको लक्ष्मण से भी बढ़कर आत्मीय बना लिया। (रं. रा. यु. पृ. ३०६, पं. ६९८-७००)। राम की युद्ध-नीति में कपट के लिए कोई स्थान नहीं था। वे वानरों को युद्ध के समय कपट रूप धारण करने से मना करते हैं। इसमें उनकी धर्म-वीरता दिखाई पड़ती है। इसमें राम की उदारता तथा आदर्श क्षमा गुण की पराकाष्ठा तब दिखाई पड़ती है जब वे रावण से अंतिम बार युद्ध करते समय भी उसे क्षमा करने की अपनी तत्परता दिखाते हैं। वे कहते हैं कि हे रावण ! अब मेरी एक बात सुनो। संदेह मत करो। अब भी सीता को मुझे सौंपकर मेरी शरण में आ जाओ तो मैं युद्ध छोड़ दूँगा। यह रंगनाथ रामायण के राम की ही विशेषता है जो वाल्मीकि के राम में नहीं है। (रं. रा. यु. पृ. ५३३ पं. ७५७५-७५७६)

रंगनाथ रामायण में दशरथ की मृत्यु के बाद वशिष्ठ एक बात कहते हैं जिससे राम की दृढ़ता पर प्रकाश पड़ता है और साथ-साथ घटना सन्निवेश के औचित्य को सिद्ध करती है। प्रश्न यह है कि दशरथ की मृत्यु होने के बाद

वशिष्ठ ने भरत को ही बुलवाने की बात क्यों सोची ? राम को क्यों नहीं ? भरत के आने में जितना समय लगा उतना समय राम के आने में नहीं लगता। दूसरी बात यह भी है कि ज्येष्ठ पुत्र राम के रहते हुए भरत को दशरथ की उत्तर क्रियाएँ करने का अधिकार कैसे दिया गया ? यह प्रश्न रंगनाथ के मन में उठा होगा तभी उन्होंने वशिष्ठ से कहलाया कि यदि हम राम को बुलायें तो अपनी प्रतिज्ञा पूरी किए बिना वे लौटेंगे नही। वे ऐसे धर्मशील हैं। (रं. रा. अयो. पं. १३६७) वशिष्ठ का यह कथन भरत को बुलाने और आपद्धर्म की दृष्टि से उनसे उत्तर क्रियाएँ करवाने के औचित्य को सिद्ध करता है और राम की अटल धर्मशीलता पर भी प्रकाश डालता है जो किसी भी परिस्थिति में विचलित नहीं होती। (रं. रा. अ. पृ. १२९, पं. १३६७)

राम प्रधान रूप से यद्यपि वाल्मीकि के अनुसार आदर्श और मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित किए गये हैं तो भी परंपरागत भगवत्तता का भी उनमें समावेश किया गया है। नागपाश से बंधित राम और लक्ष्मण को कवि आदि नारायण के अंश कहते हैं। ऋषि मुनि लोग विभीषण आदि भी राम की इन दोनों रूपों में स्तुति करते है। मंदोदरी रावण को जो उपदेश देती है उसमें राम के अवतार होने का अच्छा प्रमाण मिल जाता है। विष्णु के तब तक के अवतारों का, मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम आदि का वर्णन करके वह रावण को उसके दुर्मार्ग से लौटाने का प्रयत्न करती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वाल्मीकि के राम के भगवत्तत्व को कुछ अधिक मात्रा में इसमें दिखाया गया जिसे परवर्ती संस्कृत राम साहित्य का प्रभाव माना जाना चाहिए। राम का यही रूप अन्य सब तेलुगु रामायणों में अंकित मिलता है।

रावणः—रावण का चरित्र रंगनाथ रामायण में कुछ विशिष्ट रूप में मिलता है। वह प्रारंभ में यद्यपि शूर्पणखा की प्रेरणा से ही सीता का अपहरण करता है तो भी वह इस बात से अनभिज्ञ नहीं था कि राम विष्णु के अवतार थे। किंतु अज्ञान में पड़कर वह यह कर्म होता है। जब कैकेसी रावण को श्रीराम की महिमा बताती है तब वह कहता है कि "मैं यह सब जानता हूँ। यदि राम विष्णु हैं तो मैं इस शरीर से उनको नमस्कार नहीं कर सकूँगा जो नीच है। इसको बचाकर बढ़ाना नहीं चाहता।" जहाँ वह अपने शरीर को इतना तुच्छ समझता है कि वह राम रूप विष्णु को नमस्कार करने योग्य नहीं, वहाँ अज्ञानवश अपना दंभपूर्ण हठ भी नहीं छोड़ता। वह कहता है कि 'क्या नर और वानर देवताओं से भी बढ़कर हैं ? मैं अवश्य उनको जीतूंगा,

अन्यथा राम के बाणों से मर जाऊँगा ।" रावण पूर्व जन्म में शाप ग्रस्त जय था जो विष्णु के द्वारपालों में एक था । विजय दूसरा द्वारपाल था । एक बार सनक सनंदन आदि मुनियों से शापित होकर स्वेच्छा से तीन बार राक्षसों का जन्म लेना उन्होंने स्वीकार किया था । तदनुसार वे जय और विजय पहले जन्म में हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यप, दूसरे जन्म में रावण और कुंभकर्ण और तीसरे जन्म में शिशुपाल और दंतवक्र बने । रावण की इन बातों में इस बात का संकेत मिलता है कि शाप के कारण प्राप्त यह शरीर जितना शीघ्र नष्ट हो जाय उतना ही अच्छा है क्योंकि यह भगवान विष्णु को जिनकी निरंतर सेवा में वह रहता था, नमस्कार करने में भी अयोग्य है । इन बातों में कवि के अर्थ-गांभीर्य का भी अच्छा उदाहरण मिलता है । वह अपने अहंकार के मद में माता को कटु वचन सुनाने से भी नहीं चूकता । वह कहता है कि "तुमको मेरी बातें पसंद नहीं हों तो अपने कनिष्ठ पुत्र विभीषण के साथ जाकर अतुलित संपत्ति के साथ इस लंका का पालन करो ।" (रं. रा. यु. पृ. ३२९ पं. १३९३-१४०२) उसका यह भाव उस समय भी दिखाई पड़ता है जब मंदोदरी अंतिम बार उसे उपदेश देने लगती है । वह कहता है "कि "सबके नष्ट हो जाने के बाद अब मैं, पापी, व्यभिचारी, तपस्वी बन जाऊँ तो ऋषि लोग उपहास करेंगे । इसलिए अब तपस्या की बात छोड़ो । अब तो मैं राम और लक्ष्मण को मार डालूँगा या श्रीराम के बाणों से मरकर मुक्ति प्राप्त कर लूँगा (रं. राव. यु. पृ ५२३. पं. ७२७१-७२८१) उसमें ज्ञान और अज्ञान मानों आँखमिचौनी खेलते हैं । राम का दूत बनकर सीता को लौटाने का उपदेश देनेवाले अंगद से वह कहता है कि "मैं जानता हूँ कि राम परब्रह्म हैं । तो भी मैं हठपूर्वक राम से युद्ध करके उनके बाणों से मरकर अतुल वैकुंठ का पद प्राप्त करना चाहता हूँ । इह-लोक के सुखों से मैं संतुष्ट हो गया । मैं राम की शक्ति और वीरता देखने को आतुर हूँ ।" इतने में उसका यह विवेक नष्ट हो जाता है और झट तामसी बन जाता है तथा उसे बलहीन साधारण मनुष्य कहने लगता है । (रं. यु. ३५० पं. २०३५-२०४२) रावण सच्चा वीर है । वह केवल युद्ध करने में ही नहीं बल्कि शत्रु की वीरता की प्रशंसा करने में भी अपनी सच्ची उदार वीरता का परिचय देता है । वह अपने मुकुटों को बाण से मार गिरानेवाले राम को संबोधित करके कहता है कि हे नयनाभिराम ! रघुराम ! बहुत अच्छा । तुम धनुर्विद्या के गुरु और वीरता के अवतार हो ! फुर्ती के साथ बाण चलाने में बड़े निपुण हो । तुम विजित-रिपु-समूह और विजय समेत हो ।

हे मानव राजकुमार सिंह ! तुम दिव्यास्त्र संपन्न हो ! समस्त विश्व को शरण देनेवाले वीराग्रणी हो ! हे राम भूपाल ! तुम्हारे जैसा धनुर्धर इस जगत में नहीं होगा। उधर त्रिपुरों पर शंकर का वार था और इधर मेरे मुकुटों पर तुम्हारा वार है।" जब उसके मंत्री इसकी शत्रु-प्रशंसा पर आपत्ति उठाते हैं तब वह कहता है कि "वास्तव में इस त्रिलोकी में राम की समानता करनेवाला धनुर्धर नहीं होगा। ऐसे वीर की प्रशंसा क्या नहीं करनी चाहिये ?" अपने परमशत्रु की भी प्रशंसा करने की उदारता रंगनाथ रामायण के रावण को छोड़कर अन्यत्र दुर्लभ है। (रं. रा. यु. पृ. ३५६ पं० २१९४-२२००)

वह पहुँचा हुआ राजनीतिज्ञ भी है। जब उसने देखा कि रामदूत अंगद बड़ी निर्भीकता से बात करता है और उसकी वीरता तथा धीरता का सिक्का उस पर जम गया तब वह भेदोपाय का अवलंबन करता है और उसे फोड़ने का प्रयत्न करता है। यह दूसरी बात है कि उसे उसमें सफलता नहीं मिलती। (रं. रा. यु. ३५१–पृ. २०४३) हृदय का बड़ा कठोर होते हुए भी मानव सुलभ पितृवात्सल्य उसमें पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है जो इंद्रजीत की मृत्यु पर हुए उसके पुत्र-शोक में दिखाई पड़ता है। पुत्र के सब वीर कृत्यों का स्मरण करके वह आठ-आठ आँसू रोता है और कहता है कि मैं क्या करूँ ! पिता की अंत्येष्टिक्रियाएँ करना पुत्र का धर्म है। अब तो मुझे ही तुम्हारी अंत्येष्टि क्रियाएँ करनी पड़ती हैं। कैसी भाग्य की विडंबना है।" (रं. रा. यु. पृ. ४७४ पं. ५७६८-५७७०) इस प्रकार हम देखते हैं कि इसमें रावण राम के सच्चे प्रतिनायक के रूप में चित्रित है। उसमें राक्षसों की कल्पित भयंकरता की अपेक्षा अतुलित वैभव संपन्न वीरता अधिक चित्रित है।

सीताः—राम के चरित्र के समान सीता का चरित्र भी आदर्श नारी के रूप में चित्रित किया गया है जो पतिभक्तिपरायणा है। राम के यश के श्रवण मात्र से ही सीता के हृदय में प्रेम पैदा होता है। किंतु वह अपनी परिस्थिति तथा मर्यादा का ध्यान कर सिर झुकाए बैठी रहती हैं क्योंकि वह वीर्य शुल्का थीं। यह मर्यादा पालन उनके आभिजात्य का द्योतक है। सीता ऐसी आदर्श पतिव्रता हैं जो परपुरुष का स्पर्श तक नहीं करतीं। सुन्दरकांड में जब हनुमान सीता को अपनी पीठ पर रखकर ले जाने की बात कहता है तब वह नहीं मानतीं क्योंकि परपुरुष का स्पर्श करके मुक्ति प्राप्त करने की अपेक्षा अस्पृष्ट होकर बंधन में पड़ा रहना पातिव्रत्य की विशेषता है। वह ऐसी स्वाभिमानिनी

स्त्री हैं कि अपने पति की वीरता के यश में कलंक लगाकर भीरु-पत्नी नहीं बनना चाहती। हनुमान से वे कहती हैं कि संसार यही तो कहेगा कि रावण राम की पत्नी को हर ले गया तो राम ने भी छिपे-छिपे चोरी के द्वारा अपनी पत्नी को छुड़वा लिया। यह कहकर वह राम को उत्तेजित करने के उद्देश्य से जो संदेश भेजती है उसमें उसका वीर रूप दिखाई पड़ता है (रं. रा. सुं. पृ. २६२ पं. ५८०-५९०) यही नहीं बल्कि वह अपना अपराध स्वीकार करके लक्ष्मण से क्षमा याचना करने से भी नहीं चूकतीं।

सीता के हृदय में अपनी सास के प्रति भी बड़ी भक्ति थी जब राम और लक्ष्मण नागपाश से बंधित हो जाते हैं तब यह देखकर सीता कहती है कि हे नाथ ! मैं आपके लिए या लक्ष्मण के लिए या मेरे लिए दुखी होनेवाली अपनी माता के लिए भी नहीं रोती। मैं केवल उस सास के लिए रोती हूँ जो चौदह साल की अवधि के बीत जाने की प्रतीक्षा करती हैं कि पुनः तुमको देख सकें (रं. रा. यु. पं. २५४०) सीता के इस रुदन में उसके मातृ वात्सल्य को पहचानने की शक्ति भी दिखाई पड़ती है यद्यपि वह तब तक माता नहीं बनी थीं।

इसके अलावा उसमें मानवसुलभ दुर्बलताओं की भी कमी नहीं है। जब रावण उसको हर ले जाता है तब वह रोती हुई कहती है कि "हाय ! कैकेयी ! तुम्हारे वर यहाँ फलप्रद हुए हैं। अब तुम और तुम्हारा पुत्र दोनों मिलकर इस वसुधा का निष्कंटक शासन करें (रं. रा. अ. १०५३-१०५४)। इसमें स्त्री सुलभ क्रोध और द्वेष की झलक मिलती है जो चिर काल से हृदय में दबे पड़े रहते हैं। किंतु ये भाव सीता में संचारी बनकर आते हैं।

इस प्रकार सीता भी आदर्श नारी के रूप में चित्रित की गई हैं जिसमें मर्यादा का ध्यान तथा यौवनोचित चपलता, पतिभक्ति परायणता और श्वसुरकुल की भलाई की इच्छा आदि उत्तम गुणों के साथ स्त्रीत्व को संपूर्णता प्रदान करनेवाले मातृत्व की महिमा तथा वात्सल्य की पहचान भी मिलती है।

सुलोचनाः—सतीत्व की महत्ता की दृष्टि से "रंगनाथ रामायण" में सीता के बाद सती सुलोचना का स्थान है जो इन्द्रजीत की पत्नी थी। उसमें पतिभक्ति और राम-भक्ति उच्चकोटि की चित्रित की गई है। उसके सतीत्व की महिमा इतनी थी कि उससे कहकर किसी भी कार्य से जाने पर उसका पति किसी के लिए भी अजेय होता था। उसकी सूक्ष्म दृष्टि प्रशंसनीय है जो उस समय

दिखाई पड़ती है जब पति की मृत्यु के बाद सती होने की इच्छा से अपने पुत्रों को सांत्वना देते हुए कहती है कि तुम लोगों को भय की आवश्यकता नहीं। विभीषण की छत्रछाया में गुणवान होकर उन्नति कर सकोगे।" अपने ससुर रावण के अभी जीवित रहते हुए विभीषण की छत्रछाया की बात कहना उसकी सूक्ष्म दृष्टि का ही परिचायक है। शायद उसको पहले से ही विश्वास हो गया था कि अब इस युद्ध में रावण अवश्य ही मारा जायगा क्योंकि विष्णु के अवतार राम के लिए वह अजेय नहीं रह सकता था। वह सती साध्वी होने के कारण बड़ी निर्भीक थी, किंतु पारिवारिक मर्यादा का पालन भी करती थी। मृत पति का शव माँगने के लिए राम के पास जाते समय वह सास और ससुर की अनुमति लेकर ही जाती है। वह शास्त्र निर्धारित मर्यादा को भी जानती है। और इसीलिए विधवा होने के कारण अपने विमान के अग्र-भाग में अग्नि रखकर युद्ध भूमि में जाती है और अन्त में सती हो जाती है। विधवाओं के लिए शास्त्र विहित नियम है कि वे कहीं जायें तो अग्नि को सामने रखकर जायें। तभी वाल्मीकि रामायण में कौसल्या भरत से कहती है कि "मैं अग्नि को सामने रखकर सुमित्रा के साथ राम के पास जाऊँगी।"

अथवा स्वयमेवाहं सुमित्रानुचरा सुखम्।
अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य प्रस्थास्ये यत्र राघवः॥

(वा. रा. अयो० ७५-१४)

युद्ध भूमि में जाकर वह सुन्दर शब्दों में राम की स्तुति करती है और कहती है कि "आपके दर्शन से मेरें सब पाप नष्ट हो गये" उसकी भक्ति देखकर राम इन्द्रजीत को पुनः जीवित करने को सोचते हैं। किंतु हनुमान के मना करने पर वह विचार छोड़ देते हैं और उसे वर देते हैं कि दूसरे जन्म में तुम अपने पति से मिलोगी तब नाना प्रकार के सुखों का अनुभव करके अन्त में बैकुंठ को पति के साथ प्राप्त करोगी। इसके बाद पति का शव प्राप्त कर रावण की अनुमति से सती हो जाती है। उसके साहस, चतुरता, पतिभक्ति आदि देखकर स्वयं रावण भी चकित रह जाता है। सती होने के पहले अपने पुत्रों को गले लगाकर कहती है कि प्यारे पुत्रो! तुम्हारी क्रीड़ाएँ आदि देखने का मेरा भाग्य अब नहीं रहा। मुझे पति के साथ जाना चाहिए। तुम तो पाताल में अपने नाना शेष के पास चले जाओ। इन शब्दों में उसका आदर्श पत्नी रूप दिखाई पड़ता है जो मातृत्व पर भी विजय पाता है।

मंदोदरी—इसमें इसका पात्र दो रूपों में चित्रित किया गया है। एक उसका भक्त नारी का रूप जिसमें वह रावण को राम की महिमा बताकर सीता को लौटा देने का उपदेश देती है और दूसरा वीर नारी का रूप जिसमें वह रावण को युद्ध के लिए प्रेरित करती है। अतिकाय की मृत्यु के बाद जब रावण दुखी होता है तब वह उसे उकसाती हुई कहती है कि अब दुख करने से क्या होता है जब समय बीत गया। अब तो युद्ध में अपनी वीरता दिखाओ। (रं. रा. यु. पृ. ४३५–४६४–४६०९)। उसकी बातें सुनकर रावण युद्ध में जाता है। उसका यह भाव उस समय भी लक्षित होता है जब वह अंगद के द्वारा केश पकड़कर खींची जाती है और अपमानित की जाती है। वह रावण का तिरस्कार करती हुई बड़े जोश के साथ कहती है कि अब यह सब टेढ़ी-मेढ़ी चालें छोड़कर राम की बाणाग्नि में जल मरो। जब उसका क्रोध शांत हो जाता है तब वह रावण को उपदेश देती है कि सीता के साथ सारा राज्य राम को सौंप दो और हम दोनों वन में जाकर तपस्या कर लें। उसे उसके पिता से वर प्राप्त था कि वह बूढ़ी नहीं होगी और मृत्यु को नहीं प्राप्त होगी। पति का भी तिरस्कार करनेवाला उसका उग्र रूप उस क्रोध विवशता का परिणाम है जो रावण के सीता को पकड़ लेने के कारण उसमें आ जाती है। अन्यथा वह भी पतिपरायणा स्त्री है। वह सूक्ष्म दृष्टिवाली और तर्कशीला नारी है। राम को सीता को लौटा देने का उपदेश देते हुए वह जिस तर्क का प्रयोग करती है वह उसकी संतुलित बुद्धि का परिचय देता है। वह कहती है कि "क्या अपने कार्तवीर्यार्जुन से संधि नहीं की? तब उसको जीतनेवाले परशुराम को भी जिसने जीता है उस राम से संधि कर लेना क्या अनुचित है?"

मंथरा—रंगनाथ रामायण में मंथरा का चित्रण वाल्मीकि के समान स्वाभाविक ईर्ष्यालु के रूप में नहीं बल्कि वैरिणी के रूप में किया गया है जो अपने प्रति किए गये अत्याचार का प्रतिकार करके ही शांत होती है। उसकी अधिक चर्चा अन्यत्र की जायगी। यहाँ इतना ही कहना अलम है कि जिस उद्देश्य से मंथरा का प्रवेश रामायण में कराया गया है उसकी पूर्ति सकारण और स्वाभाविक रूप में की गई है।

कौसल्या—इसका पात्र यद्यपि वाल्मीकि के आधार पर ही चित्रित किया गया है किंतु फिर भी इसमें पुत्र का अनिष्ट देखकर विवशता जन्य क्रोध से उद्रिक्त होनेवाली माता का रूप अधिक उज्ज्वल रूप में दिखाई पड़ता है। राम के वन जाने की बात सुनकर लक्ष्मण जो क्रोधित होता है और सब को

दण्ड देने की बात कहता है वह कौसल्या को बहुत पसंद आता है। इसीलिए वह कहती है कि सौत की बातें मानकर बन में जाना धर्मयुक्त नहीं है। अपने छोटे भाई के कहे अनुसार शौर्य दिखाकर राज्य ग्रहण करो। मेरी बात मानकर मेरी शुश्रूषा करते हुए मेरे यहाँ रहो। पिता की बात रखना तुम चाहते हो तो क्या माता की बात का कोई मूल्य नहीं ?" (रं. रा. अ. पृ. १०१. पं० ५०८–५१३) अपने मातृत्व का कैसा दावा करती है ! पुत्र-वियोग के कारण जो क्षोभ उसे होता है उससे प्रेरित होकर वह पति की निंदा व तिरस्कार करने में भी नहीं चूकती। वह दशरथ पर दोषारोपण करती है कि उसने जानबूझ कर कैकेयी से मिलकर ऐसा षड्यंत्र रचा और उसके पुत्र को वन में भेज दिया तथा दिखावे के लिए अनजान बनकर पुत्रवियोग पर शोक प्रदर्शित कर रहा है। यह केवल उसके क्रोध का उफान था जो बाद में, दशरथ की मृत्यु पर शांत हो जाता है और वह पश्चात्ताप करती है। वह अनुभव करती है कि पिता के आदेशानुसार वन में जाकर राम की तिवान हुआ, सत्य का पालन करके दशरथ ने स्वर्ग की संपत्ति पायी और पति की निंदा करके उसने स्वयं पाप कमा लिया। यह उसके हृदय की निर्मलता का द्योतक है। कौसल्या में पत्नी रूप की अपेक्षा मातृरूप अधिक उज्ज्वल है क्योंकि वह पति के साथ सती होना नहीं चाहती बल्कि चौदह वर्ष की अवधि के अनंतर पुत्र को देखने के लिए जीवित रहना चाहती है।

तारा—रंगनाथ रामायण में तारा का चरित्र यद्यपि वाल्मीकि के समान बुद्धिमती और उचित समय पर पति को मंत्री के समान सत्परामर्श देनेवाली नारी के रूप में किया गया किंतु फिर भी उसके समान तर्कशीला न होकर भावुक है। अपने पति की मृत्यु पर रोते हुए वह राम से कहती है कि हे महा-राज ! आपने वाली को क्यों मारा ? क्या उन्होंने आप के पिता को आपकी यह दशा बनाने की सलाह दी ? क्या वाली वे भरत थे जिन्होंने आपका राज्य छीन लिया ? क्या वे वह राक्षस थे जिसने आपकी पत्नी का हरण किया ? आपका ज्ञान क्या सीता के साथ ह [illegible] चला गया या विरहाग्नि में जलकर भस्म हो गया ?" कैसा स्वाभाविक और चुटीला ताना है राम पर। इसके आगे बहुत ही स्वाभाविकता से स्त्री सुलभ दुखातिरेक को प्रकट करते हुए कहती है कि वाली को छोड़कर अब मैं जीवित नहीं रह सकती। मुझे भी मार डालिए। ही इसकी तारा की विशेषता है। यह संक्षिप्त साहित्यिक विवेचन रंगनाथ रामायण के साहित्यिक सौंदर्य की एक झांकी है।

भास्कर रामायणः—

यह रंगनाथ रामायण की प्रतिस्पर्धा में लिखा गया काव्य है। यह पंडितों के लिए प्रिय मार्ग शैली में रचित हुआ है। मार्ग शैली की विशेषताएँ पहले ही दिखाई जा चुकी हैं। भास्कर रामायण उस शैली का चंपू काव्य है। इसमें संस्कृत के शार्दूल, मंदाकांता आदि अनेक छंदों का प्रयोग किया गया है जिनके अतिरिक्त बहुत से जाति तथा उपजाति छंद कंद, सीस, गीति आदि आ गये हैं। यति मैत्री और प्रास का नियम प्रायः सब छंदों में पाया जाता है। ये मानों तेलुगु पद्य के सौंदर्य के प्राण हैं। साधारण कहावतों और मुहावरों में भी इनका ख्याल रखा जाता है जिससे भाषा में एक विशेष प्रकार की मधुरता आ जाती है जो तेलुगु की अपनी विशेषता है जिसकी संगीतात्मकता के कारण वह देशी भाषाओं में सर्वोत्तम मानी गई है।[1]

इसमें भूमिका न होने के कारण कवि की काव्य रचना संबंधी मान्यताओं का कुछ भी पता नहीं चलता। इन कविय अन्य ग्रंथ भी नहीं मिलते कि जिनके द्वारा उनका ज्ञान प्राप्त हो। अतः हमें इस ग्रंथ पर ही निर्भर करना पड़ता है। जैसाकि पहले दिखाया जा चुका है इसकी रचना एक कवि की न होकर अनेक कवियों की है। हुलक्कि भास्कर इसके प्रधान कवि थे। अन्य कवियों ने यद्यपि भास्कर के ही मार्ग निर्देशन में काव्य रचना की तथापि उनकी शैली आदि विशेषताओं की छाप भी इसमें दिखाई पड़ती है। इसकी कथा के विकास संबंधी जो विशेषताएँ हैं उन पर सातवें अध्याय में विचार किया गया है। इन कवियों की दृष्टि वर्णनों, भाषा और शैली पर अधिक रमी है। इसकी कथा के विकास में रंगनाथ रामायण का और चरित्र चित्रण में वाल्मीकि रामायण का अनुकरण दिखाई पड़ता है।

भास्कर रामायण का महत्व उसके वर्णन और भाषा को लेकर अधिक है। अयोध्याकांड में भरत राम को मनाते हुए राजशक्ति का वर्णन करते हैं—

"पृथ्वी का भार एक सर्प नहीं, बल्कि पार्थिव का बलवान हाथ ही धारण करता है। समुद्र बेला की मर्यादा के कारण नहीं बल्कि राजाज्ञा के

---

१. **"आमुक्त माल्यद" नामक काव्य के कवि और आँध्र सम्राट श्री कृष्णदेव-राय ने तेलुगु के बारे में कहा था कि "देशभाषलंदु तेलुगु लेस्से" अर्थात् देश भाषाओं में तेलुगु सर्वोत्तम है।**

कारण मर्यादित रहता है। वर्ण व्यवस्था का आधार वेद नहीं, अपितु राजा के शासन की शक्ति है। इस संसार को सूर्य की किरणें नहीं बल्कि प्रभु का तीव्र तेज ही प्रकाशित करता है। यदि छत्र टूट गया तो पृथ्वी गिर जायगी, सागर अमर्यादित हो जायगा, वर्णाश्रम धर्म नष्ट हो जायँगे और संसार दिङ्मूढ़ बन जायगा। अतः उसकी रक्षा के हेतु आप पृथ्वी का भार सँभालिए।" (भा. रा. अयो० २६५)

इसमें पर्यस्तापह्नुति और क्रमालंकार युक्त शैली दर्शनीय है। इसके अतिरिक्त राजशक्ति संबंधी कवि की ऊँची कल्पना भी द्रष्टव्य है। इस कांड के कवि कुमार रुद्रदेव राजशक्ति संपन्न साहिणिमारन्न के पुत्र थे। अतः उनका स्वाभाविक राजस गुण और राजशक्ति के अभिमान की भी सुन्दर ध्वनि है जिसमें कवि का व्यक्तित्व दृष्टिगोचर होता है। शब्दों का अर्थ गांभीर्य भी इस में ध्यान देने योग्य है। इसमें कहा गया है—

"गोड्डुगु विरिगिन धारुणि गूलु नब्धि मेर दप्पु,
वर्णाश्रमाचारमड्गु..............."

"गोड्डुगु" का अर्थ है छत्र। इस शब्द का प्रयोग तेलुगु में लक्षणाशक्ति के द्वारा आश्रय के अर्थ में भी होता है जो पीड़ितों की छत्र के समान आतप, वर्षा आदि कष्टों से रक्षा करता है। यहाँ राजाश्रय का वर्णन करने के लिए "गोड्डुगु" शब्द का प्रयोग बड़ा ही सार्थक हुआ है जब कहा गया कि यदि छत्र टूट गया तो पृथ्वी गिर जायगी आदि...............। इस प्रकार के ध्वनिपूर्ण वर्णन बहुत हैं।

रावण से लड़ने जाते हुए जटायु की वीर मूर्ति का वर्णन भास्कर की ऊँची कल्पना और भाषा पर अधिकार का एक प्रमाण है। "जब जटायु अपने पर्वत पर से उड़ा तो उसके नीचे धँस जाने से शेष नाग के सिर कुचल गये। पंखों के फड़फड़ाने के जोर से उड़ी हुई धूल ने मेघों को छिन्न-भिन्न कर दिया। राक्षस को ललकारनेवाली उसकी ध्वनि ने ब्रह्मांड को विदारित किया। उसके कोपोद्रिक्त वर्तुलाकार नयनों की प्रभा ने सूर्य रश्मियों को भी परास्त कर दिया। बाघ, सिंह आदि जानवरों के रक्त से सनी चोंच की भयंकर कांति से युक्त क्रूर मुख और वज्रोपम नखों से शोभित उन्नत शरीरवाले जटायु ने उस राक्षस पर आक्रमण किया।" इसमें प्रयुक्त भाषा के नाद-सौंदर्य का बोध कराने के लिए वह पद्य यहाँ उद्धत किया जाता है—

तनयुन्नगिरि बेट्टु । ताचि बिट्टेगसिन, नादशेषु षडगल । गुदिय नडुम
जवमुमै नेरकलु । जाडिचु वडि बुट्टु, धूलि मेधंबुल । दूल दोल
निलु निलुमी दैत्य । निनु व्रत्तुननि पेर्चु, नदलुपु ब्रह्मांड । मद्रुव जेय
विपुलकोपोद्रेक । वृत्तमुलैननै, त्रमुल रश्मुलु रवि । रश्मि नेगुव
शरभसिंहादि मृगरक्त । सांद्रशोण,
घोर चंचु प्रभा घन । क्रूर वक्त्र
नखर कुलिश प्रचय समु । न्नत शरीरु
डगु जटायुवु गदिसे । नय्यसुरवीरु ।।

(शब्दों के बीच में आई खड़ी पाइयाँ यति स्थल के सूचक हैं । शब्द स्वरांत पढ़े जाने चाहिए। रेखांकित अक्षर ह्रस्व हैं ।)

कवि की भाषा प्रस्तुत भावानुरूप गुणयुक्त होनी चाहिए। तभी वह अपने नाद सौंदर्य से रस निष्पत्ति में भी सहायक हो सकती है। ऊपर के सीस पद्य में उत्साह और क्रोध के भावानुरूप ओज गुण युक्त भाषा का प्रयोग है जो अंत में चरम सीमा को पहुँच गई है। सीस पद्य एक ऐसा छंद है जिसमें कवि अपने भाषाधिकार से किसी भी भाव का जीता-जागता वर्णन कर सकता है। एक और सीस पद्य में कवि रावण से हरी जानेवाली सीता के करुण कंदन का वर्णन करते हैं जो इस प्रकार है—

पावनाकार गो × दावररीदेवि नी, वेरिगिंपवम्म रा × जेंद्रु तोड
नो माल्यवंत पु × ण्योन्नत गिरिनाथ, चेप्पंगदे राज × सिंहु तोड
नो जनस्थान म × हीजमुलार यी, विधमेरिगिंपरे × विभुनितोड
नो दंडकाटवि × नुग्न तापसुलार, नापाटु चेप्पुडी × नाथुतोड
नेनु श्रीरामुभार्य मी × रेब्बरैन,
नड्डपडि ताकि विडिपिंप × रय्य काव
रय्य सुरलार मुनुलार × यक्षुलार
यखिल दिक्पतुलार पु × ण्यात्मुलार ।।

(× यह चिन्ह यति स्थान का सूचक है)

इसमें सीता की करुणाभरी प्रार्थना का वर्णन है। "हे पवित्र गोदावरी देवी ! तुम महाराज को मेरी परिस्थिति बताना। हे पर्वतराज ! माल्यवंत ! तुम मेरे राजसिंह से कह देना। हे जनस्थान के वृक्षो ! मेरे पति से मेरी दीनता कहना। हे दंडकारण्य के तपस्वियो ! मेरी दुख-दुरवस्था मेरे पति से

कहना ! मैं श्रीराम की पत्नी हूँ । हे देवताओ ! मुनियो ! यक्षो ! दिक्पालको ! पुण्यात्माओ ! आपमें से कोई मेरी रक्षा करने की कृपा करें।" प्रथमोल्लिखित पद्य की और इस पद्य की भाषा का अंतर स्पष्ट है। जहाँ प्रथम पद्य की भाषा में ओज गुण है वहाँ इस पद्य की भाषा में प्रसाद और माधुर्य गुण हैं जो वर्ण्य भावानुरूप प्रयुक्त किये गये हैं। रस-परिपाक की दृष्टि से युद्धकांड के वीर और करुण रस वर्णन बहुत ही उत्तम हैं। इंद्रजीत के निधन पर रावण की मृत्यु पर मंदोदरी के शोक के वर्णन में मानों करुणरस साकार हो उठा है। इसके अर्ध-भाग के कवि अय्यलार्य का भाषा पर असाधारण अधिकार है। गौडी रीति में लिखा गया यह पद्य इस कथन का एक उदाहरण है—

कुटिल भ्रूकुटि लक्ष्य धूमपटली क्रूरंबु दुर्लक्ष्य
क्पुट लौहित्य कराल कील लहरी पूरंबु लोलद्विशं
कट निश्श्वास समेधितंबगु समग्र क्रोध सप्तार्चिचे
जटिलुडै दशकंठुडत बलिकॅन् जंडाहवोल्लासियै ॥

संस्कृत और तेलुगु पर असाधारण अधिकार रखनेवाला कवि ही ऐसे पद्यों की रचना कर सकता है। रावण की क्रोधाग्नि का कैसा सांग रूपक है। टेढ़ी भौंहों रूपी धूम पटल से क्रूर बनी, दुर्निरीक्ष्य नेत्रों की रक्तिमारूपी भयंकर ज्वालाओं से भरी, बीस चंचल नासिका विवरों के निश्श्वास रूपी समिधाओं से भभकनेवाली क्रोध की अग्नि से भयंकर बनकर युद्धोन्माद से रावण कहने लगा (भा. रा. यु. १३९७) इसके वर्णन जहाँ साहित्यिक दृष्टि से उच्च कोटि के हैं वहाँ स्वाभाविकता और विदग्धता भी लिए हुए हैं।

किसी भी मृत्यु का समाचार एक दम नहीं दिया जाता। बड़ी विदग्धता के साथ धीरे-धीरे दिया जाता है जिससे सुननेवाले के हृदय को एकदम आघात न लगे। इंद्रजीत की मृत्यु का समाचार युद्ध में बचे राक्षस इस प्रकार देते हैं—

"हे राक्षसेश्वर ! आपके पुत्र ने युद्ध में सब वानरों को मार भगाया। हमारी लंका को जिसने जलाया उस हनुमान को हराया। विभीषण के शरीर में बाण-समूह को गाड़ दिया। भयंकर बलवान लक्ष्मण के साथ अपना प्रचंड प्रताप दिखाते हुए बड़ी देर तक युद्ध किया और अन्त में लक्ष्मण के बाणों की ज्वाला में शलभ बन गया।" (भा. रा. यु. १३८३) इस कथन की

स्वाभाविकता और विदग्धता के अतिरिक्त इसकी आलंकारिक शैली और अर्थ गांभीर्य भी ध्यान देने योग्य है।

सुग्रीव जब राम को सीता के आभूषण दिखाता है तब राम सीता के उत्तरीय को देखकर यों विलाप करते हैं।

धन रतिश्रम जात धर्मांबुलापँग
नतिबकु वीवन गंगदुबु गादे
प्रणय कोपान नन् बासि तानुन्नचो
नंबुजापयकु दल्पमगुदुगादे
कनुबाटु गाकुंड वनित चन्दोयिकि
नंचित प्रतिसीर यगुदुगादे
तरुणिकिऽ बैरेंड ताककुंडंग सि
तातप वारण मगुदु गादे
यट्टि यवनिजऽ बासि नी बकट दूर
मेट्लु बच्चिति नाकड केलमि मिगुल
ननुचु नय्युत्तरीयंबु नल्ल दिगिचि
कप्पुकोनि बाष्पधारलु ग्रम्मवगचि ॥

"हे उत्तरीय ! तू सीता की रति श्रांति की बूंदों को सुखाने के लिए पंखा बन जाता था ; जब वह मुझसे मान कर रूठ जाती थी तब उसके लिए तू शय्या बन जाता था ; उसके कुचों को ढकने के लिए परदा सा बन जाता था ; उसको धूप में बचाने के लिए छत्र का काम देता था ; अब तू उस सीता को छोड़कर मेरे पास कैसे आया ? यों कहकर राम उसे ओढ़कर आँसू बहाते हुए रोने लगे।" राम का यह विलाप जहाँ बड़ा मार्मिक है वहाँ उत्तरीय का वर्णन बहुत ही स्वाभाविक है। स्त्रियाँ अपने आँचल से जो काम लेती हैं वे सब इसमें वर्णित हैं जिससे कवि की स्त्री जनोचित सहज व्यापारों के निरीक्षण की कुशलता तथा सहृदयता का अच्छा परिचय मिलता है। इसमें हनुमन्नाटक के निम्नलिखित श्लोक का विकास स्पष्ट दिखाई पड़ता है—

द्यूते पणः प्रणयकेलिषु कंठपाशः
क्रीडा परिश्रम हरं व्यजनं रतांते ॥
शय्या निशीथ समये जनकात्मजायाः।
प्राप्तं मया विधिवशादिदमुत्तरीयम् ॥ (हनु० ५-१)

चरित्रचित्रण की दृष्टि से भास्कर रामायण में कोई विशेष उल्लेखनीय बात नहीं है। प्राय: सब चरित्रों का चित्रण वाल्मीकि रामायण के अनुसार ही हुआ है यद्यपि कथा विकास में रंगनाथ रामायण का भी प्रभाव लक्षित होता है। इससे भक्ति तत्व भी रंगनाथ रामायण के समान समाविष्ट है। तारा के चरित्र में कुछ विशेषता पाई जाती है जो वाल्मीकि रामायण में नहीं मिलती। इसमें भी तारा रंगनाथ रामायण के समान भावुक पतिव्रता नारी के रूप में चित्रित की गई है। इसमें तारा राम को शाप देती है कि आपने मेरे पति का अकारण वध जो किया उसके बदले में बड़ी कठिनता से पुन: प्राप्त की जानेवाली सीता का संयोग सुख आपको चिरकाल तक नहीं मिलेगा। उसके वियोग में आप जीवन भर दुखी रहेंगे। तारा का यह रूप भास्कर रामायण की विशेषता है। वाल्मीकि रामायण में इसी भाव का एक संस्कृत श्लोक मिलता है जो इस प्रकार है—

अचिरेणैव कालेन त्वया वीर्यं बलाहृता।
सा सीता ममशापेन न चिरात्वयि वत्स्यति ।।

वाल्मीकि रामायण की तिलक टीका में इस श्लोक का उद्धरण दिया गया है। (वा. रा. गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, बंबई—कि. (२४ पृ. १५१५) इसमें तारा का क्रोध विवश नारी का रूप देखा जाता है।

इसके बाद के जितने भी राम काव्यों का सातवें अध्याय में परिचय दिया गया है उन सबमें चरित्रचित्रण रंगनाथ और वाल्मीकि रामायणों के अनुसार ही हुआ है। उनमें कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं है।

रामाभ्युदयमु:—

यह प्रबंध शैली में लिखा हुआ महाकाव्य है जो प्रबंध युग के कवियों की काव्य प्रतिभा की कसौटी थी। प्रबंध काव्य का परिचय तीसरे अध्याय में दिया जा चुका है। इस काव्य के कवि अय्यलराजु रामभद्र कवि ने इस काव्य में एक स्थान में वर्षाऋतु का वर्णन करते हुए श्लेष के द्वारा प्रबंध काव्य संबंधी अपनी मान्यताओं को व्यक्त किया है।

शा. धाराशुद्धि प्रसिद्धि गांचि घन शब्द स्फूर्ति वर्तिल्लगा
दोरंबैन रस स्थितिन् दरल विद्युन्मालिका लक्षणो
दारंबै कवि सेव्यमौ वन मयूरारूढि ब्रापिंचि व
र्षरिभंबु प्रबंधमट्ललरिल पद्याक्रांतमय्यें दगन् ।।

वर्षाऋतु के पक्ष में—विशुद्ध जल की अविरल धारा से प्रसिद्धि पाकर मेघ गर्जन, अत्यधिक आर्द्रता, चंचला चपला आदि लक्षणों से शोभित होकर तथा जंगली मयूरों की शोभा से युक्त होकर वर्षा के प्रारंभ ने सब पथों को (प्रबन्ध के समान) आक्रांत कर लिया।

प्रबन्ध के पक्ष में—कविता के प्रवाह से प्रसिद्धि पाकर, सुन्दर अर्थ का स्फुरण करानेवाले गंभीर शब्दों, सांद्र रस परिपाक, तरल, विद्युन्माला, वनमयूर आदि सुन्दर छंदों या वृत्तों से शोभित प्रबंध अनेक पद्यों से भर जाता है। इसके अनुसार प्रबंध के लक्षण यों हैं—उसकी कविता में धारावाही प्रवाह हो, गंभीर ध्वनि पूर्ण शब्दों का प्रयोग हो, रस की सुन्दर निष्पत्ति हो, और अनेक संस्कृत और देशी छंदों का प्रयोग हो। इन लक्षणों से यह स्पष्ट होता है कि रामभद्र कवि के अनुसार प्रबन्ध काव्यों में चरित्र चित्रण तथा कथा के विकास की अपेक्षा कला पक्ष पर अधिक ध्यान दिया जाता है जिससे कवि की प्रतिभा और पांडित्य-प्रकर्ष आदि का परिचय मिले। एक और स्थान में वे ध्वनिविहीन काव्य को सूर्य रहित आकाश, दक्षिणाहीन यज्ञ, कमल विहीन जल, सदाचार विहीन ब्राह्मण, अशांतियुक्त तप और संतान विहीन जीवन के समान मानते हैं। (रामा. २-६७)। इन सब लक्षणों को दृष्टि में रखकर उन्होंने अपने महा प्रबंध "रामाभ्युदय" की रचना की।

भाषा पर अपने अधिकार और काव्य रचना की प्रतिभा का परिचय देते हुए इन्होंने साधारणतः काव्यों में प्रयुक्त छंदों के अतिरिक्त, उत्साह, मत्तकोकिला, स्रग्धरा, महास्रग्धरा, लयग्राहि आदि कठिन छंदों का भी प्रयोग पर्याप्त मात्रा में किया है। अलंकार योजना बहुत स्वाभाविक और प्रयास विहीन बन पड़ी है। कौसल्या के जाताशौच (जन्म पर माना जानेवाला अशौच) का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं—

गी. पदि दिनंबुलु चन्न भूपालसतिकि।
बुरुडु वेडले द्रयी गण्यु बुण्यु रामु
यति मनः पद्म मद मधुव्रतमु गन्न
बुब्बुबोडिकि जगमुल बुरुडु गलदे।। (रामा ३-१२४)

"दस दिनों के बाद कौसल्या का जाताशौच दूर हो गया। वेद प्रसिद्ध और यतियों के मन रूपी कमलों के मधुकर राम को जन्म देनेवाली स्त्री को जाताशौच कैसे हो सकता है?" श्लेष के द्वारा यह भी अर्थ होता है कि ऐसी पुण्यवती स्त्री की समानता संसार में कहाँ हो सकती है? पद्य में रेखांकित

"बुरुडू (पुरुडु) शब्दों में श्लेष, यमक और काकुवक्रोक्ति का संसृष्टि अलंकार प्रयुक्त है। "पुरुडु" के दो अर्थ हैं—जाताशौच और समानता।

एक और सांगरूपक और श्लेष तथा समासोक्ति का संकर अलंकार देखा जाय। वर्षाऋतु का वर्णन कवि यों करते हैं—

समयकुलांलुडग्गगन चक्रतलंबुन नंबुराशि पं
कमु गोनि वच्चि योक्को पोसगन् मधवायुध दंडमंदियं
दमुग नवाभ्र कुंभमु लोनर्चे रसज्ञ डुगाडे बाडु लो
कमु लेरुगन् बयोधरत गांचुटयुन् गलिगिंचे वानिकिन् ॥

काल रूपी कुम्हार ने आकाशरूपी चक्र पर समुद्र जल रूपी मिट्टी लाकर इंद्रधनुष रूपी दंड की सहायता से बादल रूपी कुंभ बनाये। रसज्ञ होने के कारण उनमें उनमें पयोधरत्व का धर्म भी समाविष्ट किया। पूर्ण कुंभ रूपी स्तन बनाये। यह छंद कवि की ऊँची कल्पना और ग्रन्थ के प्रबन्धात्मक निर्वहण का एक उत्तम प्रमाण है।

इसमें सीता और राम का चित्रण जहाँ लक्ष्मी और विष्णु के अवतारों के रूप में किया गया है वहाँ शृंगारी प्रबन्ध नायिका और नायक के रूप में भी हुआ है क्योंकि प्रबन्ध में शृंगार रस प्रधान होता है। राम की अँगूठी देखकर सीता का जो दुख वर्णित है वह विरहिणी नायका का ही है। जो चौदह पद्यों में वर्णित है—उदाहरण के लिए एक दो पद्य देखे जायँ—(रामा. ६ पृ. १२३)।

उग्रधनुर्विभेदनुनको मणि मुद्रिक नीवु नेनु बा
णिग्रहणंबोर्नचि, करुणिचुटकुं दगियुन्न युन्कि, य
व्यग्रमति दलंचिकोनि प्राणसखिन्ननु बारवैवक
त्युग्रविपद्दशन्नोगिलि युन्नदिगायनि चूडवच्चिते ॥

(हे अंगूठी ! भयंकर शिव धनुष को तोड़ने पर हम दोनों ने उसका पाणिग्रहण किया। अब जब मैं इस प्रकार दया के योग्य और विपद्ग्रस्ता बन गई तब हे प्राण सखी ! मुझे न छोड़कर, इस दुख में डूबी मुझको देखने के लिए आ गई है ?")

ई मणि कांतिचेत निरुलेच्चटिको चनजेसि नीवुगा
वा मुनु रेलुनुं बयट बैतुवु नीविकि नेग्गुसेयु श्री
रामुनि श्रोल नाकलुक रा नटुलं व्रतिकूलवय्यु ना
हा मरि नेडु नाकयिति वापद वच्चिम वेल मुद्रिका।

("तुझ में जो मणि जड़ित है उसकी कान्ति से रात का अलंकार दूर हो जाता था और मेरे नीविबन्धन को ढीला करनेवाले राम के सामने तू मेरा सर्वस्व प्रकट कर मुझे क्रोधित कर देती थी और इस प्रकार मेरे प्रतिकूल आचरण करती थी। लेकिन यह कैसी सहानुभूति है तेरी कि अब इस विपत्तिकाल में मेरी सहायता करने आ गई है।")

इस प्रकार के वर्णन तेलुगु की प्रबन्ध शैली के परिचायक हैं जिसमें कवि प्रायः अपना पांडित्य तथा कल्पना की ऊँची उड़ान दिखाने के लिए औचित्य की सीमा का उल्लंघन भी कर देते थे। ऐसे ही कवि प्रतिभा संपन्न समझे जाते थे। ऐसे प्रबन्ध कवियों की तुलना प्रवृत्ति और काव्यशिल्प की दृष्टि में हिन्दी के रीतिकालीन कवियों के साथ की जी जा सकती है।

उसी प्रकार राम के सीता का शिरोरत्न देखकर रोने में विरही नायक की उन्मादावस्था का वर्णन (रामा. ७-१९)। सीता और राम के इन्हीं रूपों पर कवि की दृष्टि अधिक रमी है और अतः इसमें भक्ति भावना की उतनी भी प्रधानता नहीं जितनी अन्य रामायणों में है।

इस काव्य की भाषा की अपनी अनुपम विशेषता है। वह यह कि इसमें संस्कृत और तेलुगु कहावतों और मुहावरों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

श्री मदुत्तर रामायण : (कं. पापराजु)

यह भी प्रबन्धात्मक महाकाव्य है जिसका महत्व साहित्यिक सौन्दर्य को ही लेकर है। इसका निर्माण प्रबंध युग में होने के कारण उस परम्परा का पर्याप्त प्रभाव इसमें दिखाई पड़ता है जो विशेषकर इसके वर्णनों और काव्यात्मक शैली में निहित है। इसमें राम और सीता के संयोग श्रृंगार का वर्णन प्रबन्ध नायक और नायिका के ही रूप में हुआ है। इस पक्ष का इतना विस्तृत और सुन्दर वर्णन और किसी उत्तर रामायण में नहीं है। राम और सीता सखियों साथ उद्यान में जाते हैं जहाँ वन पालक लोग राम को कुछ फल फूल भेंट करते हैं।

सी. कुंभिनीसुत गब्बि गुब्ब पालिड्लुतो
व्रतियैन गजनिम्नपंड्लु कोन्नि
जनक कन्यं पिसालि जलुकु कंदोयितो
सरियैन मेट्ट दामरलु कोन्नि
सीतांबुजाताक्षि चिरुनव्वु चायतो
सवरैन विरि मल्लै सरुलु कोन्नि

कोसलात्मज पेद्दकोडलि नेम्मेनि
जिगि बोलु मेलु संपेगलुकोन्नि
मैथिली देवि दंत संपदल सोंपु
नकु समंबैन कुंद बृंदमुलु कोन्नि
येंचिकोनि तेच्चियिनकुलाधीश्वरुनकु
नेलमि बन पालकुलु कान्कनिच्चुटयुनु ।। (उ. रा. ६-२८)

(भूमिजा के कुचों के समान कुछ बड़े बड़े नींबू, जनक की पुत्री के नेत्र द्वय के समान कुछ भूकमल, सीता की मुस्कुराहट की समानता करनेवाली कुछ चमेली की मालाएँ, कौसल्या की पुत्रवधू के शरीर की कान्ति की बराबरी करनेवाले कुछ चंपक पुष्प और मैथिली के दाँतों की सी आभायुक्त कुछ कुंदपुष्प लाकर बन पालकों ने राम को भेंट किए "जिनको देखकर राम बड़ी विदग्धता के साथ सीता से कहते हैं कि तुम्हारे अंगों की समानता करनेवाली इन वस्तुओं ग्रहण किये बिना मेरा मन कैसे मानेगा ? यहाँ 'ग्रहण किये बिना' के अर्थ में जो शब्द प्रयुक्त हुआ है "चेकोनक" (हाथ में लिए बिना) उसमें बड़ा ही अर्थ गांभीर्य है जिसे सीता झट समझ लेती है और उसके चेहरे पर "लज्जा" का भाव चमकता है। यहाँ सीता के अनुभावों के वर्णन के द्वारा कवि ने "लज्जा" संचारी भाव को बहुत ही सुन्दर और औचित्यपूर्ण ढंग से ध्वनित किया है।

दरहासद्युति जिल्गु वेन्नेलल चंदंबोंदि नेम्मोमु चां
दुरुनंदुन् दुलंकिपगा गलिकि कांतुंडाड् नर्मोक्तिकिन्
शिरमोंक्किचुक वंचिक्रेवल कटाक्षिपन् ददीक्षापरं
परले तूपुलुगा मरुंडु रघुराम स्वामि नेसेन् वडिन् ।।
(उ. रा. ६-३१)

(प्रिया के इन मार्मिक बचनों को सुनकर सीता के चेहरे पर जो मुस्कराहट दौड़ पड़ी वह चंद्रिका बन गई तो उसका मुख चंद्रमा की समानता करने लगा और वे अपना सिर थोड़ा झुकाकर तिरछी नजर से राम की ओर कटाक्ष पात करने लगीं तो उन्हीं कटाक्षों को पुष्पवाण बनाकर कामदेव राम पर वार करने लगा।) पद्य में "कटाक्षिपन्" शब्द में श्लेष के बल पर बड़ा अर्थगांभीर्य आ गया है। उसका एक अर्थ है "कटाक्षपात करने पर" और दूसरा अर्थ है "दया दिखाने पर" राम की मार्मिक बातें सुनकर सीता उनका भाव समझकर मानों उन पर दया दिखाती हुई तिरछी नजर से देखने लगीं। उद्यान का सुन्दर वातावरण,

सीता की लज्जा भरी मुस्कराहट, उसका सिर झुका लेना और कटाक्षपात, ये सब उद्दीपन विभाव भी बनकर राम के रति स्थायी भाव को उद्दीप्त करते हैं।

उद्यानविहार के बाद जल विहार के वर्णन में भी इस प्रकार की शृंगारात्मकता पायी जाती है जिसमें वाग्वैदग्ध्य आदि का सुन्दर समावेश है। राम और सीता अन्य सखियों के साथ उद्यान के सरोवर में जल क्रीड़ा करते हैं। उस समय सीता दूर स्थित किसी पद्मनी (कमल) को दिखाकर राम से प्रार्थना करने लगी कि वह ला दीजिए। राम इस पर कहते हैं कि मैं परस्त्री का स्पर्श नहीं करता। इसलिए मैं तुम्हीं को उसके निकट ले जाऊँगा। तुम्हीं उसे ले लेना। यों कहकर उन्होंने सीता को अपनी बाहुओं में उठा लिया जैसे कमला को अपने वक्षस्थल पर धारण करते थे।

तनकुन् दब्बगु पद्मिनिन् वलचि सीतादेवि प्रार्थिचिनन्
मनुवंशाग्रणि यन्यकांतनु स्पृशिपन् माकनहंबु गै
कोनुमीवे निनु देत्तु नाडकनुचुन् क्षोणीज बाहांतरं
बुन बूनेन् गमलावधूटि नेदवै नुन्नुंचु कोन्नट्टुलन् ॥

(उ. रा. ६-१००)

इसमें सीता के "पद्मिनी" शब्द को लेकर, जो कमल और पद्मिनी जाति की स्त्री के अर्थों में प्रयुक्त होता है राम ने अपना वाग्वैग्ध्य दिखाया जिसमें राम के एक पत्नीव्रत की भी ध्वनि है। इनके अलावा इस प्रसंग में और भी अतिशय शृंगारी वर्णन हैं जिसमें राम का मर्यादा पुरुषोत्तमत्व थोड़ा सा तिरोहित हो गया दिखाई पड़ता है। (उ. रा. ६-३०-१७७)। इस प्रकार राम और सीता को शृंगारी प्रबन्धों के नायक और नायिका के रूप में चित्रित करने में आनन्द रामायण का प्रभाव लक्षित होता है जिसमें ऐसा ही वर्णन पाया जाता है। (आ. रा. विलास कांड)

चित्रात्मक वर्णन का भी एक उदाहरण देखा जाय।

सीता को गंगा के तीर पर छोड़कर जब लक्ष्मण चले जाते हैं तब सीता की मानसिक स्थिति बड़ी चित्रात्मक शैली में वर्णित है।

रमणि मरिकोंत वडि रथमु जूचु
दरुणि मरिकोंतसेपु केतनमु जूचु
गांत मरि मीद रथ परागंबु जूचु
पडति मरियंतटनु वट्टिबयलु सूचु ॥

(उ. रा. ६-२८२)

सीता और थोड़ी देर तक रथ देखती रही और थोड़ी देर रथ का केतन देखती रहीं और थोड़ी देर रथ से उठी धूल देखने लगीं और अंत में केवल शून्य देखने लगीं।

कवि के प्रकृति निरीक्षण की शक्ति का इसमें पता लगता है। जानेवाले रथ को अनिमेष दृष्टि से जब देखा जाता है तब थोड़ी दूर तक रथ दिखाई पड़ा है, बाद में केवल उसका केतन, बाद में धूल और अंत में शून्य ही दिखाई पड़ता है। सीता तो अपलक और शून्य दृष्टि से देखती ही रही और ये सब वस्तुएँ एक के बाद एक अदृश्य होती गईं। इस प्रकार के वर्णन ग्रंथ भर में पाये जाते हैं।

करुण रण के आयोजन में कवि ने बड़ी सफलता पाई। सीता के परित्याग का प्रसंग बड़ा ही हृदय विद्रावक बन पड़ा है। यह प्रसंग इसमें बड़े विस्तार के साथ वर्णित है जिसमें करुण रस का सागर उमड़ पड़ता है। लक्ष्मण राम की आज्ञा से सीता को गंगा के किनारे ले जाते हैं जहाँ उनको भाई की आज्ञा सुनाते हैं। उस समय का उनका दुख कोई दस पद्यों में वर्णित है (उ. रा. ५-२६६ २७४) वे अपने भाग्य को दोष देते हैं कि ऐसा कठोर कार्य उनको करना पड़ रहा है और सीता तथा राम दोनों का दुख देखकर रो पड़ते हैं। दोनों के प्रति उनकी भक्ति थी। वे कहते हैं कि आपके निर्मल प्रभाव और नम्रता आदि सद्‌गुणों को जानते हुए भी रामने आपकी अभिलाषा के बहाने आपको यहाँ जो भेजा वह केवल लोकनिंदा के कारण। अन्यथा इस वियोग सागर को वे कैसे पार कर सकेंगे ? (उ. रा. ६-२७१।

इन सब बातों में सीता के दुखी हृदय को समाधान, राम के विरह-दुख की सूचना, तथा लक्ष्मण की सहानुभूति यह सब निहित है। बाद में अपनी स्थिति के विषय में वे कहते हैं कि—"शत्रुओं की भी ऐसी परिस्थिति देखी नहीं जा सकती। आपको यहाँ इस वन में छोड़कर मैं कैसे जा सकूँगा ? राम ने मुझे यह कार्य इसलिए सौंपा होगा कि मैं ऐसा कठोर हूँ कि ऐसे नीच कार्य करने से बाज नहीं आता।" आगे सीता की परस्पर विरोधी वस्तुओं तथा परिस्थितियों का वर्णन करके कवि पाठकों के हृदय को करुणाप्लावित करता है। लक्ष्मण कहते हैं—"हे माता ! यहाँ के असंख्य जंतु समूह ही आपकी सखियाँ हैं; यहाँ की ये पहाड़ियाँ ही आपके लिए नवरत्नमयचंद्रशालायें हैं; ये भयंकर वन ही आपके उद्यान हैं; डरावने मगर, सर्प आदि से भरे ये जलाशय ही आपके क्रीड़ा सरोवर हैं; ये बड़ी बड़ी चट्टानें ही आपके लिए चंद्रमणि वेदिकाएँ हैं, हाय !

ऐसे भयंकर स्थान में आप कैसे रह सकेंगी ? (उ. रा. ६-२७३) अंत में बड़े विदग्धता और करुणापूर्ण ढंग से राम के प्रति सीता के कर्तव्य को ध्वनित करते हुए कहते हैं—

म· जननी नीवु महापतिव्रतवु नीसौशील्यमिल्लांड्र् के
ल्लनु मेल्बंति रघूद्वहांघ्रियुगली लग्नात्मवै युंडुमी
यनि नेनेव्वड विन्नविंप बति बायन् जेसि निन्नोंटि डि
चिन पापात्मुड नूरि केगुमनुकुन् सेलिवच्छेचे नावुडुन् ।।

(हे जननी ! आप महा पतिव्रता हैं । आपका सुशील सब स्त्रियों के लिए आदर्श है । ऐसी आपको मैं यह निवेदन करनेवाला कौन हूँ कि आप रघुद्वह के चरणों में आत्मा को लग्न कर रहें । मैं तो ऐसा पापी हूँ कि आपको पति से वियुक्त करके यहाँ छोड़ जाता हूँ । मेरे ऊपर दया करके मुझे बिदा देंगी ?") इन बातों में लक्ष्मण की विदग्धता के अतिरिक्त काकुवक्रोक्ति से अनुप्राणित विपरीत लक्षणा का सौंदर्य भी दर्शनीय है ।

ये बातें सुनकर सीता की जो दशा हुई उसका वर्णन छोटे पद्य में ध्वनित पूर्ण ढंग से किया गया है । "हाय माता" कहकर सीता कटने के बाद थोड़ी ही देर में पृथ्वी पर गिरनेवाले केले के पेड़ समान गिर पड़ीं । (उ.रा. ६-२७५) यहाँ "थोड़ी देर में" कहने में लक्ष्मण की बातें सुनकर सीता में जो जड़ता आ गई वह ध्वनित है । इसके बाद एक गद्य में सीता के होश में आने और अनेक प्रकार के अनुभावों का वर्णन किया गया है जिनमें सीता मूर्तीभूत शोकरस (करुण रस) के समान दिखाई पड़ने लगीं; मानों चित्र ने शरीर धारण किया हो । साध्वस (भय) साध्वी बन गई हो; और करुणा ने शरीर धारण कर लिया हो । इसके बाद वह अपने पूर्वजन्मकृत पापों और दुर्भाग्य को रोती हुई शोकाभिभूत होने के कारण चंचल होकर अपनी शंका प्रकट करते हुए कहती है—

च. कलवलमंदि तेल्पितिवो काक पराकुन दप्पविंटिवो
कल नयिनन् रघूद्वहुडु काननलो ननु द्रोय बंचुने
तेलिसि गणिंपु लक्ष्मण मति भ्रम यैनदो हा सहिंपु मि
प्पलुकुलेरुंग गंटि वेत बाटिले नीकोक भ्रांति युन्नदे ।।

(उ. रा. ६-६८२)

(मुझे शंका होती है कि शायद तुमने घबराहट के कारण ये बातें कहीं हों, या अन्यमनस्क होकर राम की बातें सुनी हों । अन्यथा क्या स्वप्न में भी

राम मुझे जंगलों में छोड़ आने की आज्ञा दे सकते हैं ? तुम भ्रम में पड़ गये होगे। स्वस्थ होकर देखो !") इतने में फिर अपनी गलती समझकर लक्ष्मण से क्षमा माँगती हैं। "हाय ! अज्ञान और दुख के कारण मैंने तुम्हारे प्रति ये बातें कहीं। क्षमा करो ! तुमको क्या कभी भ्रम हो सकता है ?" यहाँ करुण रस की शंका, और चपलता संचारी भावों का सुन्दर वर्णन है।

पति के निरादृता स्त्री दुखातिरेक में पड़कर आत्म-हत्या करने का विचार करती है। सीता आगे लक्ष्मण के सामने अपना वही विचार संकेतित करती हैं। वह कहती हैं कि "क्या कभी ऐसा भी होगा कि मैं राम को और राम मुझे देख सकें। ऐसा यदि नहीं होगा तो मेरे शरीर में अब तक प्राण क्यों बचे हुए हैं ? खैर राम से तुम यह कहना कि मेरा शरीर है और पास में गंगा है। अंत में जो होगा सो होगा।" (उ. रा. ६-२८३) इसके बाद वह अपने पूर्व सुखों का स्मरण करके बहुत रोती हैं। उनको इस बात का भी दुख है कि अगर मुनि पत्नियाँ पूछें तो क्या बताया जाय ? (उ. रा. ६-२८९) यह भाव स्त्री मात्र के लिए स्वाभाविक है जिसकी ओर कवि की सूक्ष्म दृष्टि पड़ी है। इस प्रकार इसमें सीता मुग्धा, पति परित्यक्ता पत्नी के रूप में चित्रित है जिसका ध्यान अपने और पति के सुखों पर ही केंद्रित है। न कि अपने गर्भस्थ शिशु और वंश विकास पर ! वे आगे अपनी स्त्री सहज उदारता दिखाते हुए पत्नी के लिए आदर्श क्षमा शक्ति का परिचय देती हैं।

वगपुन दोचिनन्नियु नबारण बलिकिति गाक भर्तकुन्
जगदपवादमुन् गडुवशक्यमे नेनु वियोगमग्नतन्
देगुवकु जोच्चि रामु जननिंदितु जेयुदुने तदाज्ञ ये
ल्ल गतुल बूनि कानल मेलंगेद मेनु गलंत कालनुन् ॥

(दुःखातिरेक के कारण जो मन में आया सो मैंने कह दिया। किंतु क्या मेरे पति लोकापवाद सह सकते थे ? मैं भी साहस करके प्राण छोड़कर अपने पति को क्या लोकनिंदा का भाजन बनाऊँगी ! कभी नहीं। उनकी आज्ञा के अनुसार, जब तक शरीर रहेगा तब तक मैं वनों में जीवित रहूँगी।) तदनंतर अयोध्या में सबको नमस्कार करके लक्ष्मण को जाने की आज्ञा देती हैं। तब लक्ष्मण इस प्रकार विवश होकर जाते हैं मानों धेनु को छोड़कर विवशतावश जाने वाला बछड़ा हो। (उ. रा. ६-२९४)

स्त्री को जब शाश्वत रूप से पति वियोग होता है तब वह अपने अंतिम मिलन-सुख का स्मरण करके रोती है। जब सीता ने राम के सामने अपनी

वन-दर्शन की अभिलाषा प्रकट की तब वह राम की गोद में थीं और राम ने बड़े प्रेम से उसे पूरा करने का वचन दिया। अब लक्ष्मण के चले जाने के बाद सीता उस सुख का स्मरण करके जो रोती हैं वह बड़ा ही हृदय विदारक है। वे अपने मन में कहती हैं—

"गोद में बिठाकर वह हृदय से लगा लेना संभवतः अन्तिम सान्निध्य-सुख हो ; कपोलों का पसीना आँचल से वह पोंछना ही अन्तिम स्नेह प्रदर्शन हो ; वह कर्पूर मिश्रित पान खिलाना शायद प्रेम की अन्तिम सीमा हो, माँगते ही मेरी अभिलाषा पूरी करने का वह वचन देना शायद करुणा प्रबंध का फल ग्रंथ हो ; मुँह से मुँह लगाकर वह चुंबन लेना मोहातिरेक का अंत हो ; मुस्कुराते हुए मेरी ओर देखकर मुझे वह अंदर भेज देना शायद शृंगार की अंतिम दशा हो !"

ये सब व्यापार राम ने किए थे जिनकी स्मृति अब सीता के हृदय को विदीर्ण करने लगी। यहाँ "स्मृति" संचारी भाव ने करुण रस को मानों चरम सीमा तक पहुँचा दिया। प्रारंभ में संयोग सुख का जो वर्णन किया गया है उसने विरोधी पद्धति से (in contrast) इस करुण रस को प्रभावोत्पादक ढंग से प्रस्फुटित किया।

सीता की करुणामूर्ति का एक शब्द चित्र देखा जाय—

> उडुगक तेरु चन्नदेस नूनिन चूड्कुलु गन्गोलंकुलन्
> विडुवक पारु नश्रुबुल वेल्लुव लूरट लेनि यूर्पुलन्
> गड यिड रानि वंत येडगांचनि चेक्किलि केलु धूलि ब्रु
> गुडुबडु मेनुनुन् गलिगि कुंदेडि जानकि गांचि कूरिमन् ॥
>
> (उ. रा. ६-३०९)

बाल्मीकि ने परित्यक्ता सीता को इस अवस्था में देखा। रथ जिस ओर गया है उस ओर दृष्टि लगाये, नेत्रों के कोनों से निरंतर बहनेवाले अश्रु-प्रवाह, शांति रहित उच्छ्वास और निःश्वास, और अनंत दुख लेकर कपोल हथेली पर धरे धूलि धूसरित शरीर के साथ बैठी सीता को वाल्मीकि ने देखा। इस वर्णन में मानों करुण रण मूर्तिमान हो उठा है।

इस प्रकार इस उत्तर रामायण में रस सागर लहराता है और इसमें प्रयुक्त अलंकारों की भी अपनी शोभा है।

रघुनाथ रामायणः—

यह रामायण, जैसे पहले दिखाया गया है अधूरी है। किंतु इसका जो

भाग मिलता है वह कवि की काव्य प्रतिभा का सुन्दर प्रमाण है। इसका काव्य सौंदर्य सुन्दर और विस्तृत वर्णनों, अलंकार योजना और प्रवाह युक्त कोमल कांत पदावली में निहित है। इसके कवि रघुनाथ नायक तंजाऊर के महाराज थे और कई विद्वानों तथा कवियों को आश्रय दिया। उनके समय में प्रायः सब ललित कलाओं की अच्छी उन्नति हुई। कवि की वर्णन प्रियता इस बात से व्यक्त होती है कि ऐसी सूक्ष्म बातों पर भी उनकी दृष्टि पड़ी और उनका सुन्दर वर्णन इन्होंने प्रस्तुत किया जिन पर इनके पूर्व रामायण के कवियों ने ध्यान नहीं दिया।

वाल्मीकि जब तमसा नदी के किनारे जाते हैं तब नदी के जल की स्वच्छता उनको आकर्षित करती है जो इस प्रकार है—

क. **मिसमिस मेरचुचु लोपल**
निसुकलु गनवच्चुंचुंड निंद्रामणि विभा
विसरमु बले निंपेसगेडु
प्रसन्न सलिलंबु मनसु रंजिल जेयुन् ॥ (रघु. रा. बा. १-१०१)

तमसा का चमचमाता जल इतना निर्मल है कि अंदर की सिकता स्पष्ट दिखाई पड़ती है और वह इतना प्रसन्न भी है कि इंद्रमणि की आभा के समान चमकता है तथा मन को रंजित करता है। यहाँ जल को "प्रसन्न" जो विशेषण दिया गया है वह बहुत ही अर्थ गांभीर्य लिए हुए है। अभी थोड़ी देर पहले उन्होंने नारद से रामायण की पूरी कथा सुनी तो उनके मन में जो प्रसन्नता छायी उसी को वे नदी के जल में देखने लगे। यहाँ का उपमालंकार बहुत सार्थक है :

क्रौंच मिथुन का प्रेम मानवीय सहानुभूति युक्त वर्णित है।

उ. **ओक्क महीजशाखपयि नोक्कट वेडुक गूडि युंड यों**
डोक्कटि रेक्कविप्पुकोनि योप्पुचु गप्पुचु नोय्य बल्कुचुन्
मुक्कुल मेनु गीरुचुनु मोमुनु-मोमुनु जेर्चि मिक्किलिन्
मक्कुव नुंड ग्रौंचमिथुनंबु गनुंगोनि संभ्रमंबुनन् ॥
(रघु. रा. बा. १.१०७)

(एक वृक्ष की शाखा पर एक क्रौंच मिथुन बैठा हुआ था। एक पक्षी अपने पंख खोलकर दूसरी को ढँक रहा था और धीरे-धीरे कुछ बोल रहा था। शरीर पर अपनी चोंच फेर रहा था। मुँह से मुँह लगाकर वह मिथुन प्रेम युक्त ठा था। उसको व्याध ने देखा।)

यहाँ उसके शिकार के व्यापार और शिकारी की मुद्राओं का बहुत ही चित्रात्मक वर्णन है।

भाल पर उँगली रखकर व्याध ने स्मृति के द्वारा जान लिया कि यह क्रौंचों का निवास स्थान है। कांख में रखा हुआ झबरा एक जगह रख दिया और साथ वाले अनुचर लड़के को इशारा किया कि नजदीक न जाये। फिर "किर-किर" की आवाज करनेवाली चप्पलों को छोड़कर झाड़ियों के पीछे छिप कर ताकने लगा। शिकार की मुद्रा में एक पैर ऊपर की ओर मोड़कर दूसरी टाँग के घुटने पर पेड़ के पास बैठकर लक्ष्य साधन करने लगा। बाँस के छोटे से धनुष पर एक तीक्ष्ण शर का संधान करके कुशलता से श्वास रोककर नारी पूरा खींचकर उस काममोहित क्रौंचमिथुन में एक पक्षी पर उस पुलिंद ने बाण छोड़ा। इस वर्णन में "पुलिंद" जाति का वेष विधान भी सूचित है।

मुदुटिपै नोक व्रेलु गदिर्यिचि क्रौंचमुल्
निलुचुचोटिदियनि देलिसि तेलिसि
चंक बुट्टुवेट्टि सारेकु बुड्तनि
जेरकु मनि सन्न जेसि चेसि
किरुकिरुक्कनकुंड गिरुकु मेट्टुलु विड्चि
पोददारि मेल्लन बोंचि पोंचि
मंडि व्रेयुचु म्रानि दंड दंडग निल्चि
सूटिगा बलुमारु जूचि चूचि
कुरुच तडविट नोक मिट्टकोल गूर्चि
नेर्पडर नूर्पडचि तेगनिड दिविचि
काममोहितमैन या क्रौंच युगमु
नंदु नोक्कटि नेसे बुलिंदुडपुडु ।। (रघु रा. बा. १-१०८)

यहाँ प्रत्येक पाद के अंत में क्रियाओं की द्विरुक्ति के द्वारा शिकारी की भाव तीव्रता के अनुरूप वीप्सालंकार का सुन्दर आयोजन है।

दशरथ की पुत्रसुखानुभूति की तीव्रता उसकी पुत्र विहीनता के दुख को कितना पुष्ट करती है यह देखा जाय। दशरथ सोचते हैं कि "क्या हमारे ऐसे भाग्य भी कभी होंगे कि ऐसा बालक पायें जो चंद्रमा को देखकर उसे पाने को मचल जाये और आइने में चंद्र का प्रतिबिंब दिखाने पर खुशी से फूला न समाये कि चंद्रमा मिल गया और उसे अपने हाथों में पकड़ ले। (रघु. रा. २-५३)

इस रामायण का मधुर वाणी नामक कवयित्री के द्वारा संस्कृत में अनुवाद किया गया है जो अब तक नहीं मिला।[1]

मोल्ल रामायणः—

मोल्ल रामायण यद्यपि आकार में छोटी और संक्षिप्त है तो भी स्त्री रचित और प्रसाद गुण पूर्ण सरल शैली युक्त होने के कारण बहुत प्रसिद्ध हो गई है। इसकी पीठिका में कवयित्री ने काव्य रचना संबंधी अपनी कुछ मान्यताएँ व्यक्त की हैं जिनके द्वारा इस रचना पर थोड़ा प्रकाश पड़ता है।

वलिपपु सन्न पय्येदनु वासिग गंधपु बूत तोडुतन्
गोलदिग गानवच्चु वलि गुब्ब चनुंगव ठीवि नोप्पगा
देलुगनि चेप्पुचोट गडु तेटल माटल प्रोत्तरीतुलं
बोलुपु बहिंपलुन्न मरि प्रोंदगुने पटहादि शब्दमुल्

(तेलुगु काव्य में भाव तेलुगु के देशी शब्दों में नई रीति से इस प्रकार झलकना चाहिए ऐसे झीने आँचल में से चंदन लिप्त स्तन अपनी शोभा दिखा रहे हों। पटहादि कठिन शब्दों की प्रयोग ठीक नहीं।)

क. **मुनु संस्कृतमुल तेटग**
देनिर्गिचेडि चोट नेमि देलियक युंडन्
दनविद्य मेरय ग्रम्मर
घनमगु संस्कृतमु जेप्पगा रुचि यगुने ॥

(पूर्व वर्षों में संस्कृत का अनुवाद तेलुगु में करते समय जहाँ-जहाँ भाव व्यक्तीकरण के लिए, तेलुगु के कविगण अपनी विद्वत्ता दिखाते हुए, संस्कृत शब्दों को रख देते थे जिससे भाव किसी की समझ में नहीं आता, क्या यह पसंद हो सकता है ?)

तेनेसोक नोरु तोयनयगु रीति
तोड नर्थमेल्ल दोचकुंड
गूढ़ शब्दमुलनु गूर्चिन काव्यम्मु
मूग चेविटि वारि मुच्चटगुनु ॥

(शहद के स्पर्श से ऐसे मुँह मीठा होता है, वैसे ही काव्य का अर्थ शीघ्र मन में आना चाहिए। अन्यथा गूढ़ शब्दों के प्रयोग के कारण काव्य का अर्थ यदि समझ में न आये तो वह गूंगों और बहरों के वार्तालाप के समान होगा।)

---

१. खं. लक्ष्मीरंजनम्—आँध्रुल चरित्र—संस्कृति पृ० ३७३

कंदुव माटल सामेत
लंदमुगा गूर्चि चेप्प नदि तेलुगुनकुं
बोंदै रुचियै वीनुल
विंदै मरि कानुपिंचु विबुधुल मदिकिन् ॥

(चमत्कार युक्त शब्दों का लोकोक्तियों के साथ प्रयोग करके यदि तेलुगु में काव्य लिखा जाय तो वह सहृदयों के लिए रोचक और कर्णप्रिय होता है।)

इन पद्यों से यह विदित होता है कि कवयित्री की काव्य भाषा संबंधी मान्यता यह है कि वह आसान तेलुगु भाषा में, जिसमें देशी शब्द अधिक हों, लिखा जाय। उन्हीं शब्दों के द्वारा मूल संस्कृत के भावों को सरसता के साथ अभिव्यक्त करना चाहिए। कवयित्री ने यद्यपि अपना यह मत प्रकट किया तो भी रामायण में प्रचुर मात्रा में संस्कृत शब्द भी आये हैं। किंतु वे दुर्बोध नहीं हैं। इससे यह व्यक्त होता है कि राम की कथा अब तक बहुत संस्कृत निष्ठ तेलुगु में लिखी गई है, इसलिए सरल तेलुगु में रामायण लिखना उनका उद्देश्य है। यह कथन संभवतः भास्कर रामायण को दृष्टि में रखकर किया गया हो जिसमें बहुत संस्कृत समास आ गये हैं और जो पंडितों की मार्ग शैली में लिखी गयी है। इस उद्देश्य में कवयित्री की पूर्ण सफलता मानी जा सकती है। उनकी सरलता केवल शब्दों तक ही सीमित नहीं बल्कि अभिव्यक्ति की शैली में भी देखी जा सकती है। उदाहरण के लिए राम के विरह की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है।

पलुमारु नीहस्त पल्लवंबुलचेत
नलिवेणि नाताप मार्पवेल
नलिनाक्षि ! परिरंभण क्रीड देल्चुनी
मदि नोप्पि ना नोप्पि मान्पवेल
चेलिय। योष्टामृत सेवकै नी यल्क
वडि दप्पि ना दप्पि गडपवेल
भाम ! दावानल परिताप मुडुपनी
तनुबु ना तनुवुन बेनचवेल

आ. **यनुचु सीत बिलुचु नंदंद परिकिंचु**
दिक्कु लालकिंचु निक्कि चूचु
दशरथात्मजुंडु तन्नु दा मरचुनु
बयलु कौंगिलिंचु बलुवरिंचु ॥

(हे ! अलिवेणी । अपने कर पल्लवों से मेरा स्पर्श करके ताप क्यों नहीं दूर करती ? हे नलिनाक्षी । अपना आलिंगन देकर मेरी व्यथा क्यों नहीं मिटाती ? हे सखी । अपना अधरामृत पिलाकर मेरी प्यास क्यों नहीं बुझाती ? हे भामा । अपना शरीर मेरे शरीर से लिपटाकर मेरा संताप क्यों नहीं शीतल करती ? यों सीता को बुलाते हुए इधर-उधर देखते हुए राम अपने आपको भूलकर शून्य का आलिंगन करते और प्रलाप करते थे ।)

उ. **कूरलु नोटिकिन् रुचुलु गूडुट दप्पेनु दुंपदूडु**
लुं गारमु तोचे जिह्वकुनु गम्मनितेनेलु चेदुलय्ये
गंगारये चित्तमंतयुनु गंटिकि निद्र दहिपदय्ये
शृंगारमेलर्प सीत बोडगानमि रामनृपाल मौलिकिन् ॥

(सीता के न दिखाई पड़ने पर राम को तरकारियों का स्वाद जाता रहा, कंदमूल भी कटु मिर्चीलि लगने लगे, मधुर शहद कडुवा लगने लगा, मन घबराने लगा और आँखों में नींद नहीं आती थी ।) (मो. रा. कि. २२-२४)

विरह के कैसे स्वाभाविक और सर्वसामान्य अनुभाव हैं ।

भावाभिव्यक्ति की ऐसी सरल शैली में ही मोल्ल रामायण की साहित्यिक सफलता है ।

अन्य राम काव्यों का साहित्यिक सौन्दर्य प्रायः इन्हीं के समान है ।

बारहवाँ अध्याय

हिन्दी और तेलुगु के राम साहित्यों की तुलना

ऐतिहासिक भूमिका:—

साहित्य पर तत्कालीन राजनैतिक व सामाजिक परिस्थितियों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव अवश्य पड़ता है जो उस भूभाग की ऐतिहासिक भूमिका पर प्रादुर्भूत होती हैं जहाँ वह साहित्य निर्मित होता है। हिन्दी का हमारा परिचित मध्यकालीन राम साहित्य भारत के जिस भूभाग में निर्मित हुआ उस पर प्रधान रूप से विदेशी मुसलमानों का शासन था। मुगलों के आगमन तक अनेक मुसलमान वंशों ने—जैसे खिलजी, तुगलक, लोदी आदि—एक-दूसरे के बाद भारत पर शासन किया। उस समय देश के जो हिन्दू राजा थे वे अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए मुसलमान शासकों से बराबर युद्ध करते थे। अतः वह समय राजनैतिक दृष्टि से संघर्ष का था।

भारत पर मुगलों का शासन सन् १५२६ से प्रारंभ हुआ था जब बाबर ने प्रथम पानीपत युद्ध में तत्कालीन दिल्ली के बादशाह इब्राहीम लोदी को हराया था। उसे और उसके पुत्र हुमायूँ को भी अपना शासन सुस्थापित करने के लिए तत्कालीन प्रबल राजपूतों की शक्ति से बहुत लोहा लेना पड़ा था जो अकबर के समय भी जारी रहा। अकबर ने बड़ी चतुरता के साथ चतुर्विध नीति का प्रयोग करके भारत पर अंततः अपना आधिपत्य जमाया जो अगले लगभग डेढ़ सौ वर्ष तक अविच्छिन्न रहा।[1] अनेक राजपूत राजाओं ने अकबर

---

१. डा० स्टेनली लेनपूल—मेडिवल इंडिया अंडर महमडेन रूल, पृ० २३८।

को अपनी कन्याएँ समर्पित की थीं और उसके कृपा पात्र बन गये ।[1] यही क्रम उसके पुत्र जहाँगीर के समय भी रहा था ।[2] जहाँगीर के बाद शाहजहाँ के समय में देश में शांति रही यद्यपि उसके अंतिम समय में साम्राज्य की प्राप्ति के लिए उसके पुत्रों में संघर्ष होने लगा था । उस संघर्ष में विजयी होकर औरंगजेब गद्दी पर बैठा और सन् १७०७ तक राज्य किया । अकबर ने अपने जिस मधुर व्यवहार से प्रायः सब हिन्दू राजाओं को अपने वश में कर लिया उसके अभाव और कठोर व्यवहार के कारण औरंगजेब के समय में ही साम्राज्य में विद्रोह फैल गये और परिणामतः उसका क्षय होने लगा ।[3] सन् १८५७ तक आते-आते मुगलशासन बिलकुल नामावशेष हो गया जब कि अँग्रेजों का शासन भारत पर सुस्थापित हो गया था ।

इस विदेशी और विधर्मी शासन का हिन्दी राम साहित्य पर प्रभाव पड़ा । राम के निर्गुण रूप को लेकर साधना संबंधी जो साहित्य कबीर आदि संतों के द्वारा निर्मित किया गया था उसमें 'राम' और 'रहीम' में अभेद दिखाया गया था । अपने समय में इस्लाम और हिन्दू धर्मों के बीच में जो झगड़े चलते थे उनको शांत करके जनता को सच्चा मार्ग दिखाने के लिए कबीर ने 'रहीम' के निर्गुणत्व की तुलना में उसके समकक्ष अध्यात्म रामायण आदि ग्रंथों के परंपरागत 'राम' के निर्गुत्व को ग्रहण किया और दोनों को भेद रहित बताया । इसके विपरीत दोनों के सगुणत्व को लेकर वे अपने आशय की पूर्ति नहीं कर सकते थे क्योंकि निर्गुण राम की सगुण लीलाओं के समक्ष निर्गुण 'रहीम' की सगुण लीलाएँ कहीं वर्णित नहीं थीं । दोनों धर्मों के आराध्य देवों में समानता दिखाये बिना उनमें धार्मिक सहिष्णुता स्थापित करना असंभव था । इसीलिए कबीर ने राम का निर्गुण रूप ग्रहण किया और कहा "दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना, राम नाम का मरम है आना ।" इस प्रकार हिन्दी के राम साहित्य पर मुसलमानी शासन का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा था । अब परोक्ष प्रभाव का जहाँ तक संबंध है उसमें पंडितों में मतभेद है । स्व० पं० रामचंद्र शुक्ल का मत है कि हिन्दी का भक्ति साहित्य इस्लाम की प्रतिष्ठा के कारण हताश हुई हिन्दू जाति की राजनीतिक विवशता का परिणाम है ।[4]

---

१. डा० स्टेनली लेनपूल—मेडिवल इंडिया अंडर महमडेन रूल, पृ० २५१ ।

२. प्रो० बेनीप्रसाद—हिस्ट्री आफ जहाँगीर—पृ० ३० ।

३. श्री एस० आर० शर्मा—मुगल एंपाइर इन इण्डिया ।

४. स्व० पं० रामचंद्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास—भक्तिकाल ।

इसके विपरीत डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपना यह मत स्थापित किया है कि हिन्दी का भक्ति साहित्य पराजित हिन्दू जाति का विवशता जन्य साहित्य नहीं, बल्कि उनकी स्वाभाविक और परम्परागत चिंतन धारा का परिणाम है। अगर इस्लाम यहाँ नहीं आया होता तो भी इस साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा कि आज है।[१] पं० रामचंद्र शुक्ल के अनुसार विदेशी मुसलमानी शासन का परोक्ष प्रभाव हिन्दी के भक्ति साहित्य पर पड़ा था। वेद काल से लेकर भक्ति की जो धारा बहती आयी है उसको देखते हुए हिन्दी के भक्ति साहित्य को विधर्मी शासन का परिणाम मानने की आवश्कता नहीं है। इतना ही नहीं, दक्षिण में जहाँ मुसलमानों का शासन बहुत बाद में हुआ था भक्ति साहित्य का निर्माण शैव और वैष्णव धर्मों में हो चुका था। उसका प्रभाव जो कुछ रहा प्रत्यक्ष रहा जो ऊपर दिखाया गया है।

राजनीतिक व सामाजिक परिस्थितियाँ:—

हिन्दी राम साहित्य की कथा वस्तु प्रागैतिहासिक, पौराणिक और पूर्व प्रसिद्ध है और वह प्राय: धार्मिक व आध्यात्मिक परिपार्श्व में प्रतिपादित की गई थी यद्यपि इसके अपवाद स्वरूप रामचंद्रिका है जो रीत्यात्मक दृष्टिकोण से लिखी गई थी। अत: तत्कालीन ऐतिहासिक संघर्ष व शासन व्यवस्था का प्रत्यक्ष प्रभाव उस पर नगण्य है। मुगल शासकों की विलासप्रियता और परम्परा भारतीय संस्कृति की उपेक्षा करनेवाली राजनीति के कारण समाज में जो उच्छृंखलता आ गयी थी उसका प्रभाव मध्यकालीन राम साहित्य पर दिखायी पड़ता है।[२] जहाँ तक धार्मिक परिस्थितियों का संबंध है यह कहा जा सकता है कि मुसलमानों के भारत में आने के पहले जैनों और बौद्धों का वैदिक धर्म पर पूरा आघात हो चुका था।[3] बाद में सायण, कुमारिल भट्ट, शंकराचार्य आदि आचार्यों ने यद्यपि उसको बचाने का प्रयत्न किया था तथापि बौद्धधर्म के अवशिष्ट रूप और जाति धर्म विशेष विहीन संतमत ने भारतीय समाज को बड़ा धक्का पहुँचाया था। दूसरी ओर नाथपंथी, हठयोगों सिद्धों का प्राबल्य था जो जनता को वस्तविक भक्ति की ओर से हटाकर मंत्र तंत्रों के जाल में फँसाना चाहते थे और परम्परागत वर्णाश्रम व्यवस्था को छिन्नभिन्न करना

---

१. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य की भूमिका, १, २ अध्याय
२. श्री दिनकर—संस्कृति के चार अध्याय—पृ. २५६।
३. श्री राजपति दीक्षित—तुलसीदास और उनका युग, पृ. ८

चाहते थे।[1] इन सबके प्रभाव में आकर बहुत सी छोटी जातियों के लोग धीरे-धीरे मुसलमान बनने लगे। काशी की जुलाहा जाति पहले नाथ पंथ को मानने वाली थी। किंतु हिन्दू धर्म की कठोर वर्ण व्यवस्था के कारण उपेक्षित रही और अंत में मुसलमान बन गई।[2] इनके अतिरिक्त 'अलख' जगाने वाले साधु भी पर्याप्त संख्या में पाये जाते थे जो जनता को पथ भ्रष्ट कर रहे थे।[3] ये सब मिलाकर परम्परागत वैदिक धर्म को चारों ओर से धक्का लगा रहे थे जिसकी ओर गोस्वामी तुलसीदास ने स्वयं संकेत किया था—

> **साखी सबदी दोहरा कहि कहनी उपखान।**
> **भगति निरूपहिं भगत कलि निंदहिं वेद पुरान ।।**
> **बादहिं शूद्र द्विजन्हसन हम तुम ते कछु घाटि।**
> **जानहि ब्रह्म सो विप्रवर आँख देखावहि डाँटि ।।**

(रा. मा. उ. ९९ ख)

इस उच्छृंखलता का परिणाम-लौकिक जीवन के विभिन्न दुखों के रूप में दिखाई दे रहा था जिनको दूर करने के लिए लोकनायक और सुधारक के रूप में आकर तुलसीदास ने समाज को अपने रामचरित मानस का भक्तिरस का अमृत पिलाया था। इसके साथ उन्होंने उस समय फैली हुई हिन्दू धर्म की उपशाखाओं, शैव और वैष्णव धर्मों का भी समन्वय करके उनका भेद भाव दूर किया था।

अब इसकी तुलना में आंध्र देश के इतिहास को देखें तो सबसे बड़ा अंतर यह दिखायी पड़ता है कि उस पर राम साहित्य निर्माण के प्रारंभ तक मुसलमानों का आक्रमण नहीं हुआ। उस पर कई हिन्दू राजाओं का ही शासन चलता था जिनमें काकतीय वंश के राजा बड़े प्रबल थे। उनमें प्रसिद्ध गणपति देव ने (सन् ११९८-१२६२) अपने चारों ओर के तेलुगु नरेशों को जीतकर विशाल काकतीय साम्राज्य को सुस्थापित किया जो सन् १३२३ तक उन्नति पर था जब उस समय के दिल्ली के सुल्तान तुगलक ने उसके महाराज द्वितीय प्रतापरुद्र को हराकर कैदकर लिया था। तबसे लेकर आँध्र देश के इतिहास में एक नया अध्याय खुल गया था। गणपति देव के समय में नेल्लूर मंडल का राज्य भी उनका कृतज्ञ बन गया था क्योंकि गणपति देव की सहायता से ही उसके राजा

---

१. श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य, पृ. १०१।
२. वही, पृ. १०१
३. वही, पृ. २३१।

चौडवंश के मनुमसिद्धि ने ज्ञाती शत्रुओं के हाथ से अपने खोये हुए राज्य को पुनः प्राप्त किया। यही मनुमसिद्धि कवि ब्रह्म तिक्कन्न के आश्रयदाता थे जिन्होंने तेलुगु के सर्वप्रथम राम काव्य 'निर्वचनोत्तर रामायण' लिखा था।[1] ये सब राजा हिन्दू थे और इनके शासन में यहाँ के धर्मों को इस्लाम का सामना करना नहीं पड़ा जैसा उत्तरभारत में हिंदू धर्म को करना पड़ा।

काकतीय साम्राज्य के विच्छिन्न होने के बाद मुसलमानों के साथ जूझते हुए रेड्डी और पद्मनायक राजाओं ने आँध्रदेश का शासन किया और इस्लाम से हिंदू धर्म की रक्षा करते रहे। थे लोग काकतीयों के समय उनके सामंत या दंडनायक रहकर देश की सेवा करते थे। दक्षिण में हिन्दू धर्म और संस्कृति आज भी इसलाम के प्रभाव से जो बच रही उसका बहुत कुछ श्रेय इन्हीं राजाओं को है। ये बड़े विद्वान और कलाप्रेमी थे। इनके समय में (सन् १३२४-१४३०) आँध्र अद्दंकि, कोंडबीडु, कोरूकोंड, राजमहेंद्रवरम्, कंदुकूरू, रायकोंड, देवरकोंड आदि छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था। इनके अनन्तर आँध्र के क्या, प्रायः सारे दक्षिण में वह समय आता है जो सब दृष्टियों से स्वर्णयुग कहा जा सकता है। यह विजयनगर राजाओं का समय था (सन् १३५०-१६४६) जिनमें श्रीकृष्णदेवराय सर्वप्रसिद्ध थे। (सन् १५०९-१५३०) इन राजाओं ने भी बड़ी वीरता के साथ पड़ोसी बहमनी राज्य के सुल्तानों का सामना करते हुए हिंदु धर्म ब संस्कृति की रक्षा की। श्रीकृष्णदेवराय बड़े वीर, योग्य शासक और प्रजावत्सल थे। वे स्वयं तेलुगु और संस्कृत के बड़े पंडित व कवि थे। तेलुगु पंच महाकाव्यों में एक 'आमुक्त माल्यदा' इन्हीं की रचना है जो वैष्णव धर्म प्रतिपादक है। इनकी सभा में 'अष्टदिग्गज' नाम से आठ प्रसिद्ध कवि रहते थे। श्रीकृष्णदेवराय के पांडित्य और साहित्य प्रियता के कारण उनको 'आँध्र भोज' कहा जाता है। विजयनगर साम्राज्य के भाग्य का निर्णय करनेवाला 'तालिकोट' का युद्ध सन् १५६५ में हुआ था जिसमें विजयनगर के राजा पराजित हुए और बाद में देश फिर छोटे राज्यों में बँट गया। उत्तरी आँध्र में मुसलमान शासकों और दक्षिणी आँध्र में नायक राजाओं के राज्य स्थापित हुए। उत्तरी आँध्र में गोलकोंड के सुल्तानों में बहुत से तेलुगु के विद्वान भी थे और कई तेलुगु काव्यों के कृतिपति थे। हमारे आलोच्य काल के प्रसिद्ध रामभक्त रामदास, अबुल हसन कुतुबशाह के समय में (सन् १६५८-१६८७) उनके

---

१. श्री रवं लक्ष्मीरंजनम्—आंध्रुल चरित्र-संस्कृति-पृ. २५५-२५६।

राजकर्मचारी थे। आलोच्य काल के यक्षगान 'सुग्रीव विजय' के कवि रुद्रकवि को 'गोलकोंड' के प्रसिद्ध सुल्तान इब्राहीम कुतुबशाह ((सन् १५५०-१५८०) ने एक 'अग्रहार' (गाँव) दान में दिया था। नायक राजाओं ने 'तंजाऊर' और मदुरा राज्यों का शासन किया जिनमें तंजाऊर के रघुनाथ नायक बहुत प्रसिद्ध हुए। वे स्वयं अच्छे कवि थे और कई कवियों को भी आश्रय दिया था।[1] (सन् १६१४-१६३३) यह संक्षिप्त ऐतिहाहिक भूमिका थी जिसमें तेलुगु का मध्यकालीन राम साहित्य निर्मित हुआ था।

इस संक्षिप्त परिचय से यह विदित होता है कि आलोच्य काल के आँध्र देश के राजा प्रायः सब हिंदू थे, अपवाद के रूप में आते हैं केवल गोलकोंड के सुल्तान। इसी समय उत्तर भारत में जैसा दिखाया गया है, मुसलमानों का प्राबल्य रहा। आँध्र में राजाओं के हिंदू होने के कारण धार्मिक दृष्टि से समाज पर कोई विधर्मी और अवांछित प्रभाव नहीं पड़ा जैसे उत्तर भारत पर पड़ा था। इसलिए आँध्र में प्राचीन हिन्दू धर्म उत्तर की अपेक्षा अधिक अक्षुण्ण रह सका। यद्यपि 'गोलकोंड' में मुसलमान शासक राज्य करते थे तो भी हिंदू धर्म को उन्होंने उतनी क्षति नहीं पहुँचायी जितनी उत्तर के मुसलमानों ने पहुँचायी। काकतीय वंश के राजा शैव थे। रेड्डी और पद्मनायक राजा स्मार्त थे। विजयनगर, तंजाऊर और मदुरा के शासक वैष्णव थे। ये सब हिंदू धर्म की ही उपशाखाओं के थे। इस कारण उनमें यह विशेषता पायी जाती है कि उन सबमें पायः धार्मिक सहिष्णुता थी। इसका प्रमाण यही है कि इन शासकों के समय शैव और वैष्णव काव्य समान रूप से लिखे जाते थे। यह प्रसिद्ध है कि काकतीय वंश के प्रसिद्ध गणपति देव ने शैव होते हुए भी तिक्कन्न से महाभारत सुनकर उनका बड़ा सत्कार किया था।[2] प्रसिद्ध वैष्णव धर्मावलंबी कृष्णदेवराय के अष्ट दिग्गजों में तेलुगु के प्रसिद्ध कवि 'धूर्जटि' थे जिन्होंने 'काव्यहस्तीश्वर महात्म्यमु' और 'काव्यहस्तीश्वर शतक' लिखा था। इस प्रकार शैव और वैष्णव धर्मों के होते हुए भी उनको माननेवाले शासकों की उदारता के कारण स्मार्त संप्रदाय की ही प्रायः सारे देश में प्रधानता रही जो आलोच्य काल के राम साहित्य में मिलती है। हाँ, कुछ समय तक काकतीयों के समय में शैवों और

---

१. श्री रवं लक्ष्मीरंजनम्—आंधुल चरित्र संस्कृति के आधार पर।
२. कासे सर्वप्प—सिद्धेश्वर चरित्र
कूचिमंचि जग्गकवि—सोमदेव राजीयमु

जैनों में धार्मिक संघर्ष चले थे और वीर शैव धर्म भी जोरों पर था। वीर शैव धर्म का आलोच्यकाल के राम साहित्य पर धार्मिक दृष्टि से कोई प्रभाव नहीं पड़ा, किंतु साहित्यिक दृष्टि से उसकी छंद शैली का प्रभाव पड़ा, प्रधानतः रंगनाथ रामायण पर । विधर्मी परिस्थितियों के अभाव के कारण समाज के वैदिक धार्मिक दृष्टिकोण में कोई अन्तर नहीं आया और जनता के सामने परम्परागत धार्मिक आदर्श अक्षुण्ण रहा। इसके विपरीत उत्तर भारत में परस्पर विरोधी धर्मों का संघर्ष-हिंदू और इस्लाम-दिखाई पड़ता है। उत्तर के मुसलमान शासकों की विलासप्रियता ने वहाँ के जनसमाज को भी विलास प्रिय और आदर्शविहीन बना दिया । किंतु आँध्र देश में यह बात नहीं थी। यहाँ के हिन्दू शासकों ने मुसलमानों की शक्ति को आलोच्य काल में बहुत सीमित कर दिया था जिसका परिणाम यह हुआ कि उत्तर में हिन्दू धर्म को इस्लाम से जितना गहरा धक्का लगा उतना आँध्र में नहीं लगा।

भक्ति आंदोलन का प्रभावः—

भारतीय संस्कृति में भक्ति का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। वेदकाल से लेकर जबसे भारतीय संस्कृति का निर्माण होने लगा था, भक्ति का विकास बराबर होता आ रहा है। आचार्य प्रवर पं० नन्ददुलारे वाजपेयी जी लिखते हैं कि वेदों में भक्ति की आरंभिक तथा मूलवर्ती रूपरेखा उपलब्ध होती है।[1] डा० वेणीप्रसाद ने भी कहा है कि हिन्दू भक्ति संप्रदाय का आदि स्रोत ऋग्वेद है।[2] अपने उसी ग्रंथ में श्री आचार्य जी भक्ति के विकास का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि वेदों में बीज रूप में पायी जाने वाली भक्ति आगे चलकर उपनिषद काल में, रामायण और महाभारत, तथा पुराणकाल में सम्यक् रूप से विकसित हुई जिसका सुन्दर रूप भागवत पुराण में मिलता है।[3] भक्ति को लेकर अनेक भक्ति सूत्रों की भी रचना की गई है।

किंतु इस भक्ति विशिष्ट हिन्दू धर्म पर जैन और बौद्ध धर्मों के द्वारा बड़ा आघात होने लगा जिसमें आगे चलकर इस्लाम का भी हथौड़ा थोड़ा पड़ने लगा। जैन और बौद्ध धर्मों से वैदिक हिन्दू धर्म की रक्षा करने का बहुत

---

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—महाकवि सूरदास, पृ० ४।
२. डा० वेणीप्रसाद—हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता—पृ० ४२।
३. आचार्य श्री नन्ददुलारे वाजपेयी—महाकवि सूरदास—भक्ति का विकास,

कुछ सफल प्रयत्न ई० सातवीं और आठवीं शताब्दियों में कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य के द्वारा किया गया था। उनके बाद दसवीं शताब्दी में स्वामी रामानुजाचार्य के द्वारा भक्ति मार्ग का दक्षिण में प्रवर्तन किया गया जो स्वामी रामानंद के द्वारा संवत् चौदहवीं शताब्दी में उत्तर में व्याप्त किया गया था।

भक्ति के क्षेत्र में शंकराचार्य का दृष्टिकोण अद्वैत भावनामूलक ज्ञान प्रधान था और रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत मूलक भक्ति प्रधान। इनके अनंतर मध्वाचार्य, निंबार्काचार्य, वल्लभाचार्य आदि ने अपने-अपने, द्वैताद्वैत और शुद्धाद्वैत मूलक विशिष्ट दृष्टिकोणों से भक्ति का आंदोलन चलाया।[1] इनमें स्वामी रामानंद और वल्लभाचार्य के भक्ति आंदोलन ने विशेषत: मध्य-कालीन हिन्दी साहित्य को बहुत प्रभावित किया। हमारे आलोच्य राम साहित्य पर स्वामी रामानंद के आंदोलन का प्रभाव पड़ा है जैसा कि छठे अध्याय में दिखाया गया है। उनके शिष्य कबीर ने निर्गुण राम की उपासना को ग्रहण किया और उनकी शिष्य परंपरा में हुए तुलसीदास ने सगुण दशरथ राम को ग्रहण किया और अपने समय में प्रचलित उपरोक्त सब मत मतांतरों का समन्वय करके बाद निरपेक्ष विशुद्ध राम भक्ति का उपदेश दिया जो साधन की अपेक्षा साध्य अधिक थी। इसी दृष्टि से उन्होंने वाल्मीकीय रामकथा को प्रधान आधार मानकर अन्यान्य अनेक ग्रंथों से मधु संचय करके अपनी कृतियों के द्वारा जनता के प्यासे हृदयों को आदर्श भक्ति रसामृत प्रदान किया। तुलसीदास का यही विशिष्ट राम साहित्य प्राय: आलोच्य काल के समस्त राम साहित्य का आदर्श बन गया और उसी का उसमें अनुगमन किया गया यद्यपि तुलसी की सी अनुभूति के अभाव के कारण वह उतना प्रभावोत्पादक नहीं बन सका और फलत: तुलसीदास उसके एकच्छत्राधिपति बन गये। छठे अध्याय के वस्तुगत अध्ययन से यह भी विदित होता है कि इस क्षेत्र में सूरसागर का प्रभाव भी तुलसी पर पड़ा था। हाँ, जहाँ तक भक्ति का संबंध है तुलसी स्वतंत्र थे। भक्त कवियों के अग्रणी कबीर, सूरदास और तुलसीदास यद्यपि अपनी भक्ति के विभिन्न रूपों की दृष्टि से एक दूसरे से पृथक दिखाई पड़ते हैं तथापि तत्वत: तीनों एक ही आध्यात्मिक सत्य मार्ग के यात्री थे जिनका गंतव्य स्थान एक ही था, चाहे वह निर्गुण राम कहा जाय या सगुण राम अथवा

---

१. आचार्य श्री नन्ददुलारे वाजपेयी—महाकवि सूरदास—अध्याय दूसरा।

प्रेममय श्रीकृष्ण ।[1] भक्ति की यह तात्विक एकता हिन्दी राम साहित्य का मेरुदंड है ।

वल्लभाचार्य के द्वारा प्रवर्तित पुष्टि मार्गीय कृष्णभक्ति जिस मधुर रूप में सूरसागर में प्रतिपादित की गयी है उसने तुलसी के समकालीन स्वामी अग्रदास जी के द्वारा प्रवर्तित राम की मधुर भक्ति को आगे चलकर बहुत प्रभावित किया जिसका विकसित रूप प्रायः हमारे आलोच्य काल के बाद ही मिलता है । उसमें राधाकृष्ण की युगल मूर्ति के समान सीताराम की जोड़ी की श्रृंगारात्मक उपासना की जाने लगी और तदनुकूल साहित्य निर्मित किया जाने लगा । इन तीनों धाराओं में प्राप्त राम साहित्य का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि उसका प्रधान स्रोत भक्ति भावना है और रामकथा के अन्य पक्ष उसके अंग मात्र हैं ।

अब तुलनात्मक दृष्टि से यदि देखा जाय तो विदित होता है कि तेलुगु के रामसाहित्य को भक्ति आंदोलन ने प्रभावित नहीं किया था । उत्तर भारत के समान उस समय आंध्र में—ग्यारहवीं शताब्दी—और शैव धर्म के आंदोलन को छोड़कर और किसी भक्ति का आंदोलन नहीं चला । उसका कारण यही था कि कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य के द्वारा पुनः प्रतिष्ठित वैदिक धर्म, जिसमें भक्ति, ज्ञान और कर्म का समावेश है, अक्षुण्ण रहा । इतना ही नहीं बल्कि उस समय उत्तर भारत में जितने पंथ—नाथ पंथ आदि—अपनी ओर जनता को आकर्षित कर रहे थे उतने आंध्र में नहीं । इसलिए जनता के सामने वैदिक धर्म का आदर्श बना रहा जो नन्नय के द्वारा महाभारत की रचना में साहित्य में अवतरित किया गया था । इसलिए रामानंद और वल्लभाचार्य जैसे भक्ति प्रवर्तकों का आविर्भाव भी नहीं हुआ । यद्यपि वल्लभाचार्य आँध्र से तथापि उनकी भक्ति पद्धति ने उत्तर भारत को ही इस काल में प्रभावित किया था । तेलुगु राम साहित्य के कवियों ने अपने वैदिक धर्म का आदर्श वाल्मीकि रामायण में ही देखा और अधिकतर उसी का अनुसरण किया यद्यपि सीमित यात्रा में अन्य ग्रंथों का भी थोड़ा प्रभाव ग्रहण किया, सो भी साहित्यिक दृष्टि से । तेलुगु के प्रथम राम काव्य में तिक्कन्न का आदर्श नृपोत्तम राम का ही चित्रण है जिसमें मानवता का दृष्टिकोण प्रोज्जवल है । अनंतर कालीन राम कवियों में भी यही दृष्टिकोण परंपरागत भक्ति और साहित्यिकता से युक्त

---

१. आचार्य श्री नन्ददुलारे वाजपेयो, महाकवि सूरदास, पृ० ९५ ।

होकर दिखायी पड़ता है। हाँ, पोतन्न के श्रीरामचरित में, जो आंध्र भागवत का अंत है अद्वैत मूलक ज्ञानप्रधान भक्ति की झलक कुछ अधिक दिखाई पड़ती है। दार्शनिक सिद्धांत की दृष्टि से उन्होंने भागवत की श्रीधरीय व्याख्या का अनुसरण किया। आगे के राम काव्यों में भी यही परंपरागत भक्ति मिलती है जो किसी भक्ति आंदोलन का प्रभाव नहीं है। पोतन्न की भक्ति भी किसी आंदोलन का प्रभाव नहीं, बल्कि स्वानुभूत भक्ति थी। सामूहिक रूप से कहा जा सकता है कि तेलुगु का राम साहित्य साहित्यिकता प्रधान है। यही कारण है कि उसमें तुलसीदास जैसे भक्ति साधक कवि कोई नहीं मिलते जिन्होंने साधनात्मक दृष्टि से रामकथा लिखी हो।

साहित्यिक व सांस्कृतिक तुलना:—

साहित्य को यदि इहलौकिक मानव जीवन का स्वाभाविक वाणीगत अन्तर और बाह्य चित्रण मान लिया जाय तो विदित होता है कि हिंदी का अधिकतर अथवा प्रधान राम साहित्य स्वाभाविक मानवता की सीमा से आगे बढ़कर पाठक को अलौकिक देवत्व की ओर ले जाने वाला सिद्ध होता है क्योंकि उसका निर्माण आध्यात्मिक व भक्ति की नींव पर हुआ है जिसका ज्वलंत उदाहरण रामचरित मानस में दिखायी पड़ता है जो हिन्दी राम साहित्य का मुकुट है। कहने का आशय यह है कि उसमें भक्ति और आध्यात्मिकता विशिष्ट दिव्य मानव चेतना के दर्शन होते हैं और इहलौकिकता गौण बन जाती है। अत: उसका प्रधान रस भक्ति रस है और अन्य रस उसके अंगभूत हैं जैसा कि अब तक के अध्ययन से स्पष्ट होता है। इसके विपरीत तेलुगु के राम साहित्य को यदि देखें तो ज्ञांत होता है कि वह अधिकतर मानवजीवन की स्वाभाविकता की परिधि में ही रहकर पाठक के हृदय को स्पंदित करता है और वहीं से उसे भक्ति की झाँकी दिखाता है। अत: उसमें विशुद्ध साहित्यिक रस परंपरा गत भक्ति सौरभ को लेकर भरा हुआ है। साहित्यिक दृष्टि से इसमें भक्ति आनुषंगिक हैं। इस दृष्टि से वह वाल्मीकि रामायण का हिंदी राम साहित्य की अपेक्षा अधिक अनुसरण करता है। दोनों भाषाओं में चित्रित दो तीन पात्रों और और घटना सन्निवेशों का संक्षेप में अवलोकन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

कौसल्या:—

राममरित मानस में इनका चरित्र जिस दिव्य रूप में मिलता है उस रूप ये अन्यत्र अलभ्य है। इसमें वे साधारण नारी सुलभ दुर्बलताओं से युक्त

रानी नहीं हैं बल्कि असाधारण दिव्य और अकल्पनीय उदारता की भव्य मूर्ति हैं। वे बालकांड में वर्णित कथाओं के अनुसार शतरूपा और अदिति का अवतार हैं। राम के वनगमन की बात सुनकर वे जिस गंभीरता का परिचय देती हैं वह उनके आत्म संयम और उच्च व्यक्तित्व का परिचायक है। यद्यपि वे थोड़ी देर के लिए अवाक् रह जाती हैं और सिंहनाद से भयभीत मृगी की भाँति थर थर काँपने लगती हैं तथापि धैर्य धारण कर गद्गद वचन कहती हैं। सारा वृत्तांत सुनकर उनकी गति साँप छुछूँदर की सी हो जाती है क्योंकि उनकी मति पत्नी-धर्म और पुत्र-वात्सल्य दोनों से घिरी है। वे अपने उदार चरित्र के अनुरूप राम और भरत को समान मानती हैं और धैर्य धरकर कहती हैं कि "पितु आयसु सब धरमक टीका।" कौसल्या के मूक अंतस्संघर्ष में पत्नी धर्म की विजय हुई है। किंतु मातृत्व की पराजय नहीं हुई। सौत के पुत्र भरत को भी राम के समान समझने में उनके मातृत्व की पराकाष्ठा दिखाई पड़ती है। उनके हृदय की विशालता का परिचय तब मिलता है जब वे कहती हैं—

राजु देन कहि दीन्ह बनु मोहि न सो दुख लेसु।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचंड कलेसु॥

(रा. मा. अयो. ५५)

उनको राम के वन वास का भी दुख नहीं था। उनको चिंता थी उस भरत के क्लेश की जिनके कारण अपने प्रिय पुत्र राम को वनवास मिला और उस दशरथ के दुख की जिसने वचन बदलकर राज्य के बदले वनवास दिया था। इसके साथ राम के वियोग में दुखी होने वाली प्रजा की चिंता भी उन्हें सता रही थी। यह कौसल्या की विश्वजनीनता का प्रमाण है। उनके पत्नी धर्म की उदारता की पराकाष्ठा तब दिखायी पड़ती है जब वे अपनी ईर्ष्यालु सौत को अपने स्थान में रखकर कहती हैं—

जौ पितु मात कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥

(रा०मा० अयो०५५-१)

जिस सौत ने इतना बड़ा अहित किया उसको इतना मान देनेवाली देवोपम नारी की सृष्टि करना केवल भक्त तुलसीदास से ही संभव हो सकता है। इतना आत्म त्याग आलोच्य काल के हिन्दी राम साहित्य की किसी भी कौसल्या में दुर्लभ है। यही विशेषता आगे भी उनके चरित्र में लक्षित होती है। (रा. मा. अयो. ५३-१-५६)

कौसल्या का यह चित्र उससे सर्वथा भिन्न है जो वाल्मीकि रामायण में मिलता है। वाल्मीकि की कौसल्या नारी सुलभ दुर्बलताओं से युक्त है। उसमें तुलसी की कौसल्या के से अनुपम गुण नाम को भी नहीं मिलते। वाल्मीकि की कौसल्या राम के वन गमन का समाचार सुनकर मूर्च्छित होती है, बहुत दुख करती है, कैकेयी की निंदा करती हैं और पति की भी निंदा करती हैं। यह सब मातृवात्सल्य के कारण जो राम तक ही सीमित रहता है। इसमें मानव हृदय की स्वाभाविकता झलकती है जो तुलसी की कौसल्या के देवत्व से विजित होती है। तुलसी के इस परिवर्तन का कारण उनका और उनके सब पात्रों का आध्यात्मिक दृष्टिकोण है जिसके सामने सियाराम विहीन सारा जगत तुच्छ है।

अब इसकी तुलना में यदि देखा जाय तो विदित होगा कि तेलुगु राम साहित्य के प्रधान ग्रंथ रंगनाथ रामायण और भास्कर रामायण की कौसल्या वाल्मीकि की कौसल्या से भिन्न नहीं है। वाल्मीकि की कौसल्या में नारी सुलभ जो दुर्बलताएँ पायी जाती हैं वे सब तेलुगु राम साहित्य की कौसल्या में भी पायी जाती हैं। वह भी वाल्मीकि की कौसल्या के समान स्वाभाविक मानवता की सीमा में बँधी हुई है। (रं. रा.अयो. ४४३-५१०) इसका कारण यही है कि तेलुगु के राम कवियों की दृष्टि से साहित्यिक थी, न कि आध्यात्मिक यद्यपि उन्होंने भी राम को परब्रह्म और सीता को आदि शक्ति माना था। इसलिए उन्होंने विषय प्रतिपादन में वाल्मीकि का ही अनुसरण किया था। तुलसीदास के समान उनको जनता में राम भक्ति का प्रचार करने की आवश्यकता नहीं थी।

इसी प्रकार 'मानस' के अन्य पात्र भी वाल्मीकि के पात्रों से भिन्न होकर प्रधानतः परब्रह्म राम के भक्त हैं जहाँ तेलुगु राम साहित्य के सब पात्र वाल्मीकि के साँचे में ढले हुए हैं। हिन्दी राम साहित्य में रामचंद्रिका को छोड़कर प्रायः अन्य सब ग्रंथों में 'मानस' का ही न्यूनाधिक मात्रा में अनुकरण किया गया है। 'मानस' में यदि कोई पात्र साधारण मानवीय स्वाभाविकता के साथ चित्रित है तो वह मंथरा का है यद्यपि उसके प्रवेश में अध्यात्म रामायण के आधार पर अलौकिकता का सहारा लिया गया है।

रामायण में मंथरा का प्रवेश ऐसी प्रमुख घटना है कि जिसने राम की जीवन धारा में ऐसा मोड़ उपस्थित कर दिया था कि उसका प्रवाह अदृष्ट उद्देश्य की ओर अग्रसर हो गया। यदि राम के युवराजाभिषेक के अवसर पर

मंथरा का प्रवेश न होता तो राम का जीवन कुछ और ही प्रकार का होता, रामायण की कथा ही संभवतः नहीं होती। इस प्रकार कथा विकास की दृष्टि से रामायण में मंथरा के पात्र की बड़ी विशिष्टता मानी जानी चाहिए यद्यपि जन्म, स्वभाव और कर्म से नीच तथा निमित्त मात्र हैं। वाल्मीकि रामायण में उसको "ज्ञातिदासी यतो जाता कैकेय्या तु सहोषिता" अर्थात् पितृगृह से आई हुई और अज्ञात कुलोत्पन्ना और कैकेयी की दासी कहा गया है और उसका वर्णन पापदर्शिनी और भेदभाव पैदा करनेवाली वाक्य विशारदा के रूप में किया गया है। वह स्वभावतः ईर्ष्यालु है और केवल अपनी स्वामिनी और उसके पुत्र भरत का ही भला चाहती है क्योंकि उनकी भलाई में ही उसकी भलाई निहित है। इसलिए ठीक समय पर आकर वह राम की जीवन सरिता का दिशा निर्देशन कराने में एक मात्र गुप्त कारण बनकर सफल हो जाती है।

वाल्मीकि रामायण में जिस स्वाभाविक और प्रभावोत्पादक ढंग से उसका चित्रण किया गया है तदनन्तर के रामकाव्यों में पर्याप्त अंतर आ गया है। इसका कारण यह है कि रामायण की रचना में वाल्मीकि और परवर्ती कवियों के दृष्टिकोण में भिन्नता है जो उत्तरोत्तर बढ़ती हुई राम के प्रति भगवद्विषयिक भक्ति भावना के विकास का परिणाम है। इतना ही नहीं, रामचरित को लेकर परवर्ती काल में काव्य शैली में जो साहित्य निर्मित हुआ है उसमें अव्यापकता और निमित मात्रता की दृष्टि से भी मंथरा को बहुत कम स्थान दिया गया है। किसी-किसी काव्य में उसका प्रवेश ही नहीं कराया गया और सीधे कैकेयी को ही राम के निर्वासन का कारण बनाया गया।

'मानस' में अध्यात्म रामायण के अनुसार देवताओं से प्रार्थित होकर सरस्वती मंथरा की मति फेर देती है जिससे वह रामवनगमन का कारण बनती है। प्रारंभ में तुलसीदास मंथरा की आलोचना करते हुए उसका प्रवेश कराते हैं—

नाम मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि।
अजस पिटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि॥

कैकेयी की दासी मंदमति मंथरा बड़े ही स्वाभाविक ढंग से नारी चरित करके कैकेयी का मन फेर देती है और राम को वन भिजवाने में सफल होती है। इसमें मंथरा के चरित्र का जो विकास दिखाई पड़ता है वह बहुत ही मार्मिक और प्रभावोत्पादक है। मनोवैज्ञानिक धरातल पर मानस का यदि कोई पात्र

मानवोचित स्वाभाविकता के साथ चित्रित हुआ है तो वह मंथरा का ही है यद्यपि उसके प्रवेश का कारण सरस्वती की माया है।

राम के राजतिलक की बात सुनकर मंथरा के हृदय में जलन पैदा होती है और उसमें विघ्न डालने की उसकी इच्छा होती है। वह उस कुटिल भीलनी के समान थी जो मधु के छत्ते को लगा देखकर उसे लेने की ताक में रहती है। इस तरह जलते हृदय को लेकर वह कैकेयी के पास जाती हैं और 'नारि चरित' करके रोने लगती है। वह कैकेयी के प्रश्न का कोई उत्तर नहीं देती। तब कैकेयी हँसते हुए कहती है कि तू बड़ी वाचाल है और इसलिए लक्ष्मण ने कुछ दंड दिया होगा। कैकेयी की इस बात से मंथरा को दुख ही नहीं पहुँचता बल्कि उसके कुटिल अभिमान को चोट भी लगती है। तभी वह बोल उठती है "कत सिख देइ हमहिं कोउ माई"। अपने अभिमान की रक्षा करते हुए इतना कहकर तुरंत असली बात पर आ जाती है और दुख मिश्रित ताना भरे स्वर में कहती है, "गालु करब, केहि कर बलु पाई"। आगे अपनी सारी ईर्ष्या और दुख एक वाक्य में समेटकर अपने कुटिल स्वभाव का परिचय देते हुए कहती है कि राम को छोड़कर आज किसकी कुशल है जिसे महाराज युवराज बनाते हैं ? विधि आज कौसल्या के अनुकूल है। उनका गर्व हृदय में नहीं समाता। इन शब्दों में जितनी होशियारी के साथ वह राम के युवराजाभिषेक की सूचना देकर कैकेयी के मन में सौतिया डाह के बीज बोती है वह उसकी वक्रबुद्धि और कुटिल नीति का द्योतक है जो काने, कूबरे आदि विकलांग लोगों की प्राय: सामान्य विशेषता है। ऐसे लोग तो ऋजुमार्ग से सोच ही नहीं सकते। आगे कैकेयी को उलाहना देती हुई कहती है कि तुम्हारा पुत्र विदेश में है जिसका तुम्हें कुछ भी सोच नहीं। तुम यही समझे बैठी हो कि महाराज वश में हैं। तुम्हें तो तोशक तकिये से सजी सेज पर सोना बहुत पसंद है। किंतु महाराज की कुटिलता नहीं समझती। यों कहकर वह कैकेयी के मन में दशरथ की ओर से बड़ी सावधानी और चतुराई के साथ-साथ भेदभाव पैदा करती है। इस पर कैकेयी बड़ी क्रोधित होती है और उसे घर फोरी कहकर उसकी जीभ खिचवाने की धमकी देती है। किंतु मंथरा का आँसू बहाना और चतुरता भरी बातें कैकेयी के मन पर अपना प्रभाव डालकर ही रहते हैं। तभी वह तुरंत कहती है कि वह दिन बड़ा शुभ होगा जब राम का तिलक होगा क्योंकि वह मुझे प्राणों से प्यारे हैं। उनके तिलक की बात से तुझे क्यों क्षोभ होता है। सच-सच उसका कारण बताना। यह सुनकर मंथरा जो दाँव बदलती है उसका

कैकेयी पर ऐसा प्रभाव पड़ता है कि वह बेचारी उसकी बातों में आकर उसे अपनी हितैषिणी समझती है। यहाँ मंथरा अपने को गाली देकर कैकेयी के सरल हृदय पर ऐसा अचूक निशाना मारती है कि झट कैकेयी की सहानुभूति उसे मिल ही जाती है। वह कहती है—

> **कोउ नृप होउ हमहिं का हानी। चेरि छाँड़ि अब होब कि रानी ?**
> **जारइ जोगु सुभाउ हमारा। अनभल जाइ न देखि तुम्हारा ॥**
> **तातें कछुक बात अनुसारी। छमिय देवि ! बड़ि चूक हमारी ॥**
>
> (रा० मा० अयो० १५-३ ४)

मंथरा की यह कपट भरी हितेच्छा और क्षमा याचना अपना काम कर गई और कैकेयी ने सुर माया वश होकर प्रच्छन्न वैरिणी मंथरा को अपना हितू समझ लिया और बार-बार मंथरा के क्षोभ का कारण पूछने लगी। उसके उत्तर में बड़ी धूर्तता के साथ राम के अभिषेक का समर्थन करते हुए भी भावी दुख पूर्ण जीवन का मार्मिक चित्र खींचकर अपनी बातों पर कैकेयी का विश्वास प्राप्त कर लेती है। वह कहती है:—

> **यह कुल उचित राम कहुं टीका। सबहि सुहाइ मोहि सुठि नीका ॥**
> **आगिल बात समुझि डर मोही।**
>
> ... ...
>
> **रामहिं तिलकु कालि जौं भयऊ। तुम्ह कहँ विपति बीज बिधि बयऊ ॥**
> **रेख खँचाइ कहउँ बलु भाखी। भामिनि, भइहु दूध कइ माखी ॥**
> **जौं सुत सहित करहु सेवकाई। तौं घर रहहु न आन उपाई ॥**
> **कद्रू बिनतहु दीन्ह दुखु तुम्हहिं कौसिला देब।**
> **भरतु बंदिगृह सेइहहिं लषनु राम के नेब ॥**
>
> (रामा० अयो० १७-१९)

यहाँ मंथरा जैसी कुटिल दासी का चित्र खींचने में तुलसीदास ने मानवीय स्वभाव को परखने की अपनी सूक्ष्मातिसूक्ष्म दृष्टि का अच्छा परिचय दिया है। मंथरा की इस कुटिल मंत्रणा का प्रधान उद्देश्य है कैकेयी के मन में सौतिया डाह पैदा करना। इसीलिए अनेक कथाएँ सुनाकर कैकेयी के मन में कौसल्या के प्रति ईर्ष्या और दशरथ के प्रति भेदभाव उत्पन्न करने का सफल प्रयत्न करती है। तुलसी की मंथरा में देखने की विशेष बात यह है कि उसके हृदय में राम के प्रति क्रोध नहीं, बल्कि कौसल्या का भाग्य देखकर ईर्ष्या होती है और वही ईर्ष्या कैकेयी के मन में भी पैदा करने में सफल होती है। इसीलिए

दशरथ से वर माँगने की सलाह देते हुए कहती हैं:—सुतहि राजु रामहिं बनबासू । देहु लेहु सब सवति हुलासू ॥ किंतु वर माँगने में बहुत सजग रहने की सलाह देती है:—

भूपति रामसपथ जब करई । तब माँगहु जेहि बचनु न टरई ॥

(रा० मा० अयो० २१-३ ४)

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसीदास की मंथरा केवल कुटिल बुद्धि दासी ही नहीं, बल्कि वह मानव मन की दुर्बलताओं का अच्छा ज्ञान भी रखती है और बड़ी धूर्तता के साथ उसका अच्छा लाभ उठा लेती है और अंततः अजस पिटारी बन जाती है ।

हिन्दी के अन्य प्रसिद्ध राम काव्यों में—रामचंद्रिका आदि—मंथरा को कोई स्थान ही नहीं मिला । गोविंद रामायण में केवल उसका नामोल्लेख हुआ है ।

अब इसकी तुलना में तेलुगु के साहित्य की मंथरा को देखा जाय । रंगनाथ रामायण में मंथरा का प्रवेश बालकांड में ही होता है । बचपन में जब राम अपने मित्रों के साथ गेंद और डंडा लेकर खेल रहे थे तब मंथरा ने आकर कौतुक वश गेंद को मारा था । इससे क्रुद्ध होकर राम ने मंथरा की टाँग पर डंडा दे मारा तो तुरंत उसकी टाँग टूट गई । तबसे लेकर मंथरा के मन में क्रोध था और वह प्रतिकार के उचित अवसर की प्रतीक्षा में थी । जब दशरथ ने राम के राज्याभिषेक की तैयारियाँ करवाना प्रारंभ किया तब मंथरा को कौसल्या की एक दासी के द्वारा उसका समाचार मिलता है । पहले से ही वह राम से खार खाए बैठी थी । अब-जब उसको उचित अवसर मिला तो वह कैसे चूकती ? प्रतिकार करने की इच्छा से सीधे वह कैकेयी के पास जाती है और राम के विरुद्ध उसके कान भर देती है जिससे उसका निर्मल चित्त परिवर्तित हो जाता है । इस प्रकार रंगनाथ रामायण में मंथरा की कुमंत्रणा का एक समुचित कारण बताया गया है । जो यद्यपि राम को राज्य निर्वासन जैसा भयंकर दंड दिलाने के लिए पर्याप्त नहीं था, किंतु फिर भी मंथरा जैसी नीच बुद्धिवाली स्त्री के लिए अपर्याप्त भी नहीं था । राम के राज्य निर्वासन का यह कार्य कारण संबंध वाल्मीकि रामायण में नहीं है । वहाँ तो मंथरा को स्वभावतः राम के राज्याभिषेक का समाचार सुनकर क्रोध हो आता है और वह कैकेयी का मन राम के विरुद्ध फिरा देती है । रंगनाथ रामायण में मंथरा वाल्मीकि की मंथरा के समान क्रोध मूर्च्छित नहीं होती और

कैकेयी को बूढ़े, बालिशे, मूर्खे आदि अपशब्दों से संबोधित नहीं करती। यहाँ वह अपनी चतुराई से कैकेयी को समझाना-बुझाना चाहती है और इसलिए कहती है:—

लेम्मु लेम्मो भाभ ! लीलाभिराम इम्मेरुगंबु कार्यमेमियु ननुचु
गोन रेट्ट बट्टि ग्रक्कुन लेवनेत्ति तन नेर्पुमाटल तरुणि किट्लिनिये।

अर्थात् शृंगारी चेष्टाओं से मनोज्ञभामा ! उठो उठो ! तुम किसी कार्य का उपाय नहीं जानती। "यह कहकर झूले की कोमल शय्या पर लेटी हुई कैकेयी की बाँह पकड़कर बिठाती है। आगे का संभाषण प्राय: वाल्मीकि के अनुसार ही है यद्यपि उतना विस्तृत नहीं है। इसमें मंथरा की कुमंत्रणा की तीन अवस्थाएँ पाई जाती हैं। पहली अवस्था में मंथरा दशरथ के कपट और राम के युवराज होने से कैकेयी, भरत और स्वयं अपने को होने वाली हानि का वर्णन करती है। वह कैकेयी से कहती है कि तुम यह जो समझती हो कि मैं महाराज की प्रिय पत्नी हूँ और मेरा भाग्य असामान्य है वह निरा भ्रम है। देखो, महाराज ने कैसी चाल चली है। पटरानी कौसल्या से डरकर एक ओर भरत को विदेश (ननिहाल) भेज दिया और दूसरी ओर राम के राज्याभिषेक का प्रबंध कर दिया। अब तुम्हारा जीवित रहना किसलिए ? ऐसे कपटी, निर्मोही और धोखेबाज को पति नहीं बल्कि प्रेम विहीन शत्रु कहना चाहिए। तुम्हारी सौत का पुत्र यदि राजा हुआ तो तुम्हें, तुम्हारे पुत्र को और मुझको दुख ही दुख मिलेगा, सुख नहीं। मैं तुम्हारे पिता जी की भेजी हुई बड़े प्रेम से तुम्हारे साथ आई हूँ। तुम्हारी भलाई मेरी भलाई है। तुम्हारी हानि मेरी हानि है। इसलिए मैंने तुम्हारे हित की बात ही कही। अपने पुत्र के जीवित रहने की बात सोचो।" इस प्रकार इसमें मंथरी की कूट मंत्रणा का पूरा संकेत मिल जाता है। कौसल्या और दशरथ के प्रति ईर्ष्या और भेदभाव तथा पुत्र के प्रति स्वार्थ का भाव जगाने का मंथरा बड़ी निपुणता से प्रयत्न करती है। उसकी निपुणता अपनी पुरानी बैर भावना को छिपाने में है। वह कैकेयी की इतनी मुँह लगी दासी है कि उसी के मुँह पर उसके पति को, कपटी, शत्रु आदि कहकर, निंदा करती है। यह कह कर कि भरत के जीवित रहने की बात सोचो मंथरा राम के राजा होने से भरत के प्राणों के ही संकट में पड़ने की भावी भयंकर घटना की सूचना दे देती है और उससे बचने का उपाय करने को प्रेरित करती है। किंतु जब कैकेयी राम के राज्याभिषेक की बात सुनकर हर्ष से उसको अपना नवरत्नखचित कंगन

उपहार में देती है तब वह उसको फेंक देती है और भावी जीवन का भयंकर चित्र खींचती है और उपाय भी बताती है। यह उसकी मंत्रणा की दूसरी अवस्था है। वह कहती है कि तुम नीति की बात नहीं समझतीं। तुम्हारा यही भोलापन तुम्हारा अहित करता है। यह भी कोई धर्म है ? क्या ऐसा भी काजल होता है जो आँखों को ही हानि करे ? तुम्हारी सौत का पुत्र यदि सम्राट हुआ तो सब राजा, प्रजा, मंत्री आदि उसी के आज्ञानुसार चलेंगे। सारी चतुरंगिणी सेना उसके वश में हो जायगी और दशरथ को कोई स्वतंत्रता नहीं रहेगी। कौशल्या के गर्व का ठिकाना न रहेगा। तुम उसकी दासी बनोगी भरत राम का दास बनेगा और तुम्हारी पुत्रवधू को सीता की सेवा करनी पड़ेगी। इसलिए मैं उपाय बताती हूँ कि राम को वन में भिजवा दो और भरत का राज्याभिषेक करवा दो। "यह सुनकर कैकेयी का मन फिर जाता है। किंतु उसे संदेह होता है कि दशरथ उसकी बात कैसे मानेंगे और वह राम को वन में कैसे भिजवा सकेगी। तब मंथरा स्वयं उसको बताती है कि उसकी कूटनीति की तीसरी अवस्था है। वह कहती है कि कैकेयी ने पहले धवलांग नामक मुनि की कृपा से प्राप्त शक्ति की सहायता से दशरथ को शंबरासुर के साथ युद्ध करते समय बचाया था। तब दशरथ ने प्रसन्न होकर कैकेयी को दो वर दिए। यह बात कैकेयी ने स्वयं मंथरा से कही थी, किंतु अब वह भूल गई तो मंथरा ने उसका स्मरण कराकर कैकेयी से कहा कि एक वर से राम को चौदह वर्ष के लिए वन में भिजवा दो और दूसरे वर से भरत का अभिषेक करवा दो। वह कहती है कि तभी ये दोनों वर माँगे जायँ जब दशरथ अपने सत्यव्रत की शपथ खाकर वचन देंगे। तुम्हारे प्रति उत्कट प्रेम के कारण महाराज तुम्हारी बात नहीं टालेंगे और अनृतवादी होने के डर से झूठ नहीं बोलेंगे। यह सुनकर कैकेयी बहुत हर्षित होती है और मंथरा की बड़ी प्रशंसा करती है। उसके बाद कैकेयी कोप भवन में पहुँच जाती है।

इसमें मंथरा का जो चित्र मिलता है वह वाल्मीकि की मंथरा के चित्र से अधिक भिन्न नहीं है। किंतु चित्र के प्रतिपादन में रंगनाथ और वाल्मीमि में अंतर अवश्य है। रंगनाथ की मंथरा का चरित्र अधिक ध्वन्यात्मक है क्योंकि इसमें कवि अपनी ओर से उसकी कोई आलोचना नहीं करता, उसको वाल्मीकि के समान पापदर्शिनी अथवा अनर्थदर्शिनी आदि कहकर अपना मत प्रकट नहीं करता। दूसरी बात यह है कि, जैसा पहले कहा गया है, इसमें मंथरा का प्रवेश अग्नि पुराण के आधार पर सकारण होता है। इसलिए रंगनाथ रामायण की

मंथरा स्वाभाविक ईष्यालु नहीं बल्कि वैरिणी है जो अपने प्रति किए गये अत्याचार का प्रतिकार करके शांति पाती है। यही रंगनाथ रामायण की मंथरा की विशेषता है जो वाल्मीकि रामायण की मंथरा में नहीं पाई जाती।

भास्कर रामायण में मंथरा का प्रवेश वाल्मीकि रामायण के समान 'अयोध्याकांड' में ही होता है, किंतु सकारण होता है। इसमें मंथरा के क्रोध का कारण यह बताया गया है कि बचपन में राम ने मंथरा के लात मारी। उसी को अपनी शत्रुता का कारण मानकर वह राम के राज्याभिषेक में कैकेयी के द्वारा विघ्न उपस्थित करवाती है। इसमें मंथरा और कैकेयी का संवाद रंगनाथ रामायण के समान विस्तृत न होकर बहुत संक्षिप्त है। ऐसा विदित होता है कि कवि की दृष्टि यहाँ मंथरा के स्वाभाविक चरित्र चित्रण की ओर नहीं, बल्कि उसे एक साधारण साधन मात्र मानकर कथा को आगे बढ़ाने की ओर है। इसीलिए वह सीधे तीन चार छंदों में अपनी कूट मंत्रणा कैकेयी को दे देती है जिसे सुनकर कैकेयी प्रसन्न होती है और उसे पुरस्कृत करती है। इसमें भी मंथरा स्वाभाविक ईर्ष्यालु के रूप में नहीं, रंगनाथ रामायण के समान क्रोधी वैरिणी के रूप में है यद्यपि इसमें वैर का कारण उतना बलवान नहीं है जितना रंगनाथ रामायण में है।

इन दोनों रामायणों के बाद 'मोल्ल रामायण' और अच्च तेलगु रामायण का उल्लेख होना चाहिए। इनमें मोल्ल रामायण में मंथरा का पात्र ही नहीं है। कैकेयी राम के वनवास का कारण बनती है। 'अच्च तेलुगु रामायण' में मंथरा को बहुत ही कम स्थान मिला है, उसको झगड़ालू मात्र कहा गया है। कैकेयी और मंथरा का सारा प्रसंग एक ही पद्य में समाप्त कर दिया गया है। इनके अलावा और भी जो राम काव्य हैं—राघव पांडवीय और 'रामाभ्युदय' आदि, उनमें भी मंथरा की प्रधानता नहीं है।[1]

पंचवटी में प्रवेश करने के बाद 'मानस' और 'रंगनाथ रामायण' में राम की भावना का जो वर्णन किया जाता है उससे यह स्पष्ट होता है कि रंगनाथ रामायण 'मानस' की अपेक्षा वाल्मीकि के अधिक निकट है। बा० रा० में इस स्थान का वर्णन अरण्य कांड के षोडश सर्ग में आता है जिसके पहले २६ श्लोकों में हेमंत ऋतु में शोभित प्रकृति का सुन्दर वर्णन किया जाता है। इसके अनंतर राम भरत और कैकेयी आदि का स्मरण करके दुखी होते हैं और इच्छा करते हैं

---

१. **स्वलिखित लेख—साहित्यानुशीलन प्रथम, मुक्ताहार—मद्रास**

कि कब हम इन सबको पुनः देख सकेंगे। इसके अनंतर गोदावरी में स्नान करके, संध्या, पितृ तर्पण, देव तर्पण आदि से निवृत्त होकर सूर्य की स्तुति करते हैं। इसमें दिखाया गया है कि राम स्वजनों का स्मरण कर बड़े व्याकुल होते हैं। यह सारा सर्ग ४३ श्लोकों में पूरा हुआ है।

अब रंगनाथ रामायण के इस स्थल में हमें यही प्रकृति वर्णन और राम की व्याकुलता दिखायी पड़ती है। हाँ, प्रकृति का वर्णन वाल्मीकि की अपेक्षा थोड़ा संक्षिप्त है। किंतु भाव वही है। किसी दिन राम लक्ष्मण और सीता को लेकर ब्रह्म मुहूर्त में गोदावरी में स्नान करने जा रहे थे। उस समय हेमंत ऋतु का सुन्दर वर्णन करते हैं। एकाएक उनको भरत का स्मरण हो आता है और वे कहते हैं कि ऐसे समय भरत भी मेरे समान वल्कल और जटाएँ धारण कर मुनि के समान रह हुए मेरी प्रतीक्षा करता होगा। वह परम पावन, सौभ्रात्र भावन, पितृ भ्रातृ वाक्य तत्पर, चिर कीर्तिवान और आश्रित हितैषी है। वह इस समय सरदी में सरयू में कैसे स्नान करता होगा और मुनि के समान पृथ्वी पर कैसे सोता होगा? पता नहीं माता कैकेयी की वह कैसी निंदा करता होगा जिनके वन भेजने से मैं कई मुनियों के आशीर्वाद प्राप्त कर सका। झट उसके सत्स्वभाव का स्मरण कर कहते हैं कि वह ऐसा नीच कार्य कदापि नहीं कर सकता, क्योंकि वह अनघ है। राज्य छोड़कर मैं तपस्वी बन गया हूँ, किंतु राज्य पाकर वह तपस्वी बन गया है। भ्रातृ-स्नेह यदि कोई सीखना चाहे तो उससे सीखे। ऐसे भरत और अन्य स्वजनों को जाने कब पुनः देख सकेंगे? यों उनका स्मरण करके गोदावरी में स्नान करते हैं और सूर्य को अर्घ्य प्रदान कर, गायत्री का जपकर ब्रह्मयज्ञ करते हैं। (रं० रा० अ० पं० २४१-२७०) इस प्रकार यह प्रसंग थोड़े अंतर के साथ संक्षेप में वाल्मीकि के अनुसार ही वर्णित है। अंतर यह है कि वाल्मीकि रामायण में ये बातें लक्ष्मण के द्वारा कही जाती हैं। उसमें लक्ष्मण जब यह कहते है कि—

भर्ता दशरथो यस्याः साधुश्च भरतः सुतः
कथं तु सांबा कैकेयी तादृशी क्रूर दर्शिनी ॥

अ० १६-३५।

तब राम उनका प्रतिवाद करते हुए कैकेयी को अगर्हणीया कहते हैं।

किंतु रंगनाथ इस प्रकार कैकेयी की आलोचना नहीं कराते। वहाँ राम कैकेयी का आभार मानते हुए कहते हैं कि जिस कैकेयी के भेजने से मैं यहाँ अनेक

मुनियों के आशीर्वाद प्रसन्नतापूर्वक प्राप्त कर सका उसको न जाने वह क्या कहता होगा। राम की यह आदर्श उदारता कालानुगत भक्ति भावना का ही परिणाम है जो तुलसी में पराकाष्ठा को पहुँच गयी है। यह स्वाभाविक और सरस प्रसंग न जाने क्यों भास्कर रामायण में छोड़ दिया गया है।

अब "मानस" में देखिये। पंचवटी में प्रवेश करने के बाद राम एक दिन लक्ष्मण को बिठाकर ईश्वर माया, भक्ति आदि आध्यात्मिक तत्वों का उपदेश देते हैं। उसके बाद शूर्पणखा के प्रसंग का वर्णन आता है। (रा. मा. अ. १४-१६) वाल्मीकि या रंगनाथ की स्वाभाविक मानवीय दृष्टि इसमें नहीं मिलती। इसका कारण भक्त तुलसीदास के भक्ति प्रचार के उद्देश्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। रावण के जैसा वीर प्रतिनायक का चित्र रंगनाथ रामायण में जैसा मिलता है वैसा हिन्दी के राम साहित्य में नहीं है।

रंगनाथ रामायण में राम की शरणागत वत्सलता का वर्णन वाल्मीकि से भी बढ़कर मिलता है। लक्ष्मण को मूर्च्छित देखकर राम बहुत विलाप करते हुए सुग्रीव से कहते हैं कि हे वानरेश्वर! मैंने विभीषण को लंका का राज्य देने का वचन दिया है और अभिषेक भी कर दिया है। अब लक्ष्मण के न रहने से मैं भी नहीं रहूँगा। किंतु शरणागत को त्यागना क्षत्रिय का धर्म नहीं है। अतः तुम विभीषण को अयोध्या ले जाओ और मेरे भाई भरत से मेरी यह आज्ञा कहो कि लंका के बदले इसे अयोध्या का राज्य दे दिया जाय और उसका राज्याभिषेक करा दो। इसके अनंतर तुम वानरों को लेकर किष्किधा जाओ और सुख से राज्य करो। (रं रा. सु. पं. ६९२५-६९३३) इसमें राम की शरणागत वत्सलता की पराकाष्ठा के साथ भरत की आज्ञाबद्धता पर उनका विश्वास भी व्यक्त होता है।

हिन्दी राम काव्यों में वा० रा० के पश्चिमोत्तरीय पाठ की किसी प्रति के आधार पर यह कहा गया है कि राम लक्ष्मण की मूर्च्छा से इतने व्याकुल थे कि कहने लगे—

"कहैं मैं विभीषण की कछु न सबील की।"

(क० लं० ५२)

इसी प्रकार "मानस" को छोड़ अन्य राम काव्यों में भी कहा गया है। बा० रा० पश्चिमोत्तरीय पाठ की उक्त प्रति में कहा गया है:—

विभीषणस्य कर्तव्यं न कृतं भाषितं मया।
एतद्दहति मे चेतः शुष्कं काष्टमिवानलः॥

(वा० रा० प०, लाहौर प्रकाशन पृ० ४३३)

संभवत: रंगनाथ के आधार पर ही भास्कर रामायण में विभीषण शरणागति के प्रसंग में सुग्रीव का उत्तर देते हुए राम कहते हैं कि यदि रावण मेरी शरण में आ जाय तो विभीषण को अयोध्या का राज्य दूँगा। (दे—यही प्रबंध अ० ७ भा० रा० यु० अनु० ४)

इसी प्रकार काव्य के प्रति दृष्टिकोण, रस परिपाक चरित्र चित्रण और विषय प्रतिपादन में भिन्नता के होते हुए भी हिन्दी और तेलुगु के राम साहित्यों में भाव समानता का अभाव नहीं है। नीचे कुछ ऐसे स्थलों का निर्देश किया जाता है जहाँ दोनों भाषाओं में भाव समानता दिखाई पड़ती है।

१—शिव धनुर्भंग के समय पृथ्वी, शेष, कमठ, दिग्गज आदि को एक ही प्रकार रामचरित मानस और रंगनाथ रामायण में सावधान किया जाता है। अंतर यह है कि 'मानस' में लक्ष्मण यह कार्य करते हैं और रंगनाथ रामायण में विश्वामित्र। (दे० अध्याय ६, रा० मा० बा० अनु० १९, अध्याय ७ रं० रा० बा० अनु० ५) दोनों का मूलस्रोत हनुमन्नाटक यद्यपि एक ही है तथापि दोनों ने अपनी-अपनी भावना के अनुसार उसे परिवर्तित किया।

२—सुवेलाचल पर वानरों से परिवेष्ठित राम का जो चित्र 'मानस' में वर्णित है (रा० मा० लं० १०-११) वह थोड़े अंतर के साथ तेलुगु की रं० रा० और भा० रा० में भी मिलता है। (रं० रा० सु० पं० २१४५-२१५०, भा० रा० यु० ३५८)

३—युद्ध वर्णन के सिलसिले में "कवितावली" में राम हनुमान की युद्ध वीरता का जो वर्णन लक्ष्मण से करते हैं (लं० ४०) वह भास्कर रामायण में कवि स्वयं करते हैं। वे कहते हैं कि वानर वीर हाथी से हाथी को, घोड़े से घोड़े को, रथ से रथ को और राक्षस से राक्षस को टकराकर मार डालते थे। (भा० रा० यु० ६६९)

४—कहीं-कहीं वर्णन शैली की दृष्टि से भी हिन्दी और तेलुगु के राम साहित्यों में समानता पाई जाती है। युद्ध कांड में राम और लक्ष्मण के नागपाश मोचन के प्रसंग में रंगनाथ और तुलसी की भक्ति विशिष्ट वर्णनशैली बहुत मिलती-जुलती है। उस प्रसंग में रंगनाथ कहते हैं कि जिनका ध्यान करने से सब प्राणियों के (भव) बंधन दूर हो जाते हैं वे राम यदि चाहें तो अपने

बंधन क्या दूर नहीं कर सकते ?" (रं० रा० यु० पं० २६७२-२६७३) तुलसी में भी यही भाव और शैली मिलती है।

गिरिजा ! जासु नाम जपि मुनि काटहिं भव पास।
सो कि बंध तर आवइ व्यापक बिस्व निवास ।।

(रा० मा० लं० ७३)

५—केवट प्रसंग में तुलसी और मोल्ल में अध्यात्म रामायण के आधार पर भाव साम्य मिलता है। गुह हठपूर्वक जिस भावना से 'मानस' और 'कवितावली' में राम के चरण धोता है उसी प्रकार मोल्ल रामायण में भी उसी भावना से धोता है। (रा० मा० अयो० ९९-२-१०० ।, क० अयो० ६-१० ।) किंतु मोल्ल रामायण में कवयित्री स्वयं वर्णन करती है कि सुना जाता है कि राम के चरणों की धूल के स्पर्श से पत्थर स्त्री में बदल गया है। अब उसके लगने से मेरी नाव की न जाने क्या गति होगी, यों संशय करके गुह ने राम के चरण धोये। (मे० रा० अयो० ६२)

६—इसी प्रकार 'मानस' तथा 'कवितावली' और घरणि देवूल रामय्य मंत्री कृत दशावतार चरित्र के अंतर्गत 'श्रीरामावतार चरित्र' में हनुमन्नाटक के आधार पर रामवनगमन के प्रसंग में भाव समानता दिखायी पड़ती है। राम की वनयात्रा में ग्राम बधूटियाँ सीता से राम और लक्ष्मण के साथ उनके संबंध के बारे में जो प्रश्न करती हैं और सीता जो उत्तर देती हैं उसका जैसा वर्णन 'मानस' और कवितावली में है वैसा ही संक्षेप में श्रीरामावतार की कथा में भी है। (रा० मा० अयो० ११६-१-४, क० अयो० २१-२२) इसमें स्त्रियाँ पूछती हैं कि—

एलनागा तलयेत्ति चूडगदे वीरेव्वारु वीरेमिगा
वलेनो यंचनि यम्मलक्कलट। ट्रोवन् वेड नी पैंडिया
यलचेमिचु नतंडु ना मरदि यौनंचांतटन् सिग्गु चे।
दलवंचुन्महि कन्य वारलदे यातेडेव्वडे यनन् ।।"

(दशावतार चरित्र ७-२-१८)

अर्थात् हे सखी ! जरा सिर उठाकर देखो तो सही। ये कौन हैं और तुम्हारे कौन लगते हैं ? "सीता उत्तर देती हैं कि ये स्वर्ण कांतिवाले मेरे देवर हैं। फिर उन्होंने राम को दिखाकर पूछा कि ये कौन हैं ? तब सीता लज्जा से सिर झुका लेती हैं।" इसी एक अनुभाव से उनका उत्तर ध्वनित हो गया।

'मानस' और इसमें सीता के उत्तार का ढंग जो है वह इनके कवियों की मौलिक उद्भावना है यद्यपि मूल एक ही है ।

विशुद्ध साहित्यिक दृष्टि से लिखे गये काव्यों में हिन्दी में केशवदास की रामचंद्रिका और तेलुगु में रामभद्र कवि का 'रामाभ्युदय' उल्लेखनीय हैं। काव्य रूप दोनों के समान हैं। दोनों कवियों में भक्ति की अपेक्षा काव्यत्व की दृष्टि प्रधान है। दोनों में अपना पांडित्य प्रकर्ष दिखाने का हौसला भी अधिक है। यह बात इनके प्रयुक्त विभिन्न छंदों, कवि समयोचित वर्णनों आदि से व्यक्त होती है। इस क्षेत्र में इन दोनों ने आलंकारिक शैली का भी यथेष्ट प्रयोग किया है। अलंकारों का संयोजन करने के लिए इन्होंने बहुत परिश्रम किया जिससे कहीं-कहीं कृत्रिमता भी आ गयी है। इससे इनके काव्य पाठकों के हृदय को प्रभावित करने में असमर्थ रह गये। किंतु प्रबंध निर्वाह की दृष्टि से रामभद्र कवि को केशव की अपेक्षा अधिक सफलता मिली है। रस परिपाक की दृष्टि से भी रामभद्र कवि के वर्णन अधिक सफल हैं क्योंकि एक तो उनमें भावों की अनुस्यूतता है और दूसरे उनकी भाषा और छन्द योजना भावानुरूप हुई है। तेलुगु का 'राघव पांडवीय' काव्य भी इसी प्रकार काव्य प्रतिभा के प्रदर्शन की दृष्टि से लिखा गया है जिसमें श्लेष अलंकार की सर्वाधिक प्रधानता है। वही उसका प्राण है।

भाषा की दृष्टि से यदि देखा जाय तो हिन्दी रामकाव्यों की अपेक्षा तेलुगु के राम काव्यों में संस्कृतनिष्ठ भाषा का अधिक प्रयोग मिलता है। जैसे दीर्घ तत्सम समास तेलुगु के काव्यों में मिलते हैं वैसे हिन्दी काव्यों में बहुत कम मिलते हैं। और जो कुछ मिलते हैं वे प्रायः तुलसीदास के काव्यों में ही मिलते हैं विशेषकर विनयपत्रिका में और मानस के उन स्थानों में जहाँ भगवान की स्तुति संस्कृत छंदों में की जाती है। संस्कृतेतर भाषाओं जैसे अपभ्रंश, प्राकृत, फारसी आदि का जितना प्रभाव हिंदी राम काव्यों की भाषा पर पड़ा है उतना प्रभाव तेलुगु के राम काव्यों पर नहीं। उन पर पचहत्तर प्रतिशत प्रभाव संस्कृत का पड़ा है। हाँ ठेठ तेलुगु में लिखी गयी अच्च तेलुगु रामायण पर संस्कृत के तत्सम शब्दों का कोई प्रभाव नहीं है। उसमें तद्भव और देशी शब्दों की ही भरमार है।

छंदयोजना की दृष्टि से भी तेलुगु के राम काव्यों पर जितना संस्कृत छंदों का प्रभाव पड़ा है उतना हिंदी राम काव्यों पर नहीं। हिंदी की अपेक्षा तेलुगु में संस्कृत छंदों का अधिक प्रयोग हुआ है, किंतु देशी छंदों का भी प्रयोग

कम नहीं हुआ। शार्दूल, मत्तेभ, उत्पलमाला, चंपकमाला आदि वृत्त विशेष संस्कृत के अधिक प्रयुक्त हैं। किंतु इन पर तेलुगु की यति मैत्री और प्रास मैत्री के नियम भी लागू कर दिये गये हैं। देशी छंदों में गीत पद्य, आट वेलदि, कंद और सीस प्रधान हैं। द्विपद छंद में तो पूरी रामायणों की ही रचना हुई है जिसमें और किसी छंद का प्रयोग नहीं हुआ है। यक्षगानों में एल, अर्धचंद्रिका रगड़ आदि देशी छंदों का भी प्रयोग हुआ है। किंतु वे देशी शैली के काव्य हैं, हिंदी राम काव्यों में संस्कृत छंदों का प्रयोग केवल तुलसीदास और केशवदास ने ही किया है। तुलसीदास ने देशी छंदों की अपेक्षा संस्कृत छंदों का प्रयोग कम ही किया है। संस्कृत छन्दों का प्रयोग केशवदास ने उनकी अपेक्षा अधिक किया है। अन्य सब कवियों ने प्रायः देशी और मात्रिक छंदों का प्रयोग अधिक किया है। दोनों भाषाओं में इस अन्तर का कारण यही है कि आलोच्य काल के तेलुगु राम काव्यों की भाषा हिन्दी राम काव्यों की भाषा से संस्कृत से बहुत अधिक प्रभावित है और फलतः उसमें संस्कृत छंदों का भी प्रयोग भाषा के अनुकूल होने के कारण, अधिक किया गया है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि देशी छंदों में संस्कृत बहुल तेलुगु भाषा का प्रयोग नहीं हो सकता। हिंदी राम काव्यों की भाषा पर अपभ्रंश का सर्वाधिक प्रभाव है और तदनुकूल देशी छंदों का ही प्रयोग उनमें अधिक मिलता है। छंदःशास्त्र की दृष्टि से भी दोनों भाषाओं के छंदों में अन्तर है। हिन्दी में मात्रिक छंद और वर्णवृत्तों का विधान है। मात्रिक छंद तो देशी हैं और उनमें संस्कृत के गणों का बंधन नहीं है। वर्णवृत्त तो संस्कृत के ही हैं। वे जैसे के तैसे प्रयुक्त होते हैं। तेलुगु में वृत्त जाति और उपजाति नाम के छंद प्रयुक्त होते हैं। वृत्त तो संस्कृत के वर्ण-वृत्त ही हैं। किंतु उन पर यतिमैत्री और प्रास मैत्री का देशी प्रभाव पड़ा है। शेष दोनों देशी छंद हैं। उनमें भी संस्कृत के गण ही लागू होते हैं। यक्षदान में जो देशी छन्द प्रयुक्त होते हैं वे मात्रिक और ताल प्रधान हैं। तेलुगु राम काव्यों में संस्कृत की जो चंपू पद्धति गृहीत है वह हिंदी राम काव्यों में नहीं। हिंदी में जैसी गीत शैली है वैसी तेलुगु के राम काव्यों में नहीं है। हाँ आंशिक रूप में यज्ञदान में राग और ताल प्रधान गीत मिलते हैं।

अब सांस्कृतिक दृष्टि से तुलना करने पर विदित होता है कि दोनों भाषाओं के राम काव्यों में प्रतिबिंबित संस्कृति प्रायः एक ही है यद्यपि देश और कालगत थोड़ा बहुत अन्तर है। इसका प्रमाण विवाह, मृत्यु, कार्यारंभ आदि के अवसरों पर किये गये आचार वर्णन में मिलता है। वैवाहिक आचारों में दिखाई

पड़नेवाला प्रधान अन्तर मंगल सूत्र धारण का जिसका उल्लेख किसी भी हिंदी रामकाव्य में नहीं हुआ है, किंतु तेलुगु के काव्यों में मिलता है। महाभागवत के एक श्लोक से अनुमान होता है कि मंगल सूत्र धारण उत्तर भारत में कभी कभी प्रचलित रहा होगा। किंतु कालांतर में वह प्रथा लुप्त हो गयी होगी और केवल दक्षिण में ही शेष रह गयी होगी जिससे यह समझा जाने लगा होगा कि वह दक्षिण भारत की ही प्रथा है जिसका प्रभाव आंध्र पर पड़ा है। वह श्लोक भागवत के राम चरित में आता है जिसमें राम के दान का वर्णन किया गया है :

इत्ययं तदलंकार वासोभ्यामवशेषितः।
तथा राज्ञ्यपि वैदेही सौमंगल्यावशेषिता।।

महाभागवत—१-११-४।

इसमें 'सौमंगल्य' के अर्थ में व्याख्याकारों में मतभेद है। विजयध्वज तीर्थ व्याख्या में लिखा है "सौमंगल्यं मंगल सूत्र मेवावशेषितं यस्थाः सा तथा।" भागवत चूर्णिका में लिखा है "तथा सीताऽपि मंगल सूत्रावशेषिता" श्रीधर स्वामी ने इसका व्याख्या की है, "सौमंगल्यमाभरणादिकं नावत् मात्र मवशेषिता" अन्य टीकाओं में भी यही अर्थ मिलता है।

आंध्र भागवत के कवि पौतन्न ने इसका अनुवाद मंगल सूत्र के अर्थ में ही किया है।

तनदु रेंडु पुट्टं बुलु दनकु नयिन,
मेलत मंगल सूत्रंबु मिनुकु दक्क
विनतुडै युंडे ना रामु वितरणंबु
पांडवोत्तम येमनि पलुकवच्चु।।

(राम ने अपने दोनों वस्त्र अपने लिए शेष रखे थे। उनकी स्त्री ने अपना मंगल सूत्र ही शेष रख लिया था। इतना दान देकर भी राम बड़े विनत रहे। उनकी दानशीलता के बारे में क्या कहा जाय ?)

कोई कार्य आरम्भ करसे के पहले या यात्रा पहले संस्कृति के अनुसार गणेश जी की पूजा की जाती है कि विघ्नों का नाश हो। भास्कर रामायण में सेतुबंधन के प्रारंभ में राम की आज्ञा से नल अपने पिता विश्वकर्म का स्मरण कर गणेश की वंदना करता है और एक पर्वत समुद्र में फेंकता है जो तैरने लगता है।

शा—बिघ्नेशाय नमो नमो भगवते वेदंड तुंडाय नि
बिघ्न क्षेम कृते नमोस्तु विश्वप्रभो यंचु ग्रौं
चघ्न ज्येष्ठु प्रसन्न जेसि नलुडुत्साहंबुतो नद्भुतो
पघ्न ध्वानयु गाग नोक्क नगमोप्पन् वैचे नंभोनिधिन् ॥
भा. रा. यु. २४६ ।

भाव यह कि गणेश की वंदना करके नल ने उन्हें प्रसन्न कर लिया और सेतु का मार्ग बनाने के लिए एक पर्वत समुद्र में फेंका ।

रामचरित मानस में कहा गया है कि राम ने वनयात्रा में पहले गणेश का स्मरण किया है ।

तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु नाइ सुरसरिहि माथ
सखा अनुज सिय सहित बन गवनु कीन्ह रघुनाथ ॥
रा. मा. अयो. १०४ ।

माता पिता की मृत्यु पर उत्तर क्रियाएँ करने वाला पुत्र अपना सिर मुंडवा लेता है । सूरसागर में भरत के दशरथ की मृत्यु पर मुंडित मस्तक होने का उल्लेख है । गीतावली में कौसल्या के कौए का शकुन देखने का वर्णन है । ये दोनों आचार आंध्र में भी प्रचलित हैं यद्यपि उनका उल्लेख किसी राम काव्य में नहीं हुआ है ।

भक्ति और ज्ञान वैदिक संस्कृति के सर्वप्रधान अंग हैं । इनका रूप हिंदी राम काव्यों में जिस प्रकार पाया जाता है उसी प्रकार तेलुगु राम काव्यों में भी मिलता है यद्यपि उनके परिमाण में अन्तर है । दोनों में कोई तात्विक अन्तर नहीं है । राम के सगुण और निर्गुण दोनों हिन्दी राम काव्यों के समान तेलुगु में भी गृहीत हैं यद्यपि निर्गुण की अपेक्षा सगुण को अधिक महत्व दिया गया है । तेलुगु राम काव्यों में 'दशरथ' राम का जैसा चित्र उपस्थित किया गया है वैसा वर्णन निर्गुण राम का नहीं है यद्यपि उसका भी अभाव नहीं हैं । रं. रा. में अतिकाय जब राम से युद्ध करने जाता है तब राम के निर्गुण रूप का ही गूढ़ शब्दों में वर्णन करता है । विशुद्ध भक्ति की दृष्टि से तेलुगु के रामदास और त्यागुराजु तथा हिन्दी के तुलसीदास एक ही कोटि के हैं । उनकी भक्ति या दार्शनिक मान्यताओं में कोई अंतर नहीं है । अंतर है तो केवल प्रचारात्मक दृष्टि और संगीत में है । तीनों की भक्ति सगुण रूप की दृष्टि से प्रधानतः दास्य भक्ति है और निर्गुण रूप की दृष्टि से राम 'विधि हरिशंभु नचावनिहारे'

परब्रह्म हैं। सांप्रदायिक दृष्टि से देखा जाय तो रामदास और त्यागुराजु स्मार्त थे और तुलसीदास स्मार्त वैष्णव थे। तत्वतः दोनों में कोई अंतर नहीं है।

साधना की दृष्टि से दोनों में सबसे प्रधान अंतर यह पाया जाता है कि तेलुगु राम साहित्य में मधुरोपासना के प्रतिपादक ग्रन्थ नहीं हैं। इसका कारण यही है कि हिंदी में माधुर्य भक्तिपूर्ण जिस कृष्ण साहित्य ने राम साहित्य को प्रभावित किया वह तेलुगु में नहीं हैं। तेलुगु साहित्य में कृष्ण के जीवन का उत्तरकालीन रूप ही अधिक चित्रित है और उसमें ज्ञान-गंभीरता की ही प्रधानता है।[1] राम का जीवन भी उसी प्रकार गंभीर रूप में ही चित्रित है, मधुर रूप में नहीं।

अन्य साहित्यिक धाराओं का प्रभाव—

आलोच्यकाल के हिन्दी राम साहित्य पर अन्य साहित्यिक धाराओं का प्रभाव भी थोड़ा बहुत बड़ा है जो अवश्यंभावी है। हिन्दी राम साहित्य के सर्व प्रसिद्ध कवि तुलसीदास के रचनाकाल तक संतमत में राम के निर्गुण रूप को लेकर साहित्य निर्मित हो चुका था। कृष्ण साहित्य का प्रधान ग्रंथ सूरसागर का निर्माण भी हो चुका था। प्रेम मार्गी शाखा के पद्मावत की भी रचना हो चुकी थी। जहाँ तक विषय या काव्य वस्तु का संबंध है, इनका प्रभाव तुलसी और अन्य भक्त कवियों पर बहुत कम है। जो थोड़ा बहुत प्रभाव रहा वह सूर सागर का रहा यद्यपि उसके भी मूलस्रोत हनुमन्नाटक आदि का सीधा प्रभाव भी माना जा सकता है। अब अभिव्यक्ति की शैली पर उनका प्रभाव लक्षित होता है। पद्मावत की दोहा चौपाई वाली शैली तुलसी ने राम चरित मानस में ग्रहण की थी।[2] उसी प्रकार सूरसागर की गीतात्मक शैली भी उन्होंने ग्रहण की और गीतावली की रचना की थी। इसके अतिरिक्त उस समय संतमत में प्रचलित दोहा शैली, वीरकाव्यों की सवैया घनाक्षरी शैली, रहीम की प्रयुक्त बरवै शैली, लोक प्रसिद्ध सोहर छंद की शैली आदि विभिन्न शैलियों को भी उन्होंने ग्रहण किया था। प्रायः ये ही सब शैलियाँ आलोच्य काल के सारे राम साहित्य में मिलती हैं। केशवदास की छंद शैली उनकी अपनी थी। विषय की दृष्टि से कृष्ण साहित्य की मधुर भावना का पर्याप्त प्रभाव राम साहित्य के रसिक संप्रदाय पर पड़ा है।

---

१. स्वलिखित—हिंदी और तेलुगु में कृष्ण चित्रण—उन्नव अभिनन्दन ग्रंथ मद्रास

२. ० रामचंद्र शुक्ल—हिंदी साहित्य का इतिहास—प्रकरण ४

अब समाज पर रामसाहित्य का प्रभाव यदि देखने का प्रयत्न करें तो विदित होता है कि तुलसी के रामचरित मानस का सांस्कृतिक प्रभाव उत्तर भारत पर इतना पड़ा कि उसके कारण धार्मिक आदर्श विहीन जनता को जीवन यात्रा का भक्ति संबल मिल गया और अन्य धार्मिक सम्प्रदायों का प्राबल्य कम हो गया था। तुलसी की उपमाएँ, अभिव्यंजना आदि कहावतों के रूप में चल पड़ीं जैसे 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' आदि।

अब इसकी तुलना में तेलुगु राम साहित्य पर भी विषय की दृष्टि से किसी अन्य धारा के समकालीन कवि का प्रभाव नहीं पड़ा। शैली के संबंध में यह कहा जा सकता है कि उस समय प्रचलित दो प्रधान शैलियों में प्रयुक्त देशी द्विपद छंद की शैली का प्रभाव रंगनाथ रामायण पर और तेलुगु के आदि काव्य महाभारत की चंपू शैली का प्रभाव भास्कर रामायण पर पड़ा था। निर्वचन शैली तिक्कन्न की अपनी थी। रामाभ्युदय के काव्य रूप पर तत्कालीन आमुक्तमाल्यदा, मनुचरित्र आदि प्रबंधों का प्रभाव माना जा सकता है। परवर्ती काल के अहल्यासंक्रंदनमु, तारा शशांकमु आदि शृंगारी काव्यों का प्रभाव दशावतार चरित्र की राम कथा पर शृंगार रस प्रधानता और वर्णन शैली की दृष्टि से पड़ा है। रामदास और त्यागराजु की गीत व कीर्तन शैली पर अन्नमाचार्य के कीर्तनों का प्रभाव माना जा सकता है।

तेलुगु के राम साहित्य ने परवर्ती साहित्य को दो प्रकार से प्रभावित किया है। रंगनाथ रामायण की द्विपद शैली ने आगे चलकर और भी द्विपद राम काव्यों को जन्म दिया। रंगनाथ रामायण में जिन अवाल्मीकीय प्रसंगों का समावेश हो गया है उनमें कुछ ने तो समाज पर अच्छा प्रभाव डाला जैसे गिलहरी की भक्ति, सुलोचना सहगमन आदि। दूसरे, प्रायः आलोच्य काल के सब रामकाव्यों पर रंगनाथ रामायण के अवाल्मीकीय प्रसंगों का प्रभाव पड़ा और वे गृहीत हुए जिनके कारण यथा-वाल्मीकीय रामायण की आवश्यकता महसूस हुई तो उन्नीसवीं शताब्दी में गोपीनाथ और अनेक अन्य कवियों के द्वारा वाल्मीकि रामायण के अधिक अनुवाद किये गये हैं। रंगनाथ रामायण के कतिपय प्रसंगों को लेकर लोकगीतों की रचना भी हुई जैसे ऊर्मिला की निद्रा, लक्ष्मणदेव की हँसी आदि।

उपसंहार—

आलोच्य भाषाओं के मध्यकालीन रामसाहित्यों के इस तुलनात्मक अनुशीलन के उपरांत हम कुछ निष्कर्षों पर पहुँच सकते हैं।

आदि कवि वाल्मीकि के मुख से निसृत रामायण की गंगा ने सारे भारतवर्ष को क्या आसपास की बहुत सी विदेशी भूमियों को भी आप्लावित कर दिया है। अपने मूलोद्गम से निकलकर विभिन्न दिशाओं में विशेषतः हिन्दी भूभाग और तेलुगु भूभाग बहनेवाली इस गंगा में न जाने कहाँ-कहाँ से अनगिनत उपनदियाँ आकर मिलने लगीं और उसे विस्तृत रूप देकर जनता के हृदय सागर मिला लिया। इन कथाओं रूपी उपनदियों का मूलोद्गम कहीं न कहीं कवियों या भक्तों की उर्वरा कल्पना भूमि में ही रहा होगा। साधारण शब्दों में दोनों भाषाओं के राम साहित्यों पर कई अवाल्मीकीय प्रसंगों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा हैं। उसकी रचना के समय बहुत से प्रसंग अवाल्मीकीय नहीं समझ गये होंगे क्योंकि उनका मूल वाल्मीकीय रामायण के किसी न किसी पाठ में मिलता है और उसी के आधार पर उनकी रचना की गई होगी। दोनों साहित्यों में आवश्यकतानुसार वाल्मीकि की रामकथा का सम्यक विकास किया गया है। अतः नानापुराण निगमागम सम्मतं यद्रामायणे निगनितं क्वचिदन्यतोऽपि वाली तुलसीदास की बात तेलुगु रामायणों पर भी पूर्णतः चरितार्थ होती है। किंतु वस्तु विकास का जहाँ तक संबंध है, दोनों भी भाषाओं ने हिन्दू धर्मेतर ग्रंथों का प्रभाव ग्रहण नहीं किया यद्यपि कुछ विद्वानों के अनुसार तुलसीदास स्वयं भू देव के पउम चरिउ से प्रभावित हुए थे।[1] दोनों भाषाओं में संस्कृत और संस्कृतेतर पूर्व भाषाओं की छंद शैलियाँ और काव्य रूपों को थोड़ा बहुत ग्रहण किया गया है।

दोनों भाषाओं के राम साहित्य उद्देश्य और वस्तु प्रतिपादन की शैली की दृष्ठि से एक दूसरे के पूरक हैं। एक में मानवीय धरातल पर से राम को और उनकी कथा को देखा गया है, तो दूसरे में अतिमानवीय धरातल से देखा गया है कतु दोनों में प्राप्त राम तत्व अभिन्न है। तेलुगु में साहित्य सौन्दर्य प्रधान है तो हिन्दी में आध्यात्मिक चिन्तन। इसका अर्थ यह भी है कि तेलुगु में भक्ति तत्व भी है और हिन्दी में साहित्यिक सौंदर्य भी। केवल दोनों भाषाओं के कवियों की दृष्टि के केंद्रविंदु में अंतर है। दोनो भाषाओं के कवियों का विश्वास यह दिखाई पड़ता है कि आदि कवि वाल्मीकि ने राम को विष्णु का अवतार माना था और तदनुरूप उन्होंने भी राम को भगवान माना है।

इन दोनों साहित्यों में प्रतिबिंबित मानव संस्कृति एक ही है यद्यपि देशकाल

---

१. श्री राहुल सांस्कृत्यायन—हिंदी काव्यधारा—भूमिका पृ. ५२

सभ्यता का थोड़ा अंतर है जो अवश्यंभावी है। इस संस्कृति के दोनों पहलू भी इसमें लक्षित हैं। हिन्दी राम साहित्य की धारा में आलोच्य काल में भक्ति सरूप सम्बन्धी जो विभिन्नताएं दिखाई पड़ती हैं उनसे स्पष्ट होता है कि भरत की संस्कृति में लौकिक शृंगारी भावनाओं को भी भक्ति के रंग में रँगने की प्रवृत्ति भी लक्षित होती है जो तेलुगु राम साहित्य में प्रतिबिंबित संस्कृति में नहीं मिलती। हिंदी में माधुर्य भक्ति युत साहित्य का अस्तित्व और तेलुगु में उसका अभाव इस बात का प्रमाण है। प्रारम्भ में तेलुगु के राम साहित्य में एक ही भक्तिधारा-निर्गुण और सगुण-प्रवाहित दिखाई पड़ती है जो इस बात का सूचक है कि भक्ति के धरातल पर आकर तेलुगु देश की संस्कृति ज्ञान गंभीरता का रूप धारण कर लेती है और यह उसके उस स्मार्त दृष्टिकोण की प्रधानता का परिणाम है जिसमें शिव और विष्णु को समान स्थान, तथा ज्ञान मूलक कर्मकांड की प्रधानता है।

रामकथा को दोनों भाषाओं के कवियों ने इस प्रकार अपना लिया है कि उनमें उत्तर दक्षिण की भेद भावना नहीं रही। राम के आदर्श जीवन ने दोनों को समान रूप ने आकृष्ट किया। यदि किसी को उनके भगवतत्व ने प्रभावित किया तो किसी को आदर्श नृपत्व ने।

भारत का परम्परागत वैदिक धर्म तेलुगु देश में जितना अक्षुण्ण रह सका उतना हिंदी के प्रदेश में नहीं जिसका कारण है विदेशी और विधर्मी मुसलमानी शासन और विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों का अनिवार्य प्रभाव। इसे दूर करके परम्परातग वैदिक धर्म की रक्षा करने का प्रयत्न किया है गोस्वामी तुलसीदास ने अपने रामचरित मानस के द्वारा।

अंत में सबसे महत्वपूर्ण यह है कि राष्ट्रीयता की दृष्टि से समूचा भारत आसेतु हिमालचल एक ही राष्ट्र है। यद्यपि लोगों में देश और कालगत आचार विचारों में कुछ अंतर अवश्य पाया जाता है तथापि उनकी अंतर्वाहिनी सांस्कृतिक धारा एक है जो उनके जीवन के प्रति समान धर्मी दृष्टिकोण और विश्वासों आदि में दिखायी पड़ती है। अतः यह कहा जा सकता है कि आलोच्य काल के दोनों राम साहित्यों में एक ही भारतीय जाति का चित्र अंकित है जिसमें आर्य, द्राविड़ आदि भेदों के लिये कोई स्थान नहीं है। वहीं चित्र समूचे भारत की सांस्कृतिक भाषा संस्कृत में सुरक्षित है जो भिन्न २ रूपों में देशी भाषाओं में प्रतिबिंबित हुआ है। अँग्रेजी भाषा के देश में प्रधान होने के कारण, जो देश की

अंतर्निहित सांस्कृतिक एकता का बोध कराने में असमर्थ रहीं, और कुछ अंग्रेज लेखकों की आर्य-द्राविड़ भेदभाव मूलक रचनाओं के फलस्वरूप आजकल इस राष्ट्रीय और सांस्कृतिक एकता को पहचानने में कठिनाई हो रही है। अब स्वतंत्र भारत में राष्ट्र भाषा हिंदी के द्वारा इस अंतर्निहित एकता को मुखरित कर उसकी समुचित रक्षा करने का प्रयत्न केवल रचनाओं में ही नहीं बल्कि जनजन के हृदय में होना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथों की सूची

हिन्दी

मूल ग्रंथ—

१.	कवितावली	गोस्वामी तुलसीदास
२.	गीतावली	"
३.	जानकी मंगल	"
४.	बरवै रामायण	"
५.	दोहावली	"
६.	रामचरित मानस	"
७.	रामाज्ञा प्रश्न	"
८.	विनय पत्रिका	"
९.	कवि प्रिया	केशवदास
१०.	रसिक प्रिया	"
११.	रामचंद्रिका	"
१२.	विज्ञान गीता	"
१३.	कवित्त रत्नाकर	सेनापति
१४.	गोविंद रामायण	गुरु गोविंद सिंह
१५.	ध्यान मंजरी	अग्रदास
१६.	रामाष्टयाम	नाभादास
१७.	हनुमन्नाटक	हृदयराम

समीक्षा ग्रंथ—

१८.	अपभ्रंश साहित्य	डा० हरिवंश कोछड़
१९.	कवितावली अंतर्दर्शन	ला० भगवानदीन
२०.	कवित्त रत्नाकर की भूमिका	पं० उमाशंकर शुक्ल
२१.	केशवदास	चंद्रबली पांडेय
२२.	केशव और उनका काव्य	डा० विजयपालसिंह

२३. गोस्वामी तुलसीदास — पं० रामचंद्र शुक्ल
२४. गोस्वामी तुलसीदास — डा० श्यामसुन्दरदास
२५. गोस्वामी तुलसीदास और— रामकथा — सत्यदेव चतुर्वेदी
२६. तुलसीदास और उनका युग — राजपति दीक्षित
२७. तुलसीदास — डा० माताप्रसाद गुप्त
२८. तुलसीदास और उनका काव्य — पं० रामनरेश त्रिपाठी
२९. तुलसी दर्शन — डा० बलदेवप्रसाद मिश्र
३०. तुलसी — पं० रामबहोरी शुक्ल
३१. महाकवि सूरदास — आचार्य पं० नन्ददुलारे वाजपेयी
३२. मानस की रामकथा — परशुराम चतुर्वेदी
३३. मानस दर्शन — डा० श्रीकृष्ण लाल
३४. मैथिलीशरण गुप्त— अभिनन्दन ग्रन्थ
३५. रस मीमांसा — पं० रामचंद्र शुक्ल
३६. राम कथा — डा० कामिल बुल्के
३७. रामभक्ति में रसिक संप्रदाय — डा० भगवती प्रसाद सिंह
३८. रामभक्ति में मधुर उपासना — भुवनेश्वर नाथ मिश्र
३९. रामानंद की हिंदी रचनाएँ — सं० डा० पीतांबर दत्त बड्थ्वाल
४०. संत वैष्णव काव्य पर— तांत्रिक प्रभाव — डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय
४१. संस्कृति के चार अध्याय — दिनकर
४२. सूर साहित्य — डा०हजारीप्रसाद द्विवेदी
४३. हिन्दी साहित्य — ,,
४४. हिन्दी साहित्य भाग २ — भारतीय हिन्दी परिषद्
४५, हिन्दी साहित्य का इतिहास — पं० रामचंद्र शुक्ल
४६. हिन्दी साहित्य का— आलोचनात्मक इतिहास — डा० रामकुमार वर्मा
४७. हिन्दी साहित्य की भूमिका — डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
४८. हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता — डा० वेणीप्रसाद

पत्र पत्रिकाएँ—

४९. हिन्दी अनुशीलन, प्रयाग

५०. साहित्यानुशीलन, मद्रास

तेलुगु

मूल ग्रंथ—

१.	अच्च तेलुगु रामायण	कूचिमंचि तिम्मकवि
२.	आँध्र महाभारत (रामोपाख्यान)	एर्रन्न
३.	आँध्र महाभागवत/श्रीरामचरित	पोतन्न
४.	आमुक्त माल्यदा	श्रीकृष्णदेव राय
५.	एकोजी रामायण	महाराज एकोजी
६.	क्रीड़ाभिराममु	वल्लभराय
७.	कुमार संभव	नन्नेचौड
८.	त्यागराजु के कीर्तन	त्यागराजु
९.	दशावतार चरित्र	धरणि देवुल रामय्य मंत्री
१०.	दाशरथी शतक	गोपन्न
११.	निर्वचनोत्तर रामायण	तिक्कन्न
१२.	पंडिताराध्य चरित्र	सोमनाथ
१३.	भास्कर रामायण	भास्कर आदि कवि
१४.	मोल्ल रामायण	मोल्ल
१५.	रंगनाथ रामायण	रंगनाथ
१६.	रंगनाथ रामायण—उत्तरकांड	रंगनाथ
१७.	रघुनाथ रामायण	महाराज रघुनाथ नायक
१८.	राघव पांडवीय	पिं सिंरून्न
१९.	रामाभ्युदय	रामभद्र कवि
२०.	रामदास के कीर्तन	गोपन्न
२१.	सुग्रीव विजय	कं० रुद्रकवि
२२.	श्रीमदुत्तर रामायण	कं० पापराजु
२३.	श्री रामायण	वरद राजु

समीक्षा ग्रन्थ—

२४.	आँध्र भाषा चरित्र	डा० चि० नारायण राव

२५.	आँध्र कवयित्रुलु	ऊ० लक्ष्मीकांतम्मा
२६.	आँध्र वांगमय चरित्र संग्रह	के० नारायणराव
२७.	आँध्र वांगमय चरित्र सर्वस्व	शि० रामकृष्ण शास्त्री
२८.	आँध्र कवितरंगिणी	चा० शेषय्या
२९.	आँध्र कबुल चरित्र	कं० वीरशलिंगम्
३०.	आँध्र यक्षगान वांगमय चरित्र	डा० यस्वी जोगाराव
३१.	आँध्र चरित्र संस्कृति	खं लक्ष्मीरंजनं—बालेंदुशेखरम्
३२.	आंध्रुल सांधिक चरित्र	सु० प्रतापरेड्डी
३३.	आंध्रु लेवरु	को. वेंकटाचलम
३४.	कवित्रयमु	नं० रामकृष्णमाचार्य
३५.	दक्षिणांध्र वांगमय	नि० वेंकटराव
३६.	भास्कर रामायण की पीठिका	तं० तेवप्प्रेरुमाल्लय्य
३७.	रंगनाथ रामायण की पीठिका	पिं० लक्ष्मीकांतम
३८.	रंगनाथ रामायण की पीठिका	म० सोमशेखर शर्मा
३९.	राघव पांडवीय का उपोद्घात	वेंकटरंग शास्त्री
४०.	सुग्रीव विजय की भूमिका	वे० प्रभाकर शास्त्री
४१.	सारस्वतालोकमु	रा० अनंत कृष्णमाचार्य

पत्र पत्रिकाएँ—

४२. आँध्र साहित्य परिषद् पत्रिका

४३. भारती

संस्कृत

१. अग्निपुराण

२. अद्भुत रामायण

३. अध्यात्म रामायण

४. आनन्द रामायण

५. उत्तर रामचरित

६. ऐतरेय ब्राह्मण

७. काव्य प्रकाश

८. काव्यादर्श

९. कुमारसंभव

१०. कूर्मपुराण
११. गरुड़ पुराण
१२. चंद्रालोक
१३. चंपू रामायण
१४. पद्म पुराण
१५. प्रसन्न राघव
१६. बाल रामायण
१७. बृहद्धर्म पुराण
१८. ब्रह्मांड पुराण
१९. ब्रह्म पुराण
२०. भट्टिकाव्य
२१. महाभागवत—विजय ध्वजतीर्थ व्याख्या
२२. महाभावत—भागवत चूर्णिका
२३. महाभागवत—श्रीधरीय व्याख्या
२४. महाभागवत—सुबोधिनी टीका
२५. महाभागवत—बाल प्रबोधिनी टीका
२६. महाभारत
२७. मनुस्मृति
२८. मेघसंदेश
२९. रघुवंश
३०. बाल्मीकि रामायण—दक्षिणात्य पाठ
३१. वाल्मीकि रामायण—पश्मोत्तरीय पाठ
३२. वाल्मीकि रामायण—गौड़ीय पाठ
३३. वात्स्यायन के काम सूत्र
३४. विचित्र रामायण
३५. शिवपुराण
३६. साहित्य दर्पण
३७. सौर पुराण
३८. स्कंद पुराण
३९. हनुमन्नाटक

अपभ्रंश—

४०. पउम चरिउ—स्वयंभूदेव

प्राकृत—

४१. पउम चरिउ—विमल सूरि

ENGLISH

1. A History of Sanskrit Literature
—Dr. V. Varadachary
2. History of Jahangir—Prof. Beni Prasad
3. Medevial India under Muhammadan rule
—Stanlay Leinpool
4. Mughal Empire in India—S. R. Sarma

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७	८	करना	कराना
१८	६	होता	होता है।
,,	२४	दिला	दिया
,,	३५	द ण	दर्पण
,,	२८	। मकथ ।	रामकथा
२०	१०	अभाव	प्रभाव
२३	६	वह	यह
,,	११	पठन-पाटन	पठन-पाठन
,,	१५	भारत में	भारत के
२४	१४	भारत	भार
२६	१	निर्धर	निर्भर
२९	२०	मा० वि० १०	सर्ग ११०
३३	१६	बाइ	बाद
३४	४	नाटक	नामक
,,	२६	Brahmanna	Brahmanda
,,	२७	Wich has	Which has
३६	१६	राम और	राम को
६७	५	समानंतर	के समानांतर
३८	११	विशेष	विशेषत:
३९	२५	रामावतार	रामावत
४७	५	मुकुट	मकुट
,,	६	दाशनी	दाशरथी
५१	१६	आकुर	आकर
५४	४	भाय:	प्राय:
,,	१९	साहित्य ने	साहित्य के
६४	११	को रामायण	की रामायण
,,	१४	उच्च	अच्च
६६	७	बुद्ध राजु ने	बुद्ध राजु से
,,	१५	हुआ	हुए
,,	२४	बताया	बनाया
७७	४	अय्यलार्य	अय्यलार्य ने
,,	२१	साहिण भार	साहिणि मार
८६	१३	१६३१ की	१६२१ को
,,	२५	लामांबा	लच्चमांबा
८७	१	अपरु	अपने
९४	१२	सेवन	सेवक

९९	७	माबना	भावना
१०३	३०	सबल	सफल
,,	,,	राज्य शुक्ल	राज्यशुल्क
१०४	८	स्थान	ध्यान
१०५	८	पूरा लक्षणों	पूरा भक्ति के लक्षणों
१०८	२७	बाद	बात
११३	२४	हनुमन्नाटक	हनुमन्नाटक के
११४	१०	हनुमान की	हनुमान को
११५	१५	सचेत	सचेतन
११६	११	अपने	अपनी
११८	१	गरुण	गरुड़
१२१	८	सबमें	इसमें
१२३	८	माता के	माता से
१२७	१३	सर्घ	सर्ग
१२८	२३	दसमें	जिनमें
,,	२६	रास	राम
,,	,,	मैत्री	मैत्री वर्णित है
१३६	५	संगार	संसार
१४९	७	रास	पास
१५१	२८	सीता की	सीता को
१५२	१५	छोड़े	जोड़े
१७८	११	बनना	बनाया
१८२	३	साँप	सांब
१८७	२	लक्ष्मण में	लक्ष्मण से
२०५	२५	भथकर	भयंकर
२१२	५	आम्र दृक्ष	आम्र वृक्ष
२१३	१७	जैसे	कैसे
२२५	६	रंगनाथ	भास्कर
२३९	२६	युक्ति	युक्त
२४२	१३	पक्ष	पद्य
,,	१४	लंका	शंका
१५७	४	कुल	कुछ
,,	१५	राजा का	राजा का चित्र
,,	१८	प्रभाव	प्रकाश
२५९	२८	बहुत रो	बहुत ही
२६७	२३	तात्विक	तात्त्विक
२६९	५	भक्ति	भक्त
२७२	१९	भगवतत्व	भगवत्तत्त्व
२७५	१२	दशम्वांतु	दशम्यांतु
,,	,,	कारुयेत्	कारयेत्

२७६	६	बुनाकर	बुलाकर
,,	१८	जिसे	जिससे
२७८	२	भाँवदे	भाँवरें
२८१	९	देते	देने
२८६	३१	छिड़क	छिड़का
२८८	१४	धिजय	विजय
,,	२७	जैसे	ऐसे
२९२	६	कद्रुष्ण	कदुष्ण
२९३	१०	करने	करके
२९५	९	मोतियों हार	मोतियों के हार
३०२	११	पुरुषोत्तम का	पुरुषोत्तमत्व का
,,	१२	आदर्श की जो	आदर्श की रक्षा की जो
३०६	८	उसमें	उनमें
३११	६	लौंग को सुनाकर	लोगों को मोहित करती है। किसी न किसी प्रकार राम की कथा लोगों को सुनाकर
३३५	२५	वर्ण	वर्णन
३२८	६	सीमा की	सीमा को
३३२	२०	उन भी	उनकी
,,	२४	इतन	इतनी
३४१	२३	आश्चर्य मुक्त	आश्चर्य युक्त
,,	२१	अनुभवों	अनुभावों
,,	२९	समय के	समय की
३४२	२५	कर।	करते।
३४३	१५	म गण	भ गण
३४३	२५	गुनिनाथ	मुनिनाथ
३४६	१३	सृत्यु	मृत्यु
,,	१९	उपजा	उत्प्रेक्षा
३४८	२५	होता है	करता है।
३४८	३०	अशानवश	अज्ञान वश
३५०	२७	यीं	थीं।
३५३	१९	अपने	आपने
३५७	१	नादशेषु	नादिशेषु
,,	,,	षडगल	पडगल
,,	१२	रम	रस
३६०	४	इससे	इसमें
३६४	१२	वस्तुओं ग्रहण	वस्तुओं को ग्रहण
,,	२३	प्रिया	प्रिय
३६६	१०	करुण रण	करुण रस

३६७	७	सेल्विच्छेये	सेल्विच्चेदे
३६७	१०	आत्सा	आत्मा
,,	१५	ध्वनित	ध्वनि
२६८	६	पति के	पति से
३६९	२१	ठा था	बैठा था ।
३७२	१४	शब्दों की	शब्दों का
,,	१९	जहाँ-जहाँ	जहाँ-तहाँ
३७२	२०	व	भाव
,,	२७	ऐसे	जैसे
३७६	१९	स-क्ष	समकक्ष
३७९	८	थे	ये
,,	१४	आँध्र के	आँध्र में
३८०	२३	काव्यहस्तीश्वर	कालहस्तीश्वर
३८३	२२	आँध्र से	आँध्र थे
३८४	२	अंत	अंश
,,	३१	रूप ये	रूप में
३८५	४	व्यक्तित्द	व्यक्तित्व
३८८	२६	कहकर	कहकर उसकी जीभ
३९२	३	नीति कौ	नीति की
,,	५	आँखों को	आँखों की
,,	९	बनेना	बनेगा
,,	१३	बताती है कि	बताती है जो
३९४	११	रह	रहते
३९८	१	भौतिक	मौलिक
३९९	२३	यक्षदान	यक्षगान
,,	२७	यज्ञदान	यक्षगान
४००	१५	इसका	इसकी
,,	,,	नावत्	तावत्
४०१	२१	निर्गुण	निर्गुण रूप
४०३	२६	अधिक	यथा मूल
४०४	३	हृदय सागर	हृदय सागर में
,,	२३	कतु	किंतु
४०५	१	सभ्यता	और सभ्यता
,,	११	विष्णु को	विष्णु को प्राप्त
,,	२०	परम्परातग	परम्परागत
,,	२२	महत्वपूर्ण	महत्वपूर्ण बात
,,	३१	तिबिंबिन	प्रतिबिंबित

एक महत्वपूर्ण शोध ग्रन्थ

महाकवि सुब्रह्मण्य भारती और

महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

के काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन

(लेखक—डा० पी० जयरामन एम० ए०, पी-एच० डी०, मद्रास)

आधुनिक युग भारतीय जन मानस के नव जागरण का युग है, इस शताब्दी के आरम्भ में भारतीय राष्ट्र, समाज तथा व्यक्ति का जीवन अनेकानेक सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक एवं धार्मिक समस्याओं से आक्रान्त था; सर्वत्र अन्तःसंघर्षों, द्वंद्वों तथा बाह्य आन्दोलनों का व्यापक स्वरूप पाया गया और साथ ही अस्वस्थ जीवनगत विभीषिकाओं तथा विस्थापित स्थितियों से विमुक्त एक नवीन चेतन स्थिति का निर्माण करने की प्रबल आकांक्षा एवं क्रियाशीलता भी पायी गयी। राजनीतिक दृष्टि से सामन्तवादी शासन सत्ता के पाश से पूर्णतः मुक्त होने की तड़प प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक गरिमा के पुनः स्थापन की कामना तथा जीवन की चारों दिशाओं में व्याप्त कटुता, एवं विद्रूपता के विरुद्ध आस्था और निष्ठा से अनुप्राणित नवीन मूल्यों के निर्माण की आकांक्षा—यह बीसवीं शताब्दी के भारतवर्ष की विकट परिस्थितिजन्य प्रतिक्रिया से उद्‌भूत विशिष्ट दशा थी। इस युग सन्दर्भ में बाह्य परिवेश के मूल्यवान बिन्दुओं तथा युग जीवन के मौलिक प्रश्नों से अपने को संपृक्त कर नवीन चेतना बोध एवं मूलभूत सांस्कृतिक तत्वों के उपादानों के साथ युग की विभिन्न भावधाराओं, आदर्शों एवं प्रवृत्तियों को सांस्कृतिक भूमिका में प्रस्तुत करनेवाले इने-गिने साहित्यकार भारतवर्ष में हुए हैं जिनमें प्रस्तुत प्रबन्ध में तुलनात्मक भूमिका में परिचर्चित दक्षिण भारत के तमिल भाषा के महाकवि सुब्रह्मण्य भारती और उत्तर भारत के हिन्दी भाषा के महाप्राण सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का शीर्षस्थान असंदिग्ध है। वस्तुतः उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी के भारत का वातावरण ही कुछ ऐसी विशिष्टता लिए हुए था कि समग्र भारतीय भाषाओं के साहित्य एक समान राष्ट्रीय मानवतावादी तथा सांस्कृतिक प्रवृत्तियों से अनुप्राणित हुए। भारती और निराला के समग्र काव्यों का तुलनात्मक

अनुशीलन प्रस्तुत प्रबन्ध का विषय है यद्यपि दोनों कवियों में भाषा, स्थान तथा कतिपय दशाओं का अन्तर विद्यमान है, फिर भी परिस्थितिजनित प्रवृत्तियों का अभूतपूर्व साम्य पाकर सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में दोनों कवियों की काव्य कृतियों का विचारात्मक, काव्यगत, एवं कलात्मक दृष्टिकोणों से तुलनात्मक अध्ययन इसमें प्रस्तुत किया गया है और यह दिखाया गया है कि दोनों की रचनाओं में समान रूप से राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक एकता का प्रतिपादन है। भक्ति तथा वेदान्त की स्वच्छता एवं औदात्य हैं तथा व्यक्ति से लेकर विश्व तक परिव्याप्त जागरूक जीवन के विविध सोपानों पर चलनेवाले नव-नव अन्वेषण तथा प्रयोग हैं। और साथ ही यह भी निरूपित किया गया है कि लोकजीवन की चेतना एवं स्फूर्ति से भ्राजमान विद्रोही, स्वच्छन्दतावादी एवं अध्यात्मवादी कवि भारती और निराला पर युग का सारा परिवेश हावी हो चुका है, और वे दोनों शताब्दी के काव्य-विकास का प्रतिनिधित्व करते हैं। अतः वे दोनों क्रमशः तमिल और हिन्दी के शताब्दी के कवि हैं और वास्तव में आधुनिक साहित्य के नवीन युग पथ पर और उस पथ के साहित्यकारों पर उक्त दोनों कवियों का प्रभाव गहरा और स्पष्ट, उज्ज्वल और लक्ष्यनिष्ठ है। अतः कवि भारती और निराला के साहित्य भारतीय वाङ्मय के इतिहास में अपना अमर स्थान बनाये रखेंगे। भारती और निराला के काव्यों के इस तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर यह तथ्य प्रकाश में आता है कि भारत के विभिन्न भागों में भले ही विविध भौतिक भेद, व्यवधान, वैषम्य आदि परिलक्षित हों, परन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से समूचा भारत अखण्ड है, एक है और समग्र भारत की साधना, प्रवृत्ति आदि समान है। भारतीय साहित्य को, कवि भारती और निराला के श्रद्धेय जीवन्त संस्कारों की महत्तम उपलब्धियाँ हैं।

यह आशा की जाती है कि तमिल और हिन्दी भाषाओं के इन दो महा-कवियों की काव्यकृतियों का यह तुलनात्मक अध्ययन भारतीय भावात्मक एकीकरण की महती साधना में अवश्य अपना महत्वपूर्ण योग प्रदान करेगा।

हमारे अन्य प्रकाशन

शोध ग्रन्थ एवं विशिष्ट आलोचना-ग्रन्थ

गुरु गोविन्दसिंह और उनका काव्य [शोध ग्रंथ]—डा० प्रसिन्नी सहगल १५)
आचार्य चतुरसेन और उनका साहित्य [शोध ग्रंथ]—डा० शुभकार कपूर २५)
समीक्षा के मान और हिंदी समीक्षा की विशिष्ट पद्धतियाँ—दो भाग ५०)
निमाड़ के सन्त कवि सिंगाजी [शोध ग्रंथ]—डा० गंगराडे १०)
सुब्रह्मण्य 'भारती' तथा 'निराला' का तुलनात्मक अध्ययन २०)
तेलुगु और हिंदी के राम काव्यों का ,, ,, १५)
दक्षिण के हिंदी-प्रचार-आन्दोलन का समीक्षात्मक इतिहास [शोधग्रंथ] १०)
हिंदी काव्य में मानव और प्रकृति [शोधग्रंथ]—डा० लालताप्रसाद सक्सेना १५)
अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन [शोधग्रंथ] डा० मायारानी टंडन २५)
अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन [संक्षिप्त] ,, ,, ८)
हिन्दी उपन्यास में कथा-शिल्प का विकास [शोधग्रंथ] डा० प्रतापनारायण १५)
हिंदी साहित्य का नया क्षितिज [डा० प्रतापनारायण टंडन] १८)५०
सूर की भाषा [शोधग्रंथ] डा० प्रेमनारायण टंडन पी-एच डी० २०)
महाराष्ट्र का हिन्दी लोक-काव्य [शोध ग्रंथ] कृ० ग० दिवाकर ५)
उर्मिला [हिंदी-कन्नड साहित्य से तुलना सहित] मे० राजेश्वरैया ४)
देवनागरी लिपि : स्वरूप, विकास और समस्याएँ—जोगलेकर, तिवारी ७)
आधुनिक हिन्दी काव्य : कृति और विधा—डा० सुरेन्द्र माथुर ६)
साहित्य : स्वरूप, सिद्धान्त एवं समस्याएँ—सं० डा० टंडन ५)
साहित्यिक शब्दावली (Glossary of L'terary words) १०)
सा० पारिभाषिक शब्दावली (Glossary of Literary Terms) ३)५०
हिन्दी-साहित्य-विवेचन—श्री योगेन्द्र शर्मा 'मधुप' १२)५०
सूर सारावली : एक अप्रामाणिक रचना—डा० प्रेमनारायण टंडन १२)५०
,, ,, : संपादक—डा० प्रेमनारायण टंडन ३)५०
महाकवि निराला : व्यक्तित्व और कृतित्व सं० ,, ,, १०)
कवि अनूप शर्मा : कृतियाँ और कला ,, ,, ५)
संक्षिप्त सूर सागर—संपादक ,, ,, ६)
हिन्दी साहित्य : पिछला दशक—डा० प्रतापनारायण टंडन ४)५०
सोने में सुगन्ध [ललित निबंध संग्रह] प्रो० प्रभुदास भोपटकर ४)
फागुन के दिन चार [ललित निबंध] ,, ,, ,, ४)
हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास—प्रतापनारायण टंडन ५)
उर्दू साहित्य का सरल इतिहास— ,, ,, २)५०
हिन्दी साहित्यकार कोष [हिन्दी सेवी संसार प्रथम खंड] डा० टंडन २०)

हिन्दी सेवी संसार—[द्वितीय खंड]	डा० प्रेमनारायण टंडन	२०
आधुनिक हिन्दी कवियों की काव्य कला	,, ,,	४)
हिन्दी के प्राचीन ,, ,, ,,	,, ,,	४)
सूर विनय पदावली—	,, ,,	१)५०
सूर-सुधा ,,	,, ,,	१)५०
सूर बाल कृष्ण ,,	,, ,,	१)५०
सूर रामायण	,, ,,	१)५०
भँवरगीत [नंददास] सटीक	,, ,,	)७५
रासपंचाध्यायी ,, ,,	,, ,,	२)५०
नरोत्तदास कृत सुदामा चरित [सटीक]	,, ,,	)७५
रूपनारायण पांडेय स्मृति ग्रंथ ,,	,, ,,	५)
हिन्दी साहित्यांगों का विकास	,, ,,	२)
काव्यांग-परिचय [रस छंद अलंकार]	,, ,,	२)
प्रसाद पंत रत्नाकर—डा० लक्ष्मीनारायण टंडन		२)

अनुपम काव्य ग्रन्थ

तू और मैं [काव्य]—पं० दीनानाथ व्यास	१)५०
व्यंग विनोद [हास्य रस]—व्यंग्यविनोदी मिश्र, राजनाँदगाँव	१)
श्रीकृष्ण चरित्र अथवा रुक्मिणी मंगल—स्व० रूपनारायण पांडेय	४)५०
रसिक शतक [ब्रजभाषा के मौलिक १०० सटीक दोहे]-रसिकबिहारीलाल	२)५०
चित्रकूट के पथ पर [खंड काव्य] डा० देवकीनंदन श्रीवास्तव	१)२५
रामराज्य महाकाव्य—डा० बलदेवप्रसाद मिश्र राजनांदगांव	५)
दयानंद लहरी [खंड काव्य]—श्री अखिलेश शर्मा त्रिवेदी	१)२५
साधना पथ [अतुकांत]—डा० प्रेमनारायण टंडन	२)५०
तुमने निहारा [गीत संग्रह]—जगदीश शर्मा	४)२५
हम तिनुका हन [अवधी कविताएँ]—कवि दिवाकर	)५०

पाठ्य पुस्तकें

साहसी यात्री [बालोपयोगी] बालबंधु एम० ए०	)५०
कुरुक्षेत्र जागता है [नाटक]—प्रो० एन० चंद्रशेखरन नायर	२)
अध्ययन [निबंध संग्रह]—डा० भगीरथ मिश्र पी-एच० डी०	३)
काव्य शास्त्र की रूपरेखा—डा० मायारानी टंडन	१)५०
सप्तपर्ण [प्रतिनिधि एकांकी संग्रह]—सं० मे० राजेश्वरय्या	३)
हिन्दी गद्य प्रवेश—डा० प्रेमनारायण टंडन	१)५०
काव्य कुसुमावली—सं० डा० प्रेमनारायण टंडन	३)

प्रकाशक

हिंदी साहित्य भंडार

५५ चौपटियाँ रोड, लखनऊ—३